मनुस्मृतिः

कुल्लूकभट्टविरचित

मन्वर्थमुक्तावली संस्कृत टीका एवं हिन्दीभाषानुवाद

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ० राकेश शास्त्री

कुल्लूकभट्टविरचित

मन्वर्थमुक्तावली संस्कृत टीका एवं हिन्दीभाषानुवाद

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ० राकेश शास्त्री

मनुस्मृतिः

कुल्लूकभट्टविरचित

मन्वर्थमुक्तावली संस्कृत टीका एवं हिन्दीभाषानुवाद

(द्वितीय भाग)

सम्पादक एवं अनुवादक
डॉ. राकेश शास्त्री
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
राजकीय महाविद्यालय, राजसमन्द (राजस्थान)

विद्यानिधि प्रकाशन
दिल्ली

प्रकाशक :
विद्यानिधि प्रकाशन
डी-10/1061 (समीप श्रीमहागौरी मन्दिर)
खजूरी खास, दिल्ली-110094
दूरभाष : 22967638

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-86700-60-9 (द्वितीय भाग)
: 81-86700-61-7 (सेट)

मूल्य : 695.00

लेज़र टाईप सैटिंग :
क्रियेटिव ग्राफिक्स
दिल्ली-53

मुद्रक :
रुचिका प्रिंटर्स (दिल्ली)

MANUSMṚTI

With the Sanskrit commentary
Maṇvartha-Muktāvalī of
KULLŪKABHAṬṬA
and Hindi Translation

Volume II

Editor and Translator
DR. RAKESH SHASTRI

VIDYANIDHI PRAKASHAN
DELHI

अथाष्टमोऽध्यायः

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम्।। १।।

एवंविधविपक्षमहीक्षिद्भ्यः प्रजानां रक्षणादवाप्तवृत्तिस्तासामेवेतरेतरविवादजपीडा-परिहारार्थं, ऋणादानाद्यष्टादशविवादे विरुद्धार्थार्थिप्रत्यर्थिवाक्यजनितसंदेहहारी विचार एव व्यवहारः। तदाह कात्यायनः—"विनानार्थेऽवसंदेहे हरणं हार उच्यते। नानासंदेह-हरणाद्व्यवहार इति स्मृतः"। तान्व्यवहारान्द्रष्टुमिच्छन्पृथिवीपतिर्वक्ष्यमाणलक्षण-लक्षितैर्ब्राह्मणैरमात्यैश्च सप्तमाध्यायोक्तपञ्चाङ्गमन्त्रैः सह विनीतो वाक्यपाणिपादचापल-विरहादनुद्धतः। अविनीते हि नृपे वादिप्रतिवादिनां प्रतिभाक्षयादसम्यगभिधाने तत्त्वनिर्णयो न स्यात्। तादृशो वक्ष्यमाणां सभां प्रविशेत्। व्यवहारदर्शनं चेदं प्रजानामितेरतरेपीडायां तत्त्वनिर्णयेन रक्षणार्थं वक्ष्यमाणदृष्टादृष्टार्थकरणफलेनैव फलवत्।। १।।

व्यवहारों (विवादों) को सुनने का इच्छुक राजा सलाहकारों, मन्त्रियों तथा न्याय विशेषज्ञ ब्राह्मणों के साथ विनीतभाव से राजसभा (न्यायालय) में प्रवेश करे।। १।।

तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम्।
विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम्।। २।।

तस्यां च सभायां कार्यगौरवापेक्षायामुपविष्टो, लघुनि कार्ये उत्थितोऽपि वा। पाणिशब्दो बाहुपरः दक्षिणपाणिमुद्यम्यानुद्धतवेषालंकारः पूर्वत्रश्लोक इन्द्रियानौद्धत्यमुक्तं तादृशः कार्याणि विचारयेत्।। २।।

वहाँ बैठकर अथवा खड़े हुए ही, दाहिना हाथ उठाकर विनीत वेशभूषा से युक्त हुआ कार्यार्थियों के कार्यों को देखे।। २।।

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक्पृथक्।। ३।।
(हिंसां यः कुरुते कश्चिद्देयं वा न प्रयच्छति।
स्थाने ते द्वे विवादस्य भिन्नोऽष्टादशधा पुनः।। १।।)

तानि च ऋणादानादीनि कार्याण्यष्टादशसु व्यवहारमार्गेषु विषयेषु पठितानि देशजातिकुलव्यवहारावगतैः शास्त्रावगतैः साक्षिद्रव्यादिभिर्हेतुभिः पृथक्पृथक् प्रत्यहं विचारयेत्।। ३।।

वहाँ वे लोग देशाचार, शास्त्रव्यवहार तथा साक्षी आदि प्रमाणों द्वारा प्रतिदिन अट्ठारह प्रकार के विवादग्रस्त मामलों का निर्णय अलग-अलग रूप में किया करें ।।३।।

(जो कोई व्यक्ति किसी की हिंसा करता है अथवा देने योग्य धनादि को नहीं देता है। वे दोनों ही विवाद के स्थान होते हैं, फिर वे ही आगे चलकर अट्ठारह प्रकार के हो जाते हैं।। १।।)

तान्येवाष्टादश गणयति-

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च।। ४।।
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः।। ५।।
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च।। ६।।
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह।। ७।।

तेषामष्टदशानां मध्ये आदाविह ऋणादानं विचार्यते। तस्य स्वरूपमुक्तं नारदेन— "ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथाच यत्। दानग्रहणधर्माश्च तदृणादानमुच्यते।" ततश्च स्वधनस्यान्यस्मिन्नर्पणरूपो निक्षेपः अस्वामिना च कृतो विक्रयः। संभूय वणिगादीनां क्रियानुष्ठानम्। दत्तस्य धनस्यापात्रबुध्या क्रोधादिना वा ग्रहणम्। कर्मकरस्य भृतेरदानम्। कृतव्यवस्थातिक्रमः। क्रयविक्रये च कृते पश्चात्तापाद्विप्रतिपत्तिः। स्वामिपशुपालयो-र्विवादः। ग्रामादिसीमाविप्रतिपत्तिः। वाक्पारुष्यमाक्रोशनादि। दण्डपारुष्यं ताडनादि। स्तेयं निह्नवेन धनग्रहणम्। साहसं प्रसह्य धनहरणादि। स्त्रियाश्च परपुरुषसंपर्कः। स्त्रीसहितस्य पुंसो धर्मे व्यवस्था। पैतृकादिधनस्य च विभागः। अक्षादिक्रीडापण-व्यवस्थापनपूर्वकम्। पक्षिमेषादिप्राणियोधनम्। इत्येवमष्टादश। एतानि व्यवहारप्रवृत्तेः स्थानानि समाह्वयस्य प्राणिद्यूतरूपत्वेन द्यूतावान्तरविशेषत्वादष्टादशसंख्योपपत्तिः।। ४।। ५।। ६।। ७।।

उनमें पहला ऋण लेना, धरोहर रखना, स्वामित्व के अभाव में वस्तु को बेचना, एक साथ इकट्ठा होकर कोई कार्य करना, दी हुई वस्तु को वापस लेना।।४।। सेवकों को वेतन प्रदान न करना, समझौते का उल्लंघन करना, क्रय-विक्रय सम्बन्धी विवाद, स्वामी तथा रखवाले का झगड़ा।।५।। सीमाविषयक तथा कठोरवाणी या मारपीट विषयक विवाद, चोरी करना, डाका डालना और स्त्री के साथ परपुरुष का व्यभिचार।।६।। स्त्री पुरुषों के धर्मविषयक, पैतृक सम्पत्ति विषयक विवाद तथा जड़ चेतन को जुए में दाँव पर लगाना, इस संसार में ये अट्ठारह प्रकार के परस्पर विवाद की स्थितियाँ (मुकदमें) होती हैं।।७।।

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम्।। ८।।

एष्वृणादानादिषु व्यवहारस्थानेषु बाहुल्येन विवादं कुर्वतां मनुष्याणामनादिपारंपर्यागतत्वेन नित्यं धर्ममवलम्ब्य कार्यनिर्णयं कुर्यात्। भूयिष्ठशब्देनान्यान्यपि विवादपदानि सन्तीति सूचयति। तानि च प्रकीर्णकशब्देन नारदाद्युक्तानि। अतएव नारदः- "न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वं तत्स्यात्प्रकीर्णकम्" इति।। ८।।

अत्यधिक झगड़ा करते हुए लोगों के इन व्यवहारों में सनातन धर्म का आश्रय लेकर ही राजा को मुकदमे का निर्णय करना चाहिए।। ८।।

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम्।
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने।। ९।।

यदा कार्यान्तराकुलतया रोगादिना वा राजा स्वयं कार्यदर्शनं न कुर्यात्तदा तद्दर्शनार्थं कार्यदर्शनाभिज्ञं ब्राह्मणं नियुञ्जीत।। ९।।

यदि राजा स्वयं मुकदमों को न देख सके तो उसे उन मुकदमों को देखने के लिए विद्वान् ब्राह्मण को नियुक्त कर देना चाहिए।। ९।।

सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः।
सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा।। १०।।

स ब्राह्मणोऽस्य राज्ञो द्रष्टव्यानि कार्याणि त्रिभिर्ब्राह्मणैः सभायां साधुभिर्धार्मिकैः कार्यदर्शनाभिज्ञैर्वृतस्तामेव सभां प्रविश्योपविश्य स्थितो वा नतु चंक्रम्यमाणस्तस्य चित्तव्याक्षेपसंभवत्वात्तादृशऋणादानादीनि कार्याणि पश्येत्।। १०।।

इस राजा द्वारा नियुक्त वह विद्वान् ब्राह्मण भी तीन सदस्यों के साथ न्यायालय

में प्रवेश करके आसन पर बैठकर या खड़ा होकर ही मुकदमों को भली प्रकार देखे ।।१०।।

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः।
राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान्ब्रह्मणस्तां सभां विदुः।। ११।।

यस्मिंस्थाने ऋग्यजुःसामवेदिनस्त्रयोऽपि ब्राह्मणा अवतिष्ठन्ते, राज्ञाधिकृतश्च विद्वान्ब्राह्मण एव प्रकृतत्वादवतिष्ठते, तां सभां चतुर्मुखसभामिव मन्यन्ते।। ११।।

जिस स्थान पर राजा द्वारा नियुक्त किया गया विद्वान् तथा वेदों के ज्ञाता तीन विद्वान् ब्राह्मण बैठते हैं, उसे 'ब्रह्मसभा' समझना चाहिए।। ११।।

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः।। १२।।

भाः प्रकाशस्तया सह वर्तत इति विद्वत्संहतिरेवात्र सभाशब्देनाभिमता। यत्र देशे सभा विद्वत्संहतिरूपां धर्मः सत्याभिधानजन्योऽनृताभिधानजन्येनाधर्मेणो पीडित आगच्छति अर्थिप्रत्यर्थिनोर्मध्ये एकस्य सत्याभिधानादपरस्य मृषावादात्ते च सभासदोऽस्य धर्मस्य पीडाकरत्वाच्छल्यमिवाधर्मं नोद्धरन्ति तदा ते एव तेनाधर्मशल्येन विद्धा भवन्ति।। १२।।

जिस सभा में धर्म, अधर्म द्वारा पीड़ित होकर स्थित रहता है तथा ब्रह्मसभा के सदस्य इस धर्म के कष्टरूपी शल्य को दूर नहीं करते हैं। वस्तुतः उस सभा के सदस्य ही अधर्मरूपी शल्य से पीड़ित होते हैं।। १२।।

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी।। १३।।

सभामवगम्य व्यवहारार्थं तत्प्रवेशो कर्तव्यः। पृष्टश्चेत्तदा सत्यमेव वक्तव्यम्। अन्यथा तूष्णीमवतिष्ठमानो मृषा वा वदन्नुभयथापि सद्यः पापी भवति। मेधातिथिना तु "सभा वा न प्रवेष्टव्या" इति ऋज्वेव पठितम्।। १३।।

या तो सभा में प्रवेश ही नहीं करना चाहिए, किन्तु प्रवेश करने पर वहाँ सत्य ही बोलना चाहिए, क्योंकि सभा में सत्य न बोलता हुआ अथवा कुछ न बोलता हुआ भी व्यक्ति पाप का भागी होता है।। १३।।

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।। १४।।

यस्यां सभायामर्थिप्रत्यर्थिभ्यामधर्मेण धर्मो न दृश्यते। यत्र च साक्षिभिः

सत्यमनृतेन नाश्यते सभासदां प्रेक्षमाणानांताननादृत्य ते प्रतीकारक्षमा न भवन्तीत्यर्थः। "षष्ठी चानादरे" (पा० सू० २। ३। ३८) इत्यनेन षष्ठी। तत्र त एव सभासदस्तेन पापेन हता भवन्ति।। १४।।

जिस सभा में सभासदों के देखते हुए धर्म का अधर्म द्वारा तथा सत्य का असत्य द्वारा हनन होता है। उसके सभासद ही (पाप द्वारा) मारे जाते हैं।। १४।।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।। १५।।

यस्माद्धर्म एवातिक्रान्त इष्टानिष्टाभ्यां सह नाशयति नार्थिप्रत्यर्थ्यादि। स एव नातिक्रान्तस्ताभ्यां सह रक्षति। तस्माद्धर्मो नातिक्रमणीयः। माऽस्मान् त्वत्सहितान-तिक्रान्तो धर्मोऽवधीदिति सभ्यानामुत्पथप्रवृत्तस्य प्राड्विवाकस्य संबोधनमिदम्। अथवा नो निषेधेऽव्ययं नो हतो धर्मो मावधीत् न हन्त्येवेत्यभिप्रायः।। १५।।

नष्ट हुआ धर्म ही व्यक्ति को मारता है तथा रक्षा किया गया धर्म ही उसकी रक्षा करता है। इसलिए नष्ट हुआ धर्म कहीं हमें न मार डाले यह सोचकर ही कभी भी धर्म का हनन नहीं करना चाहिए।। १५।।

वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्।। १६।।

कामान्वर्षतीति वृषः वृषशब्देन धर्म एवाभिधीयत इति। अलंशब्दो वारणार्थः। यस्माद्धर्मस्य यो वारणं करोति तं देवा वृषलं जानन्ति न जातिवृषलं तस्माद्धर्मं नोच्छिद्यादिति धर्मव्यतिक्रमखण्डनार्थं वृषलशब्दार्थंनिर्वचनम्।। १६।।

धर्म ही वस्तुतः सुख एवं ऐश्वर्य प्रदान करने वाला है। जो व्यक्ति उसका हनन करता है। देवता लोग उसे धर्म का उच्छेदक नीच समझते हैं। इसलिए कभी भी धर्म को विनष्ट नहीं करना चाहिए।। १६।।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।। १७।।

धर्म एवैको मित्रं यो मरणेऽप्यभीष्टफलदानार्थमनुगच्छति यस्मादन्यत्सर्वं भार्यापुत्रादि शरीरेणैव सहादर्शनं गच्छति। तस्मात्पुत्रादिस्नेहापेक्षयापि धर्मो न हातव्यः।। १७।।

वस्तुतः धर्म ही एकमात्र ऐसा मित्र होता है, जो मृत्यु होने पर भी व्यक्ति के साथ जाता है; जबकि अन्य सब कुछ शरीर के साथ ही विनाश को प्राप्त हो जाता है।। १७।।

पादो धर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।।
पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति।। १८।।

दुर्व्यवहारदर्शनादधर्मसंबन्धी चतुर्थभागोऽर्थिनमधर्मकर्तारं प्रत्यर्थिनं वा गच्छति। परश्चतुर्थभागः साक्षिणमसत्यवादिनम्। अन्यपादः सभासदः सर्वानधर्मप्रवृत्त्यनिवारकान्व्याप्नोति। पादश्च राजानं व्रजति। सर्वेषां पापसंबन्धो भवतीत्यत्र विवक्षितम्।। १८।।

अधर्म का चतुर्थांश अधर्म करने वाले को तथा चतुर्थांश उसे देखने वाले (साक्षी) को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त तृतीय, चतुर्थांश सभी सभासदों को तथा शेष चतुर्थांश राजा को मिलता है।। १८।।

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते।। १९।।

यस्यां पुनः सभायामसत्यवादी निन्दार्होऽर्थी प्रत्यर्थी वा सम्यक् न्यायदर्शनेन निन्द्यते तत्र राजा निष्पापो भवति। सभासदश्च पापेन न संबध्यन्ते। अर्थ्यादिकमेव कर्तारं पापमुपैति।। १९।।

जिस सभा में निन्दा के योग्य व्यक्ति निन्दित (दण्डित) होता है। वहाँ पाप करने वाले को ही पाप का फल प्राप्त होता है। राजा भी पापों से रहित होता है तथा सभासद भी पापमुक्त रहते हैं।। १९।।

जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथंचन।। २०।।

ब्राह्मणजातिमात्रं यस्य विद्यते नतु ब्राह्मणकर्मानुष्ठानं वणिगादिवत्साक्ष्यादिद्वारेण स्फुटन्यायान्यायनिरूपणक्षमः, ब्राह्मणजातिरपि वा यस्य संदिग्धाऽऽत्मानं ब्राह्मणं ब्रवीति स वरम्। उक्तयोग्यब्राह्मणाभावे च क्वचित्कार्यदर्शने नृपतेर्धर्मप्रवक्ता भवेन्न तु धार्मिकोऽपि व्यवहारज्ञोऽपि शूद्रः। ब्राह्मणो धर्मप्रवक्तेति विधानादेव शूद्रनिवृत्तिः सिद्धा पुनर्न शूद्र इति शूद्रनिषेधो योग्यब्राह्मणाभावे क्षत्रियवैश्ययोरभ्यनुज्ञानार्थः। अतएव कात्यायनः-"यत्र विप्रो न विद्वान्स्यात्क्षत्रियं तत्र योजयेत्। वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत्"।। २०।।

जातिमात्र से ब्राह्मण कहलाने वाला भले ही अन्य जाति की आजीविका यापन करने वाला हो, वह न्याय के सम्बन्ध में राजा का धर्म-प्रवक्ता (न्यायाधीश) हो सकता है, किन्तु किसी भी प्रकार शूद्र धर्मप्रवक्ता नहीं हो सकता है।। २०।।

यस्मात्-

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम्।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः।। २१।।

यस्य राज्ञो धर्मविवेचनं शूद्रः कुरुते तस्य पश्यत एव पङ्के गौरिव तद्राष्ट्रमवसन्नं भवति।। २१।।

जिस राजा के राज्य में धर्म का विवेचन शूद्र करता है। उसका वह राष्ट्र कीचड़ में फंसी हुई गाय के समान देखते-देखते नष्ट हो जाता है।। २१।।

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम्।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्।। २२।।

यद्राष्ट्रं शूद्रबहुलं बहुलपरलोकाभाववाद्याक्रान्तं द्विजशून्यं तत्सर्वं दुर्भिक्षरोगपीडितं सच्छीघ्रं विनश्यति। "अग्नौप्रास्ताहुतिः सम्यक्" (अ० ३श्लो० ७६) इत्यस्याभावेन वृष्टिविरहादुपजातदुर्भिक्षरोगाद्युपसर्गशान्त्यर्थकर्माभावाच्च।। २२।।

जो राष्ट्र बहुत से शूद्रों से युक्त, नास्तिकों से व्याप्त तथा ब्राह्मणों से रहित होता है। अकाल तथा व्याधियों से पीड़ित वह सम्पूर्ण राज्य शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।। २२।।

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः।
प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत्।। २३।।

धर्मदर्शनार्थमासन उपविश्य आच्छादितदेहोऽनन्यामना लोकपालेभ्यः प्रणामं कृत्वा कार्यदर्शनमनुतिष्ठेत।। २३।।

न्यायाधिकारी अपने शरीर के अङ्गों को ढ़ककर, एकाग्रचित्त होकर धर्मासन पर बैठकर, सभी लोकपालों को प्रणाम करके न्यायकार्य (मुकदमों) को देखना आरम्भ करे।। २३।।

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ।
वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम्।। २४।।

प्रजारक्षणोच्छेदाद्यात्मकावैहिकावर्थानर्थौ बुद्ध्वा परलोकार्थं धर्माधर्मौ केवलावनुरुध्य यथा विरोधो न भवति तथा कार्यार्थिनां कार्याणि पश्येत्। बहुवर्णमेलके तु ब्राह्मणादिक्रमेण पश्येत्।। २४।।

अर्थ-अनर्थ, धर्म-अधर्म केवल इन दोनों को ही भलीप्रकार जानकर, कार्यार्थियों के सभी कार्यों (मुकदमों) को ब्राह्मण, क्षत्रियादि वर्णक्रम से देखे।। २४।।

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम्।
स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च।। २५।।

बाह्यैः स्वरादिलिङ्गैरित्यभिधानादेवावधारितव्यापारैः अर्थिप्रत्यर्थिनामन्तर्गतमभिप्रायं निरूपयेत्। स्वरो गद्गदादिः, वर्णः स्वाभाविकवर्णादन्यादृशो मुखकालिमादिः, इङ्गित-मधोनिरीक्षणादिः, आकारो देहभवस्वेदरोमाञ्चादिः, चेष्टा हस्तास्फालनादिः।। २५।।

न्यायकर्ता को व्यक्ति के मुख से बोले गए स्वर, मुख के वर्ण (फक्क पड़ना आदि), सङ्केत, (इधर-उधर देखना) आकार (कम्पनादि) तथा चेष्टाओं (हाथ मसलना आदि) बाह्यचिह्नों द्वारा लोगों के भीतर स्थित भावों को जान लेना चाहिए।। २५।।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः।। २६।।

आकारादिभिः पूर्वोक्तैः गत्या स्खलत्पादादिकया अन्तर्गतमनोबुद्धिरूपेण परिणतमवधार्यते।। २६।।

क्योंकि आकार, सङ्केत, गति, चेष्य, हावभाव, नेत्र एवं मुख के विकारों द्वारा व्यक्ति के मन के अन्दर स्थित भावों का पता लग जाता है।। २६।।

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत्।
यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः।। २७।।

अनाथबालस्वामिकं धनं पितृव्यादिभिरन्यायेन गृह्यमाणं तावद्राजा रक्षेत्। यावदसौ षट्त्रिंशदब्दादिकं ब्रह्मचर्यमित्याद्युक्तेन प्रकारेण गुरुकुलात्समावृत्तो न भवति तादृशस्यावश्यकबाल्यविगमात्। यस्त्वशक्त्यादिना बाल एव समावर्तते सोऽपि यावदतीतबाल्यो भवति तावत्तस्य धनं रक्षेत्। बाल्यं च षोडशवर्षपर्यन्तम्। "बाल आषोडशाद्वर्षात्" इति नारदवचनात्।। २७।।

राजा को नाबालिग या अनाथ बालक की पैतृक-सम्पत्ति की तब तक रक्षा करनी चाहिए, जब तक उसका समावर्तन संस्कार न हो जाए अथवा जब तक वह बालिग न हो जावे।। २७।।

वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च।। २८।।
(एवमेव विधिः कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि।
वस्त्रान्नपानं देयं च वसेयुश्च गृहान्तिके।। २।।)

वशासु वन्ध्यासु कृतदारान्तरपरिग्रहः स्वामी निर्वाहार्थोपकल्पितधनोपायासु निरपेक्षः अपुत्रासु च स्त्रीषु, प्रोषितभर्तृकासु, निष्कुलासु, सपिण्डरहितासु, साध्वीषु च स्त्रीषु, विधवासु, रोगिणीषु च यद्धनं तस्यापि बालधनस्येव राज्ञा रक्षणं कर्तव्यम्। अत्र चानेकशब्दोपादाने गोबलीवर्दन्यायेन पुनरुक्तिपरिहारः।। २८।।

इसके अतिरिक्त वन्ध्या, पुत्रहीन, कुलहीन, पतिव्रता, विधवा और रोगिणी स्त्रियों की सम्पत्ति की रक्षा भी राजा को (उनके समर्थ होने तक) इसीप्रकार करनी चाहिए।। २८।।

(पतित स्त्रियों के सम्बन्ध में भी राजा को इसप्रकार की व्यवस्था ही करनी चाहिए। उन्हें खाने-पीने के लिए भोजन तथा पहनने के लिए वस्त्र देवे और वे अपने घर के पास ही निवास करें।। २।।)

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः।
ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः।। २९।।

वयमत्रानन्तराधिकारिणो रक्ष्याम इदं धनमित्यादिव्याजेन ये बान्धवास्तासां जीवन्तीनां तद्धनं गृह्णन्ति तान्वक्ष्यमाणचौरदण्डेन धार्मिको राजा दण्डयेत्।। २९।।

उन स्त्रियों के जीवित रहते हुए जो उनके अपने बन्धुबान्धव उनके धनों का हरण कर लें तो धार्मिक राजा उन लोगों को चोर के समान दण्ड द्वारा अनुशासित करे।। २९।।

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत्।
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत्।। ३०।।

अज्ञातस्वामिकं धनं राजा कस्य किं प्रणष्टमित्येवं पटहादिना उद्घोष्य राजद्वारादौ रक्षितं वर्षत्रयं स्थापयेत्। वर्षत्रयमध्ये यदि धनस्वाम्यागच्छति तदा स एव गृह्णीयात्। तदूर्ध्वं तु नृपतिर्विनियुञ्जीत।। ३०।।

नष्ट हुए स्वामी वाली (लावारिस) सम्पत्ति को राजा तीन वर्ष तक संभाल कर रखे। तीन वर्ष से पहले उसका स्वामी उसे ले जा सकता है, किन्तु तीन वर्ष बाद राजा उसे ले लेवे।। ३०।।

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि।
संवाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति।। ३१।।

मदीयं धनमिति यो वदति स किंरूपं किंसंख्याकं, कुत्र प्रणष्टं तद्धनमित्यादि-

विधानेन प्रष्टव्यः। ततो यदि रूपसंख्यादीन्सत्यान्वदति तदा स तत्र धनस्वामी तद्धनं ग्रहीतुमर्हति।। ३१।।

जो व्यक्ति उस लावारिस धन के विषय में 'यह मेरा है' इसप्रकार कहे तो उससे उचित विधि से प्रश्न करने चाहिएँ। धन के रूप, संख्या आदि को ठीक-ठीक बताने पर ही स्वामी, उस धन को लेने का अधिकारी होता है।। ३१।।

अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः।
वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति।। ३२।।

नष्टद्रव्यस्य देशकालावस्मिन्देशेऽस्मिन्काले नष्टमिति, तथा वर्णं शुक्लादि, आकारं कटकमुकुटादि, परिमाणं च यथावदजानन्नष्टद्रव्यसमदण्डमर्हति।। ३२।।

खोए हुए धन के स्थान, समय, रंग, रूप और मात्रा को ठीक-ठीक न बता पाते हुए, उसे अपना कहने वाला व्यक्ति उसके बराबर दण्ड के योग्य होता है।। ३२।।

देशकालादिसंवादे पुनः-

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन्।। ३३।।

यदेतद्राज्ञा प्रणष्टद्रव्यं प्राप्तं तस्मात्षड्भागं दशमं द्वादशं वा रक्षादिनिमित्तं पूर्वेषां साधूनामयं धर्म इति जानन्राजा गृह्णीयात्। धनस्वामिनो निर्गुणसगुणत्वापेक्षश्चायं षड्भागादिग्रहणविकल्पः। अवशिष्टं स्वामिने समर्पयेत्।। ३३।।

इसके अलावा खोए हुए धन के प्राप्त होने पर सज्जनों के धर्म का अनुसरण करता हुआ राजा पात्र के अनुसार षष्ठांश, दशमांश या द्वादशांश जो भी उचित समझे ग्रहण कर ले।। ३३।।

प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम्।
यांस्तत्र चौरान्गृह्णीयात्तान्राजेभेन घातयेत्।। ३४।।

यद्द्रव्यं कस्यापि प्रणष्टं सत् राजपुरुषैः प्राप्तं रक्षायुक्तै रक्षितं कृत्वा स्थाप्यम्। तस्मिंश्च द्रव्ये यांश्चौरान्गृह्णीयात्तान्हस्तिना घातयेत्। गोविन्दराजस्तु "शतादभ्यधिके वधः" इति दर्शनादत्रापि शतसुवर्णस्य मौल्यादिकद्रव्यहरणे वधमाह। तन्न। तत्र संधिं कृत्वा तु यच्चौर्यमिति यत्स्वाम्येऽपि प्रणष्टराजरक्षितद्रव्यहरणेनैव विशेषेण वधविधानाच्छतादभ्यधिके वध इत्यस्य विशेषोपदिष्टवधेतरविषयत्वात्।। ३४।।

चोरी किए गए धन के मिलने पर राजा उसे योग्य रक्षकों की सुरक्षा में रखे और

यदि वहाँ भी उसे चोर ले जावें तो उन्हें पकड़वा कर राजा हाथी से कुचलवा कर मरवा दे।। ३४।।

ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः।
तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा।। ३५।।

यो मानुषः स्वयं निधिं लब्ध्वा, अन्येन वा निधौ प्राप्ते ममायं निधिरिति वदति सत्येन प्रमाणेन च स्वसंबन्धं बोधयति तस्य पुरुषस्य निर्गुणत्वसगुणत्वापेक्षया ततो निधानादष्टभागं द्वादशभागं वा राजा गृह्णीयात्। अवशिष्टं तस्यार्पयेत्।। ३५।।

चोरी किए गए धन को जो व्यक्ति उसका रूप, रंग, संख्या आदि बताकर 'यह वास्तव में मेरा है' इसप्रकार सचमुच कहे तो राजा उस धन में से छठा या बारहवाँ भाग 'कर' के रूप में लेकर बाकी लौटा दे।। ३५।।

अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम्।
तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम्।। ३६।।

अस्वीयं स्वीयमिति ब्रुवन्स्वधनस्याष्टमं भागं दण्ड्यः। यद्वा तस्यैव निधेरत्यन्ताल्पभागं गणयित्वा येनावसादं न गच्छति विनयञ्च लभते तद्दण्ड्यः। अल्पीयसीमितीयसुन्नन्तनिर्देशात्पूर्वस्मादन्योऽयं दण्डः। विकल्पश्च निर्गुणसगुणापेक्षः।। ३६।।

लावारिस धन के सम्बन्ध में असत्य दावा करता हुआ व्यक्ति उसी धन के आठवें भाग से अथवा हिसाब लगाकर दावा किए गए धन के थोड़े भाग द्वारा दण्ड देने योग्य होता है।। ३६।।

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम्।
अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः।। ३७।।
(ब्राह्मणस्तु निधिं लब्ध्वा क्षिप्रं राज्ञे निवेदयेत्।
तेन दत्तं तु भुञ्जीत स्तेनः स्यादनिवेदयन्।। ३।।)

विद्वान्पुनर्ब्राह्मणः पूर्वमुपनिहितं निधिं दृष्ट्वा सर्वं गृह्णीयात्। न षड्भागं दद्यात्। यस्मात्सर्वस्य धनजातस्य प्रभुः। अतएवोक्तम् ''सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदम्'' (अ०१ श्लो०१००) इति। तस्मात्परनिहितविषयमेतद्वचनम्। तथाच नारदः-''परेण निहितं लब्ध्वा राजा ह्यपहरेन्निधिम्। राजगामी निधिः सर्वः सर्वेषां ब्राह्मणादृते।।'' याज्ञवल्क्योऽप्याह-''राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद्द्विजेभ्योऽर्धं द्विजः पुनः। विद्वानशेषमादद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः।।'' (अ० २ श्लो० ३४) अतो यन्मेधातिथि-

गोविन्दराजाभ्यां ''ममायमिति यो ब्रूयात्'' (अ० ८ श्लो० ३५) इत्युक्तं, राजदेयार्थ-निरासार्थं पित्रादिनिहितविषयत्वमेवास्य वचनस्य व्याख्यातं तदनार्षम्। नारदादिमुनि-व्याख्याविपरीतं स्वकल्पितं। न मेधातिथिगोविन्दराजव्याख्यानमाद्रिये।। ३७।।

पहले खोई हुई तथा बाद में प्राप्त हुई निधि को देखकर विद्वान् ब्राह्मण तो वह सम्पूर्ण धन ले सकता है, क्योंकि वह सबका स्वामी होता है। (उसे राजा को कुछ भी अंश देने की आवश्यकता नहीं है)।। ३७।।

(ब्राह्मण उस धन (निधि) को प्राप्त करके तत्काल (उसका कुछ अंश) राजा को निवेदन करे। उसके द्वारा दिए हुए धन का ही वह राजा भोग करे, क्योंकि बिना दिए (ब्राह्मण का धन) भोगने वाला चोर होता है।। ३।।)

यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ।
तस्माद्द्विजेभ्यो दत्त्वार्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत्।। ३८।।

यं पुनरस्वामिकं पुरातनं भूम्यन्तर्गतं निधिं राजा लभते तस्माद्ब्राह्मणेभ्योऽर्धं दत्त्वार्धमात्मीयधनागारे च प्रवेशयेत्।। ३८।।

भूमि में गाड़े गए, पुरातन, जिस धन को राजा प्राप्त करे, उसमें से आधा ब्राह्मणों को देकर, आधा खजाने में जमा करवा दे।। ३८।।

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ।
अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः।। ३९।।

निधीनां पुरातनानामस्वकीयानां विद्वद्ब्राह्मणेतरलब्धानां सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानानां चार्धहरो राजा। यस्मादसौ रक्षति, भूमेश्च प्रभुः।। ३९।।

ब्राह्मणों को छोड़कर दूसरों के पृथ्वी में गड़े हुए, प्राचीन धन का तथा स्वर्णादि धातुओं का आधा भाग, रक्षा करने के कारण राजा ग्रहण करे, क्योंकि वह भूमि का अधिपति होता है।। ३९।।

दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम्।
राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम्।। ४०।।

यद्धनं चौरैर्लोकानामपहृतं तद्राज्ञा चौरेभ्य आहृत्य धनस्वामिभ्यो देयम्। तद्धनं राजा स्वयमुपयुञ्जानश्चौरस्य पापं प्राप्नोति।। ४०।।

चोरों द्वारा चुराया हुआ धन राजा को सभी वर्णों को दे देना चाहिए, क्योंकि उस धन का स्वयं उपयोग करता हुआ राजा चोर के पाप को प्राप्त करता है।। ४०।।

जातिजानपदान्धर्माञ्श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्।। ४१।।

धर्मान्ब्राह्मणदिजातिनियतान्याजनादीन् जानपदांश्च नियतदेशव्यवस्थितानाम्नाया-विरुद्धान्, ''देशजातिकुलधर्माश्चाम्नायैरप्रतिषिद्धाः प्रमाणम्'' इति गोतमस्मरणात्। श्रेणीधर्मांश्च वणिगादिधर्मान्प्रतिनियतकुलव्यवस्थितान्ज्ञात्वा तदविरुद्धान्राजा व्यवहारेषु तत्तद्धर्मान्व्यवस्थापयेत्।। ४१।।

धर्म को जानने वाला राजा जातिधर्म, देशधर्म, श्रेणिधर्म तथा कुलधर्म को भलीप्रकार देखकर उसी के अनुसार (व्यवहारों में) उनके अपने-अपने धर्म की व्यवस्था करे।। ४१।।

यस्मात्-

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः।
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः।। ४२।।

जातिदेशकुलधर्मादीन्यात्मीकर्माण्यनुतिष्ठन्तः, स्वे स्वे च नित्यनैमित्तिकादौ कर्मणि वर्तमानाः, दूरेऽपि सन्तः सांनिध्यनिबन्धनस्नेहाभावेऽपि लोकस्य प्रिया भवन्ति ।।४२।।

क्योंकि अपने-अपने कर्मों को करते हुए तथा अपने-अपने करने योग्य कार्यों में स्थित रहने वाले लोग, दूर रहते हुए भी लोकप्रिय होते हैं।। ४२।।

प्रासङ्गिकमिदमभिधाय पुनः प्रकृतमाह-

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः।
न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथंचन।। ४३।।

राजा राजनियुक्तो वा धनलोभादिना कार्यमृणादिविवादं नोत्पादयेत्। तदाह कात्यायन :-''न राजा तु वशित्वेन धनलोभेन वा पुनः। स्वयं कर्माणि कुर्वीत नराणामविवादिनाम्।।'' न चार्थिना प्रत्यर्थिना वावेदितं विवादं धनादिलोभेनोपेक्षेत ।।४३।।

राजा अथवा इसका कोई व्यक्ति स्वयं कोई विवाद उत्पन्न न करे तथा दूसरे के द्वारा लाए गए विवाद के वास्तविक स्वरूप को लोभवश किसी भी प्रकार न दबाए ।।४३।।

यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम्।
नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम्।। ४४।।

यथा मृगस्य शस्त्रहतस्य रुधिरपातैर्व्याधः पदं स्थानं प्राप्नोति तथानुमानेन इष्टप्रमाणेन वा धर्मस्य तत्त्वं निश्चिनुयात्।। ४४।।

जिसप्रकार शिकारी रक्त के गिरने से मृग के स्थान को प्राप्त कर लेता है। ठीक उसीप्रकार राजा को अनुमान प्रमाण के द्वारा धर्म (न्याय) के तत्त्व तक पहुँचना चाहिए।। ४४।।

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः।
देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः।। ४५।।

व्यवहारदर्शनप्रवृत्तो राजा छलमपहाय सत्यं पश्येत्तथार्थं च। अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्। अर्थवन्तं गोहिरण्यादिधनविषयस्थं व्यवहारं पश्येत् न त्वहमननेनाक्षिनिकोचनेनोपहसित इत्यादिस्वल्पापराधम्, आत्मानं च तत्त्वनिर्णये स्वर्गादिफलभागिनं, साक्षिणः सत्यवादिनः, देशं कालं च देशकालोचितं स्वरूपं, व्यवहारस्वरूपं गुरुलघुतादिकं पश्येत्।। ४५।।

न्यायव्यवस्था में स्थित हुआ राजा व्यवहार (मुकदमे) की सत्यता को, उसके उद्देश्य को, आत्मा के निर्णय को, साक्षियों को, देश, काल तथा उसके स्वरूप को भलीप्रकार विचार करे।। ४५।।

सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः।
तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत्।। ४६।।

विद्वद्भिर्धर्मप्रधानैर्द्विजातिभिर्यद्दृश्यमानशास्त्रमनुष्ठितं तद्देशकुलजात्यविरुद्धमादाय व्यवहारनिर्णयं प्रकल्पयेत्।। ४६।।

तथा जिसका सज्जनों एवं धार्मिक ब्राह्मणों द्वारा आचरण किया गया हो, देश, कुल तथा जाति के अनुकूल उसीप्रकार उस व्यवहार का निर्णय करे।। ४६।।

एतत्सकलव्यवहारसाधारणं परिभाषात्मकमुक्तम्। संप्रति ऋणादानमधिकृत्याह-

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः।
दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम्।। ४७।।

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थं प्रयुक्तधनसिद्ध्यर्थं धनस्वामिना राजा बोधितो वक्ष्यमाण-लेख्यादिप्रमाणप्रतिपादितं धनमुत्तमर्णस्याधमर्णं प्रदापयेत्। अधमर्णादुत्तमर्णाय दापये-दित्यर्थः।। ४७।।

यदि ऋण देने वाले ने अपना ऋण वापस प्राप्त करने के लिए राजा से गुहार की हो तो राजा को धनिक का निश्चित किया हुआ धन कर्जदार से दिलवाना चाहिए।। ४७।।

कथं दापयेदित्याह-कैसे दिलाना चाहिए इसे कहते हैं—

यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः।
तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम्।। ४८।।

यैर्वक्ष्यमाणैरुपायैः संप्रयुक्तमर्थमुत्तमर्णो लभते तैस्तैरुपायैर्वशीकृत्य तमर्थं दापयेत्।। ४८।।

ऋण प्रदान करने वाला (उत्तमर्ण) जिन-जिन उपायों से अपना धन वापस पा सके, ऋण लेने वाले को अपने वश में करके उन-उन उपायों द्वारा वह धन ऋण देने वाले को दिलवावे।। ४८।।

तानुपायानाह-

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च।
प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च।। ४९।।

धर्मादिना प्रयुक्तमर्थं साधयेत्। तत्र धर्मानाह बृहस्पतिः-''सुहृत्संबन्धिसंदिष्टैः साम्ना चानुगमेन च। प्रायेण वा ऋणी दाप्यो धर्म एष उदाहृतः।।'' देये धनेऽधमर्णस्याविप्रतिपत्तौ व्यवहारेण। तथा च वक्ष्यति-'' अर्थेऽपव्ययमानं तु'' (अ० ८ श्लो०५१) इति। मेधातिथिस्तु निःस्वो यः स व्यवहारेण दापयितव्यः। अन्यत्कर्मोपकरणं धनं दत्त्वा कृषिवाणिज्यादिना व्यवहारयितव्यः। तदुत्पन्नं धनं तस्मात्तु गृह्णीयादित्याह। छलादीनि त्रीण्याह बृहस्पतिः-''छद्मना याचितं चार्थमानीय ऋणिकाद्बली। अन्याहृतादि वाहृत्य दाप्यते तत्र सोपधिः। दारपुत्रपशून्हृत्वा कृत्वा द्वारोपवेशनम्। यत्रार्थी दाप्यतेऽर्थं स्वं तदाचरितमुच्यते।। बध्वा स्वगृहमानीय ताडनाद्यैरुपक्रमैः। ऋणिको दाप्यते यत्र बलात्कारः प्रकीर्तितः''।। ४९।।

इसीप्रकार धर्म, व्यवहार, छलछद्म, आचरण तथा पाँचवाँ बलपूर्वक ऋण लेने वाले व्यक्ति से, ऋण देने वाले धनवान् का धन वापस करवावे।। ४९।।

यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात्।
न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम्।। ५०।।

य उत्तमर्णः संप्रतिपन्नमर्थमधमर्णात्स्वयं बलादिना साधयति स स्वीयं धनं सम्यक्साधयन्नस्मास्वनिवेद्य किमिति बलादिकं कृतवानसीति न राज्ञा निषेद्धव्यः ।।५०।।

ऋण देने वाला जो व्यक्ति यदि ऋण लेने वाले से बल प्रयोगादि द्वारा स्वयं अपना धन वसूल कर रहा हो, तो वह अपना ऋण स्वयं वसूल कर ले, राजा को उसे रोकना नहीं चाहिए।। ५०।।

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम्।
दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः।। ५१।।
(यत्र तत्स्यात्कृतं यत्र करणं च न विद्यते।
न चोपलम्भपूर्वोक्तस्तत्र दैवी क्रिया भवेत्।। ४।।)

नाहमस्मै धारयामीति धनविषयेऽपह्नवानमधमर्णं करणेन लेख्यसाक्षिदिव्यादिना प्रतिपादितमर्थमुत्तमर्णस्य राजा प्रदापयेत्। दण्डलेशं च "अपह्नवे तु द्विगुणम्" इति वक्ष्यमाणदशमभागदण्डान्यूनमपि दण्डं पुरुषशक्त्या दापयेत्।। ५१।।

यदि कर्जदार लिए हुए ऋण को मना कर दे तथा साक्ष्यों द्वारा ऋण लेना सिद्ध हो जाए तो उससे राजा महाजन का धन वापस दिलवाए तथा उस कर्जदार पर उसकी शक्ति के अनुसार कुछ जुर्माना भी करे।। ५१।।

(जिस मुकदमे में ऋण लिया गया हो, किन्तु लेखादि साक्ष्य न हों और पहले किए गए होने पर भी उपलब्धता न हो तो वहाँ दैवीक्रिया करनी चाहिए।। ४।।)

अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि।
अभियोक्तादिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत्।। ५२।।

उत्तमर्णस्य धनं देहीति सभायां प्राड्विवाकेनोक्तस्याधमर्णस्य नास्मै धारयामित्यपलापे सति अभियोक्ताऽर्थी देश्यं धनप्रयोगदेशवर्तिसाक्षिणं निर्दिशेत्। प्रायेण साक्षिभिरेव स्त्रीमूर्खादिसाधारणऋणनिर्णयात्प्राक्साक्ष्युपन्यासः। अन्यद्वा करणं पत्रादि कथयेत्।। ५२।।

न्यायालय में 'इस महाजन का धन दो' इसप्रकार न्यायाधीश द्वारा कहे जाने पर यदि कर्जदार लिये हुए ऋण से मुकर जाए, तो प्रार्थी महाजन को साक्षी अथवा अन्यान्य प्रमाण लेखादि प्रस्तुत करने चाहियें।। ५२।।

अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापह्नुते च यः।
यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुध्यते ।। ५३।।
अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति।
सम्यक्प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति।। ५४।।
असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः।
निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत्।। ५५।।

ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत्।
न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते।। ५६।।

अदेश्यं यत्र देशेऽधमर्णस्य ऋणग्रहणकाले सर्वदावस्थानं न संभवतीति। निर्दिश्य चादेशादिकं नैतन्मया निर्दिष्टमित्यपनयति। यश्च पूर्वोक्तानर्थान्स्वार्थान्स्वोक्ता-न्विरुद्धान्वावगच्छति। यश्च मम हस्तात्सुवर्णस्य पलमनेन गृहीतमिति निर्दिश्य मत्पुत्रहस्तादृहीतमित्येवमादिना यः पुनरपसरति। यश्च सम्यक्प्रतिज्ञातमर्थं कस्मात्त्वया रात्रावसाक्षिकं दत्तमित्येवमादि प्राड्विवाकेन पृष्टः सन्न समाधत्ते। यश्च संभाषणानर्ह-निर्जनादिदेशे साक्षिभिः सहान्योन्यं संभाषते। यश्च भाषार्थस्थिरीकरणाय नितरामुच्यमानं प्राड्विवाकेन प्रश्नं नेच्छेत्। यश्च निष्पतेत् उक्तांश्च व्यवहारान्पुराऽनाख्याय यथा स्थानात्स्थानान्तरं गच्छेत्। यश्च ब्रूहीत्युक्तो न किंचिद्ब्रवीति। उक्तं साध्यं न प्रमाणेन प्रतिपादयति। पूर्वं साधनं, अपरं साध्यं, तद्यो न जानाति। असाधनमेव साधनत्वेन निर्दिशति। असाध्यमेव मानेन "शशश्टङ्गकृतं धनुर्ज्ञेयम्" इत्यादि साध्यत्वेन निर्दिशति स तस्मात्साध्यादर्थाद्धीयते।। ५३-५६।।

जो ऋण देने वाला झूठे गवाह तथा गलत प्रमाण प्रस्तुत करे, जो किसी बात को एक बार कहकर फिर उसे छिपाए तथा जो आगे पीछे की कही हुई बातों में तालमेल न रख पाये।। ५३।। जो एक बार कही गई बातों में फिर से परिवर्तन कर दे तथा जो पहले भलीप्रकार प्रतिज्ञापूर्वक कही गई बातों को न्यायाधीश द्वारा फिर पूछे जाने पर स्वीकार ही न करे।। ५४।। जो साक्षियों के साथ बात न करने योग्य एकान्त स्थान में जाकर घुलमिलकर बात करे। जांचविषयक प्रश्नों को पसन्द न करे अथवा उनके पूछे जाने पर इधर-उधर की बात करे।। ५५।। न्यायाधीश द्वारा 'कहो' इसप्रकार कहे जाने पर जो कुछ न बोले तथा जो पूर्वोक्त बातों को प्रमाणित न कर सके तथा जो पूर्वापर की बातों को ही न समझे, वह ऋण दाता उस प्रार्थित-धन (ऋण) से हार जाता है।। ५६।।

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः।
धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत्।। ५७।।

साक्षिणो मम विद्यन्त इत्युक्त्वा तान्निर्दिशेत्युक्तो यो न निर्दिशति तं पूर्वोक्तैरेभिः कारणैर्धर्मस्थः प्राड्विवाकः पराजितं कथयेत्। " ज्ञातारः सन्ति मेत्युक्त्वा" इति वा पाठः। अत्र छान्दसमिकारस्य पूर्वरूपत्वम्।। ५७।।

जो ऋण देने वाला 'मेरे साक्षी हैं' इसप्रकार कहकर, न्यायाधीश द्वारा 'उन्हें प्रस्तुत करो' इसप्रकार कहे जाने पर उन्हें न्यायालय में न लाए तो, न्यायासन पर स्थित

न्यायाधीश इन कारणों से वाद दायर करने वाले उस ऋणदाता को भी हारा हुआ घोषित कर दे।। ५७।।

अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्वध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः।
न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः।। ५८।।

योऽर्थी सन् राजस्थाने निवेद्य भाषायां न ब्रूयात्तदा विषयगौरवापेक्षया बध्यो लघुनि विषये दण्ड्यश्च धर्मतः स्यात्। प्रत्यर्थी पुनर्यदि पक्षत्रयमध्ये न ब्रूयात्तदा धर्मत एव पराजितः स्यान्न तु छलेन।। ५८।।

यदि वाद दायर करने वाला अपने वाद के बारे में कुछ न बोले यहाँ तक कि तीन पखवाड़े तक कुछ न कह सके तो न्याय के अनुसार वह पराजित होता है। अतः न्याय की दृष्टि से वह जुर्माना करने योग्य अथवा फांसी देने योग्य (वध्य) है।।५८।।

यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत्।
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम्।। ५९।।

यः प्रत्यर्थी यत्परिमाणधनमपनयति, अर्थी वा यत्परिमाणधने मिथ्या वदति तावधार्मिकावपह्नुतमिथ्योक्तधनाद्द्विगुणं दण्डरूपं दापनीयौ। अधर्मज्ञाविति वचनाज्ज्ञान-पूर्वापह्नवमिथ्योक्तिविषयमिदम्। प्रमादादिनापलापमिथ्यानियोगापह्नवे द्विगुणमिति शतदशमभागं वक्ष्यति।। ५९।।

जो कर्ज देने वाला जितने धन को छिपावे (अधिक देकर कम कहे) अथवा जो जितना झूठ बोले (कम देकर अधिक बताए)। अधर्म में लिप्त वे दोनों ही राजा द्वारा झूठ बोले गए धन के दुगुने धन से दण्ड द्वारा दण्डित किए जाने योग्य हैं।। ५९।।

पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा।
त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसंनिधौ।। ६०।।

धनार्थिनोत्तमर्णेन राजपुरुषापकर्षं कृताह्वानः प्राड्विवाकेन पृष्टः सन्यदा न धारयामीत्यपह्नवानो भवति तदा नृपत्यधिकृतब्राह्मणसमक्षं त्र्यवरैः साक्षिभिस्त्रयोऽवरा न्यूना येषां तैरर्थिना भावनीयः।। ६०।।

यदि ऋण लेने वाला कर्जदार लिए गए ऋण से मुकर जाए तो ऋण रूप धन प्राप्त करने के इच्छुक कर्ज देने वाले महाजन को राज्याधिकारी ब्राह्मण के समक्ष कम से कम तीन गवाहों द्वारा अपनी बात को प्रमाणित करना चाहिए।। ६०।।

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः।
तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतं च तैः।। ६१।।

धनिभिरुत्तमर्णादिभिः ऋणादानादिव्यवहारेषु यथाविधाः साक्षिणः कर्तव्यास्तथा-विधान्वदिष्यामि। यथा च तैरपि सत्यं वक्तव्यं तमपि प्रकारं वक्ष्यामि।। ६१।।

मुकदमों में महाजनों को जिसप्रकार के साक्षी बनाने चाहिएँ तथा उन्हें किस प्रकार सत्य बोलना चाहिए। उन सबको मैं आप लोगों से अब भलीप्रकार कहूँगा।। ६१।।

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः।
अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि।। ६२।।

कृतदारपरिग्रहाः पुत्रवन्तस्तद्देशजाः क्षत्रियशूद्रवैश्यजातीया अर्थिनिर्दिष्टाः सन्तः साक्षित्वयोग्या भवन्ति। ते हि कृतपरिकरपुत्रभयात्तद्देशवासिना विरोधाच्च नान्यथा वदन्ति नतु ये केचिदृणादानादिव्यवहारेषु साक्षिणः स्युः। आपदि तु वाग्दण्ड-पारुष्य-स्त्रीसंग्रहणादिषूक्तव्यतिरिक्ताः साक्षिणो भवन्ति।। ६२।।

गृहस्थी लोग, पुत्र सन्तति से युक्त, मूल निवासी, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के लोग अर्थी (वादी) के साक्षी कहे गए हैं। आपत्तिकाल के अतिरिक्त जो कोई भी साक्षी होने योग्य नहीं होते हैं।। ६२।।

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः।
सर्वधर्मविदो लुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्।। ६३।।

"क्षत्रविट्शूद्रयोनयः" (अ० ८. श्लो० ६२) इत्युक्तत्वात्ततो ब्राह्मणपरिग्रहार्थं सर्वेषु वर्णेष्वित्यभिधानम्। सर्ववर्णेषु मध्ये ये यथार्थावगतवादिनः सर्वधर्मज्ञा लोभरहितास्ते साक्षिणः कर्तव्याः। उक्तविपरीतांश्च वर्जयेत्।। ६३।।

सभी प्रकार के धर्म को जानने वाले सभी वर्णों के आप्तपुरुषों, लोभरहित लोगों को न्यायविषयक कार्यों में साक्षी बनाना चाहिए। जबकि इसके विपरीत लोगों को छोड़ देना चाहिए।। ६३।।

नार्थसंबन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः।
न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः।। ६४।।

ऋणाद्यर्थसंबन्धिनोऽधमर्णाद्याः, आप्ता मित्राणि, सहायास्तत्परिचारकाः, शत्रवः स्थानान्तरावगतकौटसाक्ष्याः, रोगपीडिता महापातकादिदूषिताः साक्षिणो न कर्तव्याः। लोभरागद्वेषस्मृतिभ्रंशादीनामन्यथाभिधानहेतूनां संभवात्।। ६४।।

न ऋण लेने या देने वाले के सम्बन्धी, न मित्र, न नौकर आदि सहायक, न शत्रु, न जिनका असत्य भाषण आदि दोष पहले देख लिया गया हो, न रोग से पीड़ित और न ही पूर्व में सजा प्राप्त लोगों को मुकदमों में साक्षी बनाना चाहिए।। ६४।।

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ।
न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न सङ्गेभ्यो विनिर्गतः।। ६५।।

प्रभुत्वात्साक्षिधर्मेण प्रष्टुमयोग्यत्वान्न राजा साक्षी कार्यः। कारुः सूपकारादिः, कुशीलवो नटादिः, तयोः स्वकर्मव्यग्रत्वात्प्रायेण धनलोगभवत्त्वाच्चासाक्षित्वम्। श्रोत्रियोऽप्यध्ययनाग्रिहोत्रादिकर्मव्यग्रतया न साक्षी। लिङ्गस्थो ब्रह्मचारी, सङ्गविनिर्गतः परिव्राजकस्तयोरपि स्वकर्मव्यग्रत्वाद्ब्रह्मनिष्ठत्वाच्चासाक्षित्वम्। श्रोत्रियग्रहणादध्ययना-ग्निहोत्रादिव्यग्रेतरब्राह्मणस्यानिषेधः।। ६५।।

इसके अतिरिक्त न राजा, न बढ़ई, न नट, न श्रोत्रिय ब्राह्मण, न ब्रह्मचारी और न सांसारिकता से मुक्त हुए संन्यासी को साक्षी बनाना चाहिए।। ६५।।

नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत्।
न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः।। ६६।।

आध्यधीनोऽत्यन्तपरतन्त्रो गर्भदासो न वक्तव्यो विहितकर्मत्यागाल्लोकविगर्हितः। दस्युः क्रूरकर्मा "न क्रुद्धो नापि तस्करः" (अ० ८ श्लो० ६७) इति वक्ष्यमाणत्वात्। विकर्मकृन्निषिद्धकर्मकारी, एतेषां रागद्वेषादिसंभवात्। न वृद्धः, प्रायेण स्मृतिभ्रंशसंभवात्। न बालोऽप्राप्तव्यवहारत्वात्। नैको विनाशप्रवासशङ्कया तस्य त्र्यवरैरिति विधानात्। अर्थप्रतिषेधसिद्धौ कस्यांचिदवस्थायां द्वयोरभ्यनुज्ञानार्थं निषेधवचनम्। अन्त्यश्चाण्डा-लादिः, धर्मानभिज्ञातत्वात्। विकलेन्द्रिय उपलब्धिवैकल्यान्न साक्षी कार्यः।। ६६।।

न ही क्रीतदास आदि अत्यधिक अधीन, न लोक द्वारा निन्दित, न चोर, न कुकर्म करने वाला, न बूढ़ा, न बालक, न अकेला, न चाण्डाल तथा न ही विकल इन्द्रियों वाला व्यक्ति साक्षी के योग्य है।। ६६।।

नर्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः।
न श्रमार्तो न कामार्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः।। ६७।।

आर्तो बन्धुविनाशादिना, मत्तो मद्यादिनो, उन्मत्त उत्क्षेपभूतावेशादिना, क्षुधापिपा-सादिना पीडितः, श्रमार्तो वर्त्मगमनादिना खिन्नः, कामार्तः उत्पन्नक्रोधः, चौरश्च न साक्षी कार्य इति सर्वत्र सर्वत्र संबध्यते। तत्रार्तादिर्बुद्धिवैकल्यात्। चौरस्त्वधार्मिक-त्वात्।। ६७।।

इसीप्रकार न दुःखी, न पागल, न मद्य आदि से मत्त, न भूख प्यास से पीड़ित, न परिश्रम से थका हुआ, न काम से पीड़ित, न क्रोधी और न ही तस्कर को साक्षी बनावे।। ६७।।

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः।। ६८।।

स्त्रीणामन्योन्यव्यवहारे ऋणादानादौ स्त्रियः साक्षिण्यो भवन्ति। द्विजानां ब्राह्मणक्षत्रियविशां सदृशाः सजातीयाः साक्षिणः स्युः। एवं शूद्राः साधवः शूद्राणां, चाण्डालादीनां चाण्डालादयः साक्षिणो भवेयुः। एतच्च सजातीयसाक्ष्यभिधानम्। उक्तलक्षणसजातीयसाक्ष्यसंभवे विजातीया अपि साक्षिणो भवन्ति। अतएव याज्ञवल्क्यः-"यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः (अ० २ श्लो० ६९)।। ६८।।

स्त्रियों के मुकदमें में स्त्रियों को, द्विजों के व्यवहार में द्विजों को, शूद्रों के विवाद में शूद्रों को तथा चाण्डालों के झगड़े में चाण्डालों की साक्षी को मान्य करना चाहिए।। ६८।।

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम्।
अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये।। ६९।।

गृहाभ्यन्तरेऽरण्यादौ वा चौरादिकृतोपद्रवे देहोपघाते वातताय्यादिकृते यः कश्चिदुपलभ्यते स वादिनोरेव साक्षी भवति, नतु ऋणादानादिवदुक्तलक्षणोपेतः।। ६९।।

घर के अन्दर अथवा जंगल में तथा शरीर के घायल होने या मरने पर, जो कोई भी उसे देखने या सुनने वाला (अनुभावी) हो उसी को विवाद करने वालों (वादी एवं प्रतिवादी) का साक्षी बनाना चाहिए।। ६९।।

तदेवोदाहरणात्स्पष्टयति-

स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा।
शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा।। ७०।।

अन्तर्वेश्मादावुक्तसाक्ष्यभावे सति स्त्रीबालवृद्धशिष्यबन्धुदासकर्मकरा अपि साक्षिणः स्युः।। ७०।।

(उक्त स्थानों में उपर्युक्त) लोगों के साक्षीरूप में न मिलने पर स्त्री, बालक, वृद्ध, शिष्य, बन्धु, दास या नौकर को ही साक्षीरूप में मानना चाहिए।। ७०।।

नन्वस्थिरबुद्धित्वादीनां स्त्रीबालादिनां कथमत्रापि साक्षित्वमित्यत्राह-

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा।
जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा।। ७१।।

बालवृद्धव्याधितानामुपप्लुतमनसां च साक्ष्येऽनृतं वदतामस्थिरा वाग्भवति। अतस्तामनुमानेन जानीयात्। यथोक्तम् "वाग्भिर्विभावयेल्लिङ्गैः" इति।। ७१।।

किन्तु साक्षियों में झूठ बोलने वाले बालक, वृद्ध, रोगी तथा उद्विग्न मन वालों की वाणी अस्थिर होती है। (अतः इस विषय में सावधानी रखे)।। ७१।।

साहसेषु च सर्वषु स्तेयसंग्रहणेषु च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः।। ७२।।

गृहदारादिषु साहसेष्वाचार्यस्त्रीसंग्रहणे वाग्दण्डपारुष्ये च गृहिण इत्युक्तसाक्षि-परीक्षा न कार्या। "स्त्रियाप्यसंभवे कार्यम्" (अ० ८ श्लो० ७०) इत्यस्यैवायमुदाहरण-प्रपञ्चः।। ७२।।

चोरी एवं व्यभिचार जैसे सभी दु:साहसपूर्ण कार्यों में, वाणी तथा दण्ड की कठोरता में, साक्षियों की परीक्षा नहीं करनी चाहिए।। ७२।।

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान्गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान्।। ७३।।

साक्षिणां परस्परविरुद्धानां बहुभिर्यदुक्तं तदेव निर्णयार्थत्वेन राजा गृह्णीयात्। समेषु तु विरुद्धार्थाभिधायिषु गुणवतः प्रमाणीकुर्यात्। गुणवतामेव विप्रतिपत्तौ द्विजोत्तमान् द्विजेषु य उत्तमाः। क्रियावन्त इत्यर्थः। अतएव बृहस्पतिः-"गुणिद्वैधे क्रियायुक्ताः" इति।। ७३।।

राजा अथवा न्यायाधीश, साक्षियों की बातें परस्पर विरुद्ध होने पर बहुमत को, बराबर साक्षियों के होने पर श्रेष्ठगुण वालों को तथा उन गुणवानों में भी द्वैध (विरुद्ध भाव) होने पर द्विजों में श्रेष्ठ ऋषि, महर्षि आदि को प्रमाणरूप में स्वीकार करें।। ७३।।

गोविन्दराजस्तु गुणवतां विप्रतिपत्तौ द्विजोत्तमान्ब्राह्मणान्प्रमाणीकुर्यादित्याह—

समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते।। ७४।।

चक्षुर्ग्राह्ये साक्षाद्दर्शनात्, श्रोत्रग्राह्ये श्रवणात्साक्ष्यं सिध्यति। तत्र साक्षी सत्यं वदन्धर्मार्थाभ्यां न मुच्यते। सत्यवचनेन धर्मोपपत्तेर्दण्डाभावेऽर्थहान्यभावात्।। ७४।।

प्रत्यक्ष देखने से तथा सुनने से साक्ष्य सिद्ध होता है। अत: उनमें सत्य बोलने वाले साक्षी की धर्म तथा अर्थ-विषयक हानि नहीं होती है।। ७४।।

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते।। ७५।।

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यादृशं साधुसभायां वदन्नधोमुखो नरकं गच्छति। परलोके च कर्मान्तरजन्यस्वर्गरूपफलादानेन पापेन हीयते।। ७५।।

जो साक्षी पूर्व में देखे या सुने गए विषय को न्यायालय में असत्य रूप में कहता है तो वह उल्टे मुँह नरक में जाता है तथा मरकर स्वर्ग से पतित होता है।। ७५।।

यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन।
दृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम्।। ७६।।

त्वमस्मिन्विषये साक्षी भवेत्येवमकृतोऽपि यत्किंचिद्दृणादानादि पश्यति वाक्पारुष्यादिकं वा शृणोति तत्रापि साक्षी स पृष्टः सन्यथोपलब्धं कथयेत्। अयं त्वकृतसाक्षी सामान्येन मनुनोक्तः। अस्य "ग्रामश्च प्राड्विवाकश्च राजा च" इत्यादिना नारदादिभिः षड्विध्यमुक्तम्।। ७६।।

वादी या प्रतिवादी द्वारा साक्षी के रूप में उस व्यवहार से सम्बद्ध न करने पर भी व्यक्ति द्वारा वहाँ जो कुछ भी देखा या सुना जावे, न्यायाधीश द्वारा पूछा गया वह उस सम्बन्ध में जैसा सुना या देखा गया है, उसे स्वयं कह देवे।। ७६।।

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः।
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः।।७७।।

एकोऽलुब्ध इत्यत्राकारप्रश्लेषो द्रष्टव्यः। एकोऽपि साक्षी लोभादिरहितः स्यात्। अतएव व्यासः-"शुचिक्रियश्च धर्मज्ञः साक्षी यत्रानुभूतवाक्। प्रमाणमेकोऽपि भवेत्साहसेषु विशेषतः।।" मेधातिथिगोविन्दराजाभ्यां "एको लुब्धस्त्वसाक्षी स्यात्" इति पठितं व्याख्यातं च-लोभात्मक एकः साक्षी न भवति। एवं चालुब्धो गुणवान्कस्यांचिदवस्थायामेकोऽपि भवतीति। स्त्रियः पुनरात्मशौचादियुक्ता बह्व्योऽप्यस्थिरबुद्धित्वादृणादानाद्यैः पर्यालोचितव्यवहारे साक्षिण्यो न भवन्ति। अपर्यालोचिते तु स्तेयवाग्दण्डपारुष्यादौ "स्त्रियाप्यसंभवे कार्य" इति साक्षित्वमुक्तम्। अन्येऽपि ये स्तेयादिदोषैर्व्याप्तास्तेऽपि पर्यालोचितव्यवहारे साक्षिणो न स्युः।। ७७।।

स्त्रियों की बुद्धि के अस्थिर होने के कारण आत्मशुद्धि से पवित्र बहुत-सी स्त्रियों की अपेक्षा तथा दोषों से युक्त अनेक पुरुषों की अपेक्षा, लोभरहित अकेला व्यक्ति भी वस्तुतः साक्षी हो सकता है।। ७७।।

स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम्।। ७८।।

यत्साक्षिणो भयादिव्यतिरेकेण स्वभावाद्यद्ब्रूयुस्तद्व्यवहारनिर्णयार्थं ग्राह्यम्। यत्पुनः स्वाभाविकादन्यत्कुतोऽपि कारणाद्वदन्ति तद्धर्मविषये निष्प्रयोजनं तन्न ग्राह्यम्।। ७८।।

साक्षी, मुकदमे से सम्बन्धित जो कुछ भी स्वाभाविकरूप से कहे, न्यायाधीश

केवल उसी को ग्रहण करे। इसके अतिरिक्त जो बातें वह धर्मविरुद्ध या अलग-अलग बोले, उन्हें व्यर्थ समझे।। ७८।।

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसंनिधौ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन्।। ७९।।

सभामध्यं साक्षिणः संप्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसमक्षं राजाधिकृतो ब्राह्मणः प्रियोक्तिं रचयन्वक्ष्यमाणप्रकारेण पृच्छेत्।। ७९।।

अर्थी एवं प्रत्यर्थी के सान्निध्य में न्यायसभा में आए हुए साक्षियों को सान्त्वना देता हुआ न्यायाधीश इस विधि द्वारा उनसे प्रश्न पूछे।। ७९।।

यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिंश्चेष्टितं मिथः।
तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता।। ८०।।

यद्द्वयोरर्थिप्रत्यर्थिनोरनयोः परस्परमस्मिन्कार्ये चेष्टितं जानीथ तत्सर्वं सत्येन कथयत। यतो युष्माकमत्र साक्षित्वम्।। ८०।।

इन दोनों अर्थी, प्रत्यर्थी के इस मुकदमें के सम्बन्ध में जो कुछ भी तुम लोग जानते हो, वह सब सत्यतापूर्वक कहो, क्योंकि तुम्हारी इस व्यवहार में साक्षी (गवाही) है।। ८०।।

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता।। ८१।।
(विक्रियाद्यो धनं किंचिद् गृह्णीयात्कुलसन्निधौ।
क्रमेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम्।। ५।।)

साक्षी साक्ष्ये कर्मणि सत्यं वदन्सन्नुत्कृष्टान्ब्रह्मलोकादीन्प्राप्नोति पुष्कलान्, इह लोकेषु चात्युत्कृष्टां ख्यातिं लभते। यस्मादेषा सत्यात्मिका वाक् चतुर्मुखेन पूजिता।। ८१।।

गवाही में सत्य बोलता हुआ साक्षी इस लोक में उत्तम कीर्ति को तथा मरने पर उत्तम लोकों को प्राप्त करता है, क्योंकि यह वाणी ब्रह्म द्वारा पूजित है।। ८१।।

(जो व्यक्ति जनसमुदाय के बीच में कोई भी वस्तु बेचकर धन प्राप्त करता है। न्यायपूर्वक प्राप्त होने से वह धन वस्तुतः पूर्णतया विशुद्ध (दोष रहित) प्राप्त करता है।। ५।।)

साक्ष्येऽनृतं वदन्पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम्।
विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम्।। ८२।।

(ब्राह्मणो वै मनुष्याणामादित्यस्तेजसां दिवि।
शिरो वा सर्वगात्राणां धर्माणां सत्यमुत्तमम्।। ६।।
नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
साक्षिधर्मे विशेषेण तस्मात्सत्यं विशिष्यते।। ७।।
एकमेवाद्वितीयं तु प्रब्रुवन्नावबुध्यते।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव।। ८।।)

यस्मात्साक्षी मृषा वाचं कथयन्वरुणसंबन्धिभिः पाशैः सर्परज्जुभिर्जलोदरेण परतन्त्रीकृतः शतं जन्मानि यावदत्यर्थं पीड्यते। तस्मात्साक्ष्ये सत्यं ब्रूयात्।। ८२।।

गवाही के विषय में असत्य बोलता हुआ व्यक्ति वरुण के पाशों द्वारा अत्यधिक बांधा जाता है। जलोदर से सौ जन्मों तक परवश रहता है। इसलिए साक्षी में हमेशा सत्य बोलना चाहिए।। ८२।।

(वस्तुतः मनुष्यों में ब्राह्मण, द्युलोक के तेजों में आदित्य, सम्पूर्ण अङ्गों में सिर तथा सभी धर्मों में सत्य उत्तम होता है।। ६।।

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है। इसलिए विशेषरूप से साक्षी के सम्बन्ध में सत्य विशेष महत्त्व रखता है।। ७।।

जो व्यक्ति केवल सत्य बोलता है, दूसरा (अर्थात् असत्य) नहीं बोलता है। वह कभी भी भूलता नहीं है। समुद्र में नाव के समान सत्य, स्वर्ग की सीढ़ी होता है।। ८।।)

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः।। ८३।।

यस्मात्सत्येन पूर्वार्जितादपि पापात्साक्षी मुच्यते धर्मश्चास्य सत्याभिधानेन वृद्धिमेति तस्मात्सर्ववर्णविषये साक्षिभिः सत्यं वक्तव्यम्।। ८३।।

गवाही देने वाला सत्य से पवित्र होता है, सत्य द्वारा उसके धर्म की वृद्धि होती है। इसलिए सभी वर्णों के सम्बन्ध में साक्षियों को हमेशा सत्य बोलना चाहिए।। ८३।।

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्।। ८४।।

यस्माच्छुभशुभाकर्मप्रतिष्ठा आत्मैवात्मनः शरणं तस्मादेवं स्वमात्मानं नराणां मध्यमादुत्तमं साक्षिणं मृषाभिधाने नावज्ञासीः।। ८४।।

आत्मा ही अपने शुभ और अशुभ कर्मों का साक्षी है तथा आत्मा की गति भी आत्मा ही है। इसलिए हे मनुष्य! तू सभी मनुष्यों में उत्तम साक्षी अपनी आत्मा का (असत्य बोलकर) अपमान मत कर।। ८४।।

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः।।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः।। ८५।।

पापकारिण एवं मन्यन्तेऽस्मानधर्मप्रवृत्तान्न कश्चित्पश्यतीति। तान्पुनर्वक्ष्यमाणा देवाः पश्यन्ति। स्वस्यान्तरपुरुषः पश्यति।। ८५।।

पाप करने वाले लोग वस्तुतः यह मानते हैं कि हमें कोई नहीं देख रहा है। जबकि उन्हें देवता देखते हैं तथा उनके अपने अन्तःकरण में स्थित पुरुष देखता है।। ८५।।

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः।
रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम्।। ८६।।

द्युलोकपृथिवीजलहृदयस्थजीवचन्द्रादित्याग्नियमवायुरात्रिसंध्याद्वयधर्माः सर्वशरीरिणां शुभाशुभकर्मज्ञाः। दिवादीनां चाधिष्ठातृदेवतास्ति सा च शरीरिण्यैकत्रावस्थापिता तत्सर्वं जानातीत्यागमप्रामाण्याद्वेदान्तदर्शनं तदङ्गीकृत्येदमुक्तम्।। ८६।।

आकाश, भूमि, जल, हृदय, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, धर्म तथा दोनों संध्याएँ सभी लोगों के शुभ-अशुभ कर्मों को जानते हैं।। ८६।।

देवब्राह्मणसांनिध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान्।
उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन्।। ८७।।

प्रतिमादेवताब्राह्मणसंनिधाने शुचीन्द्विजातिप्रभृतीन्प्राङ्मुखानुदङ्मुखान्वा स्वयं प्रयतः प्राड्विवाकः पूर्वाह्णे काले याथातथ्यं साक्ष्यं पृच्छेत्।। ८७।।

पवित्र हृदय वाला न्यायाधीश देवता की प्रतिमा अथवा ब्राह्मण के पास, पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके स्थित हुए पवित्र द्विजों से दिन के पूर्वकाल में साक्ष्य की सत्यता के विषय में प्रश्न करे।। ८७।।

ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम्।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः।। ८८।।

ब्रूहीत्येवं शब्दमुच्चार्य ब्राह्मणं पृच्छेत्। सत्यं ब्रूहीति पार्थिवं क्षत्रियं पृच्छेत्। गोबीजसुवर्णापहारे यत्पापं तद्भवतोऽनृताभिधाने स्यादित्येवं वैश्यम्। शूद्रं पुनः सर्वैर्वक्ष्यमाणपापैः संबध्यसे यदि मृषा वदसीति पृच्छेत्।। ८८।।

न्यायाधीश को ब्राह्मणों से 'कहो' इसप्रकार तथा क्षत्रियों से 'सत्य बोलो' इस तरह और वेश्यों से असत्य बोलने से 'तुम्हें गाय, बीज और सोना चुराने जैसा पाप लगेगा' तथा शूद्र से 'झूठ बोलने से तुम्हें सब पाप लगेंगे' इसप्रकार बोलना चाहिए।। ८८।।

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः।
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा।। ८९।।

ब्राह्मणहन्तुः स्त्रीघातिनो बालघातिनश्च ये नरकादिलोका ऋषिभिः स्मृताः, ये च मित्रद्रोहादिकारिणः, ये चोपकर्तुरपकारिणस्ते तव मिथ्यावदतो भवेयुः।। ८९।।

ब्रह्महत्या करने वाले व्यक्ति के लिए तथा स्त्री और बालक की हत्या करने वाले, मित्रद्रोही, कृतघ्न व्यक्ति के लिए जो लोक कहे गए हैं, असत्य बोलते हुए तुझे वे सब प्राप्त होंगे, इसलिए तुम्हें सत्य बोलना चाहिए।। ८९।।

जन्मप्रभृति यत्किंचित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम्।
तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा।। ९०।।

हे शुभाचार, यत्त्वया जन्मत आरभ्य किंचित्सुकृतं कृतं तत्सर्वं त्वदीयं कुक्कुरादिकं संक्रामति यदि त्वमसत्यं ब्रवीषि।। ९०।।

हे भद्र! यदि तुम इस गवाही में असत्य बोलते हो तो जन्म से लेकर जो कुछ भी पुण्य तुमने किया है, वह सब तुम्हारा पुण्य कुत्तों को प्राप्त होवे।। ९०।।

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः।। ९१।।

हे भ्रद, एक एवाहमस्मि जीवात्मक इति यदात्मानं मन्यसे मैवं मंस्थाः। यस्मादेवं पापानां पुण्यानां च द्रष्टा मननान्मुनिः सर्वज्ञस्तव हृदये परमात्मा नित्यमवस्थितः। तथाच श्रुतिः-''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति''।। ९१।।

हे कल्याणों से युक्त! यदि तुम अपने आपको 'मैं अकेला हूँ' इसप्रकार मानते हो, तो ठीक नहीं है, क्योंकि पाप-पुण्य को देखने वाला, यह परमात्मा तुम्हारे हृदय में हमेशा विद्यमान रहता है।। ९१।।

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरूनामः।। ९२।।

सर्वसंयमनाद्यमः परमात्मा वैवस्वत इति दण्डधारित्वात्, देवनाद्देवः, यस्तवैष

हृदि तिष्ठति तेन सह यथार्थकथने यदि तवाविवादः यदा त्वन्मनोगतमसावन्यज्जानाति त्वं चान्यथा कथयसि तदान्तर्यामिणा सह विप्रतिपत्तिः स्यात्। एवं चात्र सत्याभिधानेनैव निःपापः कृतकृत्योऽसि। पापनिर्हरणार्थं मा गङ्गां मा च कुरुक्षेत्रं यासीः। मनूक्तमेवात्र गङ्गाकुरुक्षेत्रयोः साम्यं मत्स्यपुराणे व्यासेन स्फुटीकृतम्- ''कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाहिता'' इति। मेधातिथिगोविन्दराजौ तु विवस्वतः पुत्रो यो यमो दक्षिणदिक्पतिर्लोकतः कर्णगोचरीभूतत्वात्तव हृदये परिस्फुरति तेन सह यदि तवाधर्मकारित्वाद्विवादो नास्ति तदा मा गङ्गां मा कुरुक्षेत्रं यासीरिति व्याचक्षाते।। ९२।।

तुम्हारे हृदय में स्थित रहने वाला जो यह दण्ड देने वाला परमात्मदेव है, यदि उसके सम्बन्ध में तुम सहमत नहीं हो तो गंगा तथा कुरुक्षेत्र में जाने की आवश्यकता भी नहीं है।। ९२।।

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः।
अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।। ९३।।

यः साक्ष्यमसत्यं वेदत्स नग्नः कृतमुण्डनपरिभावोऽन्धः कपरिणोपलक्षितः भिक्षार्थी शत्रुकुलं गच्छेत्।। ९३।।

जो व्यक्ति गवाही में झूठ बोलता है। वह (दूसरे जन्म में) नग्न, सिर मुण्डाया हुआ, भूख-प्यास से युक्त, अन्धा, कपाल धारण करने वाले भिखारी के रूप में शत्रुओं के पास जाता है।। ९३।।

अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत्।
यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन्धर्मनिश्चये।। ९४।।

यो धर्मनिश्चयनिमित्तं पृष्टः सन्नसत्यं ब्रूयात्स पापवानधोमुखो महान्धकारे यो नरकस्तं गच्छति।। ९४।।

धर्म के निर्णय के विषय में पूछे जाने पर जो व्यक्ति न्यायाधीश के समक्ष असत्य बोलता है, वह पापी अधोमुख होकर भयंकर अन्धकार से युक्त नरक में जाता है।। ९४।।

अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह।
यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः।। ९५।।

यः सभां प्राप्तोऽर्थस्य तत्वार्थस्य वैकल्यमयथार्थाभिप्रायमप्रत्यक्षमनुप-

लब्धमुत्कोचादिमुखलेशेन कथयति स नरोऽन्ध इव सकण्टकान्मत्स्यान्भक्षयति सुखबुद्ध्या प्रवृत्तो दुःखमेव महल्लभते।। ९५।।

इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति न्यायसभा में जाकर विषय को उलटा पलटा कर, बिना देखी बात कहता है, वह मनुष्य काँटे सहित मच्छली को खाने वाले अन्धे के समान महान् कष्ट पाता है।। ९५।।

यस्य विद्वान्हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः।। ९६।।

अस्य वदतः सर्वज्ञोऽन्तर्यामी किमयं सत्यं वदत्युतानृतमिति न शङ्केत किन्तु सत्यमेवायं वदतीति निर्विशङ्कः संपद्यते। तस्मादन्यं पुरुषं देवा न जानन्ति।। ९६।।

साक्षी में बोलते हुए जिस व्यक्ति का सर्वज्ञ अन्तर्यामी आत्मा लेशमात्र भी शङ्कित नहीं होता है। देवता लोग इस संसार में उस व्यक्ति से अधिक श्रेष्ठ अन्य किसी पुरुष को नहीं मानते हैं।। ९६।।

यावतो बान्धवान्यस्मिन्हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन्।
तावतः संख्यया तस्मिञ्छृणु सौम्यानुपूर्वशः।। ९७।।
(एवं संबन्धनात्तस्मान्मुच्यते नियतावृतः।
पशून्गोश्वपुरुषाणां हिरण्यं भूर्यथाक्रमम्।। १।।)

यस्मिन्पश्वादिनिमित्ते साक्ष्येऽनृतं वदन् यत्संख्याकान्पित्रादिबान्धवान्नरके योजयति तत्संख्याकान्क्रमेण परिगणनया मयोच्यमानान्साधो शृणु। अथवा यावतो बान्धवान्यस्मिन्हन्ति यावतां बान्धवानां हननफलं प्राप्नोति तावत्संख्याकाञ्छृणु। पक्षद्वयेऽप्यनृतनिन्दार्थमिदम्।। ९७।।

हे सौम्य! जिसप्रकार की गवाही में झूठ बोलकर व्यक्ति जितने बान्धवों को नरक में डालता है। उस विषय में उस संख्या को क्रमशः मुझसे सुनो!।। ९७।।

(इसीप्रकार नियत घटनाक्रम के सत्यरूप में कहने वाला साक्षी उन पापों से मुक्त हो जाता है। साथ ही वह पशु, गो, अश्व, पुरुष, स्वर्ग तथा भूमि के विस्तृत भाग को क्रमशः प्राप्त करता है।। १।।)

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते।। ९८।।

पशुविषयेऽनृते पञ्च बान्धवान्नरके योजयति पञ्चानां बान्धवानां हननफलं प्राप्नोति। एवं दश गोविषये, शतमश्वविषये सहस्रं पुरुषविषये। संख्यागौरवं चेदं प्रायश्चित्तगौरवार्थम्।। ९८।।

पशु के बारे में झूठ बोलने पर पाँच, गाय के विषय में असत्य कहने पर दस, घोड़े के सम्बन्ध में असत्य कहने पर सौ तथा मनुष्यों के लिए झूठ बोलने पर वह एक हजार बान्धवों को नरक में डालता है।। ९८।।

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः।। ९९।।
(पशुवत्क्षौद्रघृतयोर्यच्चान्यत्पशुसंभवम् ।
गोवद्वस्त्रहिरण्येषु धान्यपुष्पफलेषु च।। १०।।
अश्ववत्सर्वयानेषु खरोष्ट्रवतरादिषु।।)

हिरण्यार्थेऽनृतं वदञ्जातानजातांश्च पुत्रभृतीन्नरके योजयति एषां हननफलं प्राप्नोति। भूमिविषये चानृतं वदन्सर्वप्राणिनां हननफलं प्राप्नोति। तस्माद्भूविषयेऽनृतं मा वदीरिति विशिष्याभिधानम्।। ९९।।

स्वर्ण के सम्बन्ध में झूठ बोलते हुए व्यक्ति उत्पन्न हुए पिता, पितामह आदि तथा अभी तक उत्पन्न न हुए पुत्र, पौत्रादिकों को नरक में डालता है। भूमि के विषय में असत्य सभी को नरक में डालता है। इसलिए भूमि के सम्बन्ध में असत्य नहीं बोलना चाहिए।। ९९।।

(शहद, घी तथा पशु के उत्पन्न होने वाली अन्य वस्तु, दूध, मक्खन आदि के बारे में झूठ बोलने पर पशु के समान, वस्त्र, सोना, धान्य तथा फूल-फल के विषय में असत्य बोलने पर गाय के समान तथा गधा, ऊँट, नाव आदि वाहनों के सम्बन्ध में झूठ बोलने पर घोड़े के विषय में असत्य बोलने के समान (क्रमशः पाँच, दश, सौ बान्धवों को नरक में डालने वाला होता है।। १०।।)

वैदूर्यादिष्वनृतं ब्रुवतो भूमिवद्दोषमाह—

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने।
अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च।। १००।।
(पशुवत्क्षौद्रघृतयोर्यानेषु च तथाश्ववत्।
गोवद्रजतवस्त्रेषु धान्ये ब्राह्मणवद्विधिः।। ११।।)

तडागकूपग्राह्योदकविषयेऽनृते स्त्रीणां च मैथुनाख्योपभोगविषये अब्जेषु च रत्नेषु च मुक्तादिषु पाषाणमयेषु वैदूर्यादिष्वनृते भूमिवद्दोषमाहुः।। १००।।

जल, स्त्रियों का भोग, मैथुन, कमल, रत्न तथा पत्थर द्वारा निर्मित सभीप्रकार की वस्तुओं के सम्बन्ध में असत्य बोलने पर, भूमि के बारे में झूठ बोलने के समान (व्यक्ति सभी बन्धुओं को नरक में डालता है)।। १००।।

(शहद और घी के विषय में असत्य बोलने पर पशु के समान, वाहनों के बारे में असत्य बोलने पर घोड़े के समान, चांदी तथा कपड़ों के बारे में झूठ बोलने पर गौ के समान तथा धान्य के विषय में असत्य बोलने पर, ब्राह्मण के सम्बन्ध में असत्य बोलने के समान व्यक्ति पाप का भागी होता है।। ११।।)

एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे।
यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद।। १०१।।

एतानसत्यभाषणदोषानधिगम्य दृष्टश्रुतानतिक्रमेण सर्वमेवाञ्जसा तत्त्वतो ब्रूहि।। १०१।।

इसलिए तुम असत्य बोलने पर इन सभी दोषों को भलीप्रकार देखकर जैसा तुमने सुना है, जैसा देखा है वैसा ही सब कुछ सीधे से कहो।। १०१।।

गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान्।
प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्राञ्शूद्रवदाचरेत्।। १०२।।
(येप्यतीताः स्वधर्मेभ्यः परपिण्डोपजीविनः।
द्विजत्वमभिकाङ्क्षन्ति तांश्च शूद्रानिवाचरेत्।। १२।।)

गोरक्षणजीविनो, वाणिज्यजीविनः, सूपकारादिकारुकर्मजीविनः, दासकर्मजीविनः, नटकर्मनृत्यगीतादिजीविनः, प्रतिषिद्धजीविनो ब्राह्मणान्प्रकृतसाक्ष्यदर्शने शूद्रवत्पृच्छेत्।। १०२।।

ग्वाले, व्यापारी, बढई, नट, दास, निन्दितकर्म करके जीविका चलाने वाले ब्राह्मणों से साक्षी-विषयक प्रश्न करते समय राजा शूद्र के समान व्यवहार करे।। १०२।।

(इसके अतिरिक्त दूसरों के भोजन से आजीविका चलाने वाले, अपने धर्म से भ्रष्ट हुए जो लोग ब्राह्मणत्व की आकांक्षा करते हैं। उनके साथ साक्षी के सम्बन्ध में राजा शूद्र के समान आचरण करे।। १२।।)

तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः।
न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्ति ताम्।। १०३।।

तदेतत्साक्ष्यमन्यथापि जानन्मनुष्यो धर्मेण दयादिना व्यवहारेष्वन्यथा वदन्स्वर्गलोकान्न भ्रश्यति। यस्माद्यदेतन्निमित्तविशेषेणासत्याभिधानं तां देवसंबन्धिनीं वाचं मन्वादयो वदन्ति।। १०३।।

घटनाक्रम को जानता हुआ भी जीवरक्षा आदि धर्म से आगे कहे जाने वाले

विषयों में अन्यथा कहता हुआ भी व्यक्ति स्वर्गलोक से भ्रष्ट नहीं होता है, क्योंकि विद्वान् लोग उसे दैवीवाक् कहते हैं।। १०३।।

क्व पुनस्तदसत्यं वक्तव्यमित्यत आह—

शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ भवेद्वधः।
तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते।। १०४।।

यस्मिन्व्यवहारे सत्याभिधाने सति शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां वधः संपद्यते तत्रासत्यं वक्तव्यम्। यस्मात् यस्मिमन्विषयेऽनृतं यत्तत्प्राणरक्षणेन सत्याद्विशिष्यते। एतच्च प्रमादस्खलिताधर्मविषयत्वे न त्वत्यन्ताधार्मिकर्सधिकारस्तेनादिविषये। तथा गोतमः-''नानृतवदने दोषो यज्जीवनं चेत्तदधीनं नतु पापीयसो जीवनम्'' इति। नच ''न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्'' (अ० ८ श्लो० ३८०) इति मनुनैव वक्ष्यमाणत्वान्न ब्राह्मणवधप्रसक्तिरिति वाच्यम्। उग्रदण्डत्वाद्राज्ञः कथंचित्संभवात्। अत्र वचने शूद्रादिक्रमेणाभिधानं वधस्यामङ्गलत्वात्।। १०४।।

जहाँ सत्य बोलने पर शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण का वध (प्राणदण्ड) हो, वहाँ असत्य बोलना चाहिए, क्योंकि वह सत्य की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है।। १०४।।

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम्।
अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम्।। १०५।।

ते साक्षिणोऽनृताभिधायिनो वाग्देवताकैश्चरुभिः सरस्वतीं यजेरन्। तस्यानृताभिधानजनितपापस्य प्रकृष्टां शुद्धिं कुर्वाणाः। साक्षिबहुत्वापेक्षं चेदं न त्वेकस्यैव साक्षिणः कपिञ्जलन्यायेन चरुत्रयम्। यद्यपि वाग्देवताके चरौ वाक्शब्देनैव देवतात्वं न सरस्वतीशब्देन '' विधिशब्दस्य मन्त्रत्वे भावः स्यात्'' इति न्यायात्तथापि ''वाग्वै सरस्वती'' इति श्रुतेर्वाक्सरस्वत्योरेकार्थत्वात्सरस्वतीमित्युपसंहारः। अत्र प्रकरणे चेदं प्रायश्चित्ताभिधानं लाघवार्थम्। तत्र क्रियमाणे शूद्रविट्क्षत्रियब्राह्मणवधविषयानृतवादिन इत्यपि वक्तव्यं स्यात्।। १०५।।

उस झूठ के पाप का उत्तम प्रायश्चित्त करते हुए वे वाणी की देवता सरस्वती का चरुओं द्वारा यजन करें।। १०५।।

कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि।
उदित्यृचा वा वारुण्या तृचेनाब्दैवतेन वा।। १०६।।

कूष्माण्डमन्त्रा यजुर्वेदिका ''यद्देवा देवहेडनम्'' इत्येवमादयस्तैर्मन्त्रदेवतायै घृतमग्नौ जुहुयात्। यथाविधि परिस्तरणादि त्वात्मधर्मेण स्वगृह्योक्तेन। ''उदुत्तमं

वरुणपाशम्'' इत्येतया वरुणदेवताकया ''आपो हि ष्ठा:'' इति तृचेन वाग्देवताकेन जुहुयात्। घृतमग्नाविति सर्वत्रानुषङ्गः।। १०६।।

अथवा साक्षी में असत्य बोलने वाला वह व्यक्ति, कूष्माण्ड मन्त्रों द्वारा अथवा 'उदुत्तमं' इत्यादि ऋचाओं से अथवा वरुण (जल) है देवता जिनका ऐसे वरुण विषयक मन्त्रों से विधिविधान के साथ घी का अग्नि में हवन करें।। १०६।।

त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः।
तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः।। १०७।।

अव्याधितः साक्षी ऋणादानादिव्यवहारे त्रिपक्षपर्यन्तं यदि साक्ष्यं न वदेत्तदा तद्विवादास्पदं सर्वमृणमुत्तमर्णस्य दद्यात्, तस्य च सर्वस्यर्णस्य दशमं भागं राज्ञो दण्डं दद्यात्।। १०७।।

यदि व्यधिरहित रहता हुआ भी साक्षी ऋणविषयक मुकदमें में तीन पक्षों (पन्द्रह × ३ दिन)तक साक्षी न दे तो ऋणदाता कर्जदार से अपना सम्पूर्ण धन प्राप्त करे तथा राजा सम्पूर्ण स्वर्ण का दसवां भाग दण्डरूप में प्राप्त करे।। १०७।।

यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः।
रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः।। १०८।।

यस्य साक्षिण उक्तसाक्ष्यस्य सप्ताहमध्ये व्याध्यग्निदाहसंनिहितपुत्रादिज्ञाति-मरणानामन्यतमं भवति दैवसूचितमिथ्याभिदोषत्वादृणमुत्तमर्णस्य दण्डं च राज्ञा दाप्यः।। १०८।।

गवाही देने के एक सप्ताह में जिस साक्षी के यहाँ रोग, आग लगना या बन्धु बान्धवों का मरण हो तो ऋणी, ऋणदाता को सम्पूर्ण धन तथा राजा को दण्ड देने योग्य होता है।। १०८।।

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः।
अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत्।। १०९।।

अविद्यमानसाक्षिकेषु व्यवहारेषु परस्परं विवदमानयोस्तत्त्वतश्छलादिव्यतिरेकेण सत्यमलभमानः प्राड्विवाको वक्ष्यमाणेन शपथेन सत्यमुन्नयेत्।। १०९।।

बिना साक्षी वाले मुकदमों में आपस में, झगड़ा करते हुए अर्थी-प्रत्यर्थी से सच्चाई पता न लगने पर न्यायवेत्ता शपथ द्वारा सत्यता का पता लगावे।। १०९।।

महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः।
वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैजवने नृपे।। ११०।।

सप्तर्षिभिर्देवैश्चैन्द्रादिभिः संदिग्धकार्यनिर्णयार्थं शपथाः कृताः वसिष्ठोऽप्यनेन पुत्रशतं भक्षितमिति विश्वामित्रेणाक्रुष्टः स्वपरिशुद्धये पिजवनापत्ये सुदासि राजनि शपथं चकार। अनेकार्थत्वाद्धातूनां शपिरपि करोत्यर्थः।। ११०।।

क्योंकि महर्षियों तथा देवताओं ने व्यवहारों के निर्णय के लिए ही शपथ का निर्माण किया। (प्राचीनकाल में विश्वामित्र द्वारा आरोपित) वसिष्ठ ने भी पैजवन सुदास नामक राजा के यहाँ शपथ खाई थी।। ११०।।

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः।
वृथा हि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति।। १११।।

स्वल्पेऽपि कार्ये न वृथा शपथं पण्डितः कुर्यात्। वृथा शपथं कुर्वन्परलोक इह लोके नरकप्राप्त्याऽकीर्तिप्राप्त्या च नाशं प्राप्नोति।। १११।।

बुद्धिमान् व्यक्ति को अत्यन्त तुच्छ कार्य में व्यर्थ में ही शपथ नहीं खानी चाहिए, क्योंकि व्यर्थ में शपथ लेता हुआ व्यक्ति इस लोक तथा परलोक दोनों में नष्ट हो जाता है।। १११।।

वृथाशपथप्रतिप्रसवार्थमाह—

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम्।। ११२।।

बहुभार्यस्य नान्यामहं कामये त्वमेव मत्प्रेयसीत्येवं विशिष्टः सुरतलाभार्थं कामिनीविषये, विवाहविषये च मयान्या न वोढव्येत्यादौ, गवार्थं घासाद्युपहारे च, अग्नो होमार्थमिन्धनाद्युपहारे, ब्राह्मणरक्षार्थमङ्गीकृतधनादौ वृथा शपथे पापं न भवति।। ११२।।

स्त्री, विवाह, गाय का भक्ष्य घासादि, ईंधन तथा ब्राह्मण की रक्षा के लिए स्वीकार किए गए धन के विषय में शपथ खाने में पाप नहीं होता है।। ११२।।

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः।। ११३।।

ब्राह्मणं सत्यशब्दोच्चारणेन शापयेत्। क्षत्रियं वाहनायुधं मम निष्फलं स्यादित्येवम्। वैश्यं गोबीजकाञ्चनानि च मम निष्फलानि स्युरित्येवम्। शूद्रं च सर्वाणि मे पातकानि स्युरित्येवं शापयेत्।। ११३।।

ब्राह्मण को सत्य की, क्षत्रिय को रथादि वाहन तथा शस्त्र की, वैश्य को गाय,

व्यापार तथा स्वर्ण आदि की तथा शूद्र को सभी पापों की शपथ दिलानी चाहिए ।। ११३ ।।

कार्यगौरवलाघवापेक्षया—

अग्निं वाहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत्।
पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक्।। ११४।।

अग्निसन्निभं पञ्चाशत्पलिकमष्टाङ्गुलमयःपिण्डं हस्तद्वयविन्यस्तसप्ताश्वत्थपत्रं शूद्रादिकं सप्त पदानि पितामहाद्युक्तविधानादाहारयेत्। जलौकादिरहितजले चैनं निमज्जयेत्। अशेषेतिकर्तव्यता स्मृत्यन्तरे ज्ञेया। पुत्राणां दाराणां च पृथक् शिरस्येनं स्पर्शयेत्।। ११४।।

अथवा वाद की सत्यता जानने के लिए इस अपराधी को अग्नि लेकर सात कदम चलावे, इसे जल में डुबोवे अथवा इसके द्वारा पुत्र तथा स्त्री के सिरों का अलग-अलग स्पर्श करावे।। ११४।।

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च।
न चार्तिमुच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः।। ११५।।

यं प्रदीप्तोऽग्निर्न दहति, आपश्च यं नोर्ध्वं नयन्ति, न चार्तिमेव महतीं प्राप्नोति स शपथे विशुद्धो ज्ञेयः।। ११५।।

जिस अपराध के आरोपी को प्रदीप्त अग्नि न जलावे, पानी ऊपर को न उछाले तथा शीघ्र ही वह कष्ट न पावे, उस व्यक्ति को शपथ के सम्बन्ध में पवित्र समझना चाहिए।। ११५।।

अत्र प्रकृतमर्थवादमाह—

वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः।। ११६।।

यस्मात्पूर्वकाले वत्सनाम्न ऋषेर्न त्वं ब्राह्मणः शूद्रापत्योऽसीत्येवं कनीयसा वैमात्रेयेणाभिक्रुष्टस्य नैतदेवमिति स यथार्थमग्निं प्रविष्टस्याग्निः सर्वस्य जगतः शुभाशुभकर्तव्ये चारभूतः सत्येन हेतुना रोमैकमपि वह्निर्न दग्धवान्।। ११६।।

प्राचीनकाल में छोटे भाई द्वारा 'तुम शूद्र की सन्तान हो' ऐसा कहे गए वत्स ऋषि के एक रोम को भी, संसार में सभी के शुभाशुभ कर्मों को जानने वाले गुप्तचर रूप अग्नि ने सत्य के कारण नहीं जलाया।। ११६।।

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत्।
तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत्।। ११७।।

यस्मिन्यस्मिन्व्यवहारे साक्षिभिरनृतमुक्तमिति निश्चितं भवेत्तत्कार्यमसमाप्तं प्राड्विवाकः पुनरपि निवर्तयेत्। यदपि च दण्डसमाप्तिपर्यन्ततां नीतं तदपि पुनः परीक्षेत।। ११७।।

जिस-जिस विवाद में असत्य गवाही की सम्भावना की जाए। उस-उस पर पुनः विचार करे, क्योंकि निर्णय किया गया भी वह अनिर्णीत ही होता है।। ११७।।

वक्ष्यमाणविशेषार्थं लोभादीन्पृथङ्निर्दिशति—

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते।। ११८।।

लोभेन, विपरीतज्ञानेन, भयेन, स्नेहेन, कामेन, क्रोधेन, अज्ञानेन, अनवधानेन साक्ष्यमसत्यमुच्यते।। ११८।।

लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान तथा बालभाव के कारण साक्ष्य को असत्य कहा जाता है।। ११८।।

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।। ११९।।

एषां लोभादीनां मध्यादन्यतमस्मिन्निमित्ते सति यो मिथ्या साक्ष्यं कथयेत्तस्य दण्डविशेषाणि क्रमशो वदिष्यामि।। ११९।।

इन लोभादि में से किसी एक के कारण जो व्यक्ति झूठी गवाही देता है, उसके दण्डविशेषों को भी मैं क्रमशः कहूँगा।। ११९।।

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम्।
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम्।। १२०।।

लोभेन मिथ्याभिधाने सति वक्ष्यमाणपणानां सहस्रं दण्डयः, मोहेन प्रथमं साहस वक्ष्यमाणम्, भयेन च वक्ष्यमाणौ मध्यमसाहसौ, मैत्रात्प्रथमसाहसं चतुर्गुणम्।। १२०।।

लोभ से असत्य गवाही देने पर एक हजार पण दण्ड देना चाहिए, मोहवश देने वाले को 'प्रथम साहस' का, भय से देने पर 'मध्यम साहस' का दण्ड देना चाहिए। मित्रतावश झूठी गवाही देने पर 'प्रथम साहस' का चारगुणा दण्ड देना चाहिए।। १२०।।

कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।
अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु।। १२१।।

स्त्रीसंभोगरूपकामानुरोधेन मिथ्या वदन्प्रथमसाहसं दशगुणं दण्ड्यः। क्रोधेन तु परं मध्यमसाहसं त्रिगुणं वक्ष्यमाणं, अज्ञानत्वाद्द्वे शते, बालिश्यादनवधानात्पणशतमेव दण्ड्य इति सर्वत्रानुषङ्गः।। १२१।।

इसीप्रकार कामवश झूठी गवाही पर दश गुणा प्रथम साहस, क्रोध से देने पर तीन गुणा मध्यम साहस तथा अज्ञानवश झूठी गवाही देने पर दो सौ पण और मूर्खतावश में देने से सौ पण का दण्ड करे।। १२१।।

एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान्मनीषिभिः।
धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च।। १२२।।

सत्यरूपधर्मस्यापरिलोपार्थमसत्यरूपाधर्मस्य च वारणार्थमेतान्कौटसाक्ष्यविषये पूर्वैर्मुनिभिरुक्तान्दण्डान्मन्वादय आहुः। एतच्च सकृत्कौटसाक्ष्ये।। १२२।।

धर्म की स्थापना हेतु तथा अधर्म को नियन्त्रित करने के लिए विद्वानों ने झूठी गवाही के सम्बन्ध में पहले विस्तारपूर्वक बताए गए इन दण्डों का कथन किया है ।। १२२।।

भूयोभूयः कौटसाक्ष्यकरणे तु--

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणां स्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः।
प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत्।। १२३।।

क्षत्रियादींस्त्रीन्वर्णान्कौटसाक्ष्यात्पूर्वोक्तेन दण्डयित्वा धार्मिको राजा स्वराष्ट्राद्विवासयेत्। ब्राह्मणं तु धनदण्डव्यतिरेकेण स्वराष्ट्रन्निःसारयेत्। "न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्ववस्थितम्। राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम्।।" (अ. ८ श्लो० ३८०) इति धनसहितनिर्वासनस्याभिधास्यमानत्वात्। गोविन्दराजस्तु ब्राह्मणं पुनः पूर्वदण्डेन दण्डयित्वा नग्नं कुर्यादिति व्याचष्टे। मेधातिथिस्तु ब्राह्मणस्य विवासस्त्वं वासोऽपहरणं गृहभङ्गो वेत्याचष्टे।। १२३।।

धार्मिक राजा बार-बार झूठी गवाही देने वाले तीन वर्णों के लोगों को दण्डित करके राज्य से निष्कासित कर दे, जबकि ब्राह्मण को केवल राज्य से बाहर निकाले (उसे दण्डित न करे)।। १२३।।

दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।
त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत्।। १२४।।

हैरण्यगर्भो मनुर्दश दण्डस्थानान्युक्तवान्। यानि क्षत्रियादिवर्णत्रयविषये भवन्ति। ब्राह्मणः पुनर्महत्यपराधेऽक्षतशरीरो देशान्निस्सार्यते।। १२४।।

ब्रह्मा के पुत्र मनु ने दण्ड के जिन दस स्थानों का कथन किया है वे केवल तीन वर्णों के विषय में हैं। बिना किसी नुकसान के ब्राह्मण तो (राज्य से बाहर) चला जाए।। १२४।।

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च।। १२५।।

लिङ्गादीन्येतानि दश दण्डस्थानानि, अतस्तत्तदङ्गेनापराधे सति अपराधलाघव-गौरवापेक्षया तत्तदङ्गताडनवेदनादि कर्तव्यम्। अल्पापराधे यथाश्रुतं धनदण्डः। देहदण्डो मारणं महापातकादौ।। १२५।।

लिङ्ग, उदर, जीभ, हाथ और पाँचवां पैर, नाक, नेत्र, कान, धन तथा शरीर (ये दण्ड के दस स्थान हैं)।। १२५।।

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।
सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्।। १२६।।

पुनःपुनरिच्छातोऽपराधकरणमपेक्ष्य ग्रामारण्यादिचापराधिस्थानं रात्र्यादिकं वापराधस्यापेक्ष्य सारं चापराधकारिणो धनशरीरादिसामर्थ्यमपराधं च गुरुलघुभावेन चालोक्य दण्डनीयेषु दण्डं कुर्यात्। एतच्चाभिहिताभिधास्यमानदण्डशेषभूतम्।। १२६।।

अपराध की निरन्तरता, देश, काल तथा अपराधी की शारीरिक व आर्थिक क्षमता और अपराध के स्तर आदि को भलीप्रकार विचार करके ही दण्डनीय व्यक्ति को दण्ड देना चाहिए।। १२६।।

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम्।
अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।। १२७।।

जीवतः ख्यातिर्यशः मृतस्य ख्यातिः कीर्तिः, यस्मादनुबन्धाद्यनपेक्ष्य दण्डनमिह लोके यशोनाशनं मृतस्य च कीर्तिनाशनं परलोके च धर्मान्तरार्जितस्वर्गप्रतिबन्धकं तस्मात्तत्परित्यजेत्।। १२७।।

क्योंकि इस संसार में अधर्मपूर्वक दण्ड देना, जीवित अवस्था में प्राप्त होने वाले यश तथा मरणोपरान्त प्राप्त होने वाली कीर्ति दोनों का विनाशक है। साथ ही परलोक

में भी स्वर्ग से वंचित करने वाला है। इसलिए उसका परित्याग करना चाहिए।। १२७।।

अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महादाप्नोति नरकं चैव गच्छति।। १२८।।

राजा दण्डानर्हान्धनलोभादिना दण्डयन्, दण्डार्हांश्चानुराधादिनोत्सृजन्महतीमख्यातिं प्राप्नोति नरकं च व्रजति।। १२८।।

दण्ड न देने योग्यों को दण्डित करता हुआ तथा दण्डनीयों को दण्ड न देता हुआ राजा महान् अपयश प्राप्त करता है तथा नरक में भी जाता है।। १२८।।

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम्।। १२९।।

न साधु कृतवानसि मैवं भूयः कार्षीरित्येवं वाङ्निर्भर्त्सनं प्रथमापराधे गुणवतः कुर्यात्। तथापि यदि नोपशाम्यति तदा धिग् जाल्म माजीव हानिस्ते पापस्य भूयादित्येवमादि तस्य कार्यम्। तदापि यद्यसन्मार्गान्न निवर्तते तदा धनदण्डमस्य तृतीयं कुर्यात्। एवमपि चेन्नावतिष्ठते तदातः परं वधदण्डं ताडनाद्यङ्गच्छेदरूपं तस्य कुर्यान्न मारणम्।। १२९।।

गुणवान् लोगों के पहली बार अपराध करने पर वाग्दण्ड (निन्दा), उसके बाद अपराध करने पर 'धिग्दण्ड' तथा तीसरी बार करने पर आर्थिक दण्ड, किन्तु उसके बाद भी अपराध करने पर उन्हें 'वधदण्ड' प्रदान करे।। १२९।।

वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात्।
तदैषु सर्वमप्यैतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम्।। १३०।।

यतो वक्ष्यति ''वधेनापि यदा त्वेतान्'' इति। व्यस्तेनाङ्गच्छेदेनापि दण्ड्यान्वशे कर्तुं न शक्नुयात्तदा एतेषु सर्वं वाग्दण्डादिचतुष्टयं कुर्यात्।। १३०।।

किन्तु जब राजा 'वधदण्ड' द्वारा भी इन अपराधियों को नियन्त्रित करने में समर्थ न हो, तो इन चारों प्रकार के दण्डों को ही एक साथ प्रयुक्त करे।। १३०।।

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि।
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः।। १३१।।

ताम्ररूप्यसुवर्णानां याः पणादिसंज्ञाः क्रयविक्रयादिलोकव्यवहारार्थं पृथिव्यां प्रसिद्धास्ता दण्डाद्युपयोगार्थं साकल्येन कथयिष्यामि।। १३१।।

तांबे, चांदी और सोने की जो संज्ञाएँ लोकव्यवहार के लिए इस संसार में प्रसिद्ध हैं। अब मैं उन्हें पूर्णरूप से विस्तारपूर्वक कहूँगा।। १३१।।

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते।। १३२।।

गवाक्षविवरप्रविष्टसूर्यरश्मिषु यत्सूक्ष्मं रजो दृश्यते तदृश्यमानपरिमाणानां प्रथमं त्रसरेणुं वदन्ति।। १३२।।

खिड़की आदि के छिद्र से सूर्य की किरणों के प्रवेश करने पर जो बहुत छोटा धूलिकण दिखायी पड़ता है। उसे प्रमाणों में पहला प्रमाण त्रसरेणु कहा जाता है।। १३२।।

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः।
ता राजसर्षपस्तिस्त्रस्ते त्रयौ गौरसर्षपः।। १३३।।

अष्टौ त्रसरेणवो लिक्षैका परिमाणेन ज्ञेया। तास्तिस्रो लिक्षाराजसर्षपो ज्ञेयः। ते राजसर्षपास्त्रयो गौरसर्षपो ज्ञेयः।। १३३।।

परिमाण में आठ 'त्रसरेणु' की एक 'लिक्षा' तथा उन तीन लिक्षाओं का एक 'राजसर्षप' और उन तीन 'राजसर्षपों का एक 'गोरसर्षप' समझना चाहिए।। १३३।।

सर्षपाः षट् यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम्।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश।। १३४।।

गौरसर्षपाः षट् मध्यो न स्थूलो नापि सूक्ष्मो यवो भवति। त्रिभिर्यवैः कृष्णलं रक्तिकेति प्रसिद्धम्। पञ्चभिः कृष्णलैर्माषः। षोडश माषा सुवर्णः स्यात्। पुंलिङ्गश्चायं परिमाणवचनः।। १३४।।

इसके अतिरिक्त छः गौरसर्षपों का एक 'मध्ययव', तीन मध्ययवों का एक 'कृष्णल', पाँच कृष्णलों का एक 'माष' तथा उन सोलह माषों का एक 'सुवर्ण' होता है।। १३४।।

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः।। १३५।।

चत्वारः सुवर्णाः पलं स्यात्। दश पलानि धरणम्। कृष्णलद्वयं समं कृत्वा तुलया धृतं रूप्यमाषको बोद्धव्यः।। १३५।।

चार सुवर्णों का एक 'पल', दस पलों का एक 'धरण', तथा दो कृष्णलों के बराबर माप का एक 'रौप्य माषक' समझना चाहिए।। १३५।।

ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः।। १३६।।

ते षोडश रूप्यमाषका रौप्यधरणं पुराणश्च राजतो रजतसंबन्धी स्यात्। कार्षिकस्ताम्रमयः कार्षापणः पण इति विज्ञेयः। कार्षिकश्च शास्त्रीयपलचतुर्थभागो बोद्धव्यः। अतएव ''पलं कर्षचतुष्टयम्'' (अमरकोषे वैश्यवर्गेश्लो० ८६) इत्याभिधानिकः।। १३६।।

उन सोलह रौप्यमाषकों का एक 'रौप्यधरण' तथा एक चांदी का 'पुराण' होता है तथा ताँबे के कर्षभर का पण 'कार्षापण' समझना चाहिए।। १३६।।

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः।
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेस्तु प्रमाणतः।। १३७।।

दश रूप्यधरणानि रौप्यशतमानो ज्ञातव्यः। चतुर्भिः सुवर्णैर्निष्कः प्रमाणेन बोद्धव्यः।। १३७।।

इसके अलावा दस रौप्य धरणों का एक 'राजतशतमान' समझना चाहिए तथा प्रमाण के अनुसार चार सुवर्णों का एक 'निष्क' जानना चाहिए।। १३७।।

पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः।। १३८।।

पञ्चाशदधिके द्वे पणशते प्रथमसाहसो मन्वादिभिः स्मृतः। पणपञ्चशतानि मध्यमसाहसो ज्ञेयः। पणसहस्रं तूत्तमसाहसो ज्ञेयः।। १३८।।

ढाई सौ पण का 'प्रथम साहस' कहा गया है तथा पाँच सौ पण का 'मध्यम साहस' और एक हजार पणों का 'उत्तम साहस' समझना चाहिए।। १३८।।

ऋणे देये प्रतिज्ञाते शतमर्हति।
अपह्नवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम्।। १३९।।

मयोत्तमर्णस्य धनं देयमिति सभायामधमर्णेनोक्ते सत्यधमर्णः पणशतात्पञ्च पणा इत्येवं दण्डमर्हति। यदा तु सभायामपि न किंचिदस्मै धारयामीत्येवमपलपति तदा पणशताद्दशपणा इत्येवं दण्डमर्हति। इत्येवं मनुस्मृतौ दण्डप्रकारः।। १३९।।

न्यायसभा में ऋणदाता से ऋण लेना स्वीकार करने पर व्यक्ति ऋण का पाँच

प्रतिशत तथा असत्यता के कारण ऋण लेना अस्वीकार करने पर उसका दुगना अर्थात् दश प्रतिशत दण्ड देने योग्य है, ऐसा मनु का आदेश है।। १३९।।

वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धिनीम्।
अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते।। १४०।।

वसिष्ठेनोक्तां वृद्धिं धर्म्यत्वाद्धनवृद्धिकरीं वृद्धिजीवी गृह्णीयात्। तामेव दर्शयति। शते प्रयुक्तेऽशीतिभागं प्रतिमासं वृद्धिं गृह्णीयात्।। १४०।।

वसिष्ठ द्वारा प्रतिपादित धन को बढ़ाने वाली वृद्धि (ब्याज) को ग्रहण करना चाहिए, किन्तु ब्याज लेने वाला व्यक्ति सौ पर अस्सीवां भाग (सवा रुपया सैकड़ा) प्रतिमास ग्रहण करे।। १४०।।

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन्।
द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्बिषी।। १४१।।

साधूनामयं धर्म इति मन्यमानः पणशते प्रयुक्ते पणद्वयं वा प्रतिमासं गृह्णीयात्। यस्मात् द्विकं शतं हि गृह्णानो वृद्धिधनग्रहणे किल्बिषी न भवति।। १४१।।

अथवा सज्जनों के धर्म का अनुसरण करता हुआ ऋण देने वाला व्यक्ति दो प्रतिशत ब्याज प्रतिमास स्वीकार करे, क्योंकि दो प्रतिशत ब्याज लेने वाला पाप का भागी नहीं होता है।। १४१।।

द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम्।
मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः।। १४२।।

ब्राह्मणादिवर्णानां क्रमेण द्विकं त्रिकं चतुष्कं पञ्चकं शतसममितो नाधिकं मासस्य संबन्धिनीं वृद्धिं गृह्णीयात्। नन्वशीतिभागो लघु, द्विकशतग्रहणं गुरु, कथमिमौ ब्राह्मणस्य लघुगुरुकल्पौ विकल्पेताम्। अत्र मेधातिथिगोविन्दराजौ तु पूर्ववृद्ध्या निर्वाहासंभवे द्विकशतपरिग्रह इति व्याचक्षाते। इदंतु वदामः-सबन्धकेष्वशीतिभागग्रहणं बन्धकरहिते तु द्विकशतवृद्धिपरिग्रहः। तदाह याज्ञवल्क्यः "अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके। वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुःपञ्चकमन्यथा।।" (अ० २ श्लो० ३७) वेदान्तोद्गीतमहसो मुनेर्व्याख्यानमाद्रिये। तद्विरुद्धं स्वबुध्या च निबद्धमधुनातनैः।। १४२।।

वर्णों के क्रम के अनुसार-ब्राह्मण से दो प्रतिशत, क्षत्रिय से तीन प्रतिशत, वैश्य से चार प्रतिशत तथा शूद्र से पाँच रुपये प्रतिमाह ब्याज लेवे।। १४२।।

न त्वेवाधौ सोपकारे कोसीदीं वृद्धिमाप्नुयात्।
न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः।। १४३।।

भूमिगोधनादौ भोगार्थं बन्धके दत्ते धनप्रयोगभवामनन्तरोक्तां वृद्धिमुत्तमर्णो न लभते। कालसंरोधाच्चिरकालावस्थानाद्विगुणीभूतमूलधनप्रवेशेऽपि न निसर्गोऽन्यस्मै दानं, न वान्यतो विक्रयः। मेधातिथिगोविन्दराजौ तु आधेश्चिरकालावस्थानेऽपि न निसर्गो नान्यत्र बन्धकेनार्पणमिति व्याचक्षाते। अत्र तु सर्वदेशीयशिष्टाचारविरोधः बन्धकीकृतभूम्यादेरन्यत्राधीकरणसमाचारात्।। १४३।।

उपयोग में आने वाली गिरवी रखी गई भूमि आदि पर ऋणदाता लेशमात्र भी ब्याज न लेवे तथा बहुत अधिक समय व्यतीत होने पर न तो उसे ऋणदाता के अधिकार से छुड़ाया जा सकता है और न ही वह उसे बेच सकता है।। १४३।।

न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत्।
मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत्।। १४४।।

गोप्याधिविषयं वचनमिदम्। वस्त्रालंकारादिर्गोप्याधिर्बलान्न भोक्तव्यः भुञ्जानोवृद्धि-मुत्सृजेत्प्राङ्मूल्येनात्रैनं तोषयेत्। यद्वा भोगेनासारतामाधौ नीते सारावस्थाधिमूल्यदानेन स्वामिनं तोषयेदन्यथा बन्धकचौरः स्यात्।। १४४।।

बलपूर्वक धरोहर में रखी हुई वस्तु का उपभोग नहीं करना चाहिए। धरोहर का उपभोग करते हुए व्यक्ति को ब्याज छोड़ देना चाहिए। धरोहर के खोने आदि पर ऋण लेने वाले को उसका उचित मूल्य प्रदान करके संतुष्ट करना चाहिए, अन्यथा ऋणदाता उस धरोहर का 'चोर' होता है।। १४४।।

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः।
अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ।। १४५।।

आधिर्बन्धकः, उपनिधीयत इत्युपनिधिः प्रीत्या भोगार्थमर्पितं द्रव्यम्। नारदस्मृ-तिलक्षितौ च निक्षेपोयनिधी तावेवात्रोपनिधिशब्देन गृह्येते। एतावाध्युपनिधी चिरकालावस्थितावपि न कालात्ययमर्हतः। यदैव स्वामिना प्रार्थितौ तदैव तस्यावहार्यौ समर्पणीयावित्यर्थः।। १४५।।

धरोहर तथा प्रेमवश मांगने में दी गई वस्तु (उपनिधि) ये दोनों समय की सीमा के योग्य नहीं होती है। इसलिए लम्बे समय तक अपने पास रहने के बाद भी वे दोनों उनके स्वामी को लौटाने योग्य होती हैं।। १४५।।

संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन।
धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते।। १४६।।

''यत्किंचिद्दश वर्षाणि'' (अ० ८ श्लो० १४७) इत्यनन्तरं भोनेन स्वत्वहानिं वक्ष्यति तदपवादार्थमिदम्। दुष्यमाना गौरुष्ट्रोऽश्वश्च वहन्दमनार्थं च प्रयुक्तो बलीवर्दादिः एते प्रीत्यान्येन तु भुज्यमानाः कदाचिदपि स्वामिनो न नश्यन्ति। प्रदर्शनार्थमिदं प्रीत्योपभुज्यमानं न नश्यतीति विवक्षितम्। सामान्योपक्रमं चेदं विशेषाभिधानमिति नपुंसकलिङ्गता।। १४६।।

स्नेहवश उपयोग में लायी जाती हुई वस्तुएँ, दूध के लिए गाय, सवारी के लिए ऊँट, घोड़ा तथा हल में जोता जाने वाला बैल आदि, यदि प्रयोग की जाती हैं तो इनसे स्वामी का अधिकार कभी नष्ट नहीं होता है।। १४६।।

यत्किंचिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी।
भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति।। १४७।।

यत्किंचिद्धनजातं समक्षमेव प्रीत्यादिव्यतिरेकेण परैर्दश वर्षाणि भुज्यमानं स्वामी प्रेक्षते मा भुङ्क्ष्वेत्यादिप्रतिषेधोक्तिं न रचयति नासौ तल्लब्धुं योग्यो भवति। तस्य तत्र स्वाम्यं निवर्तत इति भावः।। १४७।।

दूसरे के द्वारा काम में लायी जाती हुई अपनी सम्पत्ति को समीप में रहकर देखता हुआ भी स्वामी, यदि दस वर्षों तक कुछ भी नहीं कहता है, चुप रहता है तो वह स्वामी उसे प्राप्त करने का अधिकारी नहीं होता है।। १४७।।

अजडश्चेदपोगण्डो विषये चास्य भुज्यते।
भग्नं तव्द्यवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति।। १४८।।

जडो बुद्धिविकलः। न्यूनषोडशवर्षः पोगण्डः। तथाच नारद-''बाल आषोडशाद्वर्षात्पोगण्डश्चापि शब्दितः''। स धनस्वामी यदि जडः पोगण्डश्च न भवति तदीयदर्शनविषये च तद्धनं भुज्यते तदा स्वामिनो व्यवहारेण नष्टं ततो भोक्तुरेव तद्धनं भवति।। १४८।।

इसीप्रकार यदि किसी सम्पत्ति का स्वामी एकदम मूर्ख या नाबालिग न हो तथा उसके सामने अन्य व्यक्ति उसकी सम्पत्ति का दस वर्षों से उपभोग कर रहा हो तो व्यवहार के अनुसार उस वस्तु पर उसका स्वामित्व समाप्त हो जाता है, उसे भोगने वाला ही उस सम्पत्ति का अधिकारी होता है।। १४८।।

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः।
राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति।। १४९।।
(यद्विनाऽगममत्यन्तं भुक्तपूर्वैस्त्रिभिर्भवेत्।
न तच्छक्यमपाहर्तुं क्रमात्त्रिपुरुषागतम्।। १३।।)

बन्धः, ग्रामादिमर्यादा, बालधनं, निक्षेपः "वासनस्थमनाख्याय समुद्रं यन्निधीयते" इति नारदोक्त उपनिधिलक्षणः, दास्यादीस्त्रियः, राजश्रोत्रियधनानि, उक्तेन दशवर्षभोगेन न स्वामिनो नश्यन्ति न भोक्तुः स्वत्वं भजन्ते।। १४९।।

किन्तु धरोहर, सरहद, बच्चे का धन, बन्धक, अमानत, स्त्री, राजा का धन, श्रोत्रिय का धन, इन सबका दूसरे के द्वारा उपभोग करने पर भी स्वामित्व नष्ट नहीं होता है।। १४९।।

(तीन पीढ़ियों द्वारा भोग किए जाते हुए धन को इसका स्वामी बिना किसी प्रमाण के वापस लेने का अधिकारी नहीं होता है।। १३।।)

यः स्वामिनाननुज्ञातमाधिं भुङ्क्तेऽविचक्षणः।
तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः।। १५०।।

यो वृद्ध्या दत्तं बन्धं स्वाम्यनुज्ञाव्यतिरेकेण मूर्खो निह्नवेन भुङ्क्ते तेन तस्य भोगस्य संशुद्ध्यर्थमर्धवृद्धिर्मोक्तव्या। बलभोगेन तु भोक्तव्ये बलादधिभुञ्जाने सति सर्ववृद्धित्याग एवोक्तः।। १५०।।

जो मूर्ख रहन रखी गई वस्तु का उपभोग, उसके स्वामी की अनुमति के बिना करता है तो उस वस्तु के उपभोग के बदले, वस्तु के स्वामी को उससे आधा ब्याज लेना चाहिए।। १५०।।

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता।
धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम्।। १५१।।

वृद्ध्या धनप्रयोगः कुसीदं तत्र या वृद्धिः सकृद्गृहीता सा द्वैगुण्यं नातिक्रामति मूलवृद्धिर्द्विगुणैव भवति। प्रतिदिनप्रतिमासादिग्राह्येति तात्पर्यम्। धान्ये पुनर्वृद्ध्यादिप्रयुक्ते, सदे वृक्षफले, लूयत इति लव ऊर्णालोम तस्मिन्, वाहनीये च बलीवर्दादौ प्रयुक्ते चिरेणापि कालेन मूलधान्यादिना सह पञ्चगुणतां नातिक्रामेदिति।। १५१।।

एक बार लिए गए ऋण पर ब्याज की बढ़ोत्तरी मूलधन के दुगने से अधिक नहीं होती है। इसीप्रकार धान्य, फल, ऊन, भारवाहक पशु, ऊँटादि मूल के पाँच गुने से अधिक नहीं होते हैं।। १५१।।

कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिद्ध्यति।
कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति।। १५२।।

कृता या वृद्धिर्द्विकं त्रिकमिति शास्त्रेण वर्णक्रमेणोक्ता तस्याः शास्त्रानुसारादधिका व्यतिरिक्ता कृता। अतोऽन्या वृद्धिरकृतेत्यर्थः। किन्तु कृतापि वृद्धिर्वर्णक्रमेण द्विकत्रिकशतादिरूपैर्या मासे ग्राह्या। तथाच विष्णुः-''वृद्धिं दद्युरकृता अपि वत्सरातिक्रमे यथाभिहिता वर्णक्रमेण'' द्विकत्रिकादिनेत्यर्थः। किं त्वकृतवृद्धावपि विशेषान्तरमाह। कुत्सितात्प्रसरत्ययं पन्था इति कुसीदपथः अयमधमर्णे यच्छूद्रविषयोक्तं पञ्चकं शतं द्विजातेरपि गृह्णातीत्येवं कुत्सितपन्थाः पूर्वोक्ताद्धर्म्यवृद्धिकरादपकृष्ट इत्येवं मन्वादय आहुः। इयं चाकृता वृद्धिरुद्धारविषये याचनादूर्ध्वं बोद्धव्या तदाह कात्यायनः- ''प्रीतिदत्तं न वर्धेत यावन्न प्रतियाचितम्। याच्यमानं नदत्तं चेद्वर्धते पञ्चकं शतम्''।। १५२।।

पहले बताए गए प्रमाण से अधिक ब्याज ग्रहण नहीं करना चाहिए। यही ब्याज लेने का प्रमुख सिद्धान्त कहा गया है। केवल शूद्र से ही पाँच प्रतिशत ब्याज लेने योग्य होता है (अन्य से नहीं)।। १५२।।

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत्।
चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या।। १५३।।
(अथ शक्तिविहीनः स्यादृणी कालविपर्ययात्।
प्रेक्ष्यश्च तमृणं दाप्यः काले देशे यथोदयम्।। १४।।)

ममैकस्मिन्मासि मासद्वये मासत्रये वा गते तस्य वृद्धिं विगणय्यैकदा दातव्येत्येवंविधनियमपूर्वकवृद्धिग्रहणमुत्तमर्णः संवत्सरपर्यन्तं कुर्यात्। नातिक्रान्ते संवत्सरे नियमस्य वृद्धिं गृह्णीयात्। नच शास्त्राददृष्टामुक्तधर्म्यद्विकत्रिकशताद्यधिकां गृह्णीयात्। अधर्मत्वबोधनार्थो निषेधः। चक्रवृध्यादिचतुष्टयीं चाशास्त्रीयां न गृह्णीयात्। तासां स्वरूपमाह बृहस्पतिः-'' कायिका कायसंयुक्ता मासग्राह्या च कालिका। वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिता ऋणिना कृता''। तत्र चक्रवृद्धिः स्वरूपेणैव गर्हिता। कालावृद्धिस्तु द्विगुणाधिकग्रहणेन कायिका चातिवाहदोहादिना कारिता ऋणिकेन यानापत्काल एवोत्तमर्णपीडया कृता। चतस्रोऽपि वृद्धीरशास्त्रीया न गृह्णीयात्। तथा च बृहस्पतिः-''भागो यद्द्विगुणादूर्ध्वं चक्रवृद्धिश्च गृह्यते। पूर्णे च सोदयं पश्चाद्वार्धुष्यं तद्विगर्हितम्''। कात्यायनः-''ऋणिकेन कृता वृद्धिरधिका संप्रकल्पिता। आपत्कालकृता नित्यं दातव्या कारिता तथा अन्यथा कारिता वृद्धिर्न दातव्या कथंचन''।। १५३।।

एक वर्ष से अधिक समय का ब्याज एक बार में ग्रहण नहीं करना चाहिए तथा एक बार माफ किया गया ब्याज, ब्याज पर लगाया गया ब्याज, एक बार ब्याज लेकर

अगले कालखण्ड में निश्चित ब्याज से अधिक ब्याज, कर्जदार की विवशता के कारण निश्चित ब्याज से अधिक ब्याज तथा शारीरिक-कार्य बेगारादि को भी ब्याज के रूप में नहीं लेना चाहिए।। १५३।।

(इसके अतिरिक्त समय (भाग्य) के विपरीत होने से यदि ऋण लेने वाला व्यक्ति लौटाने मे पूर्णतया असमर्थ हो जाए। उसकी स्थिति की भलीप्रकार समीक्षा करके समय और देश के अनुकूल उसकी स्थिति सुधरने तक उसे ऋण प्रदान कर देना चाहिए।। १४।।)

ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियाम्।
स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत्।। १५४।।

योऽधमर्णो धनदानासामर्थ्यात्पुनर्लेख्यादिक्रियां कर्तुमिच्छेत्स निर्जितामुत्तमर्णः स्वत्वतयात्मसात्कृतां वृद्धिं दत्त्वा करणं लेख्यं पुनः कुर्यात्।। १५४।।

निर्धारित कालखण्ड में ऋण चुकाने में असमर्थ ऋणी व्यक्ति यदि फिर से ऋण लेने की इच्छा करे तो वह उस समय तक का ब्याज चुकता करके 'लेन-देन का नया कागज' (हैंडनोट) नया लिख देवे।। १५४।।

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत्।
यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति।। १५५।।

यदि दैवगत्या वृद्धिहिरण्यमपि समये दातु न शक्नोति तदा तद्गृहीत्वैव तत्रैव पुनः क्रियमाणे लेख्यादौ वृद्धिहिरण्यादिशेषमारोपयेत्। यत्प्रमाणं चक्रवृद्धिधनं तदानीं संभवति तद्दातुमर्हति।। १५५।।

ऋणी व्यक्ति यदि ब्याज न दे सके तो उस ब्याज को भी मूलधन में बदल देना चाहिए। इसप्रकार बने हुए मूलधन पर जितना ब्याज होगा, उतना ही ब्याज ऋणी ऋणदाता को देने योग्य होता है।। १५५।।

चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः।
अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात्।। १५६।।

चक्रवृद्धिशब्देनात्र चक्रवच्छकटादिभररूपा वृद्धिरभिमता। चक्रवृद्धिमाश्रित उत्तमर्णो देशकालव्यवस्थितो यदि वाराणसीपर्यन्तं लवणादि शकटेन वहामि तदा ममेदं यद्धनं दातव्यमिति वेतनरूपदेशव्यवस्थितिः। यदि मासं यावद्वहामि तदा मासं यद्धनं दातव्यमिति कालव्यवस्थितिः। एवमभ्युपगतदेशकालनियमस्थौ देशकालौ दैवादपूरयन्शकटादिना वहन् लाभरूपफलं सकलं न प्राप्नोति।। १५६।।

वार्षिक ब्याज को मूलधन में जोड़कर चक्रवृद्धि ब्याज लेने वाले व्यक्ति को देश एवं काल की व्यवस्था के अनुसार ही ब्याज लेना चाहिए, क्योंकि देश तथा काल की व्यवस्था का उल्लंघन करने वाला, उस ब्याज को लेने का अधिकारी नहीं होता है।। १५६।।

अपितु-

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति।। १५७।।

स्थलपथजलपथयाने निपुणा इयद्देशपर्यन्तमियत्कालपर्यन्तमूह्यमाने सति एतावाँल्लभो ग्रहीतुं युक्त इत्येवं देशलाभधनज्ञा वणिगादयो यां वृद्धिं तथाविषये चावस्थापयन्ति सैव तत्र व्यवस्था तत्राधिगमं धनप्राप्तिं प्रति प्रमाणम्।। १५७।।

समुद्रपार तक व्यापार करने में कुशल तथा देश, काल के अनुसार आर्थिक नियमों के जानकार लोग जिस ब्याज या भाड़े को निर्धारित करें, उस सम्बन्ध में वही ब्याज या भाड़ा प्रमाण मानना चाहिए।। १५७।।

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः।
अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम्।। १५८।।

यो मनुष्यो यस्य दर्शनाय प्रतिभूस्तिष्ठेत् धनदानकाले ममायमधमर्णो दर्शनीय इति स तं तस्मिन्काल उत्तमर्णस्यादर्शयंस्तद्धनं दातुं यतेत।। १५८।।

जो व्यक्ति ऋण के सम्बन्ध में महाजन या न्यायालय के समक्ष जिस ऋणी का जमानती बने, उसे उपस्थित न कर सकने पर, उसके द्वारा लिए गए ऋण को अपने धन से प्रदान करे।। १५८।।

प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत्।
दण्डशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति।। १५९।।

प्रतिभूत्वेन यद्देयं धनं तत्प्रातिभाव्यं, वृथादानं परिहासनिमित्तं पण्डादिभ्यो देयत्वेन पित्राङ्गीकृतं, द्यूतनिमित्तं, सुरानिमित्तं च, दण्डं यद्देयं दण्डं, शुल्कं घट्टादिदेयं तदवशेषं च पितृसंबन्धिनं पितरि मृते पुत्रो दातुं नार्हति।। १५९।।

जमानत के रूप में स्वीकार किया गया, व्यर्थ में देने के लिए कहा गया, जुए से सम्बन्धित, मद्यपान से सम्बन्धित तथा जुर्माने और कर से बचा हुआ धन, व्यक्ति के पुत्र को देना नहीं पड़ता है।। १५९।।

दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः।
दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत्।। १६०।।

सुरानिमित्तं च यद्देयं दण्डं प्रातिभाव्यं न पुत्रो दातुमर्हतीति योऽयं पूर्णोपदेशः स दर्शनप्रतिभुवः पितुर्देयो ज्ञेयः। दानप्रतिभुवि तु पितरि मृते पुत्रं ऋणं दापयेत्।। १६०।।

ऋण लेने वाले को उपस्थित करने का जमानती होने में पहले कहा गया विधान

लागू होगा, किन्तु ऋण को देने का जमानती होने तथा जमानत लेने वाले के मरने की स्थिति में उस जमानती के पुत्र से वह जमानत का धन दिलवावे।। १६०।।

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम्।
पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत्केन हेतुना।। १६१।।

अदातरि दानप्रतिभुवोऽन्यस्मिन्दर्शनप्रतिभुवि प्रत्ययप्रतिभुवि वा विज्ञातप्रातिभाव्य-कारणमूलशोधनोचितधनग्रहणं यस्य तस्मिन्मृते दातोत्तमर्णः पश्चात्केन हेतुना धनं प्राप्नुमिच्छेत्।। १६१।।

केवल ऋण लेने वाले को ऋणदाता के सामने निश्चित समय पर उपस्थित करने की, अपने जमानती की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में, ऋणदाता को जानकारी होने पर तथा इसप्रकार के जमानती के मरने के पश्चात्, ऋणदाता भला किस आधार पर उसके पुत्रादि से ऋण प्राप्त करने की इच्छा कर सकता है?।। १६१।।

प्रतिभुवो मृतत्त्वात्तत्पुत्रस्य चादानप्रतिभूत्वेनादातृत्वादित्याशंक्याह-

निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंघनः।
स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः।। १६२।।

असौ दर्शनप्रतिभूः प्रत्ययप्रतिभूर्वा यदि निरादिष्टधनोऽधमर्णेन निसृष्टधनो यावता धनेनासौ प्रतिभूस्तच्छोधनपर्याप्तधनस्तदात्मधनादेव तद्धनं निरादिष्टोऽत्र निरादिष्टधनपुत्रो लक्षणयोच्यते। ऋणमुत्तमर्णाय दद्यादिति शास्त्रसंप्रदायः।। १६२।।

अपने जमानती को यदि ऋणी ने धन पहले ही दे दिया हो, किन्तु उसे लौटाने की अनुमति न दी हो तो अनुमति प्रदान न किया गया वह जमानती या उसका पुत्र अपने धन में से ही उसका वह धन दे देवे, ऐसी शास्त्रमर्यादा है।। १६२।।

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा।
असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्ध्यति।। १६३।।

मद्यादिना मत्तः, उन्मत्तो, व्याध्यादिपीडितोऽपहतोऽस्वतन्त्रबालवृद्धैरस्वतन्त्रत्वेन पितृभ्रातृनियुक्तादिव्यतिरेकेण कृत ऋणादानव्यवहारो न सिद्ध्यति।। १६३।।

मदिरादि के नशे से युक्त, पागल, रोगी, दुःखी, सेवक, नाबालिग, बूढ़े तथा असम्बद्ध व्यक्ति के साथ किया गया लेन-देन प्रामाणिक नहीं होता है।। १६३।।

सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता।
बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात्।। १६४।।

इदं मयानुष्ठेयमित्येवमादिका भाषा लेख्यादिना स्थिरीकृतापि यदि

शास्त्रीयधर्मात्पारंपर्यात्सद्व्यवहाराच्च बहिर्भाष्यते सा सत्या न भवति तदर्थो नानुष्ठेयः।। १६४।।

कोई भी आपस में की गई बात अथवा प्रतिज्ञा यदि शास्त्र, परम्परा तथा व्यवहार के प्रतिकूल कही गई हो, भले ही वह लेखादि द्वारा प्रामाणिक भी क्यों न हो, सत्य नहीं होती है।। १६४।।

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम्।
यत्र वाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत्।। १६५।।

योगशब्दश्छलवाची। छलेन ये बन्धकविक्रयदानप्रतिग्रहाः क्रियन्ते न तत्त्वतोऽन्यत्रापि निक्षेपादौ यत्र छद्म जानीयात्। वस्तुतो यत् निक्षेपादि न कृतं तत्सर्वं निवर्तते।। १६५।।

छल-कपटपूर्वक रखी गई धरोहर और विक्रय की गई, धोखे से ली गई या दी गई वस्तु अथवा जिस किसी भी लेन-देन में धोखाधड़ी देखे, उस सब व्यवहार को अमान्य कर देना चाहिए।। १६५।।

ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः।
दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः।। १६६।।

ऋणग्रहीता यदि मृतः स्यात्तेन पूर्वविभक्ताविभक्तसर्वभ्रातृकुटुम्बसंवर्धनार्थं तदृणव्ययः कृतस्तदा तदृणं विभक्तैरविभक्तैश्च स्वधनाद्दातव्यम्।। १६६।।

यदि ऋण परिवार के लिए खर्च किया गया हो और ऋण लेने वाला मर गया हो, तो वह ऋण अलग हुए अथवा सम्मिलित उसके बन्धुओं को अपने धन में से ही देना चाहिए।। १६६।।

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत्।
स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत्।। १६७।।

तद्देशस्थे देशान्तरस्थे वा स्वामिनि स्वामिसंबन्धिकुटुम्बव्ययनिमित्तं दासोऽपि यदृणादानादि कुर्यात्स्वामी तत्तथाप्यनुमन्येत।। १६७।।

पुत्र, सेवक आदि किसी अधीन व्यक्ति ने भी परिवार के पालन-पोषण के लिए, स्वदेश में अथवा विदेश में, जो लेन-देन कर लिया हो तो घर के बड़े व्यक्तियों को उससे मुकरना नहीं चाहिए।। १६७।।

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम्।
सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत्।। १६८।।

बलाद्दत्तमप्रतिग्रह्यादि, बलाद्भुक्तं भूम्यादि, बलाल्लेखितं चक्रवृद्धिपत्रादि। प्रदर्शनं चैतत्। सर्वान्बलकृतान्व्यवहारान्निवर्तनीयान्मनुराह।। १६८।।

बलपूर्वक जो वस्तु दी गई हो, बलपूर्वक भोगी गयी हो तथा बलपूर्वक जो कुछ भी लिखाया गया हो। बलपूर्वक कराए गए उन सभी कार्यों को मनु ने 'नहीं किया हुआ' बताया है।। १६८।।

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम्।
चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ्नृपः।। १६९।।

साक्षिणः, प्रतिभूः, कुलं च धर्मार्थव्यवहारद्रष्टारस्त्रय एते परार्थं क्लेशमनुभवन्ति तस्माद्बलेन साक्ष्यं प्रातिभाव्यं व्यवहारेक्षणं च नाङ्गीकारयितव्याः। चत्वारः पुनः ब्राह्मणोत्तमर्णवणिग्राजानः परर्थं दानफलोपादानऋणद्रव्यार्पणविक्रयव्यवहारेक्षणरूपं कुर्वाणा धनोपचयं प्राप्नुवन्ति। तस्माद्विप्रो दातारं, आढ्योऽधमर्णं, वणिक् क्रेतारं, राजा व्यवहर्तारं बलेन न प्रवर्तयेत्। पूर्वश्लोकाभिहितबलनिषेधस्यैवायं प्रपञ्चः।। १६९।।

मुकदमों में गवाह, जमानती तथा कुल के लोग ये तीनों हमेशा दूसरों के लिए कष्ट प्राप्त करते हैं, जबकि ब्राह्मण, ऋण देने वाला, महाजन तथा राजा ये चारों वृद्धि को प्राप्त होते हैं।। १६९।।

अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः।
न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत्।। १७०।।

क्षीणधनोऽपि राजा नाग्राह्यमर्थं गृह्णीयात्। समृद्धोऽपि स्वल्पमपि ग्राह्यं धनं न त्यजेत्।। १७०।।

अत्यन्त निर्धन होते हुए भी राजा को ग्रहण न करने योग्य धन को नहीं लेना चाहिए तथा समृद्ध होते हुए भी ग्रहण करने योग्य, लेशमात्र भी धन को नहीं छोड़ना चाहिए।। १७०।।

अनादेयस्य चादानादेयस्य च वर्जनात्।
दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति।। १७१।।

अग्राह्यग्रहणाच्छास्त्रीग्राह्यपरित्यागाच्च राज्ञः पौरैरसामर्थ्यं ख्याप्यते। ततश्च स प्रेत्याधर्मेण नरकादिभोगादिहाकीर्त्या विनश्यति।। १७१।।

अग्राह्य-धन का ग्रहण करने से तथा ग्राह्य-धन का परित्याग करने से, राजा की दुर्बलता प्रदर्शित होती है, जिसके कारण वह इसलोक तथा परलोक दोनों में विनष्ट हो जाता है।। १७१।।

स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात्।
बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते।। १७२।।

न्यायधनग्रहणाद्वर्णानां सजातीयैः शास्त्रीयपरिणयनादिसंबन्धात्। यद्वा वर्ण-संसर्गाद्वर्णसंकरादित्यत्रापि रक्षणादिति योजनीयम्। प्रजानां दुर्बलानां बलवद्भ्योपि रक्षणात्सामर्थ्यमुपजायते नृपस्य। ततश्चासाविहलोकपरलोकयोश्च वर्धते।। १७२।।

इसके अतिरिक्त ग्राह्य-धन को लेने से, सजातियों के साथ सम्बन्ध बनाने से तथा दुर्बलों की रक्षा करने से राजा की शक्ति बढ़ती है तथा वह इसलोक एवं परलोक में वृद्धि को प्राप्त होता है।। १७२।।

यत एवम्-

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये।
वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः।। १७३।।

तस्माद्यम इव राजा वशीकृतक्रोधो जितेन्द्रियः स्वकीयेऽपि प्रियाप्रिये परित्यज्य यमस्य चेष्टया सर्वत्र साम्यरूपया वर्तेत।। १७३।।

इसलिए राजा को अपने प्रिय और अप्रिय का परित्याग करके यमराज के समान क्रोध को जीतकर तथा अपनी इन्द्रियों को वश में करके, समान वृत्तिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।। १७३।।

यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः।
अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः।। १७४।।

यः पुनर्नृपतिर्लोभादिव्यवहारादधर्मेण व्यवहारदर्शनादीनि कार्याणि कुरुते तं दुष्ट चित्तं प्रकृतिपौरविरागात्क्षिप्रमेव शत्रवो निगृह्णन्ति।। १७४।।

जो राजा अज्ञानवश अधर्मपूर्वक कार्य करता है। दुष्टात्मा उस राजा को शत्रु लोग शीघ्र ही अपने वश में कर लेते हैं।। १७४।।

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान्धर्मेण पश्यति।
प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः।। १७५।।

यो राजा रागद्वेषौ विहाय धर्मेण कार्याणि निरूपयति तं राजानं प्रजा भजन्ते समुद्रमिव नद्यः। नद्यो यथा समुद्रान्न निवर्तन्ते तेनैवैकतां यान्ति प्रजा अपि तस्मान्नृपा (न्ननिवर्तन्ते तम) नुवर्तिन्यस्तदेकताना भवन्तीति साम्यम्।। १७५।।

इसके विपरीत जो राजा काम और क्रोध को भलीप्रकार नियन्त्रित करके

धर्मपूर्वक (व्यवहार विषयक) सभी कार्यों को देखता है। समस्त प्रजा उसका उसी प्रकार अनुसरण करती है, जिसप्रकार नदियाँ समुद्र का अनुवर्तन करती हैं।। १७५।।

यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे।
स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम्।। १७६।।

योऽधमर्णो राजवल्लभोऽहमिति गर्वादुत्तमर्णं स्वेच्छया धनं साधयन्तं नृपे निवेदयेत्स राज्ञा ऋणचतुर्थभागं दण्डयः तस्य तद्धनं दापनीयम्।। १७६।।

जो ऋणी व्यक्ति स्वच्छन्दतापूर्वक धन वसूल करते हुए ऋणदाता की राजा से शिकायत करे, तो राजा, ऋण के चतुर्थ अंश द्वारा उसे दण्डित करे तथा उसका वह धन भी उससे दिलवा देवे।। १७६।।

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः।
समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः।। १७७।।

समानजातिरपकृष्टजातिश्चाधमर्णो धनाभावे सति स्वजात्यनुरूपकर्मकरणेनापि समं कुर्यात्। निवृत्तोत्तमर्णाधमर्णव्यपदेशतया धनिकसममात्मानं कुर्यात्। समजातिरत्र ब्राह्मणेतरः कर्मणा क्षत्रविट्शूद्रान्समानजातीयान् ''हीनांस्तु दापयेत्'' इति कात्यायनेन विशेषितत्वात्। श्रेयान्पुनरुत्कृष्टजातिर्न कर्म कारयितव्यः किन्तु शनैः शनैर्यथासंभवं तद्धनं दद्यात्।। १७७।।

ऋण देने में असमर्थ या छोटी जाति वाला ऋणी, ऋण देने वाले के यहाँ काम करके भी अपना ऋण बराबर कर सकता है, जबकि बड़ी जाति वाला ऋणी अपना ऋण धीरे-धीरे चुकता करे।। १७७।।

अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम्।
साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत्।। १७८।।

अनेन प्रोक्तप्रकारेण परस्परं विवदमानानामर्थिप्रत्यर्थिनां साक्ष्यादिप्रमाणेन निर्णीतार्थानि कार्याणि विप्रतिपत्तिखण्डनेन राजा समीकुर्यात्।। १७८।।

इस विधि द्वारा राजा आपस में झगड़ते हुए लोगों के साक्षी तथा लेख आदि प्रमाणों द्वारा प्रमाणित किए गए विवादों का निर्णय करे।। १७८।।

कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनी।
महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद्बुधः।। १७९।।

सत्कुलप्रसूते, सदाचारवति, धर्मवेदिनि, सत्याभिधायिनि, बहुपुत्रादिपरिजने, ऋजुप्रकृतौ मनुष्ये, व्यभिचाराभावान्निक्षेपं स्थापयेत्।। १७९।।

बुद्धिमान् व्यक्ति कुलीन, सदाचारी, धर्मात्मा, सत्य बोलने वाले, बड़े परिवार वाले, श्रेष्ठ धनवान् व्यक्ति के पास ही अपनी धरोहर रखे।। १७९।।

यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः।
स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः।। १८०।।

यो मनुष्यो येन प्रकारेण मुद्रारहितं समुद्रं वा ससाक्षिकमसाक्षिकं वा यमर्थं सुवर्णादि यस्य हस्ते निक्षिपेत्सोऽर्थस्तेन निक्षेप्त्रा तथैव ग्राह्यो यस्माद्येन प्रकारेण समर्पणं तेनैव प्रकारेण ग्रहणं न्याय्यम्। समुद्रस्थापितसुवर्णादेर्निक्षेप्ता स्वयमेव मुद्रां भित्त्वा यदा वदति ममेदं तुलयित्वा समर्पयेत्यभिधानं दण्डाद्यर्थम्।। १८०।।

जो व्यक्ति जिस धन को धरोहर रूप में जिसके पास जिस रूप में रखे, वह धन उसे उसी रूप में वापस लेना चाहिए, क्योंकि धरोहर को जैसा देना, वैसा ही लेना होता है।। १८०।।

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति।
स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसंनिधौ।। १८१।।

यः पुरुषो देहि मे निक्षिप्तं हिरण्यादि द्रव्यमित्येवं निक्षेप्त्राप्रार्थ्यमानस्तस्य यदा न समर्पयति तदा निक्षेप्त्रा ज्ञापिते प्राड्विवाकेन तस्य निक्षेप्तुरसंनिधौ याचनीयः।। १८१।।

धरोहर रखने वाले व्यक्ति द्वारा अपनी धरोहर माँगा जाता हुआ धरोहर लेने वाला, जो व्यक्ति उसे नहीं लौटाता है, तो धरोहर रखने वाले की अनुपस्थिति में न्यायाधीश को उससे धरोहर की मांग करनी चाहिए।। १८१।।

किं कृत्वा किं याचनीय इत्याह-

साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः।
अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः।। १८२।।

प्रथमनिक्षेपे साक्ष्यभावे स्वकीयसभ्यैश्चारपुरुषैरतिक्रान्तबाल्यैः सौम्यादिभिर्नृपोपद्रवादिव्याजाभिधायिभिर्हिरण्यानि तत्त्वेन तत्र निक्षेपयित्वा तैरेव चारपुरुषैः स निक्षेपधारी प्राड्विवाकेन चारपुरुषनिक्षिप्तसुवर्णं याच्यः।। १८२।।

धरोहर-विषयक धन की सिद्धि के लिए साक्षी के अभाव में राजा, समय के अनुसार रूप एवं आयु प्रदर्शित करने की कला में निपुण गुप्तचरों द्वारा, अनेक बहानों से स्वाभाविक दिखाई देने वाली पद्धति द्वारा, उस धरोहर लेने वाले के यहाँ धरोहर का धन रखवाकर पुनः माँगे।। १८२।।

स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथाकृतम्।
न तत्र विद्यते किंचिद्यत्परैरभियुज्यते।। १८३।।

स निक्षेपधारी यथान्यस्तं समुद्रं वा यथाकृतं कटकमुकुटाकारेण रचितं यदि तथैव प्रतिपद्येत सत्यमस्ति गृह्यतामिति तदा परेण पूर्वनिक्षेप्त्रा प्राड्विवाकवेदिना यन्निक्षिप्तमित्यभियुज्यते तत्र न किंचिदस्तीति ज्ञातव्यम्।। १८३।।

यदि धरोहर रखने वाला वह व्यक्ति रखाई गई धरोहर को ज्यों का त्यों लौटा दे, तो दूसरों द्वारा लगाए गए आरोप में कुछ भी सच्चाई नहीं है, ऐसा समझना चाहिए।। १८३।।

तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथविधि।
उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा।। १८४।।

तेषां चारपुरुषाणां यन्निक्षिप्तं हिरण्यं यथा न्यस्तं यदि तत्र दद्यात्तदा द्वावपि निक्षेपौ ज्ञापकचारसंबन्धिनौ संपीड्य दापनीयः स्यादित्येवंरूपो धर्मस्य धारणा निश्चयः। ''यो निक्षेपम्'' (अ० ८ श्लो० १८१-८४) इत्यादिश्लोकचतुष्टयस्य चेदृश एव पाठक्रमो मेधातिथिभोजदेवादिभिर्निश्चितः। गोविन्दराजेन तु ''साक्ष्यभावे प्रणिधिभिः'' (अ० ८ श्लो० १८२) इति श्लोकोऽन्त एव पठितः तदा च नार्थसंगतिः न वा वृद्धाम्नायादरः।। १८४।।

और यदि उन गुप्तचरों द्वारा रखी गई धरोहर को ज्यों की त्यों वापस न करे तो उसे पकड़कर बलपूर्वक दोनों की ही धरोहर को वापस दिलवावे (तथा दण्डित करे), यही धर्म की धारणा (निर्णय) है।। १८४।।

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे।
नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ।। १८५।।

निक्षिप्यत इति निक्षेपः। मुद्राङ्कितमगणितं वा यन्निधीयते स उपनिधिः। ब्राह्मणपरिव्राजकवदुपदेशभेदः। तौ निक्षेपोपनिधी निक्षेप्तर्युपनिधातरि जीवति प्रत्यनन्तरे तदीयपुत्रादौ तदनन्तरे तद्धनाधिकारिणि कदाचिन्न निक्षेपधारिणा देयौ। यतस्तस्य पुत्रादेरपि पितुरसमर्पणविनाशे तौ निक्षेपोपनिधी नश्यतः। पुत्रादेः पितुश्च पुनरविनाशे समर्पणे च कदाचिदविनाशिनौ स्यातां, तस्मादनर्थसंदेहान्न देयौ।। १८५।।

निक्षेप तथा उपनिधि देने वाले से अन्य किसी व्यक्ति को ये कभी भी नहीं देनी चाहिएँ, क्योंकि ये दोनों देने वाले के मर जाने पर नष्ट हो जाती हैं तथा उसके जीवित रहने पर कभी नष्ट नहीं होती हैं।। १८५।।

स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे।
न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः।। १८६।।

निक्षेप्तुर्मृतस्य निक्षेपधारी तद्धनाधिकारिणि पुत्रादौ तदनभ्यर्थितः स्वयमेव यः समर्पयति स राज्ञा निक्षेप्तुः पुत्रादिभिर्वान्यदपि त्वयि निक्षिप्तमस्तीति नाक्षेप्तव्यः।। १८६।।

धरोहर देने वाले व्यक्ति के मरने पर उसके उत्तराधिकारियों को, जो धरोहर लेने वाला व्यक्ति स्वयं ही धरोहर लौटा दे तो, न तो राजा को और न धरोहर देने वाले व्यक्ति के उत्तराधिकारी बन्धुओं को, उसके ऊपर धन बाकी रहने का कोई आरोप लगाना चाहिए।। १८६।।

यदि कथंचिद्भ्रान्तिः स्यात्तदा—

अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम्।
विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत्।। १८७।।

तत्रस्थे धनान्तरसद्भावलक्षणंवाक्छलादिपरिहारेणैव प्रीतिपूर्वकं निश्चिनुयान्नतु झटिति दिव्यादिदानेन। तस्य निक्षेपधारिणः शीलमवेक्ष्य धार्मिकोऽयमिति ज्ञात्वा सामप्रयोगेण निश्चिनुयात्।। १८७।।

और यदि उसके पास कुछ धन रह भी गया हो तो उस धन को कपटरहित होकर प्रेमपूर्वक ही ग्रहण करने की इच्छा करे। उसके द्वारा किए गए आचरण के विषय में सोचकर केवल मधुर-व्यवहार (साम प्रयोग) द्वारा ही उसे पाने का प्रयास करे ।। १८७।।

निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने।
समुद्रे नाप्नुयात्किंचिद्यदि तस्मान्न संहरेत्।। १८८।।

सर्वेषु निक्षेपेष्वपक्रियमाणेष्वेष "साक्ष्यभावे" (अ० ८ श्लो० १८२) इत्यादिपूर्वोक्तविधिर्निर्णयसिद्धौ स्यात्। मुद्रितादौ पुनस्तस्य निक्षेपधारी यदि प्रतिमुद्रादिना न किमप्यपहरेत्तदा तस्मिन्नपि तेन किं दूषणं प्राप्नुयात्।। १८८।।

इन सबप्रकार की धरोहरों के सम्बन्ध में विवादों के निर्णय में यही विधि कही गई है। इसके अतिरिक्त मुहरबन्द धरोहरों में से यदि कुछ भी धन उससे न निकाला गया हो तो धरोहर देने वाले व्यक्ति को कुछ भी प्राप्त नहीं होता है।। १८८।।

चौरैर्हृतं जलेनोढमाग्निना दग्धमेव वा।
न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किंचन।। १८९।।

चौरैर्मुषितं, उदकेन देशान्तरं प्रापितं, अग्निना वा दग्धं निक्षेपं निक्षेपधारी न दद्यात्। यदि स्वयं तस्मान्न किंचिदप्यपहरति।। १८९।।

इसके अलावा रखी हुई धरोहर में से यदि धरोहर लेने वाला वह व्यक्ति कुछ भी नहीं लेता है, किन्तु उसके चोरों द्वारा चुरा लिए जाने पर अथवा जल में बहने पर या अग्नि द्वारा जलने पर धरोहर लेने वाला धरोहर देने वाले को कुछ भी न देवे ।। १८९।।

निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तारमेव च।।
सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः।। १९०।।

निक्षेपस्यापह्नोतारमनिक्षिप्य याचितारं सर्वैः सामादिभिरुपायैर्वैदिकैश्च शपथैरग्नि-हरणादिभिर्नृपो निरूपयेत्।। १९०।।

धरोहर का अपहण करने वाले तथा धरोहर न रखने पर भी माँगने वाले व्यक्तियों का निर्णय न्यायाधीश को वेद में कही गई शपथों द्वारा तथा अन्य सामादि उपायों से करना चाहिए।। १९०।।

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते।
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम्।। १९१।।

निक्षिप्तधनं यो न समर्पयति यश्चानिक्षिप्तं प्रार्थयति तौ द्वौ सुवर्णमुक्तादौ महति विषये चौरवद्दण्ड्यौ। स्वल्पविषये ताम्रादौ तत्समं दण्डनीयौ।। १९१।।

जो व्यक्ति धरोहर वापस नहीं लौटाता है तथा जो धरोहर रखे बिना ही माँगता है, वे दोनों व्यक्ति चोर के समान दण्ड देने योग्य अथवा उस धन के बराबर अर्थदण्ड द्वारा दण्ड के योग्य होते हैं।। १९१।।

निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं दापयेद्दमम्।
तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः।। १९२।।

निक्षेपापहारिणं निक्षिप्तसमधनं दण्डयेत्। समशिष्टत्वादनिक्षिप्य याचितारमपि। नच पुनरुक्तिः। महत्यपराधे ब्राह्मणेतरस्य चौरवदिति पूर्वश्लोकेन शारीरदण्डस्यापि प्राप्तौ तन्निवृत्त्यर्थमिदम्, दापयेदिति धनदण्डनियमात्। न चानेन पूर्वश्लोकवैयर्थ्यम्। अस्य प्रथमापराधविषयत्वात्पूर्वोक्ते चाभ्यासे चौरोक्तमहासाहसादिधनदण्डावरोधकत्वात्। उपनिधिर्मुद्रादिचिह्नितं निहितधनं तस्यापहर्तारं कथितविशेषणं राजा दण्डयेत् ।। १९२।।

निक्षेप का हरण करने वाले व्यक्ति से राजा, उसके स्वामी को उसके बराबर धन

दिलवा दे, उसीप्रकार उपनिधि का हरण करने वाले व्यक्ति को भी वही दण्ड देवे ।। १९२।।

उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः।
ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः।। १९३।।

राजा त्वयि रुष्टस्तस्मात्त्वां रक्षामि मम धनं देहि धनधान्यादिलोभोपकरणं वानृतमभिधाय छद्मभिर्यः परद्रव्यं गृह्णाति स छद्मधनसहकारिसहितो बहुजनसमक्षं करचरणशिरश्छेदादिभिर्नानाप्रकारैर्वधोपायैः राज्ञा हन्तव्यः।। १९३।।

जो कोई व्यक्ति छलकपटपूर्वक दूसरे का धन हरण कर ले तो अपने सहयोगियों सहित वह, सब लोगों के सामने कोड़े मारना आदि, अनेक प्रकार के दण्डों द्वारा दण्डित करने योग्य होता है।। १९३।।

निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसंनिधौ।
तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति।। १९४।।

यः सुवर्णादिर्यावत्परपरिमितो येन साक्षिसमक्षं निक्षेपः कृतस्तत्र परिमाणादिविप्रतिपत्तौ साक्षिवचनात्तावानेव विज्ञातव्यः। विप्रतिपत्तिं कुर्वन्नप्येतदुक्तानुसारेण दण्डं दाप्यः।। १९४।।

साक्षियों के समक्ष जिसने धरोहर के रूप में जो वस्तु जितनी मात्रा में रखी है, उसे उतनी ही समझनी चाहिए, क्योंकि उसके विरुद्ध कहने वाला व्यक्ति दण्ड के योग्य होता है।। १९४।।

मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा।
मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः।। १९५।।

रहसि येन निक्षेपोऽर्पितो निक्षेपधारिणा च रहस्येव गृहीतः स निक्षेपो रहस्येव प्रत्यर्पणीयः न प्रत्यर्पणे साक्ष्यपेक्षा। यस्माद्येनैव प्रकारेण दानं तेनैव प्रकारेण प्रत्यर्पणं दातव्यमिति श्रवणान्निक्षेपधारिणोऽयं नियमविधिः। "यो यथा निक्षेपेद्धस्ते" (अ० ८ श्लो० १८०) इति तु निक्षेप्तुर्नियमार्थं, ग्रहीतव्य इति श्रवणात्। अतो न पौनरुक्त्यम् ।। १९५।।

जिस व्यक्ति ने साक्षियों के बिना एकान्त में धरोहर दी है अथवा जिसने एकान्त में धरोहर को लिया है, उन्हें उसीप्रकार एकान्त में ही वापस करना चाहिए, क्योंकि धरोहर को जैसा लिया जाता है वैसा ही लौटाया जाता है।। १९५।।

निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितस्य च।
राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यास धारिणम्।। १९६।।

राज्ञा निक्षिप्तस्य धनस्यामुद्रस्य मुद्रादियुतस्य वोपनिधिरूपस्य तथा प्रीत्या कतिचित्कालं भोगार्थमर्पितस्यानेनोक्तप्रकारेण न्यस्तधनधारिणमपीडयन्निर्णयं कुर्यात्।। १९६।।

इसप्रकार धरोहर रूप में रखे गए तथा प्रेमपूर्वक प्रदान की गई उपनिधि विषयक धन का निर्णय, राजा धरोहर रखने वाले व्यक्ति को किसीप्रकार की हानि न करते हुए भलीप्रकार करे।। १९६।।

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमत:।
न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम्।। १९७।।

अस्वामी य: स्वामिना चाननुमत: परकीयं द्रव्यं विक्रीणीते वस्तुतश्चौरमचौरमात्मानं मन्यमानं तं साक्षित्वं न कारयेत्। न कुत्रचिदपि प्रमाणीकुर्यादित्यर्थ:।। १९७।।

जो व्यक्ति स्वामी न होता हुआ भी वस्तु के वास्तविक स्वामी की अनुमति के बिना ही दूसरे की सम्पत्ति को बेच देता है, चोर होते हुए भी अपने आपको चोर न मानने वाले उस चोर की बातों को राजा प्रामाणिकरूप में न माने।। १९७।।

अवहार्यो भवेच्चैव सान्वय: षट्शतं दमम्।
निरन्वयोऽनपसर: प्राप्त: स्याच्चौरकिल्बिषम्।। १९८।।

एष परस्वविक्रयी यदि स्वामिनो भ्रात्रादिरूपत्वेन सान्वय: संबन्धी भवति तदा षट् पणशतान्यवहार्यो दण्डनीय:। यदि पुन: स्वामिन: संबन्धी न भवति, अनपसरश्च स्यात्, अपसरत्यनेनास्मात्सकाशाद्धनमित्यपसर: प्रतिग्रहक्रयादि: स यस्य स्वामिसंबन्धिपुत्रादे: सकाशान्नास्ति तदा चौरसंबन्धि पापं प्राप्नोति। तद्वद्दण्डनीय इत्यर्थ:।। १९८।।

दूसरे की सम्पत्ति को इसप्रकार बेचने वाला व्यक्ति यदि स्वामी के वंश का हो तो राजा उस पर छ: सौ पण जुर्माना करे और उस वंश का न होने तथा बलपूर्वक सम्पत्ति पर अधिकार करने वाला व्यक्ति, चोर के पाप (दण्ड) को प्राप्त करने योग्य होता है।। १९८।।

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा।
अकृत: स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थिति:।। १९९।।

(अनेन विधिना शास्ता कुर्वन्नस्वामिविक्रयम्।
अज्ञानाज्ज्ञानपूर्वं तु चौरवद्दण्डमर्हति।। १५।।)

अस्वामिना यत्कृतं यद्दत्तं विक्रीतं वा तदकृतमेव बोद्धव्यम्। व्यवहारे यथा मर्यादा तथा कृतं न भवतीत्यर्थ:।। १९९।।

स्वामी के अभाव में जो भी दिया जाए अथवा विक्रय किया जाए तदनुसार उसे तो न किया हुआ ही समझना चाहिए।। १९९।।

(किसी वस्तु का स्वामी न होने पर भी उसे अज्ञानपूर्वक बेचने वाला व्यक्ति राजा द्वारा इस विधि से दण्डित किया जाए तथा जानबूझकर बेचने वाला व्यक्ति चोर के समान दण्ड का अधिकारी होता है।। १५।।)

संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित्।
आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः।। २००।।

यस्मिन्वस्तुनि संभोगो विद्यते क्रयादिरूपस्त्वागमो नास्ति तत्र प्रथमपुरुषगोचर आगम एव प्रमाणं न संभोग इति शास्त्रमर्यादा।। २००।।

जहाँ किसी वस्तु का उपभोग देखा जाए, किन्तु कहीं से भी आगम का स्रोत दिखायी न दे तो उस विषय में वस्तु की प्राप्ति को ही स्वामित्व का प्रमाण मानना चाहिए, उपभोग को नहीं, ऐसी शास्त्र व्यवस्था है।। २००।।

विक्रयाद्यो धनं किंचिद्गृह्णीयात्कुलसंनिधौ।
क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम्।। २०१।।

विक्रीयतेऽस्मिन्निति विक्रयदेशो विक्रय: ततो यत्क्रेयधनं किंचिद्व्यवहर्तृसमूहसमक्षं क्रीयतेऽनेनेति क्रयो मूल्यं तेन यस्माद्गृह्णीयात्। अतो न्यायत एवास्वामिविक्रेतृसकाशा-त्क्रयणाद्विशुद्धं धनं लभते।। २०१।।

जो व्यक्ति किसी वस्तु का विक्रय करके यदि धन प्राप्त करना चाहता है तो उसे लोगों के बीच में विक्रय की जाने वाली वस्तु के क्रय को विशुद्धरूप से प्रमाणित करके ही न्यायसम्मत धन प्राप्त करने का अधिकार होता है।। २०१।।

अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः।
आदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम्।। २०२।।

अथ मूलमस्वामी विक्रेता मरणाद्देशान्तरादिगमनादिना वा हर्तुं शक्यते प्रकाशक्रयणे चासौ निश्चितस्तदा दण्डानर्ह एव क्रेता राज्ञा मुच्यते। नष्टधनस्वामी च यदस्वामिना विक्रीतं द्रव्यं तत्क्रेतुर्हस्ताल्लभ्यते। अत्र च विषयोऽर्धमूल्यं क्रेतुर्दत्त्वा स्वधनं स्वामिना

ग्राह्यम्। तदाह बृहस्पतिः—"वणिग्वीथीपरिगतं विज्ञातं राजपूरुषैः। अविज्ञाताश्रयात्क्रीतं विक्रेता यत्र वा मृतः।। स्वामी दत्त्वार्धमूल्यं तु प्रगृह्णीयात्स्वकं धनम्। अर्धं द्वयोरपहृतं तत्र स्याद्व्यवहारतः"।। २०२।।

इसके अतिरिक्त मूलरूप से ग्रहण न करने योग्य वस्तु को यदि कोई व्यक्ति सब लोगों के समक्ष शुद्धरूप से खरीद लेता है तो उस स्थिति में इस अवैध वस्तु को खरीदने वाला व्यक्ति राजा द्वारा दण्ड के योग्य नहीं होता है। अतः राजा को उसे छोड़ देना चाहिए तथा खोई हुई वस्तु का मूल स्वामी, वस्तु के विक्रय से प्राप्त उस धन को प्राप्त कर लेता है।। २०२।।

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति।
न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम्।। २०३।।

कुङ्कुमादि द्रव्यं कुसुम्भादिना मिश्रीकृत्य न विक्रेतव्यम्। नचासारं सारमित्यभिधाय नच तुलादिना न्यूनम्। न परोक्षावस्थितम्। न रागादिना स्थगितरूपम्। अत्रास्वामिविक्रयसादृश्यादस्वामिविक्रये दण्ड एव स्यात्।। २०३।।

मिलते-जुलते रङ्गरूप के कारण कम कीमत वाली वस्तु में, अन्य वस्तु को मिलाकर खराब (बुरी), तोल में कम तथा दूर से स्पष्ट रूप में दिखायी न देने वाली वस्तु विक्रय के योग्य नहीं होती है।। २०३।।

अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते।
उभे त एक शुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः।। २०४।।

शुल्कदेयां शुल्कव्यवस्थाकाले निरवद्यां दर्शयित्वा यदि सावद्या वराय दीयते तदा द्वे अपि कन्ये तेनैवैकेन शुल्केनासौ वरः परिणयेदित्ति मनुराह। शुल्कग्रहणपूर्वककन्याया दानस्य विक्रयरूपत्वादर्थक्रयविक्रयसाधर्म्येणास्यात्राभिधानम् ।। २०४।।

यदि अन्य कन्या को दिखाकर दूल्हे को अन्य कन्या दानरूप में दी जाती है तो मनु के कथनानुसार एक ही शुल्क में दूल्हा दोनों कन्याओं को वरण करने का अधिकारी होता है।। २०४।।

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना।
पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति।। २०५।।

उन्मत्तायास्तथा कुष्ठवत्या या चानुभूतमैथुना तस्या ब्राह्मणादिविवाहात्पूर्वमुन्मादादीन्दोषान्वरस्य कथयित्वा दण्डार्हो न भवति। तेनाकथने दण्ड इति गम्यते। "यस्तु दोषवतीं कन्यां" (अ० ८ श्लो० २२४) इति वक्ष्यति।। २०५।।

इसीप्रकार पागल, कोढ़युक्त अथवा अन्य के साथ मैथुन व्यापार वाली के दोषों को पूर्व में कहे बिना ही दूल्हे को देने वाला व्यक्ति दण्ड का अधिकारी होता है ।। २०५।।

अथ संभूयसमुत्थानमाह—

ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत्।
तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽशः सह कर्तृभिः।। २०६।।

यज्ञे कृतवरण ऋत्विक् यदि किंचित्कर्म कृत्वा व्याध्यादिना कर्म त्यजति तदा तस्येतरर्त्विग्भिः पर्यालोच्य कृतानुसारेण दक्षिणांशो देयः।। २०६।।

यज्ञ के पुरोहित के रूप में काम करने वाला व्यक्ति यदि यज्ञ में कुछ कार्य करके रोगादि किसी अपरिहार्य कारण से अपने कर्म को बीच में ही छोड़ देता है, तो उसे सहयोगियों के साथ किए गए कर्म के अनुरूप ही दक्षिणा का भाग प्रदान करना चाहिए।। २०६।।

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन्।
कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत्।। २०७।।

माध्यंदिनसवनादौ दक्षिणाकाले दक्षिणासु दत्तासु व्याध्यादिना कर्म परित्यजन्न तु शाठ्यात्स कृत्स्नमेव दक्षिणाभागं लभेत। कर्मशेषं प्रकृतमन्येन कारयेत्।। २०७।।

सम्पूर्ण दक्षिणा के दिये जाने पर अपने यज्ञ के पौरोहित्य कर्म को छोड़ते हुए व्यक्ति से, दिया गया वह सम्पूर्ण दक्षिणा का अंश ले लेना चाहिए तथा उसी दक्षिणा को देकर अन्य पुरोहित द्वारा यज्ञकर्म सम्पादित कराना चाहिए।। २०७।।

यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्गदक्षिणाः।
स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा।। २०८।।

यस्मिन्कर्मण्याधानादौ अङ्गमङ्गं प्रति या दक्षिणा यत्संबन्धेन श्रुताः स्युः स एव ता आददीत न तत्तद्भागमात्रं सर्वे विभज्य गृह्णीरन्निति संशयः।। २०८।।

आंशिक दक्षिणा के कार्यों में विधिविधान के अनुसार जिस कर्म के लिए जितनी दक्षिणा निर्धारित की गई है, उसे उतनी ही दक्षिणा दी जानी चाहिए या सभी में उसका समान विभाजन करना चाहिए (ऐसा संशय होने पर सिद्धान्त पक्ष को कहते हैं)।। २०८।।

अत्र सिद्धान्तमाह—

रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम्।
होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनः क्रये।। २०९।।

केषांचिच्छाखिनामाधानेऽध्वर्यवे रथो देयत्वेनाम्नायते, ब्रह्मणे वेगवानश्वः, होत्रे चाश्वः, उद्गात्रे सोमक्रयवहनशकटम्, अतो व्यवस्थाम्नानसामर्थ्याद्या दक्षिणा यत्सबन्धत्वेन श्रूयते स एव तामाददीत।। २०९।।

यज्ञ में यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाला पुरोहित रथ को ग्रहण करे तथा ब्रह्मा और होता (ऋग्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाला) अश्व को एवं उद्‌गाता (सामवेद के मंत्रों का उच्चारण करने वाला) सोम को क्रय की जाने वाली शकट को प्राप्त कर ले और इन वस्तुओं से संतोष ग्रहण करे।। २०९।।

संप्रतिपत्तिविधाने दक्षिणाविभागमाह—

सर्वेषामर्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्धिनोऽपरे।
तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः।। २१०।।

"तं शतेन दीक्षयति" इति श्रूयते। तत्र सर्वेषां षोडशानामृत्विजां मध्ये ये मुख्या ऋत्विजो होत्रध्वर्युब्रह्मोद्गातारः समग्रदक्षिणायास्तेऽर्धहरा अष्टचत्वारिंशद्गोभाजो भवन्ति। अतएव कात्यायनेन "यद्द्वादशाद्येभ्यः" इति प्रत्येकं द्वादशगोदानं विहितम्। यद्यपि तस्यार्धं पञ्चाशद्भवति तथापीह न्यूनार्धग्रहणेनापि इमेऽर्धिन उच्यन्ते सामीप्यात्। अपरे मैत्रावरुणप्रतिप्रस्थातृब्राह्मणाच्छंसिप्रस्तोतारस्ते मुख्यर्त्विग्गृहीतदक्षिणार्धग्रहणेनार्धिन उच्यते। तृतीयिनोऽच्छावाङ्नेष्टग्रीत्प्रतिहर्तारस्ते मुख्यर्त्विग्गृहीतस्य तृतीयमंशं लभन्ते पादिर्नस्तु ग्रावस्तुदुन्नेतृपोतृसुब्रह्मण्या एते मुख्यर्त्विग्गृहीतस्य चतुर्थमंशं लभन्ते। एतच्च "षट् षट् द्वितीयेभ्यश्चतस्रश्चतस्रश्च तृतीयेभ्यस्तिस्रस्तिस्रश्चतुर्थेभ्यः" इति सूत्रयता कात्यायनेन स्फुटीकृतम्।। २१०।।

यज्ञ करने वाले सोलह पुरोहितों के साझीदारों में जो मुख्य हैं, वे कुल आय के आधे भाग को ग्रहण कर लें। दूसरे नम्बर के साझीदार उनसे आधा भाग ले लें। तीसरे नम्बर के एक तिहाई तथा चौथे नम्बर के साझीदार दक्षिणा का एक चौथाई भाग ग्रहण कर लेवें (इस प्रकार दक्षिणा की साझेदारी का विभाजन किया जाए)।। २१०।।

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः।
अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना।। २११।।

मिलित्वा गृहनिर्माणादीनि स्वकर्माणि लोके स्थपतिसूत्रधार्यादिभिश्च मनुष्यैः कुर्वद्भिरनेन यज्ञदक्षिणाविधिनाश्रयणेन विज्ञानव्यापाराद्यपेक्षया भागकल्पना कार्या।। २११।।

इस संसार में मिलजुलकर यज्ञरूप कर्म को सम्पादित करने वाले व्यक्तियों द्वारा इसी विधिविधान के अनुसार यज्ञ की दक्षिणा के अंश का विभाजन करना चाहिए ।। २११ ।।

इदानीं दत्तानपकर्माह—

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम्।
पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत्।। २१२।।

येन यागादिकर्मार्थं कस्मैचिद्याचमानाय धनं दत्तं प्रतिश्रुतं वा, पाश्चाच्च तद्धनमसौ यागार्थं न विनियुञ्जीत तदा तद्दत्तमपि धनं ग्राह्यं प्रतिश्रुतं च न देयम्। यदाह गौतमः— ''प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात्''।। २१२।।

जिस व्यक्ति ने यागादि धार्मिक कार्य के लिए किसी याचक को यदि धन दिया हो, किन्तु बाद में उस धन का उपयोग उसने वैसा (यज्ञादि के लिए) न किया हो, तो वह धन उसे देने योग्य नहीं रहता है। (अतः उसे वापस ले लेना चाहिए) ।। २१२ ।।

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः।
राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः।। २१३।।

यदि तद्दत्तमसौ गृहीत्वा लोभादहंकाराद्वा न त्यजति, प्रतिश्रुतं वा धनं बलेन गृह्णाति तदा तस्य चौर्यपापस्य संशुद्ध्यर्थं राज्ञा स्वर्णं दण्डं दापनीयो भवति ।। २१३ ।।

किन्तु फिर भी अहङ्कार अथवा लोभ के कारण यदि वह याचक उस धन को न लौटाए और मनमाने ढंग से उसका उपयोग करे, तो राजा को चाहिए कि उसके चोरी-रूप अपराध की निवृत्ति हेतु उसे एक सुवर्ण से दण्डित करे।। २१३।।

दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम्।। २१४।।

एतद्दत्तस्याप्रतिपादनं धर्मादनपेतं तदुक्तम्। अतोऽनन्तरं भृतेरसमर्पणादिकं वक्ष्यामि ।। २१४।।

इसप्रकार यह दिए हुए दान को ज्यों का त्यों न लौटाने की क्रिया के सम्बन्ध में धार्मिक व्यवस्था का कथन किया गया। इसके पश्चात् अब मैं आपके समक्ष वेतन न देने के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहूँगा।। २१४।।

भृतो नार्तो न कुर्याद्योदर्पात्कर्म यथोदितम्।
स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम्।। २१५।।

यो भृतिपरिक्रीतो व्याध्यपीडितो यथानिरूपितं कर्माहंकारान्न कुर्यात्सकर्मानुरूपेण सुवर्णादिकृष्णलान्यष्टौ दण्डनीयः। वेतनं चास्य न देयम्।। २१५।।

रोगरहित होते हुए भी जो सेवक अहंकारवश स्वामी के कथनानुसार कार्यों को नहीं करता है, वह (राजा द्वारा) आठ 'कृष्णल'[1] दण्ड देने योग्य होता है, साथ ही इसे (उस समय का) वेतन भी नहीं देना चाहिए।। २१५।।

आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः।
स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम्।। २१६।।

यदा व्याध्यादिपीडया कर्म न करोति स्वस्थःसन् यादृग्भाषितं तादृक्कर्म कुर्याद्वेतनं च चिरकालादपि लभेतैव।। २१६।।

स्वस्थ रहता हुआ सेवक यदि पूर्व में कहे गए के अनुसार ठीक प्रकार कार्य करता रहता है तो अस्वस्थ होने पर भी वह (बीमारी की अवधि के) लम्बे समय के वेतन को प्राप्त करने का अधिकारी होता है।। २१६।।

यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत्।
न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः।। २१७।।

यत्कर्म यथाभाषितं पीडितोऽन्येन न कारयेत्सुस्थो वा न कुर्यान्नापि कारयेत् तस्यकिंचिच्छेषस्य कृतस्य कर्मणोपि वेतनं न देयम्।। २१७।।

सेवक स्वस्थ हो अथवा रोगग्रस्त हो यदि वह कथनानुसार कार्य को पूरा नहीं करता है अथवा किसी अन्य द्वारा नहीं कराता है तो उसे थोड़े से भी अवशिष्ट काम का वेतन प्रदान नहीं करना चाहिए।। २१७।।

एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम्।। २१८।।

एषा व्यवस्था वेतनादानाख्यकर्मणो निःशेषेणोक्ता। अतोऽनन्तरं संविव्द्यतिक्रमकारिणां दण्डादिव्यवस्थां वदिष्यामि।। २१८।।

यहाँ तक मैंने यह वेतन प्रदान करने सम्बन्धी नियमों के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक

---

१. **कृष्णल**—गुञ्जाफल या चौटली को कहते हैं। सम्भवतः मनु के समय में इसका विपणन हेतु प्रयोग किया जाता था। अथवा मुद्रा का नाम।

कहा। इसके पश्चात् अब मैं आपके समक्ष पूर्व में की गई प्रतिज्ञा को तोड़ने वालों के सम्बन्ध में नियमों को कहूँगा।। २१८।।

यो ग्रामदेशसङ्घानां कृत्वा सत्येन संविदम्।
विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्।। २१९।।

ग्रामदेशशब्दाभ्यां तद्वासिनो लक्ष्यन्ते। सङ्घो वणिगादिसमूहः इदमस्माभिः कर्तव्यं परिहार्यमित्येवंरूपं संकेतं सत्यादिशपथेन कृत्वा तन्मध्ये यो नरो लोभादिना निष्क्रामेत्तं राजा राष्ट्रान्निर्वासयेत्।। २१९।।

ग्राम, देश अथवा संघ आदि का जो कोई व्यक्ति यदि लोभवश सत्यवचनपूर्वक पूर्व में की गई प्रतिज्ञा को तोड़ देता है तो ऐसे व्यक्ति को राष्ट्र से बाहर निकाल देना चाहिए[1]।। २१९।।

निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम्।
चतुःसुवर्णान्षण्णिष्कांश्छतमानं च राजतम्।। २२०।।

अथ चैनं संविव्यतिक्रमकारिणं निबोध्य चतुरः सुवर्णान्षण्णिष्कान्प्रत्येकं चतुःसुवर्णपरिमितान् राजतं च शतमानं विंशत्यधिकरक्तिकाशतत्रयपरिमाणं त्रयमेतद्विषयलाघवगौरवापेक्षया समन्वितं व्यस्तं वा राजा दण्डं दापयेत्।। २२०।।

इसीप्रकार अपने द्वारा की गई प्रतिज्ञा अथवा अनुबन्ध को भङ्ग करने के दोषी व्यक्ति को राजा गिरफ्तार करके चार सुवर्ण, छः निष्क तथा चांदी का शतमान अर्थदण्ड के रूप में प्रदान करे।। २२०।।

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः।
ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम्।। २२१।।

ग्रामेषु ब्राह्मणजातिसमूहेषु संविव्यतिक्रमकारिणामेतद्दण्डविधिं धर्मप्रधानो राजानुतिष्ठेत्।। २२१।।

अतः धार्मिक राजा को ग्राम, जाति तथा समुदाय आदि के सम्बन्ध में, स्वयं द्वारा की गई प्रतिज्ञा का भङ्ग करने वालों पर इस दण्डविधान का प्रयोग करना चाहिए।। २२१।।

क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत्।
सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत वा।। २२२।।

---

१. 'देश निकाला' यह दण्ड देना चाहिए।

क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्द्रव्यं विनश्वररूपं स्थिरार्थं भूमिताम्रपट्टादि यस्य लोके पश्चात्तापो जायते न साधु मया क्रीतमिति स क्रीतं दशाहमध्ये प्रत्यर्पयेत्। विक्रीत वा गृह्णीयात्।। २२२।।

किसी वस्तु को खरीदकर अथवा उसका विक्रय करके जिस व्यक्ति को मन में पश्चात्ताप की अनुभूति हो, तो उसे दस दिनों के भीतर उस वस्तु को लौटा देना चाहिए तथा विक्रेता को उसे (चुपचाप) वापस ले लेना चाहिए।। २२२।।

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत्।
आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्।। २२३।।
(स्याच्चतुर्विंशतिपणे दण्डस्तस्य व्यतिक्रमे।
पणस्य दशमे भागे दाप्यः स्याददतिपातिनि।। १६।।
क्रीत्वा विक्रीय वा पण्यमगृह्णन्न ददतस्तथा।
पणा द्वादश दाप्यश्च मनुष्याणां च वत्सरान्।। १७।।
पणा द्वादश दाप्यः स्यात्प्रतिबोधे न चेद्भवेत्।
पशूनामप्यनाख्याने त्रिपदादर्पणं भवेत्।। १८।।)

दशाहादूर्ध्वं क्रीतं न त्यजेत्। नापि विक्रीतं विक्रयिको बलेन दापयेत्। विक्रीतं बलेन गृह्णन्परित्यजन्राज्ञा षट् शतानि पणान् दण्ड्यः।। २२३।।

किन्तु दस दिन के पश्चात् न तो वस्तु वापस दे और न ही वापस लेवे। फिर भी यदि कोई (बलपूर्वक) वापस ले अथवा दे तो राजा को उस व्यक्ति पर छः सौ पण का दण्ड करना चाहिए।। २२३।।

(तथा उसकी अवहेलना करने पर चौबीस पण का दण्ड देना चाहिए तथा दण्डित व्यक्ति के भाग जाने पर उससे दण्डस्वरूप पण का दसवाँ भाग और ग्रहण करना चाहिए।। १६।।

विक्रय योग्य वस्तु को खरीदकर अथवा बेचकर वर्षों तक ग्रहण न करते हुए तथा न देते हुए व्यक्ति बारह पणों द्वारा दण्ड देने योग्य है।। १७।।

समझाने बुझाने पर भी यदि वे इस विषय में नियम का पालन नहीं करते हैं तो उन्हें बारह पण अतिरिक्त दण्ड देना चाहिए। इसीप्रकार पशुओं के विषय में विक्रय आदि की घोषणा को पूरा न करने पर उसके मूल्य का तिहाई भाग दण्डस्वरूप ग्रहण किया जा सकता है।। १८।।)

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्।। २२४।।

नोन्मत्ताया इति सामान्येनोक्तं दण्डविशेषाभिधानार्थमिदम्। उन्मादादिदोषानकथयित्वा दोषवतीं कन्यां वराय यः प्रयच्छति तस्य राजा स्वयमादरेण षण्णवतिं पणान्दण्डं कुर्यात्। अनुशयप्रसंगेनैतत्कन्यागतमुच्यते।। २२४।।

जो व्यक्ति (शारीरिक अथवा मानसिक) दोषयुक्त कन्या के दोषों का कथन न करके उसे वर को प्रदान करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए राजा को स्वयं छियानवें पणों का दण्ड निर्धारित करना चाहिए।। २२४।।

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन्।। २२५।।

नेयं कन्या क्षतयोनिरियमिति यो मनुष्यो द्वेषेण ब्रूयात्तस्या उक्तदोषमविभावयन्पणशतं राजा दण्डं प्रकल्पयेत्।। २२५।।

जो व्यक्ति किसी कन्या को द्वेषवश यदि चरित्रहीन कहता है और उसका दोष सिद्ध नहीं कर पाता है तो वह व्यक्ति सौ पणों का दण्ड पाने योग्य होता है।। २२५।।

युक्तश्चास्याकन्येति वादिनो दण्डः यस्मात्—

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः।। २२६।।

"अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत" इत्येवमादयो वैवाहिका मनुष्याणां मन्त्राः कन्याशब्दश्रवणात्कन्यास्वेव व्यवस्थिताः। नाकन्याविषये क्वचिच्छास्त्रे धर्मविवाहसिद्धये व्यवस्थिता असमवेतार्थत्वात्। अतएवाह। ताः क्षतयोनयो वैवाहिकमन्त्रैः संस्क्रियमाणा अपि यस्मादपगतधर्मविवाहादिशालिन्यो भवन्ति। नासौ धर्म्यो विवाह इत्यर्थः। नतु क्षतयोनेर्वैवाहिकमन्त्रहोमादिनिषेधकमिदम्। "या गर्भिणी संस्क्रियते" (अ० ९ श्लो० १७३) तथा "वोढुः कन्यासमुद्भवम्" (अ० ९ श्लो० १७२) इति क्षतयोनेरपि मनुनैव विवाहसंस्कारस्य वक्ष्यमाणत्वात्। देवलेन तु—"गान्धर्वेषु विवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः। कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः" इति। गान्धर्वेषु विवाहेषु होममन्त्रादिविधिरुक्तः। गान्धर्वश्चोपगमनपूर्वकोऽपि भवति। तस्य क्षत्रियविषये सुधर्मत्वं मनुनोक्तम्। अतः सामान्यविशेषन्यायादितरविषयोऽयं क्षतयोनिविवाहस्याधर्मत्वोपदेशः।। २२६।।

सच्चरित्र कन्याओं के पाणिग्रहण में ही मन्त्रों का विधान किया गया है, चरित्रहीन कन्याओं के लिए नहीं। कुछ लोगों के मत में क्षतयोनि कन्याओं का विवाह वैदिकमन्त्रों द्वारा कराने से धर्म पतित होता है।। २२६।।

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे।। २२७।।

वैवाहिका मन्त्रा नियतं निश्चितं भार्यात्वे निमित्तम्, मन्त्रैर्यथाशास्त्रप्रयुक्तैर्भार्यात्वेन निष्पत्तेः। तेषां तु मन्त्राणां ''सखा सप्तपदी भव'' इति मन्त्रेण कल्पनया सप्तमे पदे दत्ते भार्यात्वनिष्पत्तेः शास्त्रज्ञैर्निष्पत्तिर्विज्ञेया। एवंच सप्तपदीदानात्प्राग्भार्यात्वानिष्पत्तेः सत्यनुशये जह्यान्नोर्ध्वम्।। २२७।।

पाणिग्रहण के समय उच्चारण किए जाने वाले मन्त्रों द्वारा निःसन्देह कन्या में पत्नी के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। अतः विद्वानों को सातवें पद में उस कन्या को निष्ठापूर्वक वर की भार्या मान लेना चाहिए।। २२७।।

यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशयो भवेत्।
तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत्।। २२८।।

न केवलं क्रय एवं अन्यत्रापि यस्मिन्यस्मिन्संबन्धित्वेनादौ कार्ये यस्य पश्चात्तापो जायते तमनेन दशाहविधिना धर्मादनपेते मार्गे नृपः स्थापयेत्।। २२८।।

न केवल क्रय आदि के सम्बन्ध में अपितु जिस-जिस कार्य के सम्बन्ध में इस संसार में व्यक्ति को पश्चात्ताप की अनुभूति हो, तो राजा को प्रयत्नपूर्वक उक्त विधिविधान एवं धर्मसम्मत मार्ग के अनुसार उस-उस कार्य को सम्पादित कराना चाहिए।। २२८।।

पशुषु स्वामिनां चैव पालानां च व्यतिक्रमे।
विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः।। २२९।।

गवादिपशुविषये स्वामिनां पालानां व्यतिक्रमे जाते विवादं सम्यग्धर्म्यं यथा तथा व्यवस्थया वक्ष्यामि।। २२९।।

अब मैं पशुओं के सम्बन्ध में पशुस्वामी एवं उनका पालन करने वाले चरवाहों के बीच विवाद हो जाने पर, उस विवाद के समाधान के सम्बन्ध में धर्मतत्त्व की व्यवस्था के अनुसार ठीक-ठीक विस्तारपूर्वक कहूँगा।। २२९।।

दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे।
योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात्।। २३०।।

दिवा पशूनां पालहस्तन्यस्तानां योगक्षेमविषये पालस्य गर्हणीयता। रात्रौ पुनः पालप्रत्यर्पितानां स्वामिगृहस्थितानां स्वामिनो दोषः। अन्यथा तु यदि रात्रावपि पालहस्तगता भवन्ति तत्र दोष उत्पन्ने पाल एवं गर्हणीयतां प्राप्नोति।। २३०।।

पशुओं के योगक्षेम के विषय में दिन में पालक की पूर्ण जिम्मेदारी माननी चाहिए। पालक द्वारा वन से लौटा लाने पर उनकी सम्पूर्ण जिम्मेदारी घर में स्थित स्वामी की बनती है, किन्तु यदि रात्रि में भी पालक के पास ही पशु रहता है, तो उनके योगक्षेम का पूर्णदायित्व पालक का ही होता है।। २३०।।

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतो वराम्।
गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृते भृतिः।। २३१।।

यो गोपालाख्यो भृत्यः क्षीरेण न भक्तादिना स्वस्वाम्यनुज्ञया गोभ्यः श्रेष्ठामेकां गां भृत्यर्थं दुह्यात्सा भक्तादिरहिते गोपाले भृतिः स्यात्। एवं चैकगवीक्षीरदानेन दश गाः पालयेदित्युक्तम्।। २३१।।

दूध के लिए नियुक्त गोपालक को स्वामी की अनुमति से दस गायों में से किसी एक श्रेष्ठ गाय का दूध दुह लेना चाहिए तथा वेतन प्राप्त न होने की स्थिति में यही गोपालक का वेतन समझना चाहिए।। २३१ ।।

नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम्।
हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु।। २३२।।

नष्टं दृष्टिपथातीतं, कृमिभिर्नाशितं, श्वभिः खादितं हतं, विवरादिपातमृतम्। प्रदर्शनं चैतत् पालसंबन्धिरक्षकाख्यपुरुषव्यापाररहितं मृतं पलायितं गवादि, पशुपाल एव तु स्वामिने दद्यात्।। २३२।।

पशु के खो जाने पर, (सर्पादि विषैले कीट द्वारा या) कीड़ों द्वारा विनष्ट होने पर, कुत्तों द्वारा मार डालने पर, खाई आदि में गिरने से मरने पर, उनके रक्षा सम्बन्धी दायित्वों का ठीक प्रकार पालन न करने के कारण, गोपालक को ही वस्तुतः स्वामी की क्षतिपूर्ति करनी चाहिए।। २३२।।

विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति।
यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति।। २३३।।

चौरैः पुनः पटहादि विघुष्य हृतं पालो दातुं नार्हति। विघुष्येति चौराणां बहुत्वं प्रबलत्वकथनपरम्। संनिहिते देशे हरणकालानन्तरमेवात्मीयस्वामिनः कथयति।। २३३।।

(पटह आदि का प्रयोग करके कोलाहलपूर्वक) चोरों द्वारा पशुओं का बलात् हरण करने पर, समय रहते यदि गोपालक उचित स्थान पर अपने स्वामी को इसकी सूचना दे देता है, तो वह इसकी क्षतिपूर्ति देने योग्य नहीं होता है।। २३३।।

कर्णौ चर्म च वालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनाम्।
पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्कानि दर्शयेत्।। २३४।।

स्वयं मृतेषु पशुषु कर्णचर्मलाङ्गूलप्रवालान्नाभेरधोभागस्नायुरोचनाः स्वामिनां दद्यात्। अन्यानि च चिह्नानि शृङ्गखुरादीनि दर्शयेत्।। २३४।।

पशुओं के स्वयं मर जाने पर, मृत पशु के सभी अङ्ग जैसे-दोनों कान, चर्म, पूँछ आदि के बाल, नाभि के नीचे का भाग, स्नायु, रोचना आदि पशु के स्वामी को दे देना चाहिए अथवा स्वामी को इसका शव दिखा देना चाहिए।। २३४।।

अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति।
यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषं भवेत्।। २३५।।

अजाश्चाविकाश्चाजाविकं "गवाश्वप्रभृतीनि च" (पा० सू० २/४/११) इति द्वन्द्वैकवद्भावः। तस्मिन्नजाविके वृकैः परिवृते सति पालेऽनागच्छति यामजामेडकां वा वने वृको हन्यात्स पालस्य दोषः स्यात्।। २३५।।

भेड़ियों द्वारा बकरी और भेड़ों को घेर लिए जाने पर चरवाहा यदि उन्हें बचाने के लिए नहीं आता है तो जिस बकरी या भेड़ को भेड़िया बलपूर्वक मार डालता है तो गोपालक को ही उसका दोषी मानना चाहिए।। २३५।।

तासां चेदवरुद्धानां चरन्तीनां मिथो वने।
यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी।। २३६।।

तासामजाविकानां पालेन नियमितानां संघीभूय वनेचरन्तीनां यत्नाद्यदि कश्चित्कुतश्चिदुत्प्लुत्यालक्षितो यां कांचिद्धन्यान्न पालस्तत्र दोषभाक्।। २३६।।

यदि चरवाहे ने भेड़-बकरियों को चारों ओर से घेरकर रोका हुआ है तथा वन में झुण्ड बनाकर चरते समय अकस्मात् उछलकर आक्रमण करके भेड़िया यदि बकरी या भेड़ को मार देता है, तो उस स्थिति में गोपालक इसका दोषी (देनदार) नहीं होता है।। २३६।।

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः।
शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु।। २३७।।

चतुर्हस्तो धनुः। शम्या यष्टिस्तस्याः पातः प्रक्षेपो ग्रामसमीपे सर्वासु दिक्षु चत्वारि हस्तशतानि, त्रीन्वा यष्टिप्रक्षेपान्यावत्पशुप्रचारार्थं सस्यवपनादिसंरोधपरिहारः कार्यः। नगरसमीपे पुनरयं त्रिगुणः कर्तव्यः।। २३७।।

पशुओं के चरने के लिए गाँव के चारों ओर सौ धनुष (अर्थात् चार सौ हाथ)

अथवा तीन बार छड़ी फेंकने पर वह जितनी दूर जाए उतनी तथा नगर में इससे भी तीन गुनी भूमि चरागाह के रूप में छोड़ देनी चाहिए।। २३७।।

तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि।
न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम्।। २३८।।

तस्मिन्परिहारस्थाने यदि केनचिददत्तावृतिकं धान्यमुप्यते तच्चेत्पशवो भक्षेयुस्तत्र पशुपालानां नृपो दण्डं न कुर्यात्।। २३८।।

उस चरागाह के पास यदि असुरक्षित पड़े हुए अन्न को पशु नष्ट कर देते हैं तो राजा को उस सम्बन्ध में गोपालकों को दण्डित नहीं करना चाहिए।। २३८।।

वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत्।
छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम्।। २३९।।

तत्र परिहारस्थाने क्षेत्रे वृतिं कण्टकादिमयीं तथाविधामुच्छ्रितां कुर्यात्। यामपरपार्श्वे उष्ट्रो न विलोकयेत्, तस्यां च यत्किंचिच्छिद्रं श्वसूकरमुखप्रवेशयोग्यं तत्सर्वमावृणुयात् ।। २३९।।

उस चरागाह के पास व्यक्ति को इतनी ऊँची बाड़ (सुरक्षा घेरा) बनानी चाहिए, जिसके ऊपर से ऊँट अन्न को न खा सकें। साथ ही उसमें ऐसे छिद्र भी नहीं छोड़ने चाहिएँ कि कुत्ते एवं सुअर उसमें अपना मुँह डाल सकें।। २३९।।

पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः।
सपालः शतदण्डार्हो विपालान्वारयेत्पशून्।। २४०।।

वर्त्मसमीपग्रामसमीपवर्तिनि वा परिहारस्थे क्षेत्रे दत्तवृतौ सपालः पशुः पालानिवारितो द्वारादिना कथंचित्प्रविष्टो यदा भक्षयति तदा पणशतं दण्ड्यः। पशोश्च दण्डासंभवात्पाल एव दण्ड्यः। विपालान्पुनर्भक्षणप्रवृत्तान्क्षेत्ररक्षको निवारयेत्।। २४०।।

पशुओं के मार्ग में बाड़ से घिरे हुए अन्न स्थान में खेत में या गाँव के पास वाले चरागाहों में पशुओं द्वारा हानि पहुँचाने पर चरवाहा सौ पण के दण्ड का भागीदार होता है, किन्तु यदि वे पशु चरवाहे के न हों तो उन्हें केवल वहाँ से हटा देना चाहिए।। २४०।।

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति।
सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा।। २४१।।

वर्त्मग्रामान्तव्यतिरिक्तेषु पशुर्भक्षयन्सपादं पणं दण्डमर्हति। अत्रापि पाल एव दण्ड्यः। सर्वत्र क्षेत्रे पशुभक्षितं फलं स्वामिने पालेन स्वामिना वा यथापराधं दातव्यमिति निश्चयः।। २४१।।

अन्य खेत आदि स्थानों में यदि (गोपालक के) पशु अन्न का नुकसान कर देते हैं तो इसके लिए चरवाहा सवा पण के दण्ड के योग्य होता है। इसके अतिरिक्त (चरवाहे या पशुस्वामी की देखरेख में) सम्पूर्ण खेत ही यदि पशुओं द्वारा नष्ट कर दिया गया हो तो (गोपालक या स्वामी द्वारा) खेत वाले व्यक्ति को पूरा हर्जाना देना चाहिए, ऐसा नियम है।। २४१।।

अनिर्दशाहां गां सूता वृषान्देवपशूंस्तथा।
सपालान्वा विपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत्।। २४२।।

प्रसूतां गामनिर्गतदशाहां तथा च चक्रशूलाङ्किंतोत्सष्टवृषान्हरिहरादिप्रतिमा-संबन्धिपशून्पालसहितान्पालरहितान्वा सस्यभक्षणप्रवृत्तान्मनुरदण्ड्यानाह। उत्सृष्टवृषाणामपि गर्भार्थं गोकुले पालैर्धारणात्सपालत्वसंभवः।। २४२।।

जिसे ब्याए हुए दस दिन व्यतीत न हुए हों ऐसी गाय, चिह्नित साँड तथा यज्ञ में प्रयोग किए जाने वाले देवपशु, चरवाहे द्वारा सुरक्षित अथवा असुरक्षित यदि किसी के खेत का अन्न खा लेते हैं तो इसके लिए गोपालक दण्ड का भागी नहीं होता है, ऐसा मनु ने कहा है।। २४२।।

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत्।
ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रिकस्य तु।। २४३।।

क्षेत्रकर्षकस्यात्मपशुसस्यभक्षणेऽयथाकालं वपनादौ वापराधे सति यावतो राजभागस्य तेन हानिः कृता ततो दशगुणदण्डः स्यात्। क्षेत्रिकाविदिते भृत्यानामुक्तापराधे क्षेत्रिकस्यैव दशगुणार्धदण्डः। क्षेत्रसस्यप्रसङ्गाच्चेदमुक्तम्।। २४३।।

खेत के स्वामी के अपने पशुओं द्वारा अन्न का भक्षण करने पर जितनी राजा के भाग की हानि हुई है, उससे दस गुना दण्ड देना चाहिए, किन्तु यदि खेत का स्वामी इससे अनभिज्ञ है तो उसका आधा दण्ड सेवकों को देना चाहिए।। २४३।।

एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः।
स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे।। २४४।।

स्वामिनां पालानां चारक्षणादपराधे पशूनां च सस्यभक्षणरूपे व्यतिक्रमे धर्मप्रधानो भूपतिरेतत्पूर्वोक्तं कर्तव्यमनुतिष्ठेत्।। २४४।।

इसप्रकार स्वामी, पशुओं (द्वारा अन्न भक्षण) और चरवाहों के परस्पर विवाद के अवसर पर धार्मिक राजा को इसी विधिविधान का पालन करना चाहिए।। २४४।।

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः।
ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु।। २४५।।

द्वयोर्ग्रामयोर्मर्यादां प्रति विप्रतिपत्तावुत्पन्नायां ज्येष्ठे मासि ग्रीष्मरवितापसंशुष्क तृणत्वात्प्रकटीभूतेषु सीमालिङ्गेषु राजा सीमां निश्चिनुयात्।। २४५।।

दो गाँवों अथवा समूहों का सीमा-विषयक विवाद उत्पन्न होने पर ज्येष्ठ माह में सीमा-सम्बन्धी चिह्नों के स्पष्टरूप से दिखायी देने के बाद ही राजा को सीमा का निर्णय करना चाहिए।। २४५।।

सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान्।
शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान्।। २४६।।

न्यग्रोधादीन्वृक्षान्क्षीरिण उदुम्बरादींश्चिरस्थायित्वात्सीमालिङ्गभूतान्कुर्वीत।। २४६।।

गुल्मान्वेणूंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च।
शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति।। २४७।।

गुल्मान्प्रकाण्डरहितान्वेणूंश्च प्रचुरकण्टकत्वाल्पकण्टकत्वादिभेदेन नानाप्रकारान्सीमावृक्षान्वल्लीर्लताः स्थानानि कृत्रिमोन्नतभूभागान् शरान् कुब्जकगुल्मांश्च प्रचुराल्पभोगत्वेनादरार्थं पृथङ्निर्दिष्टान्सीमालिङ्गभूतान्कुर्यात्। एवं कृते सीमा न नश्यति।। २४७।।

साथ ही सीमा का निश्चय करने के लिए राजा को, वट, पीपल, ढाक, सेमल, साल, ताड़ तथा अन्य क्षीरी वृक्षों जैसे गूलरादि वृक्षों एवं झाड़वाले पौधों और विविध प्रकार के वंशवृक्ष, सेम की बेल, अन्य भूमि पर फैलने वाली लताएँ, सरकंडे तथा मालती के पौधों के झाड़ों को लगवाना चाहिए, क्योंकि वैसा करने से सीमा नष्ट नहीं होती है।। २४६-२४७।।

तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च।
सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च।। २४८।।

तडागकूपदीर्घिकाजलनिर्गममार्गदेवगृहाणि सीमारूपेण ग्राद्वयसंधिस्थानेषु कर्तव्यानि। एतेषु सीमानिर्णयाय विख्याप्य कृतेषूदकाद्यर्थिजना अपि श्रुतिपरंपरया चिरकालेऽपि साक्षिणो भवन्ति।। २४८।।

तालाब, कुएँ, बावड़ी, नाले तथा मन्दिरादि दो गाँवों की सीमाओं को मिलाने वाले स्थानों पर बनवाने चाहियें।। २४८।।

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत्।
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम्।। २४९।।

सीमानिर्णये सर्वदास्मिंल्लोके मनुष्याणां विभ्रममज्ञानं दृष्ट्वाभिहितव्यतिरिक्तानि गूढानि वक्ष्यमाणानि सीमाचिह्नानि कारयेत्।। २४९।।

इस संसार में सीमा के सम्बन्ध में लोगों के बीच सदैव होने वाले विवाद को देखते हुए राजा को अन्य गुप्त सीमाविषयक चिह्नों को भी अंकित करवा देना चाहिए।। २४९।।

अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्म कपालिकाः।
करीषमिष्टकाङ्गारांश्छर्करा वालुकास्तथा।। २५०।।
यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत्।
तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत्।। २५१।।

प्रस्तरास्थिगोवालतुषभस्मकर्पटिकाशुष्कगोमयपक्वेष्टकाङ्गारपाषाणकर्परसिकता अन्यान्यप्येवंप्रकाराणि कालाञ्जनकार्पासास्थिप्रभृतीनि यानि चिरकालेनापि भूमिरात्मसान्न करोति तानि ग्रामयोः संधिषु सीमायां '' प्रक्षिप्य कुम्भेष्वेतानि सीमान्तेषु निधापयेत्'' इति बृहस्पतिवचनात्स्थूलपाषाणव्यतिरिक्तानि कुम्भेषु कृत्वा प्रच्छन्नानि भूमौ निखाय धारयेत्।। २५०।। २५१।।

जैसे–पत्थर, हड्डियाँ, गाय आदि पशुओं के बाल, चावलों के छिलके, राख, खोपड़ियाँ, सूखा गोबर, ईंटें, कोयले, कंकड़, रेत एवं जितने भी इस प्रकार के पदार्थ, जिन्हें लम्बे समय के बाद भी भूमि नष्ट न कर सके, सीमा के सन्धि–स्थलों पर उन सबको गुप्तरूप से जमीन में गड़वा देना चाहिए।। २५०–५१।।

एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः।
पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च।। २५२।।

विवदमानयोर्ग्रामयोः प्रागुक्तैरेतैरुक्तचिह्नै राजा सीमामुन्नयेत्। वसतोः पुनरविच्छिन्नया भुक्त्या सीमानिर्णयो नतु त्रिपुरुषादिकतया। तस्य ''आधिः सीमा'' इति पर्युदस्तत्वात्। ग्रामद्वयसंधिस्थनद्यादिप्रवाहेण च पारावारग्रामयोः सीमां निश्चिनुयात्।। २५२।।

परस्पर विवाद करने वाले दो लोगों के बीच सीमा का निर्धारण राजा को इन्हीं चिह्नों द्वारा पूर्व में उसका उपभोग करने के आधार पर तथा निरन्तर बहने वाले जल के आधार पर ही करना चाहिए।। २५२।।

यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने।
साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः।। २५३।।

यदि प्रच्छन्नप्रकाशलिङ्गदर्शनेऽपि प्रच्छन्नाङ्गारतुषादिकुम्भा अमी स्थानान्तरं नीत्वा निखाता नायं सीमातरुर्न्यग्रोधः स नष्ट इत्यादि समस्त एव यदि संदेहः स्यात्तदा साक्षिप्रमाण एव सीमाविवादनिश्चयो भवेत्।। २५३।।

यदि इन सीमा चिह्नों के देखने पर भी संशय की स्थिति ही बनी रहे तो सीमा विषयक विवाद के सम्बन्ध में साक्षियों को ही प्रमाणस्वरूप मानना चाहिए।। २५३।।

ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः।
प्रष्टव्या सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः।। २५४।।

ग्रामिकजनसमूहानां ग्रामद्वयस्थनियुक्तयोर्वादिप्रतिवादिनोश्च समक्षं सीमाविषये सीमालिङ्गसंदेहे लिङ्गानि साक्षिणः प्रष्टव्याः।। २५४।।

गाँव के कुलीन व्यक्तियों एवं विवाद करने वाले उन दोनों लोगों (वादी-प्रतिवादी) के सामने ही राजा को सीमा के स्थान पर साक्षियों से सीमा विषयक चिह्नों के बारे में पूछना चाहिए।। २५४।।

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम्।
निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः।। २५५।।

ते पृष्टाः साक्षिणः समस्ता न द्वैधेन सीमाविषयेण येन प्रकारेण निश्चयं ब्रूयुस्तेन प्रकारेणाविस्मरणार्थं पत्रे सीमां लिखेत्। तांश्च सर्वानेव साक्षिणो नामविभागतो लिखेत्।। २५५।।

राजा द्वारा पूछे गए वे सभी लोग सीमा निर्धारण के विषय में एकमत होकर जैसा भी कहें, राजा को उनकी बात मानकर सीमा का वैसा ही निर्धारण कर देना चाहिए। साथ ही उपस्थित हुए उन सभी का साक्षीरूप में नामोल्लेख भी कर लेना चाहिए।। २५५।।

शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः।
सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम्।। २५६।।

ते साक्षिण इति सामान्यश्रवणेऽपि ''रक्तस्रग्वाससः सीमां नयेयुः'' (अ० २ श्लो० १५२) इति याज्ञवल्क्यवचनाद्रक्तपुष्पमालाधारिणो लोहितवाससो मस्तके मृल्लोष्ठानि गृहीत्वा यदस्माकं सुकृतं तन्निष्फलं स्यादित्येवमात्मीयैः सुकृतैः शापिताः सन्तस्तां सीमां यथाशक्ति निर्णयेयुः।। २५६।।

सीमा सम्बन्धी विवाद के विषय में साक्षी प्रस्तुत करने वाले लोग शरीर पर लाल वस्त्र धारण करके, गले में फूलों की माला पहनकर, भूमि की मिट्टी को मस्तक पर लगाकर, सभी के सामने यह शपथ ग्रहण करें कि 'यदि वे असत्य भाषण कर रहे हों तो उनके सभी पुण्य नष्ट हो जावें।' इसप्रकार अपने-अपने पुण्यों के आधार पर शपथपूर्वक यथाशक्ति नीतिविवेक के साथ सीमा का निर्धारण करना चाहिए।। २५६।।

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः।
विपरीतं नयन्तस्तु दाप्या स्युर्द्विशतं दमम्।। २५७।।

ते सत्यप्रधाना साक्षिणः शास्त्रोक्तेन विधानेन निर्णयस्था निष्पापा भवन्ति। अतथ्येन तु निश्चिन्वन्तः प्रत्येकं पणशतद्वयं दण्डं दाप्या भवेयुः।। २५७।।

जैसा कहा गया उसप्रकार कहकर सीमा का निर्धारण कराने वाले, वे सत्यवादी साक्षी, वस्तुतः पुण्य के भागीदार होते हैं, किन्तु इसके विपरीत असत्य बोलकर सीमा का निर्धारण कराने वाले साक्षियों पर राजा को दो सौ पण का अर्थदण्ड निर्धारित करना चाहिए।। २५७।।

साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः।
सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसंनिधौ।। २५८।।

ग्रामद्वयसंबन्धिसीमाविवादसाक्ष्यभावे चतुर्दिशं समन्तभवाः सामन्तास्तद्वासिनश्चत्वारो ग्रामवासिनः साक्षिधर्मेण राजसमक्षं सीमानिर्णयं कुर्युः।। २५८।।

किन्तु यदि सीमा निर्धारण के सम्बन्ध में साक्षियों का अभाव हो तो समीपवर्ती चार गाँवों के निष्पक्ष सम्मानित लोग राजा के समक्ष उपस्थित होकर प्रयत्नपूर्वक सीमाविषयक निर्णय के सम्बन्ध में विशेषरूप से अपनी सम्मति प्रस्तुत करें।। २५८।।

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम्।
इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान्।। २५९।।

साक्षिधर्मेण राजसमक्षमनुभवेन निर्णयमकुर्वतां ग्रामवासिनां ग्रामनिर्माणकालादारभ्य मौलानां पुरुषक्रमेण तद्ग्रामस्थानां सीमासाक्षिणामभाव इमान्वक्ष्यमाणान्संनिहितवनचारिणः पृच्छेत्।। २५९।।

इन चार गाँवों के प्रतिष्ठित एवं निष्पक्ष सीमा विषयक साक्षियों के अभाव में राजा को उस गाँव के निकट वन में रहने वाले (वनेचर) लोगों की भी, सीमा-निर्णय सम्बन्धी इस कार्य के विषय में (साक्षी-सम्बन्धी) सहायता लेनी चाहिए।। २५९।।

व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान्।
व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः।। २६०।।

लुब्धकान्, पक्षिवधजीविनः, गोपालान्, मत्स्यजीविनो, मूलोत्पाटनजीविनः, सर्पग्राहिणः, शिलोञ्छवृत्तीनन्यांश्च फलपुष्पेन्धनाद्यर्थं वनव्यवहरिणः पृच्छेत्। एते हि स्वप्रयोजनार्थं तेन ग्रामेण सर्वदा वनं गच्छेयुस्तद्ग्रामसीमाभिज्ञाः संभवन्ति।। २६०।।

जिनमें पशु-शिकारी, पक्षीशिकारी, चरवाहे, मछुआरे, जड़ी-बूटियों एवं खनिजों को खोदकर आजीविका चलाने वाले, सपेरे तथा अन्नादि की बालियों को चुनकर जीवनयापन करने वाले और इसीप्रकार के अन्य वनवासी विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।। २६०।।

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम्।
तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः।। २६१।।

ते व्याधादयः पृष्टाः सीमारूपेषु ग्रामसंधिषु येन प्रकारेण चिह्नं ब्रूयुस्तत्तेनैव प्रकारेण राजा द्वयोर्ग्रामयोः सीमां व्यवस्थापयेत्।। २६१।।

पूछे जाने पर वे लोग सीमानिर्धारण के सम्बन्ध में जिन-जिन लक्षणों का कथन करें। राजा को उस-उस आधार पर उन-उन दो गाँवों के सीमा विवाद को न्यायोचित ढंग से निपटाना चाहिए।। २६१।।

क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च।
सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः।। २६२।।

एकग्रामेऽपि क्षेत्रकूपतडागोद्यानगृहाणां सीमासेतुविवादे समस्तदेशवा- सिसाक्षि-प्रमाणक एव मर्यादाचिह्ननिश्चयो विज्ञेयो न व्याधादिप्रमाणकः।। २६२।।

खेत, कुआँ, तालाब, उद्यान तथा मकान आदि के सीमा सम्बन्धी चिह्नों का निर्णय (राजा को) उस गाँव में निवास करने वाले प्रतिष्ठित साक्षियों के आधार पर ही विश्वासपूर्वक करना चाहिए।। २६२।।

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम्।
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम्।। २६३।।

सीमाचिह्ननिमित्तं विवदमानानां मनुष्याणां यदि सामन्ता देशवासिनो मिथ्या ब्रूयुस्तदा ते सर्वे प्रत्येकं राज्ञा मध्यमसाहसं दण्डनीयाः। एवं चासामन्तरूपाणां पूर्वोक्तद्विशतो दमो ज्ञेयः।। २६३।।

दो ग्रामवासियों में परस्पर परिसीमा सम्बन्धी विवाद के उपस्थित होने पर यदि गाँव के प्रतिष्ठित लोग भी झूठ बोलें तो राजा को असत्य सम्भाषण करने वाले उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग 'मध्यम साहस' (दो सौ पण) का दण्ड देना चाहिए।। २६३।।

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्विशतो दमः।। २६४।।

गृहतडागोद्यानक्षेत्राणामन्यतमं मारणबन्धनादिभयकथनपूर्वमाक्रम्य हरणे पञ्च पणशतानि दण्डनीयः स्यात्स्वत्वभ्रान्त्या हरतो द्विशतो दमः।। २६४।।

इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति भय दिखाकर, घर, तालाब, उद्यान अथवा किसी के खेत को हड़प ले तो राजा को उस पर पाँच सौ पण का दण्ड लगाना चाहिए और यदि कोई अज्ञानवश इन पर अधिकार कर ले तो भी वह दो सौ पण के अर्थदण्ड का भागी होता है।। २६४।।

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित्।
प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः।। २६५।।
(ध्वजिनी मत्सिनी चैव निधानी भयवर्जिता।
राजशासननीता च सीमा पञ्चविधा स्मृताः।। १९।।)

लिङ्गसाक्ष्याद्यभावे सीमायां परिच्छेत्तुमशक्यायां राजैव धर्मज्ञः पक्षपातरहितो ग्रामद्वयमध्यवर्तिनीं विवादविषयां भूमिं येषामेव ग्रामवासिनामुपकारातिशयो भवति तद्व्यतिरेकेण च महाननिर्वाहस्तेषामेव दद्यादिति शास्त्रव्यवस्था।। २६५।।

सीमाचिह्नों एवं साक्षियों आदि के अभाव में न्याय को जानने वाला राजा निष्पक्ष होकर स्वयं ही परस्पर विवाद करने वाले (वादी एवं प्रतिवादी) के हितों को ध्यान में रखते हुए भूमिसीमा का निर्धारण कर दे, ऐसी न्यायशास्त्र की व्यवस्था है।। २६५।।

(सीमाएं पाँच प्रकार की कही गई हैं-ध्वजिनी, मत्सिनी, निधानी, भयरहित एवं राज्यशासन द्वारा निर्धारित।। १९।।)

एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम्।। २६६।।

एष सीमानिश्चयो धर्मो निःशेषेणोक्तः, अत ऊर्ध्वं वाक्पारुष्यं वक्ष्यामि। दण्ड पारुष्याद्वाक्पारुष्यप्रवृत्तेः पूर्वमभिधानम्। अनुक्रमश्रुत्यां तु " पारुष्ये दण्डवाचिके" (अ० ८ श्लो० ६) इति दण्डशब्दस्याल्पस्वरत्वात्पूर्वनिर्देशः।। २६६।।

इसप्रकार यह सीमा के निर्णय के सम्बन्ध में न्यायविधान का पूर्णरूप से कथन किया गया। इसके पश्चात् अब मैं वाणी की कठोरता (अपशब्दादि उच्चारण) के विषय में नीतिगत निर्णयों का विस्तारपूर्वक कथन करूँगा।। २६६।।

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति।
वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति।। २६७।।

द्विजस्य चौरेत्याक्षेपरूपं परुषमुक्त्वा क्षत्रियः पणशतं दण्डमर्हति। एवं सार्धशतं द्वे वा शते लाघवगौरवापेक्षया वैश्यः। शूद्रोऽप्येवं ब्राह्मणाक्रोशे ताडनादिरूपं वधमर्हति।। २६७।।

क्रोधित होकर यदि क्षत्रिय, ब्राह्मण को अपशब्द कहता है तो वह सौ पण, वैश्य दो सौ पचास पण दण्ड देने योग्य है, जबकि शूद्र द्वारा ऐसा किए जाने पर तो वह वध के ही योग्य होता है।। २६७।।

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने।
वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः।। २६८।।

ब्राह्मणः क्षत्रियस्योक्तरूपाक्षेपे कृते पञ्चाशत्पणान्दण्ड्यः। वैश्ये शूद्रे च यथोक्ताक्रोशे कृते पञ्चविंशतिर्द्वादशः पणाः क्रमेण ब्राह्मणस्य दण्डः स्यात्।। २६८।।

इसीप्रकार यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय के प्रति ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करे तो उसे पचास पण तथा वैश्य एवं शूद्र के प्रति करने पर क्रमशः पच्चीस और बारह पणों का अर्थ-दण्ड देना चाहिए।। २६८।।

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत्।। २६९।।
(विप्रक्षत्रियवत्कार्यो दण्डो राजन्यवैश्ययोः।
वैश्यक्षत्रिययोः शूद्रे विप्रे यः क्षत्रशूद्रयोः।। २०।।
समुत्कर्षापकर्षास्तु विप्रदण्डस्य कल्पनाः।
राजन्यवैश्यशूद्राणां धनवर्जमिति स्थितिः।। २१।।)

द्विजातीनां समानजातिविषये यथोक्ताक्रोशे कृते द्वादशपणो दण्डः। अवचनीयेषु पुनराक्रोशवादेषु मातृभगिन्याद्यश्लीलरूपेषु तदेवेति नपुंसकनिर्देशात् ''शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य'' (अ० ८ श्लो० २६७) इत्यादि यदुक्तं तदेव द्विगुणं दण्डरूपं भवेत्।। २६९।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियों में समान वर्ण वाला यदि समानवर्ण वाले व्यक्ति के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करता है तो वह बारह पणों का तथा अत्यन्त अश्लील शब्दों का प्रयोग करने पर उसका दुगना (अर्थात् चौबीस) पणों के अर्थदण्ड का अधिकारी होता है।। २६९।।

(ब्राह्मण और क्षत्रिय के समान ही क्षत्रिय और वैश्य इन दोनों के विषय में दण्ड का निर्धारण करना चाहिए। वैश्य, क्षत्रिय इन दोनों में, शूद्र में तथा ब्राह्मण में जो क्षत्रिय एवं शूद्र इन दोनों का सामाजिक उत्कर्ष अथवा अपकर्ष है। उस सब पर विचार करके ही दण्ड की कल्पना करनी चाहिए। इसीप्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन सबमें ब्राह्मण आर्थिकदृष्टि से कमजोर होता है, यही सोचकर उसके दण्ड का निर्धारण करना उचित है, यही शास्त्रीय व्यवस्था है।। २०-२१।।)

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन्।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः।। २७०।।

शूद्रो द्विजातीन्पातकाभियोगिन्या वाचाक्रुश्य जिह्वाच्छेदं लभेत। यस्मादसौ पादाख्यान्निकृष्टाङ्गाज्जातः।। २७०।।

शूद्र जाति का व्यक्ति यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातीय व्यक्तियों के प्रति अत्यन्त कठोर एवं अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करे तो उसकी जिह्वा काट लेनी चाहिए, क्योंकि उसकी उत्पत्ति ही पैर नामक निम्नस्थान से हुई है।। २७०।।

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः।। २७१।।

अभिद्रोह आक्रोशः। ब्राह्मणादीनां रे त्वं यज्ञदत्त ब्राह्मणापसद इत्याक्रोशेन नामजात्यादिग्रहणं कुर्वतो लोहकीलोऽग्निना प्रदीप्तो दशाङ्गुलो मुखेषु क्षेप्तव्यः।। २७१।।

इसके अतिरिक्त यदि शूद्र अपनी शक्ति आदि के अहङ्कार में द्विजातियों–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, के प्रति नाम, जाति आदि का ग्रहण करते हुए अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करता है तो अग्नि से लाल की हुई दस अङ्गुल प्रमाण वाली लोहे की छड़ इसके मुख में डाल देनी चाहिए।। २७१।।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः।। २७२।।

कथंचिद्धर्मलेशमवगम्यायं ते धर्मोऽनुष्ठेय इति ब्राह्मणस्याहंकारादुपदि- शतोऽस्य शूद्रस्य मुखे कर्णयोश्च ज्वलत्तैलं राजा प्रक्षेपयेत्।। २७२।।

यदि शूद्र अपने ज्ञान-विज्ञानादि के अहङ्कार के कारण ब्राह्मणों को धर्म उपदेश करे तो राजा को इसके मुख एवं कानों में खोलता हुआ तेल डलवा देना चाहिए ।। २७२।।

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च।
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम्।। २७३।।

समानजातिविषयमिदं दण्डलाघवान्न तु शूद्रस्य द्विजात्याक्षेपविषयम्। न त्वयैतच्छ्रुतं, न भवान् तद्देशजातो, न तवेयं जातिर्न तव शरीरसंस्कारमुपनयनादिकर्म कृतमित्यहंकारेण मिथ्या ब्रुवन्द्विशतं दण्डं दाप्यः स्यात्। वितथेनेति तृतीयाविधाने "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" इति तृतीया।। २७३।।

यदि कोई व्यक्ति अहङ्कारवश अन्य व्यक्ति की विद्या, देश, जाति एवं शरीर-सम्बन्धी कार्यों के सम्बन्ध में झूठी निन्दा करे, तो उसे दो सौ पण का दण्ड देना चाहिए।। २७३।।

काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम्।
तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम्।। २७४।।

एकाक्षिविकलं पादविकलमन्यमपि वा तथाविधं हस्ताद्यङ्गविकलं सत्येनापि काणादिशब्देन ब्रुवन्नत्यन्ताल्पं तदा कार्षापणं दण्डं दाप्यः।। २७४।।

इसीप्रकार किसी काने, लंगड़े अथवा इसीप्रकार के अन्य विकलांग को, वस्तुतः वैसा होते हुए भी यदि कोई काना, लंगड़ा आदि कहे तो उसे कम से कम एक कार्षापण का दण्ड देना चाहिए।। २७४।।

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम्।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः।। २७५।।

"आक्षारितः क्षारितोऽभिशप्तः" (अमरकोषे विशेष्यनिघ्ने श्लो० ४३) इत्याभिधानिकाः। मात्रादीन्पातकादिनाभिशपन्, गुरोश्च पन्थानमत्यजन्दण्ड्यः। भार्यादीनां गुरुलघुपापाभिशापेन दण्डसाम्यं समाधेयम्। मेधातिथिस्तु आक्षारणं भेदनमित्युक्त्वा मातृपुत्रपित्रादीनां परस्परभेदनकर्तुरयं दण्डविधिरिति व्याख्या- तवान्।। २७५।।

माता, पिता, पत्नी, भाई, पुत्र और गुरु आदि पर व्यभिचारादि का दोष लगाकर निन्दित करने पर तथा गुरु को मार्ग न देने पर सौ पण का दण्ड देना चाहिए।। २७५।।

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः।। २७६।।

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां परस्परं पतनीयाक्रोशे कृते दण्डशास्त्रज्ञेन राजा दण्डः कार्यः। दण्डमेव विशेषेणाह— ब्राह्मण इति। ब्राह्मणे क्षत्रियाक्रोशिनि प्रथमसाहसः कार्यः। ब्राह्मणाक्रोशिनि पुनः क्षत्रिये मध्यमसाहसः।। २७६।।

ब्राह्मण और क्षत्रिय द्वारा परस्पर अशिष्ट आचरण करने पर दण्डशास्त्र के विशेषज्ञ राजा को ब्राह्मण पर अपेक्षाकृत कम और क्षत्रिय पर मध्यम अर्थदण्ड लगाना चाहिए।। २७६।।

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः।
छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः।। २७७।।
(पतितं पतितेत्युक्त्वा चौरं चौरेति वा पुनः।
वचनात्तुल्यदोषः स्यान्मिथ्या द्विर्दोषतां व्रजेत्।। २२।।)

वैश्यशूद्रयोरन्योन्यजातिं प्रति पतनीयाक्रोशे ब्राह्मणक्षत्रियवद्वैश्ये शूद्राक्रोशिनि प्रथमसाहसः। शूद्रे वैश्याक्रोशिनि मध्यमसाहस इत्येवं रूपं दण्डस्य प्रणयनं जिह्वाच्छेदरहितं यथावत्कर्तव्यमिति शास्त्रनिश्चयः। एवंच ''एकजातिर्द्विजातींस्तु'' (अ० ८ श्लो. २७०) इति प्रागुक्तजिह्वाच्छेदो वैश्ये निवारितो ब्राह्मणक्षत्रियाक्रोशविषय एवावतिष्ठते।। २७७।।

इसीप्रकार वैश्य और शूद्र इन दोनों का आपस में विवाद होने एवं एक दूसरे की जाति के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने पर जिह्वा कर्तनादि का परित्याग करते हुए, वैश्य में प्रथम साहस (अपेक्षाकृत कम दण्ड) तथा शूद्र को मध्यम साहस (अर्थ दण्ड) का विधान करना चाहिए, ऐसा शास्त्रों का विधान है।। २७७।।

(पतित को 'पतित' इसप्रकार या फिर चोर को 'चोर' ऐसा कहकर यदि कोई अपमानित करे तो ऐसा कहने पर भी समान दोष माना गया है। इसके अतिरिक्त झूठ बोलने पर व्यक्ति दुगना दोषी होता है।। २२।।)

एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम्।। २७८।।

एषोऽनन्तरोक्तो वाक्पारुष्यस्य यथावद्दण्डविधिरुक्तः, अनन्तरं ताडनोदेर्दण्डपारुष्यस्य निर्णयं वक्ष्यामि।। २७८।।

यह वाणी की कठोरता के सम्बन्ध में दण्डविधान का ठीक-ठीक प्रकार से मैंने

आपसे कथन किया। इसके पश्चात् अब मैं डण्डे से निर्ममतापूर्वक मारपीट विषयक विधिविधान को विस्तार से कहूँगा।। २७८।।

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्।। २७९।।

अन्त्यजः शूद्रो येन केनचित्करचरणादिनाङ्गेन साक्षाद्दण्डादिनाऽव्यवहितेन द्विजातिं प्रहरेत्तदेवाङ्गमस्य छेत्तव्यमित्ययं मनोरुपदेशः। मनुग्रहणमादरार्थम्।। २७९।।

शूद्र जिस किसी भी अङ्ग से प्रत्यक्षरूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पर डण्डे आदि द्वारा यदि प्रहार करे तो इसका वह-वह अङ्ग कटवा देना चाहिए, यह मनु की व्यवस्था है।। २७९।।

अस्यैवोत्तरत्र प्रपञ्चः —

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति।। २८०।।

प्रहर्तुं पाणिं दण्डं वोद्यम्य पाणिच्छेदं लभते। पादेन कोपात्प्रहरणे पादच्छेदं प्राप्नोति।। २८०।।

यदि शूद्र द्विजातियों पर हाथ अथवा डण्डे को उठाकर प्रहार करता है तो वह हाथ काटने योग्य है। इसीप्रकार यदि वह क्रोधित होकर पैर से मारता है तो उसका पैर कटवा देना चाहिए।। २८०।।

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।
कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत्।। २८१।।

ब्राह्मणेन सहासनोपविष्टः शूद्रः कट्यां तप्तलोहकृतचिह्नोऽपदेशो निर्वासनीयः। स्फिचं वास्य यथा न म्रियते तथा छेदयेत्।। २८१।।

यदि शूद्र, ब्राह्मणादि श्रेष्ठ वर्ण के साथ आसन पर बैठने का दुःसाहस करे तो, राजा को इसके कटि प्रदेश को गर्म लोहे से चिह्नित करके, इसे देश से निकाल देना चाहिए अथवा उसके नितम्बप्रदेश को इसप्रकार कटवाए कि वह मरे नहीं।। २८१।।

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः।
अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम्।। २८२।।

दर्पेण श्लेष्मणा ब्राह्मणानपमानयतः शूद्रस्य राजा द्वावोष्ठौ छेदयेत्। मूत्रप्रक्षेपेणापमानयतो मेढ्रम्। शर्धनं कुत्सितो गुदशब्दस्तेनावमानयतो दर्पान्न प्रमादाद्गुदं छेदयेत् ।।२८२।।

यदि शूद्र अहङ्कारवश ब्राह्मादि उच्च वर्ण पर थूक देता है तो राजा को इसके दोनों ओष्ठ, मूत्र फेंकने पर उसकी जननेन्द्रिय तथा अपानवायु छोड़ने पर उसकी गुदा को ही कटवा देना चाहिए।। २८२।।

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन्।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च।। २८३।।

दर्पादित्यनुवर्तते। अहंकारेण केशेषु ब्राह्मणं गृह्णतः शूद्रस्य पीडास्य जाता न जाता वेत्यविचारयन्हस्तौ छेदयेत्। पादयोः स्मश्रुणि व ग्रीवायां वृषणे च हिंसार्थं गृह्णतो हस्तद्वयच्छेदमेव कुर्यात्।। २८३।।

इसीप्रकार अपमानित करने की दृष्टि से यदि शूद्र उच्चवर्ण के व्यक्ति ब्राह्मणादि के केश, पैर, दाढ़ी, गला या अण्डकोषों को पकड़ लेता है तो राजा को इस विषय में बिना कुछ सोच विचार करते हुए, उसके दोनों हाथ कटवा देने चाहिएँ[1] ।। २८३।।

त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः।
मांसभेत्ता तु षण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः।। २८४।।

चर्ममात्रभेदकृत्समानजातिर्न शूद्रो ब्राह्मणस्य दण्डलाघवं पणशतं दण्डनीयः। तथा रक्तोत्पादकोऽपि पणशतमेव दण्ड्यः। मांसभेदी षण्निष्कान्दाप्यः। अस्थिभेदकस्तु देशान्निर्वास्यः।। २८४।।

इसके अतिरिक्त यदि शूद्र, द्विजाति के व्यक्ति की खाल उखाड़ देता है तथा उस स्थान से रक्त निकलने लगता है तो इसके लिए उसे सौ पण का, जबकि मांस भेदन पर छः निष्क का दण्ड देना चाहिए, किन्तु हड्डी तोड़ने पर तो उसे देश से ही निकाल देना चाहिए।। २८४।।

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा।
तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा।। २८५।।

वृक्षाद्युद्भिदां सर्वेषां येन येन प्रकारेण उपभोगः फलपुष्पयत्रादिना उत्तममध्यमरूपो भवति तथातथा हिंसायामप्युत्तमसाहसादिर्दण्डो विधेय इति निश्चयः। तथा च विष्णुः— फलोपभोगद्रुमच्छेदी तूत्तमं साहसं, पुष्पोपभोगद्रुमच्छेदी मध्यमं, वल्लीगुल्म-लताच्छेदी कार्षापणशतं, तृणच्छेद्येकं कार्षापणं च पण एव मनुनाप्युक्तो वेदितव्यः ।।२८५।।

वृक्षादि सभी वनस्पतियों का फल, पुष्प, पत्ते आदि जिस-जिस प्रकार से

---

१. विशेष—वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह दण्ड व्यवस्था वस्तुतः अव्यावहारिक है, अतः त्याज्य है।

उपभोग करते हुए हिंसा की जाए अपराधी को उस-उस प्रकार से उत्तम, मध्यम और अधम दण्ड देना चाहिए, ऐसी मान्यता है।। २८५।।

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति।
यथायथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा।। २८६।।

मनुष्याणां पशूनां पीडोत्पादनार्थं प्रहारे कृते सति यथा यथा पीडाधिक्यं तथा तथा दण्डमप्यधिकं कुर्यात्। एवं च मर्मस्थानादौ त्वग्भेदनादिषु कृतेषु ''त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यः'' (अ० ८ श्लो० १८४) इत्युंक्तादप्यधिको दण्डो दुःखविशेषापेक्षया कर्तव्यः।। २८६।।

मनुष्य एवं पशुओं को दुःख देने के लिए दण्डादि से प्रहार करने पर, जितना-जितना अधिक कष्ट हो, उसी के अनुसार अधिक अथवा कम दण्ड का निर्धारण करना चाहिए।। २८६।।

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा।
समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा।। २८७।।

अङ्गानां करचरणादीनां व्रणशोणितयोश्च पीडनायां सत्यां समुत्थानव्ययं यावता कालेन पूर्वावस्थाप्राप्तिः समुत्थानसंबन्धो भवति तावत्कालेन पथ्यौषधादिना यावान्व्ययो भवति तमसौ दापनीयः। अथ तं व्ययं पीडोत्पादको न दातुमिच्छति, तदा यः समुत्थानव्ययो यश्च दण्डस्तमेनं दण्डत्वेन राज्ञा दाप्यः।। २८७।।

किसी अङ्ग के टूटने, कटने, घायल करने एवं रक्त बहाने पर रोगी के ठीक होने पर्यन्त होने वाले सम्पूर्ण पथ्योपचार औषधि व्यय को, मारने वाले से दिलवाना चाहिए अथवा फिर इसके लिए उसे सम्पूर्ण दण्ड भी दिया जा सकता है।। २८७।।

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम्।। २८८।।

द्रव्याण्यनुक्तविशेषदण्डानि कटकानि ताम्रघटादीनि यो यस्य ज्ञानादज्ञानाद्वा नाशयेत्स तस्य द्रव्यान्तरादिना तुष्टिमुत्पादयेत्, राज्ञश्च विनाशितद्रव्यसमं दण्डं दद्यात्।। २८८।।

यदि कोई व्यक्ति जाने-अनजाने जिस किसी व्यक्ति की वस्तुओं को नष्ट कर देता है तो वह अपराधी उस वस्तु के स्वामी को वह वस्तु या उसकी लागत का धन देकर संतुष्ट करे, साथ ही राजा को भी दण्डरूप में उसके बराबर धन प्रदान करे।। २८८।।

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च।
मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च।। २८९।।

चर्मणि चर्मघटितवरत्रादौ चर्मकाष्ठमृत्तिकानिर्मितेषु च भाण्डेषु पुष्पमूलफलेषु परस्य नाशितेषु मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डो राज्ञो देयः। स्वामिनश्च तुष्टिरुत्पादनीयैव ।। २८९।।

चर्म, चर्म द्वारा निर्मित पात्र, काष्ठ एवं मिट्टी के बने हुए बर्तन तथा पुष्प, जड़ और फलों आदि को यदि व्यक्ति हानि पहुँचाता है, तो उसे वस्तु के मूल्य से पाँच गुना दण्ड देना चाहिए।। २८९।।

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च।
दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते।। २९०।।

यानस्य रथादेर्यातुः सारथ्यादेर्यानस्वामिनश्च यस्य तद्यानं तेषां छिन्नास्यादीनि दश निमित्तानि दण्डमतिक्रम्य वर्तन्ते। एषु निमित्तेषु सत्सु प्राणिमारणे द्रव्यनाशे च प्रकृते यानस्वामिनां दण्डा न भवतीति मन्वादय आहुः। एतद्व्यतिरिक्तनिमित्ते च पुनर्दण्डोऽनुष्ठीयते।। २९०।।

वाहन को चलाने वाला एवं वाहन का स्वामी केवल दस स्थितियों में ही अपराधी नहीं कहा गया है, जबकि शेष परिस्थितियों में उनके लिए दण्ड का विधान किया गया है।। २९०।।

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते।
अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च।। २९१।।
छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च।
आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत्।। २९२।।

नासायां भवं नास्यम्। शरीरावयवत्वाद्यत्। सा चेह बलीवर्दानासासंबन्धिनी रज्जुः। छिन्ननास्यरज्जौ बलीवर्दादिके, भग्नयुगाख्ये काष्ठे, रथादौ भूमिवैषम्यादिना तिरश्चीनं वा गते, तथा चक्रान्तः प्रविष्टाक्षकाष्ठभङ्गे यन्त्राणां चर्मबन्धनानां छेदने, योक्त्रस्य पशुग्रीवारज्ज्वाः, रश्मेः प्रहरणस्य च छेदने, अपसरापसरेत्युच्चैःशब्दे सारथ्यादिना कृते च यानेन प्राणिहिंसाद्रव्यविनाशयोः कृतयोः सारथ्यादेर्दण्डो नास्तीति मनुराह।। २९१।। २९२।।

वाहन चलाते समय पशु की नाक में स्थित नाथ के टूटने पर, जुआ टूटने पर, उबड़-खाबड़ मार्ग में वाहन के तिरछा हो जाने पर, पहिये की धुरी टूटने पर तथा

उसीप्रकार पहिये के टूट जाने पर। इसीप्रकार वाहन के अन्य यन्त्रों के टूटने पर, पशुओं के गर्दन की रस्सी टूटने पर, लगाम टूटने पर तथा पशु के अचानक घबरा जाने पर 'दूर हटो' इसप्रकार उच्च स्वर से कहते हुए चालक द्वारा सावधान किए जाने पर, मनु ने चालक या वाहन के स्वामी पर दण्ड का विधान नहीं किया है।। २९१-२९२।।

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम्।। २९३।।

यत्र सारथेरकौशलाद्यानमन्यथा व्रजति तत्र हिंसायामशिक्षितसारथ्यनियोगस्वामी द्विशतं दण्डं दाप्यः स्यात्।। २९३।।

किन्तु यदि चालक की अकुशलता के कारण वाहन अनियन्त्रित हो जाता है तो लोगों की हानि होने पर, अशिक्षित चालक को रखने के कारण उसका स्वामी दो सौ पण के दण्ड का भागीदार होता है।। २९३।।

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम्।। २९४।।

यदि सारथिः कुशलः स्यात्तदा सारथिरेवोक्तद्विशतं दमं वक्ष्यमाणं च "मनुष्यमारणे" (अ० ८ श्लो० २९६) इत्यादिकं दण्डमर्हति न स्वामी। अकुशले तु तस्मिन्सारथिस्वामिव्यतिरिक्ता अन्येऽपि यानारूढा अकुशलसारथिकयानारोहणात्सर्वे प्रत्येकं शतं शतं दण्ड्याः।। २९४।।

यदि चालक वस्तुतः कुशल है तो वही दण्ड का भागी होगा, स्वामी नहीं, किन्तु यदि यात्री भी चालक की अकुशलता को जानते हुए वाहन में बैठते हैं तो हानि होने पर सभी सौ-सौ पणों के दण्ड के योग्य होते हैं।। २९४।।

स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा।
प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः।। २९५।।

स चेत्प्राजकः संमुखागतैः प्रचुरगवादिभी रथान्तरेण वा संरुद्धः स्वरथगमनानवधानात्प्रत्यक्सर्पणाक्षमः संकटेऽपि स्वरथतुरगान्प्रेरयन्, तुरगै रथेन वा रथावयवैर्वा प्राणिनो व्यापादयति तत्राविचारितो दण्डः कर्तव्य एव।। २९५।।

किन्तु यदि वह कुशल चालक मार्ग के अवरुद्ध होने पर भी अपने रथ को अथवा पशुओं को प्रेरित करता है तो रथ, घोड़े या उसके किसी अङ्ग द्वारा प्राणी के मरने पर, बिना सोच-विचार के अविलम्ब उसको दण्डित करना चाहिए।। २९५।।

सकृदपराधे कीदृश इत्याह—

मनुष्यमारणे क्षिप्तं चौरवत्किल्विषं भवेत्।
प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु।। २९६।।

तत्र मनुष्यमारणे प्राजकस्यानवधानाद्यानेन कृतं शीघ्रमेव चौरदण्डोत्तमसाहसं भवेन्न तु मारणरूपः। ''प्राणभृत्सु महत्स्वर्धम्'' इति श्रवणात्। गोगजादिषु महत्सु प्राणिषु मारितेषु उत्तमसाहसस्यार्धं पञ्चशतपणो दण्डो भवेत्।। २९६।।

असावधानीपूर्वक वाहन चलाने से व्यक्ति के मरने पर चालक शीघ्र ही चोर के समान पाप का भागी हो जाता है। अत: उसे उत्तम दण्ड (एक हजार पण) देना चाहिए तथा गाय, हाथी, ऊंट, घोड़े आदि के मरने पर उसका आधा अर्थात् पाँच सौ पणों का दण्ड देना चाहिए।। २९६।।

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः।
पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु।। २९७।।

क्षुद्रकाणां पशूनां जातितो विशेषापदिष्टेतरेषां वनचरादीनां वयसा च किशोरादीनां मारणे द्विशतो दण्डः स्यात्। शुभेषु मृगेषु रुरुपृषतादिषु पक्षिषु च शुकहंससारसादिषु पक्षिषु हतेषु पञ्चाशद्दण्डो भवेत्।। २९७।।

क्षुद्र पशु कुत्ता, बिल्ली आदि के वाहन द्वारा मारे जाने पर चालक को दो सौ पणों का तथा मांगलिक पशु-पक्षी (शुक, हंस, रुरु मृगादि) के मरने पर पचास पणों का दण्ड देना चाहिए।। २९७।।

गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः।
माषिकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने।। २९८।।

गर्दभच्छागैडकादीनां पुनर्मारणे पञ्चरूप्यमाषकपरिमाणो दण्डः स्यात्। न चात्र हैरण्यमाषग्रहणं, उत्तरोत्तरलघुदण्डाभिधानात्। श्वसूकरमारणेषु पुना रौप्यमाषपरिमाणो दण्डः स्यात्।। २९८।।

इसीप्रकार गधा, बकरी, भेड़ादि के मरने पर पाँच माषक परिमाण वाला दण्ड देना चाहिए, जबकि कुत्ते, सुअरादि के मरने पर एक माषक का दण्ड दिया जाएगा।। २९८।।

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्जवा वेणुदलेन वा।। २९९।।

भार्यापुत्रादयः कृतापराधा रज्जवा वातिलघुवेणुशलाकया ताड्या भवेयुः। शिक्षार्थं ताडनविधानादत्र दण्डापवादः।। २९९।।

पत्नी, पुत्र, नौकर, दास तथा सगे छोटे भाइयों के अपराधी होने पर इन्हें रस्सी अथवा बेंत की छड़ी से प्रताड़ित किया जाना चाहिए।। २९९।।

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथंचन।
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम्।। ३००।।

रज्ज्वादिभिरपि देहस्य पृष्ठेदेशे ताडनीयाः नतु शिरसि। उक्तव्यतिरेकेण प्रहरणे वाग्दण्डधनदण्डरूपं चौरदण्डं प्राप्नुयात्।। ३००।।

रज्जु आदि के द्वारा भी उन्हें केवलपीठ पर ही मारना चाहिए, किन्तु कभी भी उन्हें सिर पर नहीं मारना चाहिए। फिर भी यदि कोई इनके सिर पर प्रहार करता है, तो वह चोर के समान दण्ड का भागीदार होता है।। ३००।।

एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः।
स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये।। ३०१।।

एष दण्डपारुष्यनिर्णयो निःशेषेणोक्तः। अत ऊर्ध्वं चौरदण्डविनिर्णये विधानं वक्ष्यामि।। ३०१।।

इसप्रकार मैंने यह डण्डे से निर्दयतापूर्वक मारने के विषय में सम्पूर्ण दण्डविधान का कथन किया। तत्पश्चात् अब मैं चोर के दण्ड-विषयक विधान की व्यवस्था को विस्तारपूर्वक कहूँगा।। ३०१।।

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः।
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते।। ३०२।।

चौराणां नियमने राजा परममुत्कृष्टं यत्नं कुर्यात्। यस्माच्चौरनिग्रहाद्राज्ञः ख्यातिर्निरुपद्रवतया राष्ट्रं च वृद्धिमेति।। ३०२।।

चोरों को नियन्त्रित करने में राजा को विशेष प्रयत्नशील होना चाहिए, क्योंकि चोरों पर नियन्त्रण से इस राजा के यश एवं राष्ट्र की वृद्धि होती है।। ३०२।।

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः।
सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम्।। ३०३।।

हिरवधारणे। चौराणां नियमनेन यो नृपतिः साधूनामभयं ददाति स एव पूज्यः पूर्वेषां श्लाघ्यो भवति। सत्रं गवायनादिक्रतुविशेषः यद्यस्मात्सत्रमिव सत्रं तदभयदानाच्चौरनिग्रहरूपाभयदक्षिणं सर्वदैव तस्य वृद्धिमेति। अन्यद्धि नियतकालीनं नियतदक्षिणं च, एतत्सर्वकालीनमभयदक्षिणं चेति वाक्यं व्यतिरेकालंकारः।। ३०३।।

वस्तुतः जो राजा प्रजाओं को अभय प्रदान करने वाला होता है, वह हमेशा

पूजनीय होता है। अभय की दक्षिणा वाला यज्ञरूपी उसका राज्य हमेशा वृद्धि को प्राप्त होता रहता है।। ३०३।।

सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः।
अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः।। ३०४।।

प्रजा रक्षतो राज्ञः सर्वस्य भृतिदातुर्वणिगादेर्भृत्यदातुश्च श्रोत्रियादेः सकाशाद्धर्म-षड्भागो भवति। अरक्षतश्चाधर्मादपि लोकेन कृतात्षड्भागः स्यात्। तस्माद्यत्नतः स्तेननिग्रहेण राजा रक्षणं कुर्यात्। नच भृतिक्रीतत्वाद्राज्ञो धर्मषड्भागो न युक्त इति वाच्यम्। भृत्या धर्मषड्भागेन च परिक्रीतत्वस्य शास्त्रीयत्वात्।। ३०४।।

प्रजा की सबप्रकार से रक्षा करने वाला राजा उनके पुण्यों के छठे भाग का अधिकारी होता है, जबकि उनकी रक्षा न करता हुआ वही, इनके पापों के छठे भाग को प्राप्त भी करता है।। ३०४।।

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति।
तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात्।। ३०५।।

यः कश्चिज्जपयागदानदेवतार्चादीनि करोति तस्य राजा पालनेन षड्भागं प्राप्नोति।। ३०५।।

प्रजा की भलीप्रकार रक्षा करता हुआ राजा, उनके द्वारा जो अध्ययन किया जाता है, जो यजन किया जाता है, जो दान होता है तथा जो पूजन होता है, उससे प्राप्त होने वाले पुण्य के छठे भाग का अधिकारी हो जाता है।। ३०५।।

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन्।
यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः।। ३०६।।

भूतानि सर्वाणि स्थावरजङ्गमादीनि यथाशास्त्रं दण्डप्रणयनरूपेण धर्मेण रक्षन्, वध्यांश्च स्तेनादींस्ताडयन्, प्रत्यहं लक्षगोदक्षिणैर्यज्ञैर्यजते। तज्जन्यं पुण्यं प्राप्नोतीति भावः।। ३०६।।

प्रजा की न्यायपूर्वक रक्षा करता हुआ, वध के योग्य लोगों को विनष्ट करता हुआ राजा, मानो प्रतिदिन सैकड़ों-हजारों दक्षिणाओं से युक्त यज्ञों का यजन करता है।। ३०६।।

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः।
प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत्।। ३०७।।

यो राजा रक्षामकुर्वन् बलिं, धान्यादेः षड्भागं, ग्रामवासिभ्यः प्रतिमासं वा

भाद्रपौषनियमेन ग्राह्यं शुल्कं स्थलजलपथादिना वणिज्याकारितेभ्यो नियतस्थानेषु द्रव्यानुसारेण ग्राह्यं दानमिति प्रसिद्धं, प्रतिभागं फलकुसुमशाकतृणाद्युपायनं, प्रतिदिनग्राह्यं दण्डं व्यवहारादौ गृह्णाति स मृतः सन्सद्य एव नरकं याति।। ३०७।।

प्रजा की रक्षा न करता हुआ जो राजा उनसे अन्नादि का छठा भाग, टैक्स, शुल्क, चुंगी, जुर्माना[1] आदि प्राप्त करता है, वह शीघ्र ही (मृत्यु को प्राप्त होकर) नरक को जाता है।। ३०७।।

अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम्।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम्।। ३०८।।

यो राजा न रक्षत्यथ च धान्यादिषड्भागं बलिरूपं गृह्णाति, तं सर्वलोकानां सकलपापहारिणं मन्वादय आहुः।। ३०८।।

प्रजाओं की रक्षा न करने वाले, किन्तु प्रजा से बलिरूप में छठा भाग वसूल करने वाले राजा को (शास्त्रों में) सम्पूर्ण प्रजा की सभी बुराइयों (पापों) को ग्रहण करने वाला कहा गया है।। ३०८।।

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम्।
अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम्।। ३०९।।

लङ्घितशास्त्रमर्यादं परलोकाभावशालिनमनुचितदण्डादिना धनग्राहिणं रक्षणरहितं करबल्यादेर्भक्षितारं राजानं नरकगामिनं जानीयात्।। ३०९।।

शास्त्रोक्त मर्यादा का परित्याग करने वाले, ईश्वर में विश्वास न करने वाले, अनुचित दण्डादि से लोभवश धन ऐंठने वाले, प्रजाओं की रक्षा न करने वाले तथा प्रजा से प्राप्त हुए धन को स्वयं खा जाने वाले राजा को अधोगामी समझना चाहिए।। ३०९।।

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः।
निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च।। ३१०।।

अधार्मिकं चौरादिकमपराधापेक्षया त्रिभिरुपायैः प्रयत्नेन नियमयेत्। तानाह— कारागारप्रवेशनेन, निगडादिबन्धनेन, करचरणच्छेदनादिनानाप्रकारहिंसनेन।। ३१०।।

इसलिए राजा को, चोर आदि अधार्मिक प्रवृत्ति के लोगों को कारागार में

---

१. बलि–अन्न का छठा भाग। कर–वार्षिक, षण्मासिक या मासिक टैक्स। शुल्क–व्यापारियों से लिया जाने वाला महसूल। प्रतिभाग–फल, शाकादि पर लिया जाने वाला शुल्क। दण्ड–अपराध करने पर लिया जाने वाला जुर्माना।

डालकर, हथकड़ी आदि बन्धनों से तथा विविध प्रकार के शारीरिक एवं आर्थिक दण्डादि, इन तीन न्यायोचित उपायों द्वारा यत्नपूर्वक पूर्णतया नियन्त्रित करना चाहिए।। ३१०।।

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च।
द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः।। ३११।।

पापशालिनां निग्रहेण, साधूनां संग्रहेण, द्विजातय इव महायज्ञादिभिः सर्वकालं नृपतयः पवित्रीभवन्ति। तस्मादधार्मिकान्निगृह्णीयात्साधूंश्चानुगृह्णीयात्।। ३११।।

क्योंकि पापियों को नियन्त्रित करने एवं सज्जनों की रक्षा करने से राजा लोग, यज्ञों के करने से पवित्र होने वाले द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के समान हमेशा पुण्यवान् (पवित्र) होते हैं।। ३११।।

क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम्।
बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः।। ३१२।।

कार्यार्थिप्रत्यर्थिनां दु:खेनाक्षेपोक्तिं रचयतां तथा बालवृद्धव्याधितानामाक्षिपता वक्ष्यमाणमात्मीयमुपकारमिच्छता प्रभुणा क्षमणीयम्।। ३१२।।

अपना हित चाहने वाले राजा को कष्ट में पड़े हुए उसके पास न्याय मांगने आए बालक, बूढ़े एवं रोगियों के दु:ख के कारण, आक्षेपयुक्त वचनों की उपेक्षा करके हमेशा उन्हें क्षमा कर देना चाहिए।। ३१२।।

यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते।
यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति।। ३१३।।

दु:खितैराक्षिप्तः सहते यस्तेन स्वर्गलोके पूजां लभते। प्रभुत्वदर्पान्न सहते य:स तेन नरकं गच्छति।। ३१३।।

जो राजा पीड़ित एवं दु:खी लोगों के आक्षेपयुक्त वचनों को धैर्यपूर्वक सहन कर लेता है। वह मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक में महिमामण्डित होता है, किन्तु जो अपने ऐश्वर्य के कारण इन्हें क्षमादान नहीं करता है, वह निश्चय ही नरक को प्राप्त होता है।। ३१३।।

राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता।
आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम्।। ३१४।।
स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम्।
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा।। ३१५।।

(गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्।
वधेन शुध्यते स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा।। २२।।)

यद्यपि "सुवर्णस्तेयकृद्विप्रः" (अ० ११ श्लो० ९९) इत्यादि प्रायश्चित्त-प्रकरणे वक्ष्यति तथापि सुवर्णस्तेयं प्रति राजदण्डरूपतामस्य दण्डप्रकरणे दर्शयितुं पाठः। ब्राह्मणसुवर्णस्य चौरेण मुक्तकेशेन वेगाद्गच्छता मया ब्राह्मणसुवर्णमपहृतमिति संख्यापयता मुसलाख्यमायुधं खादिरमयं वा दण्डमुभयतस्तीक्ष्णां शक्तिं लोहमयं वा दण्डं स्कन्धे गृहीत्वा राजसमीपं गन्तव्यं ततो ब्राह्मणसुवर्णहार्यहमतोऽनेन मुसलादिना मां व्यापादयेत्येवं राज्ञे वक्तव्यम्।। ३१४।। ३१५।।

प्रायश्चित्त एवं क्षमादान चाहने वाले चोर को अपने सिर के बालों को खोलकर दौड़ते हुए राजा के समक्ष जाना चाहिए तथा अपने अपराध का इस प्रकार कथन करते हुए कि 'मैंने ऐसा चौर्यकर्म किया है, कृपया मुझे अनुशासित कीजिए,' क्षमा याचना करे।। ३१४।।

इसके अतिरिक्त मूसल अथवा खदिरकाष्ठ निर्मित दण्ड, दोनों ओर से तीक्ष्ण शक्ति अथवा लोह निर्मित दण्ड को ही अपने कन्धे पर रखकर (राजा के समीप जाकर उससे अपने प्रायश्चित्त का निवेदन करे)।। ३१५।।

(तब राजा वह मूसल लेकर स्वयं उससे एक बार उस पर प्रहार करे, इसप्रकार मारने से चोर के चौर्यकर्म की शुद्धि हो जाती है, जबकि ब्राह्मण की शुद्धि तपस्या से ही कही गयी है (उस पर इसप्रकार प्रहार करने की आवश्यकता नहीं है) ।। २२।।)

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम्।। ३१६।।

सकृन्मुसलादिप्रहारेण प्राणपरित्याजनान्मृतककल्पस्य जीवतोऽपि परित्यागाद्वा स चौरस्तस्मात्पापात्प्रमुच्यते। अतएव याज्ञवल्क्यः—"मृतकल्पः प्रहारार्तो जीवन्नपि विशुद्ध्यति" (अ० ३ श्लो० २४८) इति। तं पुनस्तेन करुणादिभिरहत्वा स्तेनस्य यत्पापं तद्राजा प्राप्नोति।। ३१६।।

इसप्रकार सजा पाकर अथवा स्वयं प्रायश्चित्त करके राजा द्वारा क्षमा कर देने पर चोर, चोरी के अपराध से मुक्त हो जाता है। जबकि उस चोर को दण्डित न करने पर राजा को चोर के पाप का भागीदार होना पड़ता है।। ३१६।।

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम्।। ३१७।।

ब्रह्महा यस्तत्संबन्धि योऽन्नमत्ति तस्मिन्नसौ स्वपापं संक्रामयति। भ्रूणहान्नभोक्तुः पापं भवतीत्येतदत्र विवक्षितं नतु ब्रह्माघ्नः पापं नश्यति। तथा भार्या व्यभिचारिणी जारपतिं क्षममाणे भर्तरि पापं संश्लेषयति। शिष्यश्च संध्याग्निकार्याद्यकरणजन्यं पापं गुरौ सहमाने न्यस्यति। याज्यश्च विधिमतिक्रामन्याजके क्षममाणे पापं निक्षिपति। स्तेनश्च राजन्युपेक्षमाणे पापं समर्पयति। तस्माद्राज्ञा स्तेनो निग्रहीतव्यः।। ३१७।।

जिसप्रकार भ्रूण हत्या करने वाले का पाप, उसका अन्न खाने वाले को प्राप्त होता है। व्यभिचारिणी पत्नी का उसके पति को, अपशिष्य और यजमान का (पाप) उनके गुरुओं को प्राप्त होता है वैसे ही चोर को दण्ड न देने पर उसका पाप राजा को मिलता है।। ३१७।।

राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।। ३१८।।

सुवर्णस्तेयादीनि पापानि कृत्वा पश्चाद्राजभिर्विहितदण्डा मनुष्याः सन्तः प्रतिबन्धकदुरिताभावात्पूर्वार्जितपुण्यवशेन साधवः सुकृतकारिण इव स्वर्गं गच्छन्ति। एवं प्रायश्चित्तवद्दण्डस्यापि पापक्षयहेतुत्वमुक्तम्।। ३१८।।

इस संसार में लोग पाप करने के पश्चात् राजा द्वारा दिये गए दण्ड से प्रायश्चित्त द्वारा निर्मल होकर ठीक उसीप्रकार स्वर्ग को जाते हैं, जैसे–अच्छे कर्म करने वाले पुण्यात्मा लोग स्वर्ग में प्रस्थान करते हैं।। ३१८।।

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिद्याच्च यः प्रपाम्।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत्।। ३१९।।

कूपसमीपे रज्जुघटयोर्जलोद्धारणाय धृतयो रज्जुं घटं वा हरेत्। यो वा पानीयदानगृहं विदारयेत्स सौवर्णं माषं दण्डं प्राप्नुयात्। "यन्निर्दिष्टं तु सौवर्णं माषं तत्र प्रकल्पयेत्" इति कात्यायनवचनात्। तच्च रज्जवादि तस्मिन्कूपे समर्पयेत्।। ३१९।।

जो व्यक्ति कुएँ से रस्सी एवं घड़ा चुरा लेता है तथा जो प्याऊ को तोड़ देता है। ऐसा वह व्यक्ति एक 'माषा' स्वर्णदण्ड का भागी होता है। साथ ही रस्सी-घड़े एवं प्याऊ आदि की व्यवस्था भी उसी को उस स्थान पर करनी चाहिए।। ३१९।।

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः।
शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य त तद्धनम्।। ३२०।।

द्विपलशतं द्रोणो विंशतिद्रोणश्च कुम्भः, दशसंख्येभ्यः कुम्भेभ्योऽधिकं धान्यं हरतो वधः। स च हर्तृस्वामिगुणवत्तापेक्षया ताडनाङ्गच्छेदमारणात्मको ज्ञेयः। शेषे पुनरेकस्मादारभ्य दश कुम्भपर्यन्तहरणे निह्नुतैकादशगुणं दण्डं दाप्यः। स्वामिनश्चापहृतं दाप्यः।। ३२०।।

इसके अतिरिक्त दस बड़े घड़ों से अधिक धान्य चुराने पर चोर को शारीरिक यातना देनी चाहिए। जबकि दस घड़े धान्य चुराने पर धान्य का ग्यारह गुना धान्य अथवा उसके मूल्य के बराबर धन जुर्माने के रूम में स्वामी को दिलवाना चाहिए ।। ३२०।।

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः।
सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम्।। ३२१।।

यथा धान्येन वध उक्तस्तथा तुलापरिच्छेद्यानां सुवर्णरजतादीनामुत्कृष्टानां च वाससां पट्टादीनां पलशताधिकेऽपहृते वधः कर्तव्य एव। विषयसमीकरणं चात्र देशकालापहर्तृद्रव्यस्वामिजातिगुणापेक्षया परिहरणीयम्। एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम्।। ३२१।।

इसीप्रकार छोटे कांटे से तोले जाने वाले स्वर्ण-रजत आदि मूल्यवान् पदार्थों के सौ से अधिक पल चुराने पर तथा उत्कृष्ट कोटि के वस्त्र सौ से अधिक चुराने पर शारीरिक दण्ड का विधान है।। ३२१।।

पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते।
शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत्।। ३२२।।

पूर्वोक्तानां पञ्चाशदूर्ध्वं शतं यावदपहारे कृते हस्तच्छेदनं मन्वादिभिरभिहितम्। शेषेष्वेकपलादारभ्य पञ्चाशत्पलपर्यन्तापहारे अपहृतगुणादेकादशगुणं दण्डं दाप्यः ।। ३२२।।

उपर्युक्त वस्तुओं को पचास से अधिक किन्तु सौ से कम चुराने पर, इसके हाथ काटने के लिए कहा गया है तथा पचास से कम चुराने पर तो उन वस्तुओं के मूल्य से ग्यारह गुना अर्थ-दण्ड लगाना चाहिए।। ३२२।।

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति।। ३२३।।

महाकुलजातानां मनुष्याणां विशेषेण स्त्रीणां महाकुलप्रसूतानां श्रेष्ठानां च रत्नानां वज्रवैदूर्यादीनामपहारे वधमर्हति।। ३२३।।

कुलीन पुरुषों, विशेषरूप से स्त्रियों का अपहरण करने पर तथा मूल्यवान् रत्न मणि, वैदूर्यादि की चोरी करने पर व्यक्ति मृत्युदण्ड के योग्य होता है।। ३२३।।

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च।
कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत्।। ३२४।।

महतां पशूनां हस्त्यश्वादिगोमहिष्यादीनां तथा खड्गादीनां शस्त्राणां कल्याणघृतादेश्चौषधस्य च दुर्भिक्षादिरूपं कालं कार्यं प्रयोजंन च सदसद्विनियोगरूपं निरूप्य राजा ताडनाङ्गच्छेदवधरूपं दण्डं प्रकल्पयेत्।। ३२४।।

हाथी, घोड़े आदि बड़े पशुओं की खड्गादि शास्त्रास्त्रों की तथा औषधियों की चोरी करने पर, दुर्भिक्षादि का समय एवं उस वस्तु के प्रयोजनादि का भलीप्रकार विवेचन करके चोरी की गम्भीरता को देखकर ही राजा को दण्ड की प्रकल्पना (निर्धारण) करनी चाहिए।। ३२४।।

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छूरिकायाश्च भेदने।
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्घपादिकः।। ३२५।।

ब्राह्मणसंबन्धिनीनां गवामपहारे वन्ध्यायाश्च गोर्वाहनार्थं नासाच्छेदने पशूनां चाजैडकानां दण्डभूयस्त्वाद्यागाद्यर्थानां हरणेऽनन्तरमेव छिन्नार्धपादिकः कार्यः।। ३२५।।

ब्राह्मण की गाय चुराने पर तथा छुरी द्वारा उसकी नाक छेदने पर एवं भेड़, बकरी आदि पशुओं के हरण करने पर, शीघ्र ही उसका आधा पाँव काट देना चाहिए ।। ३२५।।

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च।
दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च।। ३२६।।
वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च।
मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च।। ३२७।।
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम्।। ३२८।।
अन्येषां चैवमादीनामद्यानामोदनस्य च।
पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः।। ३२९।।

ऊर्णादिसूत्रकार्पासिकस्य च किण्वस्य सुराबीजद्रव्यस्य च सूक्ष्मवेणुखण्डनिर्मितजलाहरणभाण्डादीनां, यदप्यन्यत्पशुसंभवं च मृगचर्मखड्गशृङ्गादि, अन्येषामप्येवंविधानामसारप्रायाणां मनःशिलादीनां, मद्यानां द्वादशानां, पक्वान्नानामोदनव्यतिरिक्तानामप्यपूपमोदकादीनां च कार्पासादिशब्दार्थानां प्रसिद्धानां चापहारे कृते मूल्याद्द्विगुणो दण्डः कार्यः।। ३२६।। ३२७।। ३२८।। ३२९।।

इसीप्रकार जो व्यक्ति सूत, कपास, मदिरा के निर्माण में काम आने वाले बीज, गोबर, गुड़, दही, खीर, मट्ठा आदि पीने योग्य अन्य पदार्थ जलादि एवं तिनके ।। ३२६।।

बांस एवं टहनियों से निर्मित पात्र, नमक, मिट्टी तथा राख, मछली, पक्षी, तेल और घी, मांस, शहद एवं पशुओं से प्राप्त होने वाले अन्य पदार्थों (चर्म सींगादि) को,।। ३२७-२८।।

दूसरे इसी प्रकार के खाने के पदार्थ, भात, पकवान आदि को चुराता है, उस पर चुराई गई इन सभी वस्तुओं के मूल्य से दुगना अर्थ-दण्ड लगाना चाहिए।। ३२९।।

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च।
अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः।। ३३०।।

पुष्पेषु, हरिते क्षेत्रस्थे धान्ये, गुल्मलतावृक्षेष्वपरिवृतेषु अनपावृतवृक्षेषु, वक्ष्यमाणश्लोके धान्यादिषु निर्देषात्परिपवनसंभवाच्च धान्येषु, अन्येषु समर्थपुरुष-भारहार्येषु हृतेषु देशकालाद्यपेक्षया सुवर्णस्य रौप्यस्य वा पञ्चकृष्णलमाषपरिमाणो दण्डः स्यात्।। ३३०।।

जो व्यक्ति पुष्प, हरे धान्य, गुल्म, वल्ली, वृक्ष तथा अन्य तुषयुक्त अन्नादि को चुराता है तो वह पाँच कृष्णल के दण्ड का भागी होता है।। ३३०।।

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च।
निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः।। ३३१।।

निष्पुलाकीकृतेषु वृक्षेषु, धान्येषु, शाकादिषु चापहृतेषु अन्वयो द्रव्यस्वामिनां संबन्धः, येन सह कश्चिदपि संबन्धो नास्त्येकग्रामवासादिस्तत्र शतं दण्ड्यः। सान्वये तु पञ्चाशत्पणो देयः। खलस्थेषु च धान्येष्वयं दण्डस्तत्र हि परिपूर्यते। गृहेष्वेकादशगुणो दण्डः प्रागुक्तः।। ३३१।।

इसके अतिरिक्त साफ किए हुए धान्य, शाक, कन्दमूलादि को चुराने पर, वस्तु के स्वामी के वंश से सम्बन्धित न होने पर, सौ पणों का तथा उसके वंश से सम्बन्ध होने पर पचास पण का दण्ड देना चाहिए।। ३३१।।

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम्।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते च यत्।। ३३२।।

यद्धान्यापहारादिकं कर्म द्रव्यस्वामिसमक्षं बलाद्धृतं तत्साहसं स्यात्, सहो बलं तद्भवं साहसम्। अत इह स्तेयदण्डो न कार्यः। एतदर्थः स्तेयप्रकरणेऽस्य

पाठः। यत्पुनः स्वामिपरोक्षापहृतं तत्स्तेयं भवेत्। यच्च हृत्वाऽपह्नुते तदपि स्तेयमेव।। ३३२।।

वस्तु के स्वामी के समक्ष बलपूर्वक किया गया चौर्यकर्म 'साहस' (डाका) कहलाता है तथा स्वामी की दृष्टि बचाते हुए वस्तु चुराकर भाग जाना 'चोरी' कहलाता है।। ३३२।।

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः।
तमाद्यं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात्।। ३३३।।

यः पुनरेतानि सूत्रादिद्रव्याण्युपभोगार्थं कृतसंस्काराणि मनुष्यश्चोरयेत्, यश्च त्रेताग्निं गृह्याग्निं वाग्निगृहाच्चोरयेत्तं राजा प्रथमं साहसं दण्डयेत्। अग्निस्वामिनश्चा धानोपक्षयो दातव्यः। गोविन्दराजस्तु लौकिकाग्निमपि चोरयतो दण्ड इत्याह तदयुक्तम्। अल्पापराधे गुरुदण्डस्यान्याय्यत्वात्।। ३३३।।

जो व्यक्ति इन सभी वस्तुओं को अपने प्रयोग में लाने के लिए चुराता है तथा जो यज्ञशाला अथवा घर से अग्नि चुराता है तो राजा को उसे प्रथम श्रेणी का कड़ा अर्थ-दण्ड देना चाहिए।। ३३३।।

येन तेन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः।। ३३४।।

येन येनाङ्गेन हस्तपादादिना येन प्रकारेण संधिच्छेदादिना चौरो मनुष्येषु विरुद्धं धनापहारादिकं चेष्टते तस्य तदेवाङ्गं प्रसङ्गनिवारणाय राजा छेदयेत्। तत्र धनस्वाम्यु-त्कर्षापेक्षयायमङ्गच्छेदः।। ३३४।।

चोर जिसप्रकार जिस-जिस अङ्ग द्वारा लोगों के प्रति चोरी आदि के समय विरुद्ध आचरण करता है। अन्य लोगों को सीख देने के लिए राजा उसका वह-वह अङ्ग कटवा देवे।। ३३४।।

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।। ३३५।।

पित्राचार्यमित्रभ्रातृमातृपत्नीपुत्रपुरोहितानां मध्यात्स्वधर्मे यो नावतिष्ठते स राज्ञोऽदण्डनीयो नास्ति, अपितु दण्डनीय एव।। ३३५।।

जो पिता, आचार्य, मित्र, माता, पत्नी, पुत्र एवं पुरोहित अपने धर्म एवं कर्त्तव्यों का पालन नहीं करते हैं, वे भी राजा द्वारा अदण्ड्य नहीं हैं (अर्थात् उन्हें भी राजा को इसके लिए दण्डित करना चाहिए)।। ३३५।।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा।। ३३६।।

यत्रापराधे राजव्यतिरिक्तो जनः कार्षापणं दण्डनीयो भवेत्तस्मिन्नपराधे राजा पणसहस्रं दण्डनीय इति निश्चयः। स्वार्थदण्डं त्वप्सु प्रवेशयेद्ब्राह्मणेभ्यो वा दद्यात्। ''ईशो दण्डस्य वारुणः'' (अ० ९ श्लो० २४५) इति वक्ष्यमाणत्वात्।। ३३६।।

सामान्य व्यक्ति को जिस अपराध के लिए एक कार्षापण का दण्ड दिया जाए, उसी अपराध के लिए राजा पर हजारों पणों का दण्ड लगाना चाहिए, ऐसी शास्त्रों की मान्यता है।। ३३६।।

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च।। ३३७।।
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः।। ३३८।।

'तद्दोषगुणविद्धि स' इति सर्वत्र संबध्यते। यस्मिंस्तेये यो दण्ड उक्तःस स्तेयगुणदोषज्ञस्य शूद्रस्याष्टभिरापाद्यते गुण्यत इत्यष्टगुणः कर्तव्यः। षोडशगुणो गुणदोषज्ञस्य वैश्यस्य, द्वात्रिंशद्गुणस्तथाविधक्षत्रियस्य, चतुःषष्टिगुणो गुणदोषविदुषो ब्राह्मणस्य शतगुणो वाष्टाविंशत्यधिकशतगुणो वा गुणातिशयापेक्षया ब्राह्मणस्यैव।। ३३७।। ३३८।।

शूद्र के चोरी करने पर चोरी से आठ गुना, वैश्य द्वारा (चोरी करने पर) सोलह गुना, क्षत्रिय के (चोरी करने पर) बत्तीस गुणा, ब्राह्मण को चौसठ गुना या सौ गुना अथवा एक सौ अट्ठाईस गुना दण्ड देना चाहिए, क्योंकि ये क्रमशः चोरी के गुण-दोषों को अधिकाधिक जानने वाले होते हैं।। ३३७-३३८।।

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च।
तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्।। ३३९।।

''वीरुद्वनस्पतीनां पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानां'' इति गोतमवचनादपरिवृतवानस्पत्यादीनां मूलफलं, होमीयाग्न्यर्थं च दारु, गोग्रासार्थं च तृणं परकीयमस्तेयं मनुराह।। तस्मान्न दण्डो नाप्यधर्मः।। ३३९।।

मनु के कथन के अनुसार यज्ञ के लिए वनस्पति, कन्द, मूल, फल, अग्नि, समिधा आदि तथा गायों के खाने के लिए घास ले जाने पर, चोरी के अन्तर्गत नहीं आता है (अतः वह दण्ड योग्य नहीं होता है।)।। ३३९।।

योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम्।
याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः।। ३४०।।

अदत्तादायिनश्चौरस्य हस्ताद्यो ब्राह्मणो याजनाध्यापनप्रतिग्रहैरपि परकीयधनं ज्ञात्वा लब्धुमिच्छेत्स चौरवच्चौरतुल्यो ज्ञेय: अत: स इव दण्ड्य:।। ३४०।।

जो ब्राह्मण बिना दिए ग्रहण करने वाले व्यक्ति के हाथ से यज्ञ अथवा अध्यापन करने की दक्षिणारूप में भी धन ग्रहण करने की इच्छा करता है। वह वस्तुत: उसी के समान चोर होता है।। ३४०।।

द्विजोऽध्वग: क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके।
आददान: परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति।। ३४१।।

द्विजाति: पथिक: क्षीणपाथेयो द्वाविक्षुदण्डौ द्वे वा मूलके परकीयक्षेत्राद्गृह्णन् दण्ड दानयोग्यो न भवति।। ३४१।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के पास यात्रा करते समय यदि खाद्यपदार्थ (नाश्तादि) समाप्त हो गया हो तो दूसरे के खेत से दो गन्ने और दो मूली लेने पर व्यक्ति दण्ड देने योग्य नहीं होता है।। ३४१।।

असंदितानां संदाता संदितानां च मोक्षक:।
दासाश्वरथहर्ता च प्राप्त: स्याच्चोरकिल्बिषम्।। ३४२।।

अबद्धानामश्वादीनां परकीयानां यो दर्पेण बन्धयिता, बद्धानां मन्दुरादौ मोचयिता यो दासाश्वरथापहारी स चौरदण्डं प्राप्नुयात्। स च गुरुलध्वपराधानुसारेण मारणाङ्गच्छेदनधनापद्यपहाररूपो बोद्धव्य:।। ३४२।।

जो व्यक्ति दूसरों के विचरण करते हुए पशुओं को अपने घर में बांध लेता है तथा बंधे हुए पशुओं को खोल देता है एवं दास, अश्व और रथ का हरण करने वाला है, पकड़े जाने पर वह भी चोर-दण्ड को पाने का अधिकारी होता है।। ३४२।।

अनेन विधिना राजा कुर्वाण: स्तेननिग्रहम्।
यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।। ३४३।।

अनेनोक्तविधानेन राजा चौरनियमनं कुर्वाण इह लोके ख्यातिं परलोके चोत्कृष्टसुखं प्राप्नुयात्।। ३४३।।

इस उपर्युक्त विधि द्वारा राजा चोरों को नियन्त्रित करता हुआ, इस लोक में यश को एवं मृत्यु के उपरान्त भी श्रेष्ठ सुखों को प्राप्त करता है।। ३४३।।

इदानीं साहसमाह-

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्।। ३४४।।

सर्वाधिपत्यलक्षणं पदं ख्यातिं चाविनाशिनीमनुपक्षयां चातिशयेन प्राप्तुमिच्छन् राजा बलेन गृहदाहधनग्रहणकारिणं मनुष्यं क्षणमपि नोपेक्षेत।। ३४४।।

इस लोक में नित्य एवं अविनाशी यश की कामना करने वाला तथा मृत्यु के उपरान्त इन्द्र पद को पाने का इच्छुक राजा दुःसाहसपूर्ण चोरी, डाके आदि डालने वाले व्यक्ति की क्षण भर के लिए भी (दण्ड देने के सम्बन्ध में) उपेक्षा न करे।। ३४४।।

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव हिंसतः।
साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः।। ३४५।।

वाक्पारुष्यकृताच्चोराच्च दण्डपारुष्यकारिणश्च मनुष्यात्साहसकृन्मनुष्योऽतिशयेन पापकारी बोद्धव्यः।। ३४५।।

दुष्टवचन बोलने वाले, चोरी करने वाले तथा डण्डे से हिंसा करने वाले व्यक्ति से भी दुःसाहस करने वाला (बलात्कारी) व्यक्ति सर्वाधिक पापी समझना चाहिए ।। ३४५।।

साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति।। ३४६।।

यो राजा साहसे वर्तमानं क्षमते स पापकृतामुपेक्षणादधर्मबुद्ध्या विनश्यति अपक्रियमाणराष्ट्रतया जनविद्वेषं च गच्छति।। ३४६।।

जो राजा बलपूर्वक अपराध करने वाले लोगों को दण्ड न देकर सहन कर लेता है, वह शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होता है, साथ ही ऐसे राजा के विरुद्ध प्रजा में विद्वेष की भावना भी पनपती है।। ३४६।।

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान्।। ३४७।।

मित्रवाक्येन बहुधनप्राप्त्या वा सर्वभूतभयजनकान्साहसिकान् राजा न त्यजेत्।। ३४७।।

सभी प्राणियों को भयभीत करने वाले, दुःसाहसपूर्ण कार्य करने वाले, दुष्ट लागों को, मित्रता के कारण अथवा उनसे अत्यधिक धन प्राप्त करके भी, राजा बन्धनमुक्त नहीं करे।। ३४७।।

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते।। ३४८।।
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे।
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति।। ३४९।।

ब्राह्मणादिभिस्त्रिभिर्वर्णैः खड्गाद्यायुधं ग्रहीतव्यम्। यस्मिन्काले वर्णानामाश्रमिणां च साहसकारादिभिर्धर्मः कर्तुं न दीयते। तथा त्रैवर्णिकानामराजकेषु राष्ट्रेषु परचक्रागमनादिकालजनिते स्त्रीसङ्करादौ प्राप्ते तथात्मरक्षार्थं दक्षिणाधनगवाद्यपहारनिमित्ते च संग्रामे स्त्रीब्राह्मणरक्षार्थं च धर्मयुद्धेनानन्यगतिकतया परान् हिंसन्न दोषभाग्भवति। परमारणेऽप्यत्र साहसदण्डो न कार्यः।। ३४८।। ३४९।।

जब द्विजातियों के वर्णाश्रमधर्म विषयक कार्यों में दुष्टों द्वारा बाधा उत्पन्न की जाए एवं द्विजातियों एवं अन्य वर्णों के बीच मारकाट मचने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि द्विजातियों को भी शस्त्र धारण कर लेना चाहिए।। ३४८।।

इसके अतिरिक्त अपने प्राणों की रक्षा करते समय, सम्पत्तियों की हानि के युद्ध में, स्त्री एवं ब्राह्मणों के प्राण संकट में पड़ने पर, शत्रुओं की हिंसा करते हुए व्यक्ति दोष का भागी नहीं होता है।। ३४९।।

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।। ३५०।।
(अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः।। २३।।
उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां शापोद्यतकरस्तथा।
आथर्वणेन हन्ता च पिशुनश्चापि राजनि।। २४।।
भार्यारिक्थापहारी च रन्ध्रान्वेषणतत्परः।
एवमाद्यान्विजानीत्सर्वानेवाततायिनः।। २५।।)

गुरुबालवृद्धबहुश्रुतब्राह्मणानामन्यतमं वधोद्यतमागच्छन्तं विद्यावित्तादिभिरुत्कृष्टं पलायनादिभिरपि स्वनिस्तरणाशक्तौ निर्विचारं हन्यात्। अतएवोशनाः— "गृहीतशस्त्रमाततायिनं हत्वा न दोषः"। कात्यायनश्च भृगुशब्दोल्लेखेन मनूक्तश्लोकमेव व्यक्तं व्याख्यातवान्-"आततायिनि चोत्कृष्टे तपः स्वाध्यायजन्मनः। वधस्तत्र तु नैव स्यात्पापं हीने वधो भृगुः।।" मेधातिथिगोविन्दराजौ तु "स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च

घ्नन्धर्मेण न दुष्यति" (अ० ८ श्लो० ३४९) इति पूर्वस्यायमनुवादः। गुर्वादिकमपि हन्यात्किमुतान्यमपीति व्याचक्षाते।। ३५०।।

गुरु, बालक, वृद्ध, ब्राह्मण अथवा अनेक शास्त्रों के अध्येता आततायी विद्वान् को भी हानि पहुँचाने के लिए आते हुए व्यक्ति को देखकर बिना विचार किए ही मार डालना चाहिए।। ३५०।।

(आग लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र हाथ में लेकर बलपूर्वक धन का अपहरण करने वाला तथा खेत एवं स्त्री का हरण करने वाला ये छः आततायी कहे गए हैं।। २३।।

इसीप्रकार मारने के लिए तलवार उठाने वाला, विष और अग्नि से हत्या करने वाला, शाप देने के लिए हाथ को उठाने वाला, अथर्ववेद के मन्त्रों से प्राणों को हानि पहुँचाने वाला तथा राजा की झूठी चुगली करने वाला।। २४।।

इसके अतिरिक्त स्त्री की सम्पत्ति का हरण करने वाला एवं कमियों को ढूँढने में हमेशा तैयार रहने वाला (छिन्द्रान्वेषी) इत्यादि इसप्रकार के इन सब लोगों को भी आततायी मानना चाहिए।। २५।।)

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति।। ३५१।।

जनसमक्षं रहसि वा वधोद्यतस्य मारणे हन्तुर्न कश्चिदप्यधर्मदण्डः प्रायश्चित्ताख्यो दोषो भवति। यस्माद्धन्तृगतो मन्युः क्रोधाभिमानिनी देवता हन्यमानगतं क्रोधं विवर्धयति। साहसे चापराधगौरवापेक्षया मारणाङ्गच्छेदनधनग्रहणादयो दण्डाः कार्याः।। ३५१।।

आततायी व्यक्ति का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वध करने से मारने वाले व्यक्ति को कोई दोष नहीं लगता है, क्योंकि दुष्ट व्यक्ति के निन्दनीय एवं दोषयुक्त कार्यों से किसी का भी क्रोधित होना स्वाभाविक ही होता है।। ३५१।।

इदानीं स्त्रीसंग्रहणमाह—

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत्।। ३५२।।

परदारसंभोगाय प्रवृत्तान्मनुष्यगणानुद्वेजनकरैर्दण्डैर्नासौष्ठकर्तनादिभिरङ्कयित्वा देशान्निःसारयेत्।। ३५२।।

दूसरे की स्त्री से व्यभिचार करने में प्रवृत्त लोगों को, राजा (नासिका,

औष्ठकर्तनादि) अत्यधिक पीड़ा पहुँचाने वाले दण्डों से दण्डित करके देश से बाहर निकाल देवे।। ३५२।।

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते।। ३५३।।

यस्मात्परदाराभिगमनात्संभूतो वर्णस्य संकरः संपद्यते। येन वर्णसंकरेण विशुद्धपत्नीकयजमानाभावात् "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति" (अ० ३ श्लो० ७६) अस्याभावे सति वृष्ट्याख्यजगन्मूलविनाशोऽधर्मो जगन्नाशाय संपद्यते।। ३५३।।

क्योंकि ऐसे लोगों से संसार में वर्णसङ्कर सन्तान उत्पन्न होती है, जो मूल का नाश करने वाली तथा अधर्म की कारण होती है, जिनसे देश का सर्वनाश हो जाता है।। ३५३।।

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः।
पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्।। ३५४।।

तत्स्त्रीप्रार्थनादिदोषैः पूर्वमुत्पन्नाभिरपवादप्रार्थनाभिशापादिभिः पुरुषः उचितकारणव्यतिरेकेण परभार्यया संभाषणं कुर्वन्प्रथमसाहसं दण्डं प्राप्नुयात्।। ३५४।।

दूसरे की स्त्री के साथ एकान्त में वार्तालाप करने वाले व्यक्ति को, यदि वह पहले भी परस्त्रीगमन विषयक अपराधों से आक्षिप्त हो चुका हो तो 'पूर्व साहस' (दो सौ पचास पण) का दण्ड देना चाहिए।। ३५४।।

यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात्।
न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः।। ३५५।।

यः पुनः पूर्वं तत्स्त्रीप्रार्थनाभिशापरहितः केनचित्कारणेन जनसमक्षमभिभाषणं कुर्यान्न स पुनर्दण्ड्यत्वादिदोषं प्राप्नुयात्। तस्मान्न कश्चित्तस्यापराधोऽस्ति।। ३५५।।

किन्तु जिस व्यक्ति के ऊपर पूर्व में इस प्रकार का (चरित्रविषयक) कोई आक्षेप न लगाया गया हो, वह किसी कारणवश परस्त्री से बात कर रहा हो तो वह किसी दोष का भागी नहीं होता, क्योंकि वह कोई पाप नहीं कर रहा है।। ३५५।।

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात्।। ३५६।।

तीर्थाद्यरण्यवनादिकं निर्जनदेशोपलक्षणमात्रम्। यः पुरुषः परस्त्रियमुदकावतरणमार्गेऽरण्ये ग्रामाद्बहिर्गुल्मलताकीर्णे निर्जने देशे वने बहुवृक्षसंतते नदीनां

संगमे पूर्वमनाक्षारितोऽपि कारणादपि संभाषेत स संग्रहणं सहस्रपणदण्डं वक्ष्यमाणं प्राप्नुयात्। सम्यग्गृह्यते ज्ञायते येन परस्त्रीसंभोगाभिलाष इति संग्रहणम्।। ३५६।।

जो व्यक्ति तीर्थ में, वन में अथवा नदी सङ्गम पर दूसरे की स्त्री के साथ वार्तालाप करे, वह 'संग्रहण दोष' का भागी होता है।। ३५६।।

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम्।
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम्।। ३५७।।

स्रग्गन्धानुलेपनप्रेषणाद्युपचारकरणं, केलिः परिहासालिङ्गनादिः, अलंकारवस्त्राणां स्पर्शनमेकखट्वासनमित्येतत्सर्वं संग्रहणं मन्वादिभिः स्मृतम्।। ३५७।।

परस्पर माला, सुगन्ध आदि शृङ्गारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान, परिहास, आलिङ्गनादि, आभूषण एवं वस्त्रों का स्पर्श तथा एक ही चारपाई पर साथ-साथ सट कर बैठना, ये सभी बातें संग्रहण (विषयगमन) के अन्तर्गत मानी गई हैं।। ३५७।।

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम्।। ३५८।।
कामाभिपातिनी यातु नरं स्वयमुपव्रजेत्।
राज्ञा दास्ये नियोज्या सा कृत्वा तद्दोषघोषणम्।। २६।।

यः स्प्रष्टुमनुचिते स्तनजघनादिदेशे स्त्रियं स्पृशेत्तया वा वृषणादिके स्पृष्टः क्षमते, त्तदान्योन्याङ्गीकरणे सर्वं संग्रहणं मन्वादिभिः स्मृतम्।। ३५८।।

जो व्यक्ति परस्त्री के अस्पर्श्य अङ्गों स्तन-जघनप्रदेशादि का स्पर्श करे और स्पर्श किए जाने पर वह उसे सहन करे। इसप्रकार परस्पर सहमतिपूर्वक किये गये सभी कार्य भी 'संग्रहण' के अन्तर्गत ही माने गए हैं।। ३५८।।

(किन्तु काम के आवेग के वशीभूत जो स्त्री स्वयं परपुरुष के पास जाए तो राजा को चाहिए कि उसके इस दोष की डोंडी पिटवाकर घोषणा करके, उसे दासी-कार्य में नियुक्त कर दे।। २६।।)

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा।। ३५९।।

अब्राह्मणोऽत्र शूद्रः, दण्डभूयस्त्वात्। ब्राह्मण्यामनिच्छन्त्यामुत्तमं संग्रहणं प्राणान्तं दण्डं प्राप्नोति। चतुर्णामपि ब्राह्मणादीनां वर्णानां धनपुत्रादीनामतिशयेन दाराः सर्वदा रक्षणीयाः। तेन प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थमुत्कृष्टसंग्रहणादपि सर्ववर्णैर्भार्या रक्षणीया।। ३५९।।

ब्राह्मण को छोड़कर अन्य वर्ण का व्यक्ति परदाराभिमर्षण करने पर प्राणदण्ड देने

योग्य होता है, क्योंकि चारों वर्णों की स्त्रियाँ ही हमेशा अत्यधिक रक्षा-योग्य होती हैं।। ३५९।।

भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा।
संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः।। ३६०।।

भिक्षाजीविनः, स्तुतिपाठकाः, यज्ञार्थं कृतदीक्षकाः, सूपकारादयः, भिक्षादि-स्वकार्यार्थं गृहिस्त्रीभिः सह संभषणमनिवारिताः कुर्युः। एवं चैषां संग्रहणा-भावः।। ३६०।।

किसी के द्वारा प्रतिवाद न किए गए (आपत्ति न करने पर) भिक्षुक, स्तुति पाठक, यज्ञ के लिए दीक्षा ग्रहण किए हुए पुरोहित एवं रसोइये आदि, भिक्षादि अपने कार्यों के सम्बन्ध में घर की स्त्रियों के साथ सम्भाषण कर सकते हैं (अतः इस स्थिति में संग्रहण दोष लागू नहीं होगा)।। ३६०।।

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत्।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति।। ३६१।।

स्वामिना निषिद्धः स्त्रीभिः संभाषणं न कुर्यात्। प्रतिषिद्धः संभाषणमाचरन् राज्ञः षोडशमाषात्मकसुवर्णदानयोग्यो भवति।। ३६१।।

अतः गृहस्वामी द्वारा निषेध किए जाने पर परस्त्री के साथ वार्तालाप नहीं करना चाहिए, किन्तु रोके जाने पर भी यदि कोई व्यक्ति बातचीत करता है तो वह एक स्वर्णदण्ड के योग्य होता है।। ३६१।।

नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु।
सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च।। ३६२।।

"परस्त्रियं योऽभिवदेत्" (अ० ८ श्लो० ३५६) इत्यादिसंभाषणनिषे-धविधिर्नटगायनादिदारेषु नास्ति। तथा "भार्या पुत्रः स्वका तनुः" (अ० ४ श्लो० १८४) इत्युक्तत्वाद्भार्यैवात्माऽनयोपजीवन्ति धनलाभाय तस्या जारं क्षमन्ते ये तेषु, नटादिव्यतिरिक्तेष्वपि ये दारास्तेष्वप्येवं निषेधविधिर्नास्ति। यस्माच्चारणा आत्मोप-जीविनश्च परपुरुषानानीय तैः स्वभार्यां संश्लेषयन्ते। स्वयमागतांश्च परपुरुषान्प्रच्छन्ना भूत्वा स्वाज्ञानं विभावयन्तो व्यवहारयन्ति।। ३६२।।

इसप्रकार का विधिविधान अपनी स्त्रियों से आजीविका कमाने वाले नट, चारण, भाण्डों की पत्नियों के विषय में लागू नहीं होता है, क्योंकि ये लोग स्वयं ही स्त्रियों को सजा-धजाकर स्वयं प्रच्छन्न रहते हुए, परपुरुषों को आकर्षित करते हैं।। ३६२।।

किंचिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन्।
प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च।। ३६३।।

निर्जनदेशे चारणात्मोपजीविभिः स्त्रीभिः संभाषणं कुर्वन्स्वल्पदण्डलेशं राज्ञा दाप्यः, तासामपि परदारत्वात्। तथा दासीभिरवरुद्धाभिर्बौद्धाभिर्ब्रह्मचारिणीभिः संभाषां कुर्वन्किंचिद्दण्डमात्रं दाप्यः स्यात्।। ३६३।।

किन्तु फिर भी उन चारणादि की स्त्रियों के साथ निर्जन प्रदेश में वार्तालाप करने वाले व्यक्ति को कुछ थोड़ा ही सही दण्ड अवश्य देना चाहिए। इसीप्रकार दासियों, वैराग्य को धारण करने वाली स्त्रियों तथा केवल एक व्यक्ति के प्रति अनुरक्त स्त्रियों के साथ एकान्त में बातचीत करने पर थोड़ा-बहुत दण्ड अवश्य देना चाहिए।। ३६३।।

योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति।
सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः।। ३६४।।

यस्तुल्यजातिरनिच्छन्तीं कन्यां गच्छति स तत्क्षणादेव ब्राह्मणेतरो लिङ्गच्छेदनादिकं वधमर्हति। इच्छन्तीं पुनर्गच्छन्वधार्हो मनुष्यो न भवति।। ३६४।।

जो व्यक्ति सम्भोग की इच्छा न करती हुई कन्या को दूषित करता है, वह उसी क्षण लिङ्गच्छेदादि के योग्य होता है, किन्तु कन्या की इच्छा से गमन करने वाला सजातीय व्यक्ति वध के योग्य नहीं होता है।। ३६४।।

कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किंचिदपि दापयेत्।
जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे।। ३६५।।

कन्यां संभोगार्थमुत्कृष्टजातिपुरुषं सेवमानां स्वल्पमपि दण्डं न दापयेत्। हीनजातिं पुनः सेवमानां यत्नात्स्थापयेत्। यथा वा निवृत्तकामा स्यात्।। ३६५।।

ब्राह्मण आदि श्रेष्ठ वर्ण के व्यक्ति के साथ शारीरिक सम्पर्क करने वाली कन्या को कुछ भी दण्ड नहीं देना चाहिए, जबकि निम्न जाति के व्यक्ति से सम्बन्ध रखने वाली कन्या को घर में ही नियन्त्रणपूर्वक रखना चाहिए।। ३६५।।

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति।
शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि।। ३६६।।

हीनजातिरुत्कृष्टामिच्छन्तीमनिच्छन्तीं वागच्छत्यपेक्षयाङ्गच्छेदनमारणात्मकं वधमर्हति। समानजातीयां पुनरिच्छन्तीं गच्छन्यदि पिता मन्यते तदा पितुः शुल्कानुरुपमर्थं वा दद्यान्न च दण्ड्यः। सा च कन्या तेनैव वोढव्या।। ३६६।।

किन्तु उत्तम वर्ण की कन्या के साथ सम्बन्ध रखने वाला हीन जाति का व्यक्ति अङ्गच्छेदादि मारणात्मक दण्ड के योग्य होता है। जबकि समान जाति की कन्या का सेवन करने वाला व्यक्ति, कन्या के पिता की सहमतिपूर्वक शुल्क देकर कन्या का वरण कर सकता है।। ३६६।।

अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः।
तस्याशु कर्त्ये अङ्गुल्यौ दण्डं चार्हति षट्शतम्।। ३६७।।

यो मनुष्यः प्रसह्य बलात्कारेण समानजातीयां गमनवर्जमहंकारेणाङ्गुलिप्रक्षेपमात्रेणैव नाशयेत्तस्य शीघ्रमेवाङ्गुलिद्वयच्छेदः कर्तव्यः। षट्पणशतानि चायं दण्ड्यः स्यात् ।। ३६७।।

जो व्यक्ति अहङ्कारवश बलपूर्वक समानजाति की कन्या को भ्रष्ट करता है, उसकी दो अङ्गुलियाँ शीघ्र ही काट डालनी चाहिएँ। साथ ही वह छः सौ पण दण्ड देने योग्य होता है।। ३६७।।

सकामां दूषयंस्तुल्यो नाङ्गुलिच्छेदमाप्नुयात।
द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसङ्गविनिवृत्तये।। ३६८।।

समानजातिरिच्छन्तीं कन्यामङ्गुलिप्रक्षेपमात्रेण नाशयन्नाङ्गुलिच्छेदमाप्नोति। किंत्वतिप्रसक्तिनिवारणाय द्विशतं दण्डं दाप्यः।। ३६८।।

समान जाति की कन्या की इचछा से प्रसङ्ग करने पर उसकी अंगुलियाँ नहीं काटनी चाहिएँ, किन्तु वह इसकी पुनः आवृत्ति न करे इसके लिए उसे दो सौ पणों का दण्ड अवश्य देना चाहिए।। ३६८।।

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्विशतो दमः।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश।। ६६९।।

या कन्यैव परामङ्गुलिप्रक्षेपेण नाशयेत्तस्य द्विशतो दण्डः स्यात्। कन्याशुल्कं च द्विगुणं कन्यापितुर्दद्याच्छिफाःप्रहारांश्च दश प्राप्नुयात्।। ३६९।।

जो कन्या ही कन्या के साथ समलैंगिक कुकृत्य करे तो उस पर दो सौ पण का दण्ड लगाना चाहिए तथा योनिच्छद होने पर कन्या के पिता को दहेज का दुगना धन दण्ड-शुल्करूप में देना चाहिए। साथ ही दस कोड़े भी लगाने चाहिएँ।। ३६९।।

या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति।
अङ्गुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा।। ३७०।।

या पुनः कन्यामङ्गुलिप्रक्षेपेण स्त्री नाशयेत्सा तत्क्षणादेव शिरोमुण्डनं, अनुबन्धापेक्षयाङ्गुल्योरेव छेदनं, गर्दभेण च राजमार्गे वहनमर्हति।। ३७०।।

किन्तु जो स्त्री कन्या को अङ्गुली आदि का प्रयोग करके बिगाड़ देती है, वह उसी क्षण सिर मूंडने योग्य होती है अथवा उसकी दो अङ्गुलियों को काट देना चाहिए और गधे पर बैठाकर राजमार्ग में घुमाना चाहिए।। ३७०।।

भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते।। ३७१।।

या स्त्री प्रबलधनिकपित्रादिबान्धवदर्पेण सौन्दर्यादिगुणदर्पेण च पतिं पुरुषान्तरोपगमनाल्लङ्घयेत्तां राजा बहुजनाकीर्णे देशे श्वभिर्भक्षयेत्।। ३७१।।

जो स्त्री अपनी जाति, सौन्दर्यादि गुण के अहङ्कारवश पति का परित्याग करके व्यभिचार करे, तो राजा जीतेजी उसे सार्वजनिक स्थान पर बहुत से लोगों के सामने कुत्तों से नुचवा डाले।। ३७१।।

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्।। ३७२।।

अनन्तरोक्तं जारं पापकारिणं पुरुषमयोमयशयने प्रज्वलिते राजा दाहयेत्। तत्र शयने वध्यघातिनः काष्ठानि निःक्षिपेयुर्यावत्पापकारी दग्धः स्यात्।। ३७२।।

इसीप्रकार जो व्यक्ति अपनी स्त्री को छोड़कर परस्त्री (वेश्यादि) गमन करे, तो उस पापी को अग्नि से तप्त लोहे के पलङ्ग पर लिटाकर सबके समक्ष जला डाले। साथ ही आसपास खड़े हुए लोग उस पर जलती हुई लकड़ियां फेंकें, जिससे वह पापी पूर्णरूप से भस्म हो जाए।। ३७२।।

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु।। ३७३।।

परस्त्रीगमनेन दुष्टस्य पुंसोऽदण्डितस्य च संवत्सरातिक्रमेणाभिशस्तस्य पूर्वदण्डाद्द्विगुणो दमः कार्यः। तथा व्राज्यजायागमने यो दण्डः परिकल्पितः चाण्डाल्या सह निर्देशाच्चाण्डालीगमनरूपः तथा चाण्डालीगमने यो दण्डः "सहस्त्रं त्वन्त्यजस्त्रियम्" (अ० ८ श्लो० ३८५) इति, संवत्सरे त्वतीते यदि तामेव व्रात्यजायां तामेव चाण्डालीं पुनर्गच्छति तदा द्विगुणः कर्तव्यः। एतत्पूर्वस्यैवोदाहरणद्वयं व्रात्यजायागमनेऽपि चाण्डालीगमनदण्डप्रदर्शनार्थम्। सर्वस्यैव तु पूर्वाभिशस्तदण्डितस्य संवत्सरातिक्रमे पुनस्तामेव गच्छतः पूर्वाद्द्विगुणो दण्डो बोद्धव्यः।। ३७३।।

एक वर्ष से भी अधिक समय तक परस्त्री गमन करने वाले दुष्ट व्यक्ति को पूर्व में कहे गए दण्ड से भी दुगना दण्ड देना चाहिए। इसीप्रकार पतिता एवं चाण्डाल स्त्रियों से सहवास करने पर भी उतने ही दण्ड का विधान किया गया है।। ३७३।।

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन्।
अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते।। ३७४।।

भर्त्रादिभी रक्षितामरक्षितां वा द्विजातिस्त्रियं यदि शूद्रो गच्छेत्तदा रक्षितां रक्षारहितां गच्छंल्लिङ्गसर्वस्वाभ्यां वियोजनीय:। अत्राङ्गविशेषाश्रवणेऽपि आर्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गो-द्धार:। ''सर्वस्वहरणं गुप्तां चेद्वधोऽधिक:'' इति गोतमवचनाल्लिङ्गच्छेद:। रक्षितां तु गच्छञ्छरीरधनहीन: कर्तव्य:।। ३७४।।

पति आदि द्वारा रक्षित अथवा अरक्षित द्विजाति की स्त्री को यदि शूद्र व्यक्ति दूषित करता है तो अरक्षित स्त्री से सम्बन्ध रखने पर गुप्ताङ्ग काट लेना चाहिए तथा रक्षित सवर्ण स्त्री से सम्पर्क रखने पर उसका सर्वस्व हरण कर लेना चाहिए।। ३७४।।

वैश्य: सर्वस्वदण्ड: स्यात्संवत्सरनिरोधत:।
सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति।। ३७५।।

वैश्यस्य गुप्तब्राह्मणीगमने संवत्सरबन्धादनन्तरं सर्वस्वग्रहणरूपो दण्ड: कार्य:। क्षत्रियागमने तु ''वैश्यश्चेत्क्षत्रियाम्'' (अ० ८ श्लो० ३८२) इति वक्ष्यति। क्षत्रियो गुप्तब्राह्मणीगमने सहस्रं दण्डनीय:। खरमूत्रेण चास्य मुण्डनं कर्तव्यम्।। ३७५।।

इसीप्रकार वैश्य यदि परस्त्री को वर्षपर्यन्त अपने घर में रखे तो उसे 'सर्वस्व हरण' रूप दण्ड प्रदान करना चाहिए तथा क्षत्रिय इसके लिए एक हजार पण दण्ड देने योग्य एवं मूत्र द्वारा सिर मुण्डवाने योग्य होता है।। ३७५।।

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ।
वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम्।। ३७६।।

अरक्षितां तु ब्राह्मणीं यदि वैश्यक्षत्रियौ गच्छतस्तदा वैश्यं पञ्चशतदण्डयुक्तं कुर्यात्। क्षत्रियं पुन: सहस्रदण्डोपतम्। वैश्ये चायं पञ्चशतदण्ड: शूद्राभ्रमादिना निर्गुणजातिमात्रोपजीविब्राह्मणीगमनविषय:। तदितरब्राह्मणीगमने वैश्यस्यापि सहस्रं दण्ड एव।। ३७६।।

इसके अतिरिक्त यदि पति आदि द्वारा अरक्षित ब्राह्मणवर्ण की स्त्री के साथ वैश्य एवं क्षत्रिय वर्ण का व्यक्ति गमन करे तो वैश्य को पचास एवं क्षत्रिय को एक हजार पण का दण्ड देना चाहिए।। ३७६।।

उभावपि तु तावेन ब्राह्मण्या गुप्तया सह।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना।। ३७७।।

तावेवोभावपि क्षत्रियवैश्यौ ब्राह्मण्या रक्षितया सह कृतमैथुनौ शूद्रवत्सर्वेण हीयेते इति दण्ड्यौ। यद्वा कटेनावेष्ट्य दग्धव्यौ। तत्र ''वैश्यं लोहितदर्भैः क्षत्रियं शरपत्रैर्वावेष्ट्य'' इति वसिष्ठोक्तो विशेषो ग्राह्यः। पूर्वं ''सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो'' ''वैश्यः सर्वस्वम्'' इत्युक्तत्वादयं प्राणान्तिकदण्डो गुणवद्ब्राह्मणीगमन विषयो बोद्धव्यः।। ३७७।।

और यदि ये दोनों (वैश्य और क्षत्रिय) ही रक्षित ब्राह्मण स्त्री के साथ सहवास करें तो विशेषरूप से पतित हुए, ये दोनों ही शूद्र के समान कठोर दण्ड देने योग्य हैं अथवा इन्हें चटाई में लपेटकर अग्नि द्वारा जला डालना चाहिए।। ३७७।।

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः।। ३७८।।

रक्षितां विप्रां ब्राह्मणो बलेनोपगच्छन्सहस्रं दण्ड्यः स्यात्। इच्छन्त्या पुनः सकृन्मैथुने पञ्चशतानि दण्डनीयो भवेत्।। ३७८।।

इसीप्रकार पति आदि द्वारा रक्षित ब्राह्मणी के साथ ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति यदि बलपूर्वक संभोग करता है तो एक हजार पण तथा चाहती हुई के साथ सहवास करने पर पाँच सौ पणों का दण्ड देने योग्य होता है।। ३७८।।

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते।
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत्।। ३७९।।

ब्राह्मणस्य वधदण्डस्थाने शिरोमुण्डनं दण्डः शास्त्रेणोपदिश्यते। क्षत्रियादीनां पुनरुक्तेन घातेन दण्डो भवति।। ३७९।।

ब्राह्मण को वधदण्ड स्थान पर ले जाकर उसका सिर मुण्डवाना ही 'प्राणदण्ड' कहलाता है, जबकि अन्य वर्ण वाले लोगों का प्राणों के अन्तपर्यन्त 'प्राणान्तिक' दण्ड होता है।। ३७९।।

न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम्।। ३८०।।

ब्राह्मणं सर्वपापकारिणमपि कदाचिन्न हन्यादपि तु सर्वस्वयुक्तमक्षतशरीरं राष्ट्रान्निर्वासयेत्।। ३८०।।

सभी प्रकार के पापों में लिप्त होने पर भी ब्राह्मण को कभी नहीं मारना चाहिए, अपितु अक्षत शरीर वाले इसे सम्पूर्ण धन सहित देश से बाहर निकाल देना चाहिए।। ३८०।।

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि।
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत्।। ३८१।।

ब्राह्मणवधान्महान्पृथिव्यामधर्मो नास्ति। तस्माद्राजा सर्वपापकारिणो ब्राह्मणस्य मनसापि वधं न चिन्तयेत्।। ३८१।।

इस पृथ्वी पर ब्राह्मण वध से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है, इसलिए राजा को कभी मन से भी इसके वध के विषय में नहीं सोचना चाहिए।। ३८१।।

वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत्।
यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः।। ३८२।।
(क्षत्रियां चैव वैश्यां च गुप्तां तु ब्राह्मणो व्रजन्।
न मूत्रमुण्डः कर्तव्यो दाप्यस्तूत्तमसाहसम्।। २७।।)

रक्षितां क्षत्रियां यदि वैश्यो गच्छेत्क्षत्रियो वा यदि रक्षितां वैश्यां तदा तयोर्ब्राह्मण्यामगुप्तायां गमने यौ दण्डावुक्तौ "वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्त्रिणम्" (अ० ८ श्लो० ३७६) इति द्वावेव दण्डौ वैश्यक्षत्रिययोर्भवतः। अयं च वैश्यस्य रक्षितक्षत्रियागमने पञ्चशतरूपी दण्डो लघुत्वाद्गुणवद्वैश्यस्य निर्गुणजातिमात्रोपजीविक्षत्रियायाः शूद्राभ्रान्त्यादिगमनविषयो बौद्धव्यः। क्षत्रियस्य रक्षितवैश्यायां ज्ञानतो युक्तः सहस्त्रं दण्डः।। ३८२।।

पति आदि द्वारा रक्षित क्षत्रिय स्त्री से यदि वैश्य गमन करता है अथवा वैश्यस्त्री से क्षत्रिय गमन करता है तो जो पूर्व में अरक्षित ब्राह्मण वर्ण की स्त्री के सम्बन्धों में दण्ड निर्धारित किया गया है, वे दोनों भी उसी दण्ड के योग्य हैं।। ३८२।।

(इसीप्रकार यदि ब्राह्मण, पति आदि द्वारा रक्षित क्षत्रिय वर्ण की स्त्री या वैश्य वर्ण की स्त्री से सम्पर्क करे तो मूत्र द्वारा मुण्डन नहीं कराना चाहिए, अपितु उसे उत्तम साहस अर्थात् एक हजार पण का दण्ड दिया जाए।। २७।।)

सहस्त्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्।
शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहस्रो वै भवेद्दमः।। ३८३।।

क्षत्रियावैश्ये रक्षिते ब्राह्मणो व्रजन्सहस्त्रं दण्डं दापनीयः। शूद्रायां रक्षितायां क्षत्रियवैश्ययोर्गमने सहस्रमेव दण्डः स्यात्।। ३८३।।

इसके अतिरिक्त पति आदि द्वारा रक्षा की गई क्षत्रिय एवं वैश्य स्त्री से यदि कोई ब्राह्मण गमन करे तो उसे एक हजार पण का दण्ड देना चाहिए। इसीप्रकार यदि क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण के व्यक्ति भलीप्रकार रक्षा की गई शूद्रा स्त्री से व्यभिचार करें तो भी एक हजार पण का दण्ड ही दिया जाना चाहिए।। ३८३।।

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः।
मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा।। ३८४।।

अरक्षितक्षत्रियागमने वैश्यस्य पञ्चशतानि दण्डः स्यात्। क्षत्रियस्य त्वरक्षितागमने गर्दभमूत्रेण मुण्डनं पञ्चशतरूपं वा दण्डमाप्नुयात्।। ३८४।।

इसके अलावा अरक्षित क्षत्रिय स्त्री के साथ गमन से वैश्य को पाँच सौ पण का दण्ड तथा क्षत्रिय को भी पाँच सौ पण का दण्ड देना चाहिए अथवा यदि चाहे तो मूत्र से मुण्डन भी कराया जा सकता है।। ३८४।।

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शुद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं तवन्त्यजस्त्रियम्।। ३८५।।
(शूद्रोत्पन्नांशपापीयान्नवै मुच्येत किल्विषात्।
तेभ्यो दण्डाहृतं द्रव्यं न कोशे संप्रवेशयेत्।। २८।।
अयाजिकं तु तद्राजा दद्याद्भृतकवेतनम्।
यथादण्डगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यस्तुलंभयेत्।। २९।।
भार्या पुरोहितस्तेना ये चान्ये तद्विधा जनाः।। ३०।।)

अरक्षितां क्षत्रियां वैश्यां शूद्रां वा ब्राह्मणो गच्छन्पञ्चशतानि दण्ड्यःस्यात्। अन्ते भवोऽन्त्यजः यस्मादधमो नास्ति चाण्डालादिस्तस्य स्त्रियं गच्छन्सहस्रं दण्ड्यः।। ३८५।।

इसीप्रकार अरक्षित क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र स्त्री के साथ ब्राह्मण अभिगमन करे तो पाँच सौ पण का दण्ड तथा चाण्डालादि अत्यधिक निम्न स्त्री के साथ गमन करने पर उसे सहस्र पण का दण्ड देना चाहिए।। ३८५।।

(शूद्र के अंश से उत्पन्न पापी कभी भी पाप से मुक्त नहीं होते हैं। अतः उनसे दण्डस्वरूप प्राप्त किया गया धन राजा को अपने कोश में नहीं डालना चाहिए।। २८।।

वह धन राजा को यजन न करने वाले सेवकों को वेतन स्वरूप प्रदान कर देना चाहिए। अथवा जैसे-जैसे दण्ड का धन प्राप्त हो, वैसे-वैसे उसे ब्राह्मणों को दान दे देना चाहिए।। २९।।

इस अतिरिक्त वह धन पत्नी, पुरोहित आदि इसीप्रकार के लोगों को भी दिया जा सकता है।। ३०।।)

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्।। ३८६।।

यस्य राज्ञो राष्ट्रे चौर:, परदारगामी, परुषवादी, गृहदाहादिसाहसकारी, दण्डपारुष्यकर्ता च नास्ति स राजा शक्रपुरं याति।। ३८६।।

जिस राजा के राज्य में चोर, परस्त्रीगामी, दुष्ट वचनों को बोलने वाला, डाकू एवं राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला, ये नहीं होते हैं, वह राजा इन्द्रलोक का अधिकारी होता है।। ३८६।।

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके।
साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः।। ३८७।।

एतेषां स्तेनादीनां पञ्चानां स्वराष्ट्रे निग्रहः समानजातीयेषु राजसु मध्ये राजा साम्राज्यकृदिह लोके च यशस्करो भवति।। ३८७।।

जिस राजा के अपने राज्य में इन पाँच प्रकार के लोगों को पूर्णतया नियन्त्रित रखा जाता है। राजाओं में शिरोमणि वह राजा संसार में यशस्वी होता है।। ३८७।।

ऋत्विजं यस्त्यजेद्यात्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि।
शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम्।। ३८८।।

यो याज्यः ऋत्विजं कर्मानुष्ठानसमर्थमतिपातकादिदोषरहितमृत्विग्वा याज्यमदुष्टं त्यजति तयोः शतं शतं दण्डः कार्य इति दण्डप्रसङ्गादिदमुक्तम्।। ३८८।।

कार्य करने में समर्थ एवं सज्जन पुरोहित का जो यजमान परित्याग कर देता है। इसीप्रकार जो ऋत्विक् ऐसे यजमान को छोड़ देता है, तो इन दोनों पर ही राजा को सौ-सौ पण का दण्ड लगाना चाहिए।। ३८८।।

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति।
त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्।। ३८९।।

मातृपितृभार्यापुत्रास्त्यागमपोषणशुश्रूषणाद्यकरणात्मकं नार्हन्ति। तस्मादेतान्पातकादिरहितान्परित्यजन्नेकैकपरित्यागे राज्ञा षट् शतानि दण्ड्यः।। ३८९।।

इस संसार में माता, पिता, स्त्री, पुत्र ये सभी विपरीत परिस्थितियों में भी त्याग के योग्य नहीं हैं, किन्तु निर्दोष होते हुए भी जो इनका परित्याग करता है। वह राजा द्वारा छः सौ पण दण्ड देने योग्य होता है।। ३८९।।

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः।
न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः।। ३९०।।

द्विजातीनां गार्हस्थ्याद्याश्रमविषये कार्येऽयं शास्त्रार्थो नायं शास्त्रार्थ इति परस्परं

जातविवादानां राजा स्वीयहितं चिकीर्षुरयं शास्त्रार्थ इति सदृशान्विशेषेण न ब्रूयात्।। ३९०।।

गृहस्थादि विभिन्न आश्रमों में रहने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य में परस्पर शास्त्रार्थ-विषयक विवाद होने पर, अपना हित चाहने वाले राजा को इस विवाद में नहीं पड़ना चाहिए, यही राजा का धर्म है।। ३९०।।

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः।
सांत्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत्।। ३९१।।

यो यादृशीं पूजामर्हति तं तथा पूजयित्वा अन्यैर्ब्राह्मणैः सह प्रथमं प्रीत्या अपगतकोपं कृत्वा तत एषां यः स्वधर्मस्तं बोधयेत्।। ३९१।।

इसके अतिरिक्त आरम्भ में इन शास्त्रार्थ करने वालों की यथायोग्य पूजा करके तथा ब्राह्मणों सहित इन सबके कोप को शान्त करके, राजा को अपने धर्म का निर्वाह करना चाहिए।। ३९१।।

प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे।
अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम्।। ३९२।।

निरन्तरगृहवासी प्रातिवेश्यः तदन्तरगृहवास्यनुवेश्यः, यस्मिन्नुत्सवे विंशतिरन्ये ब्राह्मणा भोज्यन्ते तत्र प्रातिवेश्यानुवेश्यौ "प्रातिवेश्यब्राह्मणातिक्रमकारी च" इति विष्णुवचनाद्ब्राह्मणौ भोजनार्हावभोजयन्ब्राह्मण उत्तरत्र हैरण्यादिग्रहणादिह रौप्यमाषं दण्डमर्हति।। ३९२।।

अपने कल्याण के लिए जो ब्राह्मण, बीस द्विजातियों को भोजन कराता है तथा अपने घर में निरन्तर रहने वाले या कभी-कभी रहने वाले योग्य ब्राह्मणों को आमन्त्रित नहीं करता है, वह एक माशा भर चांदी के दण्ड के योग्य होता है।। ३९२।।

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन्।
तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैव माषकम्।। ३९३।।

विद्याचारवांस्तथाविधमेव गुणवन्तं विभवकार्येषु विवाहादिषु प्रकृतत्वात्प्रातिवेश्यानुवेश्यावभोजयन् तदन्नं भोजिताद्द्विगुणमत्रं दाप्यो हिरण्यमाषकं च राज्ञः।। ३९३।।

विवाहादि आनन्दोत्सवों के अवसर पर जो वेदपाठी ब्राह्मण, सज्जन एवं वेदपाठी ब्राह्मण को भोजन नहीं कराता है। उस व्यक्ति पर राजा दुगने अन्न एवं एक माशा सोना दण्ड निर्धारित करे।। ३९३।।

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः।
श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम्।। ३९४।।

अन्धो बधिरः पङ्गुः संपूर्णसप्तविर्षः। सप्तत्येति " प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" इति तृतीया। श्रोत्रियेषु धनधान्यशुश्रूषादिनोपकारकाः केनचिदपि क्षीणकोशेनापि राज्ञा त्वनुग्राह्याः करं न दापनीयाः।। ३९४।।

अन्धे, मूर्ख, पीठ से सरकने वाले, सत्तर वर्ष के वृद्ध एवं वेदपाठी ब्राह्मण की सेवा करने वाले व्यक्ति से किसी भी राजा को कर ग्रहण नहीं करना चाहिए।। ३९४।।

श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम्।
महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा।। ३९५।।

विद्याचारवन्तं ब्राह्मणं रोगिणं पुत्रवियोगादिदु:खितं बालवृद्धदरिद्रमहाकुलप्रसूतोदारचरितान् राजा दानमानहितकरणैः संपूजयेत्सदा।। ३९५।।

इसके अतिरिक्त राजा को अपने राज्य में स्थित वेदपाठी ब्राह्मण, किसी रोग से पीड़ित व्यक्ति बालक, वृद्ध, अत्यधिक निर्धन, महान् कुल में जन्म लेने वाले एवं श्रेष्ठ व्यक्ति का सदैव सम्मान करना चाहिए।। ३९५।।

शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे ने नेनिज्यान्नेजकः शनैः।
न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत्।। ३९६।।

शाल्मल्यादिवृक्षसंबन्धिफलके अपरुषे रजकः शनै शनैर्वासांसि प्रक्षालयेन्न परकीयैर्वस्त्रैरन्यवस्त्राणि नयेन्न चान्यवासांस्यन्यपरिधानार्थं दद्यात्। यद्येवं कुर्यात्तादासौ दण्ड्यः स्यात्।। ३९६।।

धोबी को हमेशा शाल्मली वृक्ष की लकड़ी से निर्मित चिकने पट्टे पर कपड़ों को धीरे-धीरे धोना चाहिए। न ही किसी के वस्त्रों से अन्य वस्त्रों को बदले और न ही किसी के वस्त्र दूसरे को पहनने के लिए प्रदान करे।। ३९६।।

तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम्।
अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम्।। ३९७।।

तन्तुवायो वस्त्रनिर्माणार्थं दश पलानि सूत्रं गृहीत्वा पिष्टभक्ष्याद्यनुप्रवेशादेकादशपलं वस्त्रं दद्यात्। यदि ततो न्यूनं दद्यात्तदा द्वादश पणान् राज्ञा दाप्यः स्वामिनश्च तुष्टिः कर्तव्यैव।। ३९७।।

वस्त्र बुनने वाले जुलाहे का कर्त्तव्य है कि वह दस पल सूत लेकर, व्यक्ति को एक पल अधिक अर्थात् ग्यारह पल कपड़ा तोलकर प्रदान करे, किन्तु इसके विपरीत आचरण करने पर वह दस पण के दण्ड के योग्य होता है।। ३९७।।

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः।
कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत्।। ३९८।।

स्थलजलपथव्यवहारतो राजग्राह्यो भागः शुल्कम्। तस्यावस्थानषे ये कुशला स्तथा सर्वपण्यानां सारासारज्ञास्ते पण्येषु यमर्घं मूल्यमनुरूपं कुर्युस्ततो लाभधनाद्विंशतिभागं राजा गृह्णीयात्।। ३९८।।

शुल्क लेने के स्थान चुंगी आदि पर कुशल लोगों की नियुक्ति करनी चाहिए जो सभी विक्रय योग्य वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में दक्ष हों। वे बाजार के अनुसार मूल्य का निर्धारण करके लाभ प्राप्त करें तथा राजा उस लाभ में से बीसवाँ भाग 'कर' रूप में प्राप्त करे।। ३९८।।

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च।
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः।। ३९९।।

राज्ञः संबन्धितया यानि विक्रेयद्रव्याणि प्रख्यातानि राजोपयोगीनि हस्त्यश्वादीनि च तद्देशोद्भवानि च प्रतिषिद्धानि च। यथा दुर्भिक्षे धान्यं देशान्तरं न नेयमिति तानि लोभाद्देशान्तरं नयतो वणिजः सर्वहरणं राजा कुर्यात्।। ३९९।।

राजा के प्रसिद्ध पात्र एवं देश के बाहर ले जाने से निषेध की गई वस्तुएँ, इन सबको लोभवश अन्य देश में ले जाने वाले व्यक्ति का, राजा को सर्वस्व हरण कर लेना चाहिए।। ३९९।।

शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी।
मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम्।। ४००।।

शुल्कमोषणायोत्पथेन गच्छति। अकाले रात्र्यादौ वा क्रयविक्रयं करोति। शुल्कखण्डनार्थं विक्रेयद्रव्यस्याल्पां संख्यां वक्ति। राजदेयमपलपितमष्टगुणं दण्डरूपतया दाप्यः।। ४००।।

चुंगी के स्थान का परित्याग करके अन्य मार्ग से विक्रय योग्य वस्तुएँ ले जाने वाला असमय, रात्रि आदि में चोरी से समान को खरीदने या बेचने वाला तथा माप-तोल आदि के विषय में झूठ बोलने वाला, ये सभी वस्तु के मूल्य के आठ गुने के बराबर जुर्माने के योग्य होते हैं।। ४००।।

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ।। ४०१।।

कियतो दूरादागतमिति देशान्तरीयद्रव्यस्यागमनं, कियद्दूरं नीयत इति स्वदेशोद्भवस्य निर्गमं कियत्कालस्थितं कियन्मूल्यं लभत इति स्थितं, तथा कियती वृद्धिरित्यत्र कर्मकाराणां भक्ताच्छादनादिना कियानपक्षय इत्येवं विचार्य, तथा वणिजां क्रेतॄणां यथा पीडा न भवति तथा सर्वपण्यानां क्रयविक्रयौ कारयेत्।। ४०१।।

राजा को सभी खरीदने और बेचने की वस्तुओं के सम्बन्ध में लाभ-हानि स्थान, देश में लायी जाने वाली, देश से बाहर भेजी जाने वाली वस्तुएँ, इन सब बातों पर भलीप्रकार विचार करके ही सभी विक्रययोग्य वस्तुओं का मूल्य निश्चित कराना चाहिए।। ४०१।।

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते।
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः।। ४०२।।

आगमनिर्गमोपाययोगादेः पञ्चरात्रे पण्यानामनियतत्वादस्थिरार्घादीनां पञ्चरात्रे गते स्थिरप्रायार्घाणां पक्षे पक्षे गते वणिजामर्घविदां प्रत्यक्षं नृपतिराप्तपुरुषैर्व्यवस्थां कुर्यात्।। ४०२।।

इतना ही नहीं राजा को प्रत्येक पाँच दिन के बाद या प्रत्येक पन्द्रह दिन के पश्चात् सभी व्यापारियों के सामने (उपर्युक्त बातों को दृष्टिगत रखते हुए) वस्तुओं का मूल्य निर्धारण करना चाहिए।। ४०२।।

तुलामानं प्रतिमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत्।। ४०३।।

तुलामानं सुवर्णादीनां परिच्छेदार्थं यत्क्रियते प्रतिमानं प्रस्थद्रोणादि तत्सर्वं स्वनिरूपितं यथा स्यात्। षट्सु षट्सु मासेषु गतेषु पुनस्तत्सर्वं सभ्यपुरुषैर्नृपतिः परीक्षयेत्।। ४०३।।

इसके अतिरिक्त व्यापारियों के तराजू और बाट आदि सभी का भलीप्रकार निरीक्षण करना चाहिए। साथ ही इनका प्रत्येक छः माह में पुनः परीक्षण भी आवश्यक होता है।। ४०३।।

पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे।
पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान्।। ४०४।।

"भाण्डपूर्णानि यानानि" (अ० ८ श्लो० ४०५) इति वक्ष्यति। तेन रिक्तशकटादि

यानं तरविषये पणं दाप्यम्। एवं पुरुषभारोऽर्धपणं तरपण्यं दाप्यः। पशुश्च गवादिः पणचतुर्थभागं, भाररहितो मनुष्यः पणाष्टभागं दापनीयः।। ४०४।।

खाली गाड़ी का नाव से पार उतारने के लिए एक पण, एक पुरुष द्वारा ढोए जाने योग्य भार का आधा पण, पशु को पार ले जाने के लिए चौथाई पण एवं स्त्री और खाली मनुष्य को पार ले जाने पर पण का आठवां हिस्सा किराया लेना चाहिए ।। ४०४।।

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः।
रिक्तभाण्डानि यत्किंचित्पुमांसश्चापरिच्छदाः।। ४०५।।

पण्यद्रव्यपूर्णानि शकटादीनि द्रव्यगतोत्कर्षापेक्षया तरं दाप्यानि। द्रव्यरहितानि च गोणीकम्बलादीनि यत्किंचित्स्वल्पं तार्यं दाप्यम्। अपरिच्छदा दरिद्रा उक्तपदार्थ-दानापेक्षया यत्किंचिद्दापनीयाः।। ४०५।।

वस्तुओं से भरे हुए वाहनों को पार उतारने का किराया, उनके वजन के अनुसार देना चाहिए। जबकि खाली बर्तन और निर्धन व्यक्तियों से पार उतारने का शुल्क नाममात्र को जितना सम्भव हो ले लेवे।। ४०५।।

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरौ भवेत्।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम्।। ४०६।।

पूर्वं पारावारे तरणार्थमुक्तम्। इदानीं नदीमार्गे दूराध्वनि गन्तव्ये प्रबलवेगस्थि-रोदकनद्यादिदेशग्रीष्मवर्षादिकालापेक्षया तरमूल्यं कल्पनीयम्। एतच्च नदीतीरे बोद्धव्यम्। समुद्रे तु वाताधीनपोतगमनत्वात्स्वायत्तत्वाभवे तरपण्यविशेषज्ञापकं नदीवद्द्यूयोजनादिकं नास्ति। ततस्तत्रोचितमेव तरपण्यं ग्राह्यम्।। ४०६।।

नदी का लम्बा मार्ग पार करने के लिए देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार किराया निश्चित करना चाहिए। यह सिद्धान्त नदी के तट के लिए मानना चाहिए समुद्र के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होगा।। ४०६।।

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः।
ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे।। ४०७।।

संजातगर्भा स्त्री मासद्वयादूर्ध्वं, तथा प्रव्रजितो भिक्षुर्मुनिर्वानप्रस्थो, ब्राह्मणाश्च लिङ्गिनो ब्रह्मचारिणः तरमूल्यं तरे न दाप्याः।। ४०७।।

किन्तु दो माह से अधिक की गर्भिणी स्त्री, संन्यासी, वानप्रस्थी, ब्राह्मण एवं ब्रह्मचारियों के द्वारा नदी को पार करने पर, नाविक को कुछ भी शुल्क नहीं देना चाहिए।। ४०७।।

यन्नावि किंचिद्दाशानां विशीर्येतापराधतः।
तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोंऽशतः।। ४०८।।

नौकारूढानां यत्किंचिन्नाविकापराधेन नष्टं द्रव्यं तन्नाविकैरेव मिलित्वा यथाभागं दातव्यम्।। ४०८।।

यदि नाव चलाने वालों की त्रुटि के कारण नाव में रखी हुई वस्तु विनष्ट हो जाए तो सभी नाविकों को मिलकर ही अपने-अपने हिस्से से उसे पूरा करना चाहिए।। ४०८।।

एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः।
दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः।। ४०९।।

नाविकापराधाद्यदुदके नष्टं तन्नाविकैरेव दातव्यम्। पूर्वोक्तमनूदितं ''दैविके नास्ति निग्रहः'' इति विधातुं नौयायिनामेष व्यवहारस्य निर्णय उक्तः। दैवोपजातवातादिना नौभङ्गेन धनादिनाशे नाविकानां न दण्डः।। ४०९।।

इस विषय में यह बात उल्लेखनीय है कि नाविकों की गलती के कारण वस्तु के विनष्ट होने पर ही वे उसकी भरपाई करेंगे, किसी दैविक दुर्घटना से होने वाली हानि पर नहीं। यहाँ तक यह नाविकों के व्यवहार के विषय में निर्णय का कथन किया गया।। ४०९।।

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च।
पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम्।। ४१०।।

वाणिज्यं कुसीदकृषिपशुरक्षणानि वैश्यं कारयेत्। शूद्रं च राजा द्विजातीनां दास्यं कारयेत्। अकुर्वाणौ वैश्यशूद्रौ राज्ञो दण्ड्यावित्येवमर्थोऽयमिहोपदेशः।। ४१०।।

राजा को वैश्य वर्ण के लोगों से व्यापार, ब्याज का लेन-देन, कृषिकर्म एवं पशुपालन का कार्य तथा शूद्रवर्ण के लोगों से द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा का कार्य ही कराना चाहिए।। ४१०।।

क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ।
बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन्।। ४११।।

ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्यौ भृत्यभावेन पीडितौ करुणया स्वानि कर्माणि रक्षणकृष्यादीनि कारयन् ग्रासाच्छादनादिना पोषयेत्। एवं बलवान्ब्राह्मणस्तावुपगतावबिभ्रन् राज्ञा दण्डनीय इति प्रकरणसामर्थ्याद्गमयते।। ४११।।

यदि क्षत्रिय और वैश्यवृत्ति के अभाव में पीड़ित हों तो, ब्राह्मण उनसे अपने-अपने रक्षण-कृषि आदि कार्यों को कराता हुआ दयापूर्वक उनका भरणपोषण करे।। ४११।।

दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान्।
अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्।। ४१२।।

प्रभवतो भावः प्राभवत्यम्। ब्राह्मणः कृतोपनयनान्द्विजातीननिच्छतः प्रभुत्वेन लोभाद्दास्यकर्म पादधावनादि कारयन् षट् शतानि दण्ड्यः।। ४१२।।

किन्तु यदि ब्राह्मण सामर्थ्यसम्पन्न होने से या लोभवश किसी अनिच्छुक एवं संस्कारी ब्राह्मणों से दासकर्म कराता है, तो राजा को उस पर छः सौ पण का दण्ड निर्धारित करना चाहिए।। ४१२।।

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा।। ४१३।।

शूद्रं पूनर्भक्तादिभृतमभृतं वा दास्यं कारयेत्। यस्मादसौ ब्राह्मणस्य दास्यायैव प्रजापतिना सृष्टः।। ४१३।।

जबकि शूद्र खरीदा गया हो अथवा न खरीदा गया हो, उससे तो ब्राह्मण को सेवाकार्य ही कराना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा ने इसे ब्राह्मण की सेवा के लिए ही उत्पन्न किया है।। ४१३।।

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति।। ४१४।।

यस्मादसौ ध्वजाहृतत्वादिना दासत्वं गतः स तेन त्यक्तः स्वदास्याभावेऽपि शूद्रो ब्राह्मणस्य दास्यान्न विमुच्यते। तस्माद्दास्यं शूद्रस्य सहजम्। कः शूद्रत्वजातिमिव दास्यमपनयति। अदृष्टार्थमप्यवश्यं शूद्रेण ब्राह्मणादिद्विजशुश्रूषा कर्तव्येत्येवपरमेतत्। अन्यथा वक्ष्यमाणदास्यकरणपरिगणनमनर्थकं स्यात्।। ४१४।।

स्वामी द्वारा मुक्त किया गया भी शूद्र अपने दास्यकर्म से मुक्त नहीं होता है, क्योंकि उसका वह स्वाभाविक धर्म है। अतः उससे भला उसको कौन मुक्त कर सकता है?।। ४१४।।

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ।
पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः।। ४१५।।

संग्रामस्वामिसकाशाज्जितो, भक्तलोभाद्युपगतदास्यो भक्तदासः तथा दासीपुत्रः,

मूल्येन क्रीतः, अन्येन दत्तः, पित्रादिक्रमागतः, दण्डादिधनशुद्ध्यर्थं स्वीकृतदास्यभावः, इत्येतानि सप्त ध्वजाहृतत्वादीनि दासत्वकारणानि।। ४१५।।

युद्ध में जीतकर लाया हुआ, जीविका के लोभ में आया हुआ, घर में दासकर्म करने वाले व्यक्ति की सन्तान, खरीदा हुआ, उपहारस्वरूप दान में दिया हुआ, पैतृक सेवक एवं दण्ड को चुकाने के लिए दास्य-कर्म को स्वीकार करने वाला, ये सात प्रकार के 'दास' कहे गए हैं।। ४१५।।

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्।। ४१६।।

पुत्रभार्यादासास्त्रयोऽमी निर्धना एव मन्वादिभिः स्मृताः। यस्माद्यद्धनं तेऽर्जयन्ति यस्य ते भार्यादयस्तस्य तद्धनं भवति। एतच्च भार्यादीनां पारतन्त्र्यप्रदर्शनार्थपरम्। अध्यग्न्यादेः षड्विधस्य स्त्रीधनस्य वक्ष्यमाणत्वात् धनसाध्यादृष्टार्थकर्मोपदेशार्थं च भार्यादीनां पत्न्यधिकरणे पत्न्यर्थेऽपि यागाधिकारस्योक्तत्वात्। स्त्रीपुंसयोर्मध्ये एकधने चानुमतिद्वारेण स्त्रिया अपि कर्तृत्वात्।। ४१६।।

पत्नी, पुत्र और दास ये तीनों ही निर्धन कहे गए हैं, क्योंकि ये जो कुछ भी कमाते हैं, वह धन उसका होता है, जिनके ये होते हैं।। ४१६।।

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत्।
नहि तस्यास्ति किंचित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः।। ४१७।।

निर्विचिकित्समेव प्रकृतादासशूद्राद्धनग्रहणं कुर्याद्ब्राह्मणः। यतस्तस्य किंचिदपि स्वं नास्ति। यस्माद्भर्तृग्राह्यधनोऽसौ। एवं चापदि बलादपि दासाद्ब्राह्मणो धनं गृह्णन्न राज्ञा दण्डनीय इत्येवमर्थमेतदुच्यते।। ४१७।।

शूद्र द्वारा उपार्जित धन को ब्राह्मण निःसंकोच ग्रहण कर सकता है, क्योंकि उसका अपना कुछ भी नहीं होता है। अतः वह स्वामी द्वारा धन ग्रहण करने योग्य है।। ४१७।।

वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत्।। ४१८।।

वैश्यं कृष्यादीनि शूद्रं च द्विजातिशुश्रूषादीनि कर्माणि यत्नतो राजा कारयेत्। यस्मात्तौ स्वकर्मभ्यश्च्युतावशास्त्रीयोपार्जितधनग्रहणमदादिना जगदाकुली-कुर्याताम्।। ४१८।।

राजा को अपने राज्य में वैश्य एवं शूद्रों से प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने कार्य

करवाने चाहिएँ, क्योंकि अपने-अपने निश्चित कार्यों से विमुख होने पर ये दोनों संसार को व्याकुल कर सकते हैं।। ४१८।।

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च।। ४१९।।

प्रत्यहं तदधिकृतद्वारेण प्रारब्धदृष्टादृष्टार्थकर्मणां निष्पत्तिं नृपतिर्निरूपयेत्। तथा हस्त्यश्वादीनि किमद्य प्रविष्टं किं निःसृतमिति, सुवर्णरत्नोत्पत्तिस्थानानि, भाण्डागारं चावेक्षेत। व्यवहारदर्शनासक्तोऽपि राजा धर्मान्न परित्यजेदिति दर्शयितुमुक्तस्यापि पुनर्वचनम्।। ४१९।।

राजा को प्रारम्भ किए गए कार्यों की पूर्णता, हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहन, आय-व्यय दोनों का लेखा-जोखा, रत्नादि की खान एवं राज्य-कोश आदि का प्रतिदिन निरीक्षण करना चाहिए।। ४१९।।

एवं सर्वानिमान्राजा व्यवहारान्समापयन्।
व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्।। ४२०।।

एवमुक्तप्रकारेणैतान्सर्वानृणादानादीन्व्यवहारांस्तत्त्वतो निर्णयेनान्तं नयन्पापं सर्वमपहाय स्वर्गादिप्राप्तिरूपामुत्कृष्टां गतिं लभते।। ४२०।।

इसप्रकार इन सभी व्यवहारों को यथोचित ढंग से सम्पादित कराता हुआ राजा सभी पापों से विमुक्त होकर परमगति को प्राप्त करता है।। ४२०।।

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां राजधर्मे व्यवहारनिर्णये सामान्य-व्यवहारो नामाष्टमोऽध्यायः।। ८।।

।। इति श्रीकुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यामष्टमोऽध्यायः।। ८।।

।। इसप्रकार मानवधर्मशास्त्र में महर्षिभृगु द्वारा कही गई संहिता के अन्तर्गत अष्टम अध्याय पूर्ण हुआ।।

।। इसप्रकार डॉ. राकेश शास्त्री द्वारा सम्पादित मनुस्मृति के अष्टम अध्याय का हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।

अथ नवमोऽध्याय:

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्मे वर्त्मनि तिष्ठतो:।
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान्।। १।।

पुरुषस्य पत्न्याश्च धर्माय हि ते अन्योन्याव्यभिचारिलक्षणे वर्त्मनि वर्तमानाये: संयुक्तवियुक्तयोश्च धर्मान्पारंपर्यागतत्वेन नित्यान्वक्ष्यामि। दम्पत्यो: परस्परधर्मव्यतिक्रमे सत्यन्यतरज्ञाने दण्डेनापि स्वधर्मव्यवस्थानं राज्ञा कर्तव्यमिति व्यवहार मध्येऽस्योपदेश:।। १।।

इसके पश्चात् अब मैं धर्म के मार्ग पर चलने वाले स्त्री एवं पुरुषों के संयोग एवं वियोग विषयक सदैव पालन करने योग्य कर्त्तव्यों का कथन करूँगा।। १।।

अस्वतन्त्रा: स्त्रिय: कार्या: पुरुषै: स्वैर्दिवानिशम्।
विषयेषु च सज्जन्त्य: संस्थाप्या आत्मनो वशे।। २।।

स्वीयैर्भर्त्रादिभि: सदा स्त्रिय: स्वाधीना: कार्या: अनिषिद्धेष्वपि रूपरसादिविषयेषु प्रसक्ता अपि आत्मवशा: कार्या:।। २।।

अपनी स्त्रियों को पुरुष रात और दिन हमेशा अपने संरक्षण में रक्खें तथा विषयों के प्रति आकृष्ट होती हुई स्त्रियाँ तो विशेषरूप से अपने वश में ही रखनी चाहिएँ ।।२।।

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।। ३।।

पिता विवाहात्पूर्वं स्त्रियं रक्षेत्पश्चाद्भर्ता तदभावे पुत्रा:। तस्मान्न स्त्री कस्यांचिदप्यवस्थायां स्वातन्त्र्यं भजेत्। भर्ता रक्षति यौवने इत्यदि प्रायिकम्। अभर्तृपुत्राया: संनिहिताया: पित्रादिभिरपि रक्षणात्।। ३।।

क्योंकि स्त्री की कौमार्यावस्था में पिता उसकी रक्षा करता है तथा युवावस्था में पति उसकी रक्षा करता है और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं। अत: स्त्री को कभी भी स्वतन्त्र नहीं छोड़ना चाहिए।। ३।।

कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः।
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता।। ४।।

प्रदानकाले पिता तामददन् गर्ह्यो भवति। "प्रदानं प्रागृतोः" इति गौतमवचनादृतोः प्राक्प्रदानकालः। पतिश्च ऋतुकाले पत्नीमगच्छन्गर्हणीयो भवति। पत्यौ मृते मातरमरक्षन्पुत्रो निन्द्यः स्यात्।। ४।।

पुत्री के विवाह योग्य होने पर उसका कन्यादान न करने वाला पिता निन्दनीय है। इसीप्रकार ऋतुकाल में पत्नी से समागम न करने वाला पति गर्हित होता है तथा पिता की मृत्यु होने पर माता की रक्षा न करने वाला पुत्र भी निन्दा के योग्य होता है।।४।।

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः।। ५।।
(भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता।
प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः।। १।।)

स्वल्पेभ्योऽपि दुःसङ्गेभ्यो दौःशील्यसंपादकेभ्यो विशेषेण स्त्रियो रक्षणीयाः किंपुनर्महद्भ्यः। यस्मादुपेक्षितरक्षणाद्द्वयोः पितृभर्तृगणयोः संतापं दापयेयुः।। ५।।

छोटे से छोटे प्रसङ्ग के अवसरों पर भी स्त्रियाँ विशेषरूप से सुरक्षा के योग्य होती हैं, क्योंकि अरक्षित स्त्रियाँ दोनों ही कुलों (पिता एवं पति) को शोक संतप्त करने वाली होती हैं।। ५।।

(पत्नियों की रक्षा किए जाने पर प्रजा की रक्षा होती है तथा प्रजा की रक्षा होने पर व्यक्ति का आत्मा रक्षित होता है।। १।।)

इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम्।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि।। ६।।

सर्वेषां ब्राह्मणादिवर्णानां भार्यारक्षणलक्षणं धर्मं वक्ष्यमाणश्लोकरीत्या सर्वधर्मेभ्य उत्कृष्टं जानन्तोऽन्धपङ्ग्वादयोऽपि भार्यां रक्षितुं यतेरन्।। ६।।

सभी वर्णों के इस श्रेष्ठधर्म को देखते हुए ही दुर्बल पति भी अपनी पत्नियों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील होते हैं।। ६।।

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति।। ७।।

यस्माद्भार्यां रक्षतो रक्षणमसंकीर्णविशुद्धापत्योत्पादनेन स्वसंततिं तथा शिष्टसमाचारं

पितृपितामहाद्यन्वयमात्मानं विशुद्धसंताननिमित्तौर्ध्वदेहिकलाभेन स्वधर्मं च विशुद्ध-भार्यस्याधानादावप्यधिकाराद्रक्षति। तस्मात्स्त्रियो रक्षितुं यतेतेति पूर्वस्य विशेषः।।७।।

प्रयत्नपूर्वक अपनी पत्नी की रक्षा करता हुआ व्यक्ति ही वस्तुतः अपनी संतान चरित्र, कुल, आत्मा एवं अपने धर्म की रक्षा कर सकता है।।७।।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः।।८।।

पतिः शुक्ररूपेण भार्यां संप्रविश्य गर्भमापाद्य तस्यां भार्यायां पुत्ररूपेण जायते। तथाच श्रुतिः "आत्मा वै पुत्रनामासि" इति। जायायास्तदेव जायात्वं यतोऽस्यां पतिः पुनर्जायते। तथाच बह्वृचब्राह्मणम्-"पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरम्। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते। तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः" ततश्चासौ रक्षणीयेत्येतदर्थं नामनिर्वचनम्।। ८।।

वीर्य के रूप में पति अपनी पत्नी के गर्भ में प्रविष्ट होकर, गर्भ बनकर इस संसार में सन्तान के रूप में उत्पन्न होता है। वस्तुतः स्त्री का यही जायात्व है कि वह (पति) इसमें सन्तानरूप में पुनः जन्म लेता है।।८।।

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः।। ९।।

यस्माद्यादृशं पुरुषं शास्त्रेण विहितं प्रतिषिद्धं वा तादृशशास्त्रोक्तपुरुषसेवनेनोत्कृष्टं निषिद्धपुरुषसेवनेन च निकृष्टं पुत्रं जनयति। तस्मादपत्यविशुद्ध्यर्थं पत्नीं यत्नतो रक्षेत्।। ९।।

स्त्री जिसप्रकार के पति का सेवन करती है, वह उसीप्रकार की सन्तान को उत्पन्न करती है। इसलिए अपनी सन्तान की शुद्धि हेतु स्त्री की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।। ९।।

कथं रक्षणीयेत्यत आह–

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्।। १०।।

कश्चिद्बलात्संरोधादिनापि स्त्रीयो रक्षितुं न शक्तः, तत्रापि व्यभिचारदर्शनात्। किंत्वेतैर्वक्ष्यमाणै रक्षणोपायप्रयोगैस्ता रक्षयितुं समर्थाः।। १०।।

कोई भी व्यक्ति बलपूर्वक स्त्रियों की रक्षा करने में समर्थ नहीं होता है, किन्तु इन आगे कहे गए उपायों द्वारा उनकी रक्षा करना सम्भव है।। १०।।

तानुपायानाह—

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे।। ११।।

धनस्य संग्रहणे विनियोगे च द्रव्यशरीरशुद्धौ भर्त्रग्निशुश्रूषादिकेऽन्नसाधने पारिणाह्यस्य गृहोपकरणस्य शय्यासनकुण्डकटाहादेरवेक्षणे एनां नियोजयेत्। वेक्षणे अवस्य आदिलोपः।। ११।।

इन स्त्रियों को धन-संग्रह में, उसका व्यय करने में, घर की साफ-सफाई में, धार्मिक कार्यों में, भोजन पकाने में तथा घर की सभी वस्तुओं की देखभाल के दायित्वपूर्ण कार्यों में लगा देना चाहिए।। ११।।

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः।। १२।।

आप्ताश्च ते आज्ञाकारिणश्च तैः पुरुर्षगृहे रुद्धा अप्यरक्षिता भवन्ति याः दुःशीलतया नात्मानं रक्षन्ति। यास्तु धर्मज्ञतया आत्मानमात्मना रक्षन्ति ता एव सुरक्षिता भवन्ति। अतो धर्माधर्मफलस्वर्गनरकप्राप्त्याद्युपदेशेनासां संयमः कार्य इति मुख्यरक्षणोपायकथनपरमिदम्।। १२।।

अत्यन्त समझदार लोगों द्वारा घर में बन्द करके रखी गयीं भी स्त्रियाँ असुरक्षित रहती हैं, किन्तु जो अपनी रक्षा स्वयं करती हैं, वे ही वस्तुतः सुरक्षित रहती हैं।। १२।।

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट्।। १३।।

मद्यपानं, असत्पुरुषसंसर्गः, भर्त्रा सह विरहः, इतस्ततश्च भ्रमणं, अकालस्वापः, परगृहनिवासः, इत्येतानि षट् स्त्रिया व्यभिचाराख्यदोषजनकानि। तस्मादेतेभ्य एता रक्षणीयाः।। १३।।

मद्यपानादि, दुष्ट लोगों की सङ्गति, पति का वियोग, व्यर्थ इधर-उधर घूमना, बहुत ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ करना (दिवास्वप्न देखना) तथा दूसरे के घर में रहना, स्त्रियों को दूषित करने वाले ये छः कारण हैं।। १३।।

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते।। १४।।

नैताः कमनीयरूपं विचारयन्ति। न चासां यौवनादिके वयस्यादरो भवति। किन्तु सुरूपं कुरूपं वा पुमानित्येतावतैव तमुपभुञ्जते।। १४।।

ये स्त्रियां न तो पुरुष के रूप को देखती हैं, न इनका आयु के विषय में चिन्तन होता है। वह सुन्दर हो अथवा असुन्दर हो (इस ओर भी इनका ध्यान नहीं होता है) वे तो इसे पुरुषमात्र मानकर ही भोगती हैं।। १४।।

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते।। १५।।

पुंसो दर्शने संभोगाद्यभिलाषशीलत्वात्, चित्तस्थैर्याभावात्, स्वभावतः स्नेहरहितत्वाच्च एता यत्नेनापि लोके रक्षिताः सत्यो व्यभिचाराश्रयणेन भर्तृषु विक्रियां गच्छन्ति।। १५।।

चरित्रभ्रष्ट होने के कारण, चित्त की चञ्चलता के कारण, स्वभाव से ही प्रेमरहित होने से, पति द्वारा यत्नपूर्वक रक्षा की गई भी स्त्रियाँ, इस संसार में पति को धोखा देने में सफल हो जाती हैं।। १५।।

एवं स्वभावं ज्ञात्वासां प्रजापतिनिसर्गजम्।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति।। १६।।

एवं श्लोकद्वयोक्तमासां स्वभावं हिरण्यगर्भसृष्टिकालजनितं ज्ञात्वा रक्षणार्थं प्रकृष्टं यत्नं पुरुषः कुर्यात्।। १६।।

ब्रह्मा की सृष्टि से ही इन स्त्रियों के इसप्रकार के स्वभाव को जानकर व्यक्ति को इनकी रक्षा के प्रति अत्यन्त प्रयत्नशील होना चाहिए।। १६।।

शय्यासनमलंकारं कामं क्रोधमनार्जवम्।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत्।। १७।।

शयनोपवेशनालंकरणशीलत्वं कामक्रोधानार्जवपरहिंसाकुत्सिताचारत्वानि सर्गादौ मनुः स्त्रीभ्यः कल्पितवान्। तस्माद्यत्नतो रक्षणीयाः।। १७।।

सृष्टि के आरम्भ में मनु ने स्त्रियों के लिए शय्या, आसन, अलङ्कार, काम, क्रोध, कुटिलता, ईर्ष्याद्रोह एवं कुत्सित आचरण–इन आठ बातों की विशेषरूप से परिकल्पना की।। १७।।

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः।। १८।।

जातकर्मादिक्रिया स्त्रीणां मन्त्रैर्नास्तीत्येषा शास्त्रमर्यादा व्यवस्थिता। ततश्च मन्त्रवत्संस्कारगणाभावान्न निष्पापान्तःकरणाः इन्द्रियं प्रमाणं, धर्मप्रमाणश्रुतिस्मृति-रहितत्वान्न धर्मज्ञाः। अमन्त्राः पापापनोदनमन्त्रजपरहितत्वाज्जातेऽपि पापे तन्निर्णे-जनाक्षमाः। अनृतवदशुभाः स्त्रिय इति शास्त्रमर्यादा। तस्माद्यत्नतो रक्षणीया इत्यत्र तात्पर्यम्।। १८।।

स्त्रियों के जातकर्मादि संस्कारों में मन्त्रों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए, ऐसी धर्म में व्यवस्था है। इसलिए स्त्रियाँ निरिन्द्रिय, अमन्त्रा और असत्य होती हैं, यही वस्तुस्थिति है[१]।। १८।।

तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीता निगमेष्वपि।
स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः।। १९।।

व्यभिचारशीलत्वं स्त्रीणां स्वभाव इत्युक्तं तत्र श्रुतिं प्रमाणतयोपन्यस्यति। तथा बह्व्यः श्रुतयो बहूनि श्रुतिवाक्यानि ''न चैतद्विद्मो ब्राह्मणाः स्मोऽब्राह्मणा वा'' इत्येवमादीनि निगमेषु स्वालक्षण्यं व्यभिचारशीलत्वं तत्परिज्ञानार्थं पठितानि। तासां श्रुतीनां मध्ये या निष्कृतिरूपा व्यभिचारप्रायश्चित्तभूतास्ताः श्रुतीः शृणुत। एकस्याः श्रुतेर्वक्ष्यमाणत्वाच्छ्रुतिं शृणुतेत्यर्थः। ''सुपां सुपो भवन्ति'' इति द्वितीयैकवचने बहुवचनम्।। १९।।

श्रुतियों में स्त्रियों के व्यभिचारों की परीक्षा के सम्बन्ध में पर्याप्त उल्लेख किया गया है। अतः अब मैं आपसे उन श्रुतियों में लिखे गए व्यभिचारों के प्रायश्चित्त स्वरूप उपायों को कहता हूँ, सुनो।। १९।।

यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता।
तन्मे रेतः पिता वृक्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम्।। २०।।

कश्चित्पुत्रो मातुर्मानसव्यभिचारमवगम्य ब्रूते। मनोवाक्कायकर्मभिः पतिव्यतिरिक्तं पुरुषं या न कामयते सा पतिव्रता ततोऽन्याऽपतिव्रता। मम माता अपतिव्रतऽसती परगृहानाच्छन्ती यत्प्रलुलुभे परपुरुषं प्रति संजातलोभाभूत्तत्पुरुषसंकल्पदुष्टं मातृरजोरूपं रेतो मम पिता शोधयत्वित्यस्य स्त्रिया व्यभिचारशीलत्वस्यैतदितिकरणान्तं मन्त्रपादत्रयं ज्ञापकम्। अयं च मन्त्रश्चातुर्मास्यादिषु विनियुक्तः।। २०।।

---

१. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ये सब बातें अव्यावहारिक सी प्रतीत होती हैं।

(श्रुति में एक स्थल पर व्यभिचारीमाता का पुत्र कहता है कि-)'जो मेरी अपतिव्रता माता इधर-उधर विचरण करते हुए परपुरुषों के प्रति आकृष्ट हुई, उसे मेरा पिता अपने शुद्ध वीर्य से पवित्र करे।' यह तो उन श्रुतियों में से इसका एक उदाहरण मात्र है।। २०।।

संप्रति मानसव्यभिचारप्रायश्चित्तरूपतामस्य मन्त्रस्याह—

ध्यायत्यनिष्टं यत्किंचित्पाणिग्राहस्य चेतसा।
तस्यैष व्यभिचारस्य निह्नवः सम्यगुच्यते।। २१।।

भर्तुरप्रियं यत्किचित्पुरुषान्तरगमनं स्त्री मनसा चिन्तयति तस्य मानसस्य व्यभिचारस्यैष प्रकृतो मन्त्रः सम्यक् शोधनो मन्वादिभिरुच्यते। मातेति श्रवणात्पुत्रस्यैवायं प्रायश्चित्तरूपो मन्त्रो न मातुः।। २१।।

अपने पति के विपरीत आचरण करती हुई जो स्त्री मन ही मन परपुरुष का ध्यान करती है। उस मानस व्यभिचार का प्रस्तुत मन्त्र में भलीप्रकार शोधन का उपाय बताया गया है।। २१।।

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा।। २२।।

यथारूपेण भर्त्रा साधुनासाधुना वा स्त्री विवाहविधिना संयुज्यते सा भर्तृसदृशगुणा भवति। यथा समुद्रेण संयुज्यमाना नदी स्वादूदकापि क्षारजला जायते। भर्तुरात्मसंमानाख्यस्त्रीरक्षणोपायान्तरोपदेशार्थमिदम्।। २२।।

जिसप्रकार नदियाँ समुद्र के साथ मिलकर उसी के समान गुण वाली हो जाती हैं। उसीप्रकार स्त्री, जैसे गुण वाले पति के साथ विधिपूर्वक विवाह करके जुड़ जाती है, वह उसके समान गुणों वाली हो जाती है।। २२।।

अत्रोत्कर्षदृष्टान्तमाह—

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम्।। २३।।

अक्षमालाख्या निकृष्टयोनिजा वसिष्ठेन परिणीता, तथा चटका मन्दपालाख्येन ऋषिणा संगता पूज्यतां गता।। २३।।

जैसे कि अधम योनि में उत्पन्न अक्षमाला नामक स्त्री महर्षि वशिष्ठ के साथ तथा शारङ्गी नामक स्त्री मन्दपाल ऋषि से संयुक्त होकर पूज्यभाव को प्राप्त हुई।। २३।।

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः।। २४।।

यद्यपि द्वे प्रकृते तथापि प्रदर्शनार्थत्वमनयोर्मत्वा एता इति बहुवचनं कृतम्। एताश्चान्याश्च सत्यवत्यादयो निकृष्टप्रसूतयः स्वभर्तृगुणैः प्रकृष्टैरस्मिँल्लोके उत्कृष्टतां प्राप्ताः।। २४।।

अतः अधम योनि में उत्पन्न ये स्त्रियाँ और इस संसार में ऐसी ही और भी अन्य अनेक स्त्रियाँ, अपने-अपने पतियों के श्रेष्ठ गुणों के कारण उत्कर्ष को प्राप्त हुईं ।। २४।।

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा।
प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत।। २५।।

एष लोकाचारो जायापतिविषयः सदा शुभ उक्तः। इदानीमिहलोके परलोके-चोत्तरकालशुभसुखहेतून् "किं क्षेत्रिणोऽपत्यमुत बीजिनः" इत्यादीन्प्रजाधर्मा-न्शृणुत।। २५।।

इसप्रकार यह मैंने आपके समक्ष स्त्री-पुरुषों को हमेशा शुभ फल प्रदान करने वाले लोकव्यवहार का कथन किया। अब इस लोक एवं परलोक में सुख प्रदान करने वाले सन्तान विषयक धर्मों को सुनो।। २५।।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।। २६।।

यद्यप्यासां रक्षणार्थं दोषा उक्तास्तथापि शक्यप्रतीकारत्वादिह दोषाभावः। एताः स्त्रियो महोपकारा गर्भोत्पादनार्थं बहुकल्याणभाजनभूता वस्त्रालंकारादिदानेन संमानार्हाः स्वगृहे शोभाकारिण्यः स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु तुल्यरूपाः। नानयोर्विशेषो विद्यते। यथा निःश्रीकं गृहं न राजत्येवं निःस्त्रीकमिति।। २६।।

सन्तानोत्पत्ति के कारण वंशवृद्धि करने वाली ये स्त्रियाँ मनुष्य के महान् भाग्य का उदय करने वाली, पूजा के योग्य, घरों को प्रकाशित करने वाली होती हैं। घरों में स्त्रियाँ लक्ष्मीस्वरूपा हैं, क्योंकि हमारे घरों में स्त्रियों एवं लक्ष्मी में कोई विशेष भेद नहीं होता है।। २६।।

अपिच—

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्।। २७।।

अपत्यस्य जननं जातस्य परिपालनं प्रतिदिनं चातिथिमित्रभोजनादेर्लोकव्यवहारस्य प्रत्यक्षं भार्यैव निदानम्।। २७।।

सन्तान की उत्पत्ति एवं उत्पन्न सन्तति का भलीप्रकार पालन-पोषण एवं प्रतिदिन गृहस्थाश्रम में सम्पादित किया जाने वाला लोकव्यवहार, इस सबका प्रत्यक्षरूप से सम्पादन करने वाली एकमात्र स्त्री ही होती है।। २७।।

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह।। २८।।

अपत्योत्पादनमुक्तमप्येतदभ्यर्हितत्वज्ञापनार्थं पुनरभिधानम्। धर्मकार्याण्यग्निहोत्रादीनि, परिचर्या, उत्कृष्टा रतिः, पितॄणामात्मनश्चापत्यजननादिना स्वर्ग इत्येतत्सर्वं भार्याधीनम्।। २८।।

सन्तान को उत्पन्न करना, धार्मिक कार्यों का विधिपूर्वक सम्पादन, उत्तम सेवा एवं रति-सुख आदि अपना एवं पितरों का जो भी सुख है, वह सब पत्नी के ही अधीन होता है।। २८।।

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते।। २९।।

या स्त्री मनोवाग्देहसंयता सतीतिविशेषणोपादानसामर्थ्यान्मनोवाग्देहैरेव न व्यभिचरति सा भर्त्रा सहार्जितान्स्वर्गादिलोकान्प्राप्नोति। इह लोके च विशिष्टैः साध्वीत्युच्यते।। २९।।

मन, वाणी और शरीर पर पूर्णतया नियन्त्रण रखने वाली जो स्त्री पति के प्रतिकूल आचरण नहीं करती है। इस संसार में वह सज्जनों द्वारा 'पतिव्रता' कही जाती है तथा मरणोपरान्त वह पतिलोक को प्राप्त करती है।। २९।।

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते।। ३०।।

पुरुषान्तरसंपर्कात्स्त्री लोके निन्द्यतां जन्मान्तरे च सृगालजातिं प्राप्नोति। पापरोगादिभिश्च पीड्यते। पञ्चमाध्याये स्त्रीधर्मे उक्तमप्येतच्छ्लोकद्वयं सदपत्यसंपत्त्यर्थत्वेन महाप्रयोजनतया पुनः पठितम्।। ३०।।

अपने पति को धोखा देकर व्यभिचाररत स्त्री इस संसार में निन्दा को प्राप्त होती है तथा पाप रोगों (कुष्ठादि) से ग्रस्त हो जाती है एवं मरणोपरान्त शृगाल-योनि को प्राप्त करती है।। ३०।।

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः।
विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत।। ३१।।

पुत्रमधिकृत्य शिष्टैर्मन्वादिभिः पूर्वमुत्पन्नैश्च महर्षिभिरभिहितमिमं वक्ष्यमाणं सर्वजनहितं विचारं शृणुत।। ३१।।

पुत्र के सम्बन्ध में सज्जनों एवं प्राचीन महर्षियों ने जो सर्वजनहितकारी एवं पवित्र विचारों का कथन किया है, अब मैं उन्हें आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ, सुनिये।। ३१।।

भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि।
आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः।। ३२।।

भर्तुः पुत्रो भवतीति मुनयो मन्यन्ते। भर्तरि द्विःप्रकारा श्रुतिर्वर्तते। केचिदुत्पादकमवोढारमपि भर्तारं तेन पुत्रेण पुत्रिणमाहुः। अन्ये तु वोढारं भर्तारमनुत्पादकमप्यन्यजनितेन पुत्रेण पुत्रिणमाहुः।। ३२।।

लोग ऐसा मानते हैं कि 'स्त्री के पति का ही पुत्र होता है', किन्तु पति के सम्बन्ध में दो बातें सुनी जाती हैं–कुछ लोग पुत्र को उत्पन्न करने वाले व्यक्ति को ही पुत्र का पिता मानते हैं तो अन्य कुछ लोग क्षेत्र अर्थात् स्त्री के स्वामी को पुत्र का पिता कहते हैं (भले ही उत्पन्न करने वाला कोई भी हो)।। ३२।।

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम्।। ३३।।

व्रीह्याद्युत्पत्तिस्थानं क्षेत्रं तत्तुल्या स्त्री मुनिभिः स्मृता। पुरुषश्च व्रीह्यादिबीजतुल्यः स्मृतः। यद्यपि रेतो बीजं तथापि तदधिकरणत्वात्पुरुषो बीजमिति व्यपदिश्यते। क्षेत्रबीजसमायोगात्सर्वप्राणिनामुत्पत्तिः। एवं चोभयोः कारणत्वस्याविशिष्टत्वाद्युक्ता विप्रतिपत्तिः, किं यत्संबन्धि क्षेत्रं तस्यापत्यमुत यदीयं बीजं तस्येति।। ३३।।

स्त्री खेत के रूप में कही गयी है तथा पुरुष बीज के समान माना गया है। अतः खेत और बीज के संयोग से ही सभी प्राणियों की उत्पत्ति सम्भव है।। ३३।।

विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित्।
उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते।। ३४।।

क्वचिद्बीजं प्रधानं "जाता ये त्वनियुक्तायाम्" इति न्यायेनोत्पन्नो बीजिनो बुध इव सोमस्य। तथा व्यासर्ष्यशृङ्गादयो बीजिनामेव सुताः। क्वचित्क्षेत्रस्य प्राधान्यं यथायं तल्पजः प्रमीतस्येति वक्ष्यति। अतएव विचित्रवीर्यक्षेत्रे क्षत्रियायां ब्राह्मणोत्पादिता

अपि धृतराष्ट्रादयः क्षत्रियाः क्षेत्रिण एव पुत्रा बभूवुः। यत्र पुनर्बीजयोन्योः साम्यं तत्र वोढैव जनयिता तदपत्यं प्रशस्तं भवति तत्र बीजप्राधान्यापेक्षं तावदाहुः।। ३४।।

कहीं पुरुषरूपी बीज की विशेषता होती है तो कहीं स्त्री-योनिरूप क्षेत्र का ही वैशिष्ट्य होता है, किन्तु जहाँ दोनों ही विशिष्टता की दृष्टि से समान हों तो वह सन्तति प्रशंसनीय होती है।। ३४।।

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता।। ३५।।

बीजक्षेत्रयोर्बीजं प्रधानमभिधीयते। यस्मात्सर्वेषां भूतारब्धानामुत्पत्तिर्बीजगत-वर्णस्वरूपादिचिह्नैरुपलक्षिता दृश्यते।। ३५।।

इसके अतिरिक्त बीजरूप पुरुष एवं योनिरूप स्त्री इन दोनों में भी बीज को ही श्रेष्ठ कहा जाता है, क्योंकि सभी प्राणियों की सन्ततियों में बीजरूप पुरुष के समान ही लक्षण देखे जाते हैं।। ३५।।

यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः।। ३६।।

यज्जातीयं बीजं व्रीह्यादि ग्रीष्मादिकाले वर्षादिना संस्कृते क्षेत्रे उप्यते तज्जातीयमेव तद्बीजमात्मीयैर्वर्णादिभिरुपलक्षितं तस्मिन्क्षेत्रे जायते।। ३६।।

उचित समय आने पर खेत में जैसा बीज बोया जाता है, अपने गुणों से युक्त होकर वह बीज वैसा ही उस खेत में उत्पन्न होता है।। ३६।।

एवमन्वयप्रकारेण बीजप्राधान्यं प्रदर्श्य व्यतिरेकमुखेन दर्शयितुमाह—

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते।
न च योनिगुणान्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु।। ३७।।

हिरवधारणे। इयमेव भूमिर्भूतारब्धानां तरुगुल्मलतादीनां नित्या योनिः कारणं क्षेत्रात्मकं सर्वलोकैरुच्यते। नच भूम्याख्ययोनिधर्मान्कांश्चिदपि मृत्स्वरूपत्वादीन्बीजं स्वविकारेष्वङ्कुरकाण्डाद्यवस्थासु भजते। भजत्यर्थत्वात्पुष्यतेः सकर्मता। तस्माद्योनि-र्गुणानुवर्तनाभात्र क्षेत्रप्राधान्यम्।। ३७।।

इतना ही नहीं यह भूमि भी सभी प्राणियों की शाश्वत योनि (उत्पत्ति स्थान) कही जाती है। इसमें डाला गया बीज स्वयं पुष्ट होकर भी भूमि की मिट्टी आदि के किसी भी गुण को पुष्ट नहीं करता है।। ३७।।

अपि च-

भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः।
नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः।। ३८।।

भूमावेकस्मिन्नपि केदारे कर्षकैर्वपनकालोप्तानि व्रीहिमुद्गादीनि नानारूपाण्येव बीजस्वभावाज्जायन्ते नतु भूमेरेकत्वादेकरूपाणि भवन्ति।। ३८।।

जल से सींची गई एक ही भूमि पर किसान यथासमय जो बीजवपन करते हैं, अपने-अपने स्वभाव के अनुकूल वे बीज ही अनेकरूपों में उत्पन्न होते हैं (अतः बीज का प्राधान्य सिद्ध होता है)।। ३८।।

तथा हि—

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः।
यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा।। ३९।।

व्रीहयः षष्टिकाः, शालयः कलमाद्याः, तथा मुद्गादयो बीजस्वभावानतिक्रमेण नाना रूपा जायन्ते।। ३९।।

धान, चावल, मूँग, तिल, उड़द, जौ, लहसुन और गन्ना ये सब अपने बीज के अनुसार ही भिन्न-भिन्न उत्पन्न होते हैं।। ३९।।

एवं च सति—

अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते।
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति।। ४०।।

व्रीहिरुप्तो मुद्गादिर्जायत इत्येतन्न संभवति। यस्माद्यदेव बीजमुप्यते तत्तदेव जायते। एवं बीजगुणनुवर्तनात्क्षेत्रधर्माननुवृत्तेश्च व्रीह्यादौ मनुष्येष्वपि बीजप्राधान्यम् ।। ४०।।

वस्तुतः जो बीज बोया जाता है, वही उत्पन्न होता है। यह कभी नहीं होता है कि बोया कुछ जाए और पैदा कुछ और ही हो।। ४०।।

संप्रति क्षेत्रप्राधान्यमाह—

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना।
आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति।। ४१।।

तद्बीजं सहजप्रज्ञावता पित्रादिभिरनुशिष्टेन ज्ञानं वेदः, एवं विज्ञानमपि तदङ्गादि-शास्त्राणि तद्वेदिनायुरिच्छता न कदाचित्परजायायां वपनीयम्।। ४१।।

इसलिए बुद्धिमान्, विनम्र, ज्ञान-विज्ञान को जानने वाले, दीर्घायु की कामना

करने वाले व्यक्ति को कभी भी दूसरे की स्त्री में अपने वीर्यरूपी बीज को नहीं बोना चाहिए[१]।। ४१।।

अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः।
यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे।। ४२।।

अतीतकालज्ञा अस्मिन्नर्थे वायुप्रोक्ता गाथाश्छन्दोविशेषयुक्तानि वाक्यानि कथयन्ति। यथा परपुरुषेण परपत्न्यां बीजं न वप्तव्यमिति।। ४२।।

इस विषय में इतिहासवेत्ता वायुगीता में उद्धृत गाथा का कथन करते हैं जैसा कि व्यक्ति को कभी भी परस्त्री में अपने (वीर्यरूपी) बीज का वपन नहीं करना चाहिए।। ४२।।

नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्ध्यतः।
तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे।। ४३।।

यथान्येन विद्धं मृगं कृष्णसारं तस्मिन्नेव छिद्रे पश्चादन्यस्य विद्धचत आविद्धः क्षिप्तःशरो निष्फलो भवति पूर्वहन्त्रैव हतत्वात्तस्यैव तन्मृगलाभात्, एवं परपत्न्यामुप्तं बीजं शीघ्रमेव निष्फलं भवति। गर्भग्रहणानन्तरं क्षेत्रिणः सद्यः फललाभात्।। ४३।।

दूसरे के खेत में डाला गया बीज उसीप्रकार व्यर्थ हो जाता है, जिसप्रकार दूसरे द्वारा बेधे गए मृग पर फिर से बिंधा गया बाण निरर्थक हो जाता है।। ४३।।

पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः।
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शाल्यवतो मृगम्।। ४४।।

इमामपि पृथ्वीं पृथुना पूर्वं परिगृहीतत्वादनेकराजसंबन्धेऽपि पृथोर्भार्यामित्यतीतज्ञा जानन्ति। तस्मात्स्थाणुं छिन्दति स्थाणुच्छेदः। कर्मण्यण्। येन स्थाणुमुत्पाट्य क्षेत्रं कृतं तस्यैव तत्क्षेत्रं वदन्ति। तथा शरादि शल्यं येन पूर्वं मृगे क्षिप्तं तस्यैव तं मृगमाहुः। एवंच पूर्वपरिग्रहीतुः स्वाभित्वाद्वोढुरेवापत्य भवति न जनयितुः।। ४४।।

इतिहासज्ञ इस पृथ्वी को पहले के समान ही आज भी राजा पृथु की भार्या के रूप में ही जानते हैं। इसीप्रकार ठूँठ आदि को साफ करके जो प्रारम्भ में खेत का निर्माण करता है तथा जो बाण द्वारा पहले मृग को बींधता है, वही उसका स्वामी कहलाता है। (इसीप्रकार पुत्र, स्त्री के साथ पहले विवाह करने वाले का ही होता है, बाद में उत्पन्न करने वाले का नहीं)।। ४४।।

---

१. इसप्रकार कहकर ग्रन्थकार ने व्यभिचार का निषेध किया है।

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना।। ४५।।

नैकः पुरुषो भवति अपि तु भार्यास्वदेहमपत्यानीत्येतत्परिमाण एव पुरुषः। तथाच वाजसनेयब्राह्मणम्-"अर्धो ह वा एष आत्मनस्तस्माद्यज्जायां न विन्दते नैतावत्प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति, अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति, तथा चैतद्वेदविदो विप्रा वदन्ति यो भर्ता सैव भार्या स्मृता" इति। एवंच तस्यामुत्पादितं भर्तुरिवापत्यं भवतीति।। ४५।।

यह इतिहास प्रसिद्ध है कि स्त्री, आत्मा और सन्तान ये तीनों ही संयुक्तरूप से पुरुष होते हैं। जैसा कि विद्वानों का भी कथन है कि-'जो पति है, वही पत्नी भी होता है'[१]।। ४५।।

यतश्च दंपत्योरैक्यमतः—

न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते।
एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिनिर्मितम्।। ४६।।

निष्क्रयो विक्रयः विसर्गस्त्यागः न ताभ्यां स्त्री भर्तुर्भार्यात्वादपैत्येवं पूर्वं प्रजापतिना स्मृतं नित्यं धर्मं मन्यामहे। एवंच क्रयादिनापि परस्त्रियमात्मसात्कृत्वा तदुत्पादितापत्यं क्षेत्रिण एव भवति न बीजिनः।। ४६।।

पूर्व में प्रजाति ब्रह्मा द्वारा निर्मित इस नियम को हम भलीभांति जानते हैं कि पति द्वारा पत्नी को बेचने अथवा परित्याग करने पर भी वह उससे छूटती नहीं है, (अपितु उसी की पत्नी बनी रहती है)।। ४६।।

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्।। ४७।।

पित्रादिधनविभागो भ्रातॄणां धर्मतः कृतः सकृदेव भवति न पुनरन्यथा क्रियत इति। तथा कन्या पित्रादिना सकृदेकस्मै दत्ता न पुनरन्यस्मै दीयते। एवं चान्येन पूर्वमन्यस्मै दत्तायां पश्चात्पित्रादिभिः प्राप्तायामपि जनितमपत्यं न बीजिनो भवतीत्येतदर्थमस्योपन्यासः। तथा कन्यातोऽन्यस्मिन्नपि गवादिद्रव्ये सकृदेव ददानीत्याह न पुनस्तदन्यस्मै दीयत इति त्रीण्येतानि साधूनां सकृद्भवन्ति। यद्यपि कन्यादानस्य "सकृत्करणं प्रकृतोपयुक्तं" तथापि प्रसङ्गादंशदानयोरपि सकृत्ताभिधानम् "सकृदाह

१. यहाँ वाजसनेय ब्राह्मण के इस कथन की ओर सङ्केत किया गया है-"विप्रावदन्ति यो भर्ता सैव भार्या स्मृता"।

ददानि'' (अ० ९ श्लो० ७७) इत्यनेनैव कन्यादानस्यापि सकृत्करणसिद्धौ प्रकृतोपयोगित्वादेव पृथगभिधानम्।। ४७।।

जैसे सम्पत्ति का बंटवारा एक ही बार होता है, वैसे ही कन्या भी एक ही बार दी जाती है, सज्जन पुरुष एक ही बार वचन देता है, कि 'मैं दूँगा'। अत: ये तीनों बातें सज्जन लोग एक ही बार करते हैं।। ४७।।

यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च।
नोत्पादक: प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि।। ४८।।

यथा गवादिषु परकीयेष्वात्मवृषभादिकं नियुज्य वत्सोत्पादको न तद्भागी तथा परकीयभार्यास्वपि नोत्पादक: प्रजाभागी भवति।। ४८।।

जिसप्रकार गाय, घोड़ी, ऊँटनी, दासी, भैंस, बकरी और भेड़ों में सन्तान को उत्पन्न करने वाला सन्तान का स्वामी नहीं होता है। उसीप्रकार दूसरे की स्त्री में सन्तान को उत्पन्न करने वाला व्यक्ति भी उस सन्तान का अधिकारी नहीं होता है।। ४८।।

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्त: परक्षेत्रप्रवापिण:।
ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित्।। ४९।।

क्षेत्रस्वामिनो ये न भवन्ति अथ बीजस्वामिन: सन्त: परक्षेत्रे बीजं वपन्ति ते तत्र क्षेत्रजातस्य धान्यादे: फलं क्वचिदपि देशे न लभन्त इति प्रकृतस्य दृष्टान्त:।। ४९।।

क्योंकि जो क्षेत्ररहित किन्तु बीज सम्पन्न हैं, यदि दूसरे के खेत में बीज बोते हैं, निश्चय ही वे कहीं भी (किसी भी देश में) उत्पन्न हुए अन्न के फल को प्राप्त नहीं करते हैं।। ४९।।

यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम्।
गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम्।। ५०।।

यदन्यदीयगवीषु वृषभो वत्सशतमपि जनयेत्सर्वे ते वत्सा: स्त्रीगवीस्वामिनो भवन्त्येव न वृषभस्वामिन:। वृषभस्य यच्छुकसेचनं तद्वृषभस्वामिनो निष्फलमेव भवति।'' यथा गोऽश्वोष्ट्र'' (अ० ९ श्लो० ४८) इत्यनेनोत्पादकस्य प्रजाभागित्वं न भवतीत्येतत्परत्वेन दृष्टान्त उक्त:। अयं तु क्षेत्रस्वामिन: प्रजाभागित्वं भवतीत्येतत्परत्वेन अतो न पुनरुक्ति:।। ५०।।

दूसरों की गायों में साँड जो सैकड़ों बछड़ों को उत्पन्न करता है। उन सभी बछड़ों पर गाय के स्वामी का ही अधिकारी होता है (वृषभ के स्वामी का नहीं)। इसप्रकार साँड का वीर्य निष्फल हो जाता है।। ५०।।

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः।
कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम्।। ५१।।

यथा गवादिगर्भेषु तथैवापत्यरहिताः सन्तः परकीयभार्यायां ये बीजं वपन्ति ते क्षेत्रस्वामिनामेवापत्यलक्षणमर्थं कुर्वन्ति। बीजसेक्ता त्वपत्याख्यं फलं न लभते।। ५१।।

उसीप्रकार क्षेत्रविहीन लोग यदि अपना बीज दूसरे के खेतों में बोते हैं तो वे उस खेत के स्वामी का ही कार्य करते हैं। बीज का स्वामी उसके फल को प्राप्त नहीं करता है।। ५१।।

फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा।
प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी।। ५२।।

यदस्यामुत्पत्स्यतेऽपत्यं तदावयोरुभयोरेवैवं यत्र नियमो न कृतस्तत्र निःसंदिग्धमेव क्षेत्रिणोऽपत्यम्। उक्तरीत्या बीजात्क्षेत्रं बलवत्।। ५२।।

खेत के स्वामी एवं बीज के स्वामियों के बीच यदि फल के विषय में कोई समझौता न हुआ हो तो स्पष्टरूप से खेत के स्वामी को ही फल की प्राप्ति होगी, क्योंकि बीज से योनि (खेत, भूमि) अधिक बलवती होती है।। ५२।।

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते।
तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च।। ५३।।

यदत्रापत्यं भविष्यति तदावयोरेवेति नियम्यैतत्क्षेत्रं स्वामिना बीजवपनार्थं यद्बीजिनो दीयते तस्यापत्यस्य लोके बीजिक्षेत्रिणौ द्वावपि भागिनौ दृष्टौ।। ५३।।

किन्तु यदि किसी समझौते के तहत भूमि बीज बोने के लिए दी जाती है तो बीज का स्वामी एवं खेत का स्वामी दोनों ही इस संसार में उत्पन्न हुए उस फल के विषय में बराबर के भागीदार देखे गए हैं।। ५३।।

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति।
क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम्।। ५४।।

यद्बीजं जलवेगवाताभ्यामन्यदीयक्षेत्रादानीतं यस्य क्षेत्रे जायते तत्क्षेत्रस्वामिन एव तद्बीजं भवति, नतु येन बीजमुप्तं स तत्फलं लभते। एवं च स्वभार्याभ्रमेणा-परभार्यागमने ममायं पुत्रो भवितेत्यवगमेऽपि क्षेत्रिण एवापत्यमित्यनेन दर्शितम्।। ५४।।

इसीप्रकार वायु के वेग एवं जल के प्रवाहादि से उड़कर बीज जिस व्यक्ति के खेत में उत्पन्न होता है, वह बीज वस्तुतः खेत के स्वामी का ही माना जाएगा। बीज को बोने वाला उसके फल को प्राप्त नहीं करता है।। ५४।।

एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च।
विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति।। ५५।।

एषैव व्यवस्था गवाश्वादीनां संततिं प्रति ज्ञातव्या। यत्क्षेत्रस्वाम्येव गवाश्वादेः संततिस्वामी नतु वृषभादिस्वामी। नियमे तु कृते सत्येतयोरेव संततिस्वाम्यम्।।५५।।

यही नियम गाय, घोड़ी, दासी, ऊंटनी, भेड़, बकरी, पक्षी एवं भैंसादि की सन्तति के विषय में भी समझना चाहिए।। ५५।।

एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि।। ५६।।

एतद्बीजयोन्योः प्राधान्याप्राधान्यं युष्माकमुक्तम्। अतोऽनन्तरं स्त्रीणां संतानाभावे यत्कर्तव्यं तद्वक्ष्यामि।। ५६।।

यह मैंने आप लोगों से बीज एवं योनि (खेत) की प्रधानता अप्रधानता के विषय में विस्तारपूर्वक कहा। इसके पश्चात् मैं आपसे स्त्रियों के आपद्धर्म के सम्बन्ध में विस्तार से कहूँगा (आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये)।। ५६।।

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता।। ५७।।

ज्येष्ठस्य भ्रातुर्या भार्या सा कनिष्ठस्य भ्रातुर्गुरुपत्नी भवति। कनिष्ठस्य च भ्रातुर्या भार्या सा ज्येष्ठभ्रातुः स्नुषा मुनिभिः स्मृता।। ५७।।

जो बड़े भाई की पत्नी है, वह छोटे भाई के लिए गुरुपत्नी के समान होती है तथा जो छोटे भाई की स्त्री है, वह तो बड़े भाई के लिए पुत्रवधू के समान कही गई है।। ५७।।

ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि।। ५८।।

ज्येष्ठकनिष्ठभ्रातरावितरेतरभार्यां गत्वा संतानाभावं विना नियुक्तावपि पतितौ स्याताम्।। ५८।।

आपत्तिकाल को छोड़कर यदि बड़ा भाई छोटे भाई की स्त्री के साथ एवं छोटा भाई बड़े भाई की पत्नी के साथ नियोगविधि द्वारा भी यदि शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो वे दोनों ही पतित होते हैं।। ५८।।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये।। ५९।।

संतानाभावे स्त्रिया पत्यादिगुरुनियुक्तया देवरादन्यस्माद्वा सपिण्डाद्वक्ष्यमाणघृताक्तादिनियमवत्पुरुषगमनेनेष्टाः प्रजा उत्पादयितव्याः। ईप्सितेत्यभिधानमर्थात्कार्याक्षमपुत्रोत्पत्तौ पुनर्गमनार्थम्।। ५९।।

सन्तान के अभाव में विधिविधानपूर्वक नियोग के लिए नियुक्त स्त्री को देवर से या सपिण्डी (पति की छः पीढ़ियों में पति का छोटा या बड़ा भाई या स्वजातीय एवं उत्तम जाति का पुरुष) से शारीरिक सम्पर्क करके अभीष्ट सन्तान की प्राप्ति कर लेनी चाहिए।। ५९।।

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन।। ६०।।

विधवायामित्यपत्योत्पादनयोग्यपत्यभावपरमिदम्। जीवत्यपि पत्यौ अयोग्यपत्यादिगुरुनियुक्तो घृताक्तसर्वगात्रो मौनी रात्रावेकं पुत्रं जनयेन्न कथंचिद्द्वितीयम्।। ६०।।

नियोग विधि द्वारा विधवा में सन्तान उत्पन्न करने वाला व्यक्ति अपने शरीर पर घी लगाकर मौन होकर रात्रि में केवल एक पुत्र को उत्पन्न करे, किसी भी स्थिति में दूसरी सन्तान उत्पन्न न करे।। ६०।।

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः।
अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः।। ६१।।

अन्ये पुनराचार्या नियोगात्पुत्रोत्पादनविधिज्ञा अपुत्र एकपुत्र इति शिष्टप्रवादादनिष्पन्नं नियोगप्रयोजनं मन्यमानाः स्त्रीषु पुत्रोत्पादनं द्वितीयं धर्मतो मन्यन्ते।। ६१।।

धर्म के अनुकूल आचरण करने वाले उन दोनों स्त्री-पुरुषों में नियोग के प्रयोजन के पूर्ण न होने पर, नियोग से पुत्र को उत्पन्न करने की विधि को जानने वाले कुछ विद्वान् स्त्रियों में दूसरी सन्तान को उत्पन्न करना भी उचित मानते हैं।। ६१।।

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम्।। ६२।।

विधवादिकायां नियोगप्रयोजने गर्भधारणे यथाशास्त्रं संपन्ने सति ज्येष्ठो भ्राता कनिष्ठभ्रातृभार्या च परस्परं गुरुवत्स्नुषावच्च व्यवहरेताम्।। ६२।।

विधि-विधान के अनुसार विधवा में नियोग के उद्देश्यों के पूर्ण हो जाने पर तो

(देवर बड़े भाई की पत्नी के साथ) गुरुपत्नी के समान तथा बड़ा भाई छोटे भाई की पत्नी के साथ पुत्रवधू के समान ही परस्पर व्यवहार करें।। ६२।।

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ।। ६३।।

ज्येष्ठकनिष्ठभ्रातरौ यौ परस्परभार्यायां नियुक्तौ घृताक्तादिविधानं त्यक्त्वा स्वेच्छातो वर्तेयातां तौ स्नुषागगुरुदारगौ पतितौ भवेताम्।। ६३।।

नियोग के लिए नियुक्त किया गया बड़ा भाई अथवा छोटा भाई, नियोग की व्यवस्था का परित्याग करके यदि काम के वशीभूत होकर परस्पर व्यवहार करें, तो दोनों क्रमशः पुत्रवधू गमन एवं गुरुपत्नी गमनरूप दुराचरण करने के कारण पतित होते हैं।। ६३।।

एवं नियोगमभिधाय दूषयितुमाह—

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम्।। ६४।।

ब्राह्मणादिभिर्विधवा स्त्री भर्तुरन्यस्मिन्देवरादौ न नियोजनीया। स्त्रियमन्यस्मिन्नियुञ्जनास्ते स्त्रीणामेकपतित्वधर्ममनादिसिद्धं नाशयेयुः।। ६४।।

ब्राह्मणादि द्विजातियों द्वारा विधवा स्त्री को पति के अतिरिक्त देवरादि से (विवाहादि द्वारा) सम्बद्ध नहीं करना चाहिए, क्योंकि दूसरों से विवाहादि करके वे स्त्रियों के एक पतित्व रूप सनातनधर्म के विनाशक होंगे।। ६४।।

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः।। ६५।।

''अर्यमणं नु देवम्'' इत्येवमादिषु विवाहप्रयोगजनकेषु मन्त्रेषु क्वचिदपि शाखायां न नियोगः कथ्यते। नच विवाहविधायकशास्त्रेऽन्येन पुरुषेण स पुनर्विवाह उक्तः।। ६५।।

क्योंकि विवाह विषयक मन्त्रों में कहीं भी नियोग की चर्चा नहीं की गई है। न ही विवाह विषयक शास्त्रों में विधवा स्त्री के पुनः विवाह का उल्लेख ही किया गया है।। ६५।।

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति।। ६६।।

यस्मादयं पशुसंबन्धी मनुष्याणामपि व्यवहारो विद्वद्भिर्निन्दितः। योऽयमधार्मिके

वेने राज्ञि राज्यं कुर्वाणे तेन कर्तव्यातया प्रोक्तः। अतो वेनादारभ्य प्रवृत्तोऽयमादिमानिति निन्द्यते।। ६६।।

यद्यपि राजा वेन के शासनकाल में मनुष्यों में नियोग का विधान कहा गया तथापि विद्वान् द्विजों द्वारा नियोग पशुधर्म कहकर ही विशेषरूप से निन्दित किया गया है।। ६६।।

स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः।। ६७।।

स वेनो महीं समग्रां पूर्वं पालयन्नतएव राजर्षिश्रेष्ठो नतु धार्मिकत्वात्, कामोपहतबुद्धिर्भ्रातृभार्यागमनरूपं वर्णसंकरं प्रावर्तयत्।। ६७।।

क्योंकि प्राचीन समय में सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करता हुआ राजर्षियों में अग्रणी राजा वेन काम से नष्ट बुद्धि वाला होकर वर्णसङ्कर सन्ततियों को उत्पन्न करने लगा।। ६७।।

ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः।। ६८।।

वेनकालत्प्रभृति यो मृतभर्तृकादिस्त्रियं शास्त्रार्थाज्ञानादपत्यनिमित्तं देवरादौ नियोजयति तं साधवो नियतं गर्हयन्ते। अयं च स्वोक्तनियोगनिषेधः कलियुगविषयः। तदाह बृहस्पतिः—"उक्तो निरोगो मुनिना निषिद्धः स्वयमेव तु। युगक्रमादशक्योऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः।। तपोज्ञानसमायुक्ताः कृतत्रेतायुगे नराः। द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्हि निर्मिता। अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिश्च पुरातनैः। न शक्यन्तेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैरिदंतनैः।।" अतो यद्गोविन्दराजेन युगविशेषव्यवस्थामज्ञात्वा सर्वदैव संतानाभावे नियोगादनियोगपक्षः श्रेयानिति स्वमनीषया कल्पितं तन्मुनिव्याख्या-विरोधान्नाद्रियामहे। प्रायशो मनुवाक्येषु मुनिव्याख्यानमेव हि। नापराध्योऽस्मि विदुषां क्वाहं सर्वविदः कुधीः।। ६८।।

अतः तभी से लेकर जो व्यक्ति अज्ञानवश मृतपति वाली विधवा स्त्री को सन्तान के लिए नियोगक्रिया हेतु प्रेरित करता है। साधु लोग उसकी विशेषरूप से निन्दा करते हैं।। ६८।।

नियोगप्रकरणत्वात्कन्यागतं विशेषमाह—

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः।। ६९।।

यस्याः कन्याया वाग्दाने कृते सति भर्ता म्रियेत तामनेन वक्ष्यमाणेनानुष्ठानेन भर्तुः सोदरभ्राता परिणयेत्।। ६९।।

वाग्दान (सगाई) की रस्म पूर्ण करने पर जिस कन्या का पति मर जाए उस कन्या को पति का छोटा भाई (देवर) इस विधानपूर्वक (विवाह विधि द्वारा) प्राप्त कर लेवे।। ६९।।

यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्।
मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ।। ७०।।

स देवरो विवाहविधिना एनां स्वीकृत्य शुक्लवस्त्रां कायवाङ्मनःशौचशालिनी-मागर्भग्रहणाद्रहसि ऋतावृतावेकैकवारं गच्छेत्। एवं कन्याया नियोग-प्रकारत्वाद्विवाहस्याग्रहाच्च गमनोपदेशाद्यस्मै वाग्दत्ता तस्यैव तदपत्यं भवति।।७०।।

वह देवर विवाहविधि द्वारा शुक्ल वस्त्रों को धारण करने वाली, शरीर, वाणी और मन से पवित्र इस कन्या को स्वीकार करके गर्भधारण करने तक प्रत्येक ऋतुकाल में केवल एक बार ही परस्पर सम्पर्क स्थापित करे।। ७०।।

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः।
दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम्।। ७१।।

कस्मैचिद्वाचा कन्यां दत्त्वा तस्मिन्मृते दानगुणदोषज्ञस्तामन्यस्मै न दद्यात्। यस्मादेकस्मै दत्त्वान्यस्मै ददत् पुरुषानृतं "सहस्रम्" (अ० ८ श्लो० १३८) इत्युक्तदोषं प्राप्नोति। सप्तपदीकरणस्याजातत्वाद्भार्यात्वानिष्पत्तेः पुनर्दानाशङ्कायामिदं वचनम्।। ७१।।

यदि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति वाग्दान द्वारा कन्या को एक बार देकर तत्पश्चात् उस पति के मरने पर किसी अन्य को कन्या देता है, तो एक ही कन्या को एक बार देकर, पुनः अन्य को देता हुआ वह व्यक्ति 'मिथ्यावाद' का दोषी हो जाता है।। ७१।।

विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्।
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम्।। ७२।।

"अद्भिरेव द्विजाग्र्याणाम्" (अ० ३ श्लो० ३५) इत्येवमादिविधिना प्रतिगृह्यापि कन्यां वैधव्यलक्षणोपेतां रोगिणीं क्षतयोनित्वाद्यभिशापवतीमधिकाङ्गादिगो-पनच्छद्मोपपादितां सप्तपदीकरणात्प्राग्ज्ञातां त्यजेत्। ततश्च तत्त्यागे दोषाभाव इत्येतदर्थं नतु त्यागार्थम्।। ७२।।

शास्त्रोक्त विधि द्वारा स्वीकार करने पर भी व्यक्ति को निन्दित, उपचार न किए

जाने योग्य, व्याधि से ग्रस्त, व्यभिचारिणी अथवा छद्मपूर्वक प्रदान की गई कन्या को छोड़ देना चाहिए।। ७२।।

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत्।
तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः।। ७३।।

यः पुनर्दोषवतीं कन्यां दोषाननभिधाय ददाति तस्य कन्यादातुर्दुरात्मनो दानं तत्प्रत्यर्पणेन व्यर्थं कुर्यात्। एतदपि त्यागे दोषाभावकथनार्थम्।। ७३।।

किन्तु जो व्यक्ति दोषयुक्त कन्या के दोषों का कथन किए बिना ही विवाह कर देता है। धोखे से कन्या को देने वाले उस दुष्टात्मा के दान को वापस लौटाकर उसे व्यर्थ (असत्य) कर देना चाहिए।। ७३।।

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः।
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि।। ७४।।

कार्ये सति मनुष्यः पत्न्या ग्रासाच्छादनादि प्रकल्प्य देशान्तरं गच्छेत्। यस्माद्ग्रासाद्यभावपीडिता स्त्री शीलवत्यपि पुरुषान्तरसंपर्कं भजेत्।। ७४।।

आवश्यक कार्यवश विदेश जाने वाले व्यक्ति को अपनी पत्नी के भरण-पोषण की व्यवस्था करके ही प्रवास करना चाहिए, क्योंकि आजीविका के अभाव में परेशान हुई शुद्ध आचरण वाली स्त्री भी दूषित हो जाती है।। ७४।।

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः।। ७५।।

भक्ताच्छादनादि दत्त्वा पत्यौ देशान्तरं गते देहप्रसाधनपरगृहगमनरहिता जीवेत्। अदत्त्वा पुनर्गते सूत्रनिर्माणादिभिरनिन्दितशिल्पेन जीवेत्।। ७५।।

पत्नी की आजीविका की व्यवस्था करके पति के विदेश जाने पर स्त्री पातिव्रत्य धर्म का पालन करते हुए जीवन निर्वाह करे, किन्तु किसी कारणवश उसकी जीविका की व्यवस्था किए बिना ही पति के विदेश जाने पर तो वह अनिन्दित शिल्पकार्यों (सिलाई बुनाई आदि) द्वारा अपना जीवनयापन करे।। ७५।।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्।। ७६।।

गुर्वाज्ञासंपादनादिधर्मकार्यनिमित्तं प्रोषितः पतिरष्टौ वर्षाणि पत्न्या प्रतीक्षणीयः ऊर्ध्वं पतिसंनिधिं गच्छेत्। तदाह वसिष्ठः—"प्रोषितपत्नी पञ्च वर्षाण्युपासीत, ऊर्ध्वं पतिसकाशं गच्छेत्" इति। विद्यार्थं प्रोषितः षड् वर्षाणि प्रतीक्ष्यः।

निजविद्याविभाजनेन यशोऽर्थमपि प्रोषितः पतिः षडेव। भार्यान्तरोपभोगार्थं गतस्त्रीणि वर्षाणि।। ७६।।

धर्म के कार्य के लिए विदेश गया हुआ व्यक्ति, विवाहित स्त्री द्वारा आठ वर्ष तक, विद्या अथवा यश के लिए गया हुआ छः वर्ष तक, जबकि धनादि की कामना से गया हुआ तीन वर्ष तक प्रतीक्षा के योग्य होता है (इसके पश्चात् वह स्त्री नियोग द्वारा सन्तति प्राप्त कर ले तथा विवाहित पति के आने पर नियोगी को मुक्त कर दे) ।। ७६।।

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः।
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत्।। ७७।।

पतिर्विषयसंजातद्वेषां स्त्रियं वर्षं यावत्प्रतीक्षेत। तत ऊर्ध्वमपि द्विषन्तीं स्वदत्तमलंकारादि धनं हृत्वा नोपगच्छेत्। ग्रासाच्छादनमात्रं तु देयमेव।। ७७।।

इसीप्रकार विवाहित पति सांसारिक विषयों से द्वेष करने वाली स्त्री की वर्षपर्यन्त प्रतीक्षा करे (इसके बाद भी उसके स्वभाव में परिवर्तन न होने पर) एक वर्ष के पश्चात् इसे दी हुई वस्तुओं को अपने पास रखकर उसके साथ रहना छोड़ देवे ।। ७७।।

अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्तमेव वा।
सा त्रीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा।। ७८।।

या स्त्री द्यूतादिप्रमादवन्तं मदजनकपानादिना मत्तं व्याधितं वा शुश्रूषाद्य-करणेनावजानाति सा विगतालंकारशय्यादिपरिच्छदा त्रीन्मासान्नोपगन्तव्या।। ७८।।

जो स्त्री मदिरादि पीने वाले, द्यूतादि खेलने वाले अथवा रोगग्रस्त पति की उपेक्षा करती है। वह पति द्वारा वस्त्राभूषण सहित तीन मास के लिए परित्याग करने योग्य है।। ७८।।

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम्।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम्।। ७९।।

वातादिक्षोभादप्रकृतिस्थं, पतितमेकादशाध्याये वक्ष्यमाणं, नपुंसकम्, अबीजं बाध्यरेतस्त्वादिना बीजरहितं, कुष्ठाद्युपेतं च पतिमपरिचरन्त्यास्त्यागो न करणीयो नच धनग्रहणं करणीयम्।। ७९।।

किन्तु पागल, पतित, नपुंसक, शुक्राणुरहित तथा पाप रोगों से ग्रस्त पति के प्रति द्वेष करने वाली स्त्री का त्याग उचित नहीं है और न ही उसके वस्त्रभूषणादि लेना उचित है।। ७९।।

मद्यपासाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा।। ८०।।

निषिद्धमद्यपानरता, असाध्वाचारा, भर्तुः प्रतिकूलाचरणशीला, कुष्ठादिव्याधियुक्ता, भृत्यादिताडनशीला, सततमतिव्ययकारिणी या भार्या भवेत्साधिवेत्तव्या तस्यां सत्यामन्यो विवाहः कार्यः।। ८०।।

जो स्त्री मद्यपान करने वाली, दुराचारिणी, प्रतिकूल आचरण करने वाली हो तथा कुष्ठादि रोगों से ग्रस्त, हिंसक स्वभाव वाली, धन का अत्यधिक व्यय करने वाली हो, ऐसी स्त्री को हमेशा मानसिक पीड़ा देने वाली मानना चाहिए (अतः उसके रहते हुए भी पुरुष के लिए अन्य नियोगज विवाह करना उचित है)।। ८०।।

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी।। ८१।।

प्रथमर्तुमारभ्याविद्यमानप्रसूता अष्टमे वर्षेऽधिवेदनीया, मृतापत्या दशमे वर्षे, स्रीजनन्येकादशे, अप्रियवादिनी सद्य एव यद्यपुत्रा भवति। पुत्रवत्यां तु तस्यां "धर्मप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीत, अन्यतरापाये तु कुर्वीत" इत्यापस्तम्बनिषेधादधिवेदनं न कार्यम्।। ८१।।

इसीप्रकार स्त्री यदि बाँझ हो तो आठवें वर्ष, मृत सन्तान होने पर दसवें वर्ष, केवल कन्या उत्पन्न होने पर ग्यारहवें वर्ष, जबकि अप्रिय बोलने वाली हो तो शीघ्र ही (उस निःसन्तान स्त्री को छोड़कर व्यक्ति को अन्य स्त्री से नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न कर लेनी चाहिए)।। ८१।।

या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित्।। ८२।।

या पुनर्व्याधिता सती पत्युरनुकूला भवति शीलवती च स्यात्तामनुज्ञाप्यान्यो विवाहः कार्यः। कदाचिच्चासौ नावमाननीया।। ८२।।

यदि स्त्री निरन्तर रोगग्रस्त रहे, किन्तु पति का हित चाहने वाली एवं शीलसम्पन्न हो तो उसकी स्वीकृति प्राप्त करके पुरुष को (विधवा अथवा सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ पति वाली) अन्य स्त्री से नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न कर लेनी चाहिए। किन्तु उस स्त्री का कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए।। ८२।।

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात्।
सा सद्यः संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसंनिधौ।। ८३।।

या पुनः कृताधिवेदना स्त्री कुपिता निर्गच्छति सा तदहरेव रज्जवादिना बद्ध्वा स्थापनीया आकोपनिवृत्तेः। पित्रादिकुलसंनिधौ वा त्याज्या।। ८३।।

यदि (नियोगादि के लिए) दूसरी पत्नी के आने से पहली स्त्री क्रोधित होकर घर से बाहर निकल जाए तो व्यक्ति को शीघ्र ही उसे भलीप्रकार मनाकर रोकना चाहिए अथवा (न मानने पर) उसे उसके पिता के घर छोड़ देना चाहिए।। ८३।।

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि।
प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट्।। ८४।।

या पुनः क्षत्रियादिका स्त्री भर्त्रादिनिवारिता विवाहाद्युत्सवेष्वपि निषिद्धमद्यं पिबेन्नृत्यादिस्थानजनसमूहौ वा गच्छेत्सा सुवर्णकृष्णलानि षट् व्यवहारप्रकरणाद्राज्ञा दण्डनीया।। ८४।।

पति आदि द्वारा रोके जाने पर भी जो स्त्री विवाहादि उत्सवों में मद्यपान करे अथवा नाचगाने वाले जनसंमर्द युक्त स्थान पर जावे, वह स्त्री राजा द्वारा छः कृष्णल दण्ड देने योग्य होती है।। ८४।।

यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः।
तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च।। ८५।।

यदि द्विजातयः स्वजातीया विजातीयाश्चोद्वहेयुस्तदा तासां द्विजातिक्रमेण वाक्संमानदायविभागोत्कर्षार्थं ज्येष्ठत्वं पूजा च वस्त्रालंकारादिदानेन गृहं च प्रधानं स्यात्।। ८५।।

यदि द्विजाति के लोग (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) अपने वर्ण की या फिर दूसरे वर्ण की स्त्री से विवाह करें तो उन स्त्रियों की घर में पूजा (सम्मान) एवं वरिष्ठता आदि उनके वर्णक्रम से ही निर्धारित करनी चाहिए।। ८५।।

भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम्।
स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन।। ८६।।

भर्तुर्देहपरिचर्यामन्नदानादिरूपां धर्मकार्यं च भिक्षादानातिथिपरिवेषण-होमीयद्रव्योपकल्पनादि प्रात्यहिकं सर्वेषां द्विजातीनां सजातिभार्यैव कुर्यान्न तु कदाचिद्विजातीयेति।। ८६।।

पति के शरीर की सेवा एवं दैनन्दिन धार्मिककार्यों को, सभी की अपने वर्ण की स्त्रियाँ ही सम्पादित करें, किसी भी स्थिति में अन्य वर्ण की स्त्रियाँ न करें।। ८६।।

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया।
यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः।। ८७।।

यः पुनः स्वजातीयया संनिहितया देहशुश्रूषादिकं कर्तव्यं विजातीयया मौर्ख्यात्कारयेत्स यथा ब्राह्मण्यां शूद्राज्जातो ब्राह्मणचाण्डालस्तथैव पूर्वैर्ऋषिभिर्दृष्ट इति पूर्वानुवादः।। ८७।।

स्वजातीय स्त्री के रहते हुए जो व्यक्ति अज्ञानवश शरीरसेवा एवं धार्मिक कृत्यादि अन्य वर्ण की स्त्री से कराता है, वह व्यक्ति पूर्व में कहे गए ब्राह्मणी में शूद्र द्वारा उत्पन्न 'ब्राह्मणचाण्डाल' के समान ही माना गया है।। ८७।।

उत्कृष्टायाभिरूपाया वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि।। ८८।।
(प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयान्वितः।
ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यामेनो दातारमृच्छति।। २।।)

कुलाचारादिभिरुत्कृष्टाय सुरूपाय समानजातीयाय वरायाप्राप्तकालमपि "विवाहयेदष्टवर्षामेवं धर्मो न हीयते" इति दक्षस्मरणात्। तस्मादपि कालात्प्रागपि कन्यां ब्राह्मविवाहविधिना दद्यात्।। ८८।।

यदि माता-पिता को उत्कृष्ट गुण सम्पन्न, रूपवान्, कन्या के समान गुणी एवं सुशील वर की प्राप्ति हो जाए, तो कन्या की विवाह योग्य आयु न होने पर भी विधिविधानपूर्वक उस वर को कन्या प्रदान कर देनी चाहिए।। ८८।।

(ऋतुकाल के भय से युक्त व्यक्ति को कन्या का ऋतुकाल प्रारम्भ हुए बिना ही उस कन्या का दान कर देना चाहिए, क्योंकि पिता के घर पर ऋतुमती कन्या के बैठे रहने से कन्यादान करने वाला पाप का भागी होता है।। २।।)

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।। ८९।।

संजातार्तवापि कन्या वरं मरणपर्यन्तं पितृगृहे तिष्ठेन्न पुनरेनां विद्यागुणरहिताय कदाचित्पित्रादिर्दद्यात्।। ८९।।

भले ही ऋतुमती कन्या भी मरणपर्यन्त पिता के घर में ही बैठी रहे, किन्तु गुणहीन दुष्ट व्यक्ति के साथ इसका कभी भी विवाह नहीं करना चाहिए।। ८९।।

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्।। ९०।।

पित्रादिभिर्गुणवद्वरायादीयमाना कन्या संजातार्तवा सती त्रीणि वर्षाणि प्रतीक्षेत। वर्षत्रयात्पुनरूर्ध्वमधिकगुणवरालाभे समानजातिगुणं वरं स्वयं वृणीत।। ९०।।

ऋतुमती होने पर कन्या, पिता द्वारा तीन वर्षों तक अपने लिए वर की खोज की प्रतीक्षा करे। इससमय से अधिक होने पर वह स्वयं ही अपने समान गुणसम्पन्न पति का वरण कर लेवे।। ९०।।

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम्।
नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति।। ९१।।

पित्रादिभिरदीयमाना कुमारी यथोक्तकाले यदि भर्तारं स्वयं वृणुते तदा सा न किं चित्पापं प्राप्नोति। नच तत्पतिः पापं प्राप्नोति।। ९१।।

पितादि द्वारा विवाह में न दी गई कन्या यदि अपने पति का स्वयं वरण करे तो उसे कोई पाप नहीं लगता है और न ही उसे कोई पाप होता है, जिसका वह वरण करती है।। ९१।।

अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा।
मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत्।। ९२।।

स्वयंवृतपतिका कन्या वरस्वीकरणात्पूर्वं पितृमातृभातृभिर्दत्तमलंकारं तेभ्यः समर्पयेत्। यदा नार्पयेत्तदा चौरी स्यात्।। ९२।।

अपने वर का स्वयं वरण करने वाली कन्या, पिता, माता अथवा भाई आदि द्वारा दिए गए वस्त्राभूषणों को ग्रहण न करे। यदि वह उन्हें ग्रहण कर ले तो उसे चोर समझना चाहिए।। ९२।।

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन्।
स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात्।। ९३।।

ऋतुयुक्तां कन्यां वरः परिणयन्पित्रे शुल्कं न दद्यात्। यस्मात्स पिता ऋतुकार्या-पत्योत्पत्तिनिरोधात्कन्यायाः स्वामित्वाद्धीयते।। ९३।।

ऋतुमती कन्या का वरण करते हुए व्यक्ति कन्या के पिता को कोई शुल्क प्रदान न करे, क्योंकि ऋतुकाल में रजों को रोकने के कारण वह स्वामित्व से हीन हो जाता है।। ९३।।

त्रिंशद्वर्षोवहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः।। ९४।।

त्रिंशद्वर्षः पुमान् द्वादशवर्षवयस्कां मनोहारिणीं कन्यामुद्वहेत्। चतुर्विंशतिवर्षो वाष्टवर्षां, गार्हस्थ्यधर्मेऽवसादं गच्छति त्वरावान्। एतच्च योग्यकालप्रदर्शनपरं नतु

नियमार्थं, प्रायेणैतावता कालेन गृहीतवेदो भवति त्रिभागवयस्का च कन्या वोढुर्यूनो योग्येति गृहीतवेदश्चोपकुर्वाणको गृहस्थाश्रमं प्रति न विलम्बेतेति सत्वर इत्यस्यार्थः ।। ९४।।

व्यक्ति तीस वर्ष की आयु में बारह वर्ष की सुन्दर कन्या के साथ विवाह कर सकता है अथवा चौबीस वर्ष के वर को आठ वर्ष की कन्या से विवाह करना चाहिए। अधिक शीघ्रता करने वाला धर्म से पतित होता है।। ९४।।

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः।
तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन्।। ९५।।

"भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः" इत्यादिमन्त्रलिङ्गात्, या देवैर्दत्ता भार्या तां पतिर्लभते नतु स्वेच्छया। तां सतीं देवानां प्रियं कुर्वन्ग्रासाच्छादनादिना सदा द्वेषाद्युपेतामपि पोषयेत्।। ९५।।

व्यक्ति देवताओं द्वारा प्रदत्त पत्नी को ही प्राप्त करता है न कि स्वेच्छा से। इसलिए पति को हमेशा देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उस साध्वी का भोजन एवं आच्छादनादि द्वारा भलीप्रकार भरण-पोषण करना चाहिए।। ९५।।

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः।। ९६।।

यस्माद्गर्भग्रहणार्थं स्त्रियः सृष्टा गर्भाधानार्थं च मनुष्यास्तस्माद्गर्भोत्पादनमेवानयोः, अग्न्याधानादिरपि धर्मः पत्न्या सह साधारणः "क्षौमे वसानावग्नीनादधीयातां" इत्यादिर्वेदेऽभिहितः। तस्माद्भार्यां विभृयादिति पूर्वोक्तस्य शेषः।। ९६।।

स्त्रियाँ सन्तति उत्पन्न करने के लिए बनी हैं तथा मनुष्यों की सृष्टि गर्भधारण कराने के लिए। इसलिए (दोनों के आपस में पूरक होने के कारण) वेदों में छोटे से छोटा धार्मिक अनुष्ठान भी पत्नी के साथ ही करने के लिए कहा गया है।। ९६।।

कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः।
देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते।। ९७।।

कन्यायां दत्तशुल्कायां सत्यामसंजातविवाहायां यदि शुल्कदो वरो म्रियेत, तदा देवराय पित्रादिभिर्वासौ कन्या दातव्या यदि सा स्वीकरोति। "यस्या म्रियेत" (अ० ९ श्लो० ६९) इति प्रागुक्तं नियोगरूपं, इदं तु शुल्कग्रहणविषयम्।। ९७।।

कन्या के लिए शुल्क देने के पश्चात् यदि शुल्क देने वाला पति मर जाता है तो

यदि कन्या अपनी सहमति प्रदान करे तो उसका विवाह मृतपति के छोटे भाई (देवर) से कर देना चाहिए।। ९७।।

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददन्।
शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम्।। ९८।।

शास्त्रानभिज्ञः शूद्रोऽपि पुत्रीं ददच्छुल्कं न गृह्णीयात्किं पुनः शास्त्रविद्विजातिः। यस्माच्छुल्कं गृह्णन्गुप्तं दुहितृविक्रयं कुरुते। "न कन्यायाः पिता" (अ० ३ श्लो० ५१) इत्यनेन निषिद्धमपि शुल्कग्रहणं कन्यायामपि गृहीतशुल्कायां शास्त्रीयनियम-दर्शनाच्छुल्कग्रहणे शास्त्रीयत्वशंकायां पुनस्तन्निषिध्यते।। ९८।।

कन्यादान करते समय (शास्त्रों को न जानने वाले) शूद्र को कभी भी शुल्क प्राप्त नहीं करना चाहिए, क्योंकि शुल्क को ग्रहण करता हुआ वह, प्रायः गुप्तरूप से अपनी कन्या को ही बेच देता है।। ९८।।

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः।
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते।। ९९।।

एतत्पुनः पूर्वे शिष्टा न कदाचित्कृतवन्तो नाप्यपरे वर्तमानकालाः कुर्वन्ति यदन्यस्य कन्यामङ्गीकृत्य पुनरन्यस्मै दीयत इति। एतच्चागृहीतशुल्ककन्यामदत्त्वा कस्यचित्, कन्यायामिति तु गृहीतशुल्कविषयम्।। ९९।।

न तो सज्जनों ने प्राचीन समय में कभी ऐसा किया और न ही वर्तमान समय में कोई ऐसा करता है कि अन्य के लिए कन्यादान करके, कन्या दूसरे को दे दी जाए।। ९९।।

नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु।
शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम्।। १००।।

पूर्वकल्पेष्वप्येतद्वृत्तमिति कदाचिद्वयं न श्रुतवन्तो, यच्छुल्काभिधानेन मूल्येन कश्चित्साधुर्गूढं दुहितृविक्रयमकार्षीदिति शुल्कनिषेधार्थवादः।। १००।।

वास्तविकता तो यह है कि पूर्व जन्मों में भी हमने कभी ऐसा नहीं सुना कि शुल्क नामक मूल्य द्वारा गुप्तरूप से कन्या को बेच दिया गया हो।। १००।।

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भेवदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः।। १०१।।

भार्यापत्योर्मरणान्तं यावद्धर्मार्थकामेषु परस्पराव्यभिचारः स्यादित्येव संक्षेपतः स्त्रीपुंसयोः प्रकृष्टो धर्मो ज्ञातव्यः।। १०१।।

स्त्री एवं पुरुष का संक्षेप में यही सर्वोत्कृष्ट धर्म समझना चाहिए कि वे दोनों मरणपर्यन्त कभी भी परस्पर धर्म-विषयक उल्लंघन न करें।। १०१।।

तथा च सति—

तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम्।। १०२।।

स्त्रीपुंसौ कृतविवाहौ तथा सदा यत्नं कुर्यातां यथा धर्मार्थकामविषये वियुक्तौ परस्परं न व्यभिचरेताम्।। १०२।।

विवाह के पश्चात् स्त्री एवं पुरुष तो हमेशा वैसा प्रयत्न करें कि जिससे एक-दूसरे से वियुक्त होकर भी वे दोनों आपस में विरुद्ध आचरण न करें।। १०२।।

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः।
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत।। १०३।।

एष भार्यापत्योरन्योन्यानुरागयुक्तो धर्मो युष्माकमुक्तः। संतानाभावे चापत्य-प्राप्तिरुक्ता। इदानीं दीयत इति दायः पित्रादिधनं तस्य विभागव्यवस्थां शृणुत।। १०३।।

यह मैंने आपसे स्त्री और पुरुष के परस्पर अनुरागसहित धर्म एवं आपातकाल में नियोग-विधि द्वारा सन्तान प्राप्ति का कथन किया (अब तुम सब मुझसे) दायभाग के विषय में सुनो।। १०३।।

भ्रातरो मिलित्वा पितृमरणादूर्ध्वं पैतृकं मातृमरणादूर्ध्वं मातृकं धनं समं कृत्वा विभजरेन्। ज्येष्ठगोचरतयोद्धारस्य वक्ष्यमाणत्वात् समभागोऽयं ज्येष्ठभ्रातर्युद्धारमनिच्छति बोद्धव्यः। पित्रोर्मरणादूर्ध्वं विभागहेतुमाह—

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम्।
भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः।। १०४।।

यस्मात्ते पुत्रा जीवतोः पित्रोस्तदीयधने स्वामिनो न भवन्ति। मातुरपि प्रकृतत्वात्पैतृकमित्यनेन मातृकस्यापि ग्रहणम्। अयं च पितृमरणानन्तरं विभागो जीवतः पितुरिच्छाभावे द्रष्टव्यः। पितुरिच्छया जीवत्यपि तस्मिन्विभागः। तदाह याज्ञवल्क्यः—"विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्" (अ० २ श्लो. ११४) इति।। १०४।।

माता-पिता के मरने के पश्चात् सभी भाई एकत्र होकर पैतृक सम्पत्ति का बराबर विभाजन कर लें, क्योंकि माता-पिता की जीवित अवस्था में वे उस धन के अधिकारी नहीं होते हैं।। १०४।।

यदा पुनर्ज्येष्ठो धार्मिको भवति तदा—

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा।। १०५।।

ज्येष्ठ एव पितृसंबन्धि धनं गृह्णीयात्। कनिष्ठाः पुनर्ज्येष्ठं भक्ताच्छादनाद्यर्थं पितरमिवोपजीवेयुः। एवं सर्वेषां सहैवावस्थानम्।। १०५।।

(किन्तु यदि सब भाइयों को साथ ही रहना हो तो) पिता के सम्पूर्ण धन को बड़ा पुत्र ही ग्रहण कर ले और शेष सभी भाई जिसप्रकार पिता के साथ रहते थे, उसीप्रकार उस पर आश्रित होकर रहें।। १०५।।

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः।
पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति।। १०६।।

उत्पन्नमात्रेण ज्येष्ठेन संस्काररहितेनापि मनुष्यः पुत्रवान्भवति। ततश्च ''नापुत्रस्य लोकोऽस्ति'' इति श्रुतेः पुण्यलोकाभावपरिहारो भवति। तथा ''प्रजया पितृभ्यः'' इति श्रुतेः' ''पुत्रेण जातमात्रेण पितॄणामनृणश्च सः'' इति। अतो ज्येष्ठ एव सर्वधनमर्हति पूर्वस्य। अनुजास्तेन साम्ना वर्तेरन्।। १०६।।

क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र के उत्पन्न होने मात्र से व्यक्ति पुत्रवान् होता है तथा पितृ-ऋण से मुक्त हो जाता है। इसलिए वह पिता के सम्पूर्ण धन को ग्रहण करने योग्य है।। १०६।।

यस्मिन्नृणं संनयति येन चानन्त्यमश्नुते।
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः।। १०७।।

यस्मिन जाते ऋणं शोधयति। येन जातेनामृतत्वं प्राप्नोति। तथाच श्रुतिः-''ऋणमस्मिन्सन्नयत्यमृतत्वं च गच्छति। पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्'' इति। स एव पितुर्धर्मेण हेतुना जातः पुत्रो भवति, तेनैकेनैव ऋणापनय नाद्युपकारस्य कृतत्वात्। इतरांस्तु कामजान्मुनयो जानन्ति। ततश्च सर्वं धनं गृह्णीयादित्यस्यैवायमपि विशेषः।। १०७।।

जिस पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता, पितृऋण से मुक्त होता है तथा जिसके द्वारा वह मोक्ष प्राप्त करता है। वही वस्तुतः धर्म-पुत्र है, अन्य पुत्रों को तो कामज समझना चाहिए।। १०७।।

पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः।
पुत्रवच्चापि वर्तेरञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः।। १०८।।

ज्येष्ठो भ्राता विभागाभावेऽनुजान् भ्रातॄन्भक्ताच्छादनादिभिः पितेव बिभृयात्। अनुजाश्च भ्रातरः पुत्रा इव ज्येष्ठे भ्रातरि धर्माय वर्तेरन्।। १०८।।

एक साथ सम्मिलितरूप से रहते हुए बड़े भाई को, पिता जिसप्रकार अपने पुत्रों का पालन करता है, उसके समान ही अपने छोटे भाइयों का पालन-पोषण करना चाहिए तथा सभी छोटे भाई भी बड़े भाई के प्रति धर्मदृष्टि से उसके पुत्र के समान ही व्यवहार करें (अतः उसे पितृतुल्य सम्मान प्रदान करें)।। १०८।।

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः।। १०९।।

अकृतविभागो ज्येष्ठो यदि धार्मिको भवति तदानुजानामपि तदनुयायित्वेन धार्मिकत्वाज्ज्येष्ठः कुलं वृद्धिं नयति। यद्यधार्मिको भवति तदानुजानामपि तदनुयायित्वा-ज्ज्येष्ठः कुलं नाशयति। तथा गुणवाञ्ज्येष्ठो लोके पूज्यतमः साधुभिश्चागर्हितो भवति ।। १०९।।

बड़ा पुत्र कुल की वृद्धि करने वाला होता है तथा सुयोग्य न होने पर वही कुल का नाश भी कर देता है। इसलिए इस संसार में बड़ा भाई अत्यधिक पूजनीय माना गया है। सज्जन लोग उसी की प्रशंसा करते हैं।। १०९।।

यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बन्धुवत्।। ११०।।

यो ज्येष्ठोऽनुजेषु भ्रातृषु पितृवद्वर्तेत, स पितेव मातेवागर्हणीयो भवति। यः पुनस्तथा न वर्तेत स मातुलादिबन्धुवदर्चनीयः।। ११०।।

जो बड़ा भाई बड़ों के समान ही व्यवहार वाला होता है तो वह माता-पिता के समान पूजनीय होता है, किन्तु जो बड़ों के समान व्यवहार करने वाला नहीं होता है, वह तो केवल बन्धु-बान्धवों के समान सम्मान के योग्य होता है।। ११०।।

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया।
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया।। १११।।

एवमविभक्ता भ्रातरः सह संवसेयुः। यदि वा धर्मकामनया कृतविभागाः पृथग्वसेयुः। यस्मात्पृथगवस्थाने सति पृथक् पञ्चमहायज्ञाद्यनुष्ठानधर्मस्तेषां वर्धते, तस्माद्विभागक्रिया धर्मार्था। तथाच बृहस्पतिः—''एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम्। एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे''।। १११।।

इसप्रकार (पिता के मरने पर) सभी भाई एक साथ रहें अथवा धर्म की कामना

से अलग-अलग निवास करें। अलग-अलग रहने से भी धर्म की वृद्धि होती है, इसलिए अलग रहना भी धर्मसम्मत माना गया है।। १११।।

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्।
ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः।। ११२।।

उद्ध्रियत इत्युद्धारः जयेष्ठस्याविभक्तसाधारणधनादुद्धृत्य विंशतितमो भागः सर्वद्रव्येभ्यश्च यच्छ्रेष्ठं तद्दातव्यम्। मध्यमस्य चत्वारिंशत्तमो भागो देयः। कनिष्ठस्य पुनरशीतितमो भागो दातव्यः। अवशिष्टं धनं समं कृत्वा विभजनीयम्।। ११२।।

पैतृक सम्पत्ति में से बड़े पुत्र का बीसवाँ भाग उद्धार[१] रूप में होता है, साथ ही सभी वस्तुओं में से जो सर्वश्रेष्ठ हो वह भी उसे दी जाती है। बड़े भाई से आधा (चालीसवाँ हिस्सा) मध्यम को तथा उसका भी चौथाई भाग (अस्सीवाँ हिस्सा) सबसे छोटे को (उद्धाररूप में) प्राप्त होता है।। ११२।।

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम्।
येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम्।। ११३।।

ज्येष्ठकनिष्ठौ पूर्वश्लोके यथोक्तमुद्धारं गृह्णीयाताम्। ज्येष्ठकनिष्ठव्यतिरिक्ता ये मध्यमास्तेषामेवावान्तरज्येष्ठकनिष्ठतामनपेक्ष्य मध्यमस्योक्तचत्वारिंशद्भागः प्रत्येकं दातव्यः। मध्यमानामवान्तरज्येष्ठकनिष्ठदेयभागे वैषम्यवारणार्थमिदम्।। ११३।।

सबसे बड़े और सबसे छोटे पुत्र को कहे अनुसार इसप्रकार अपना भाग ग्रहण करना चाहिए कि जो ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ पुत्रों के बीच में जो भी मध्यम पुत्र हों, उन सभी को मध्यम भाग की (अर्थात् बीसवें भाग की) प्राप्ति अवश्य होनी चाहिए ।। ११३।।

सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः।
यच्च सातिशयं किंचद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम्।। ११४।।

सर्वेषां धनप्रकाराणां मध्याद्यच्छ्रेष्ठं धनं, ज्येष्ठः तद्धनं गृह्णीयात्। ''सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्'' (अ० ९ श्लो० ११२) इत्युक्तमनूदितसमुच्चयबोधनाय। यच्चैकमपि प्रकृष्टं द्रव्यं विद्यते तदपि ज्येष्ठ एव गृह्णीयात्। तथा ''दशतः पशूनाम्'' इति गोतमस्मरणाद्दशभ्यो गवादिपशुभ्य एकैकं श्रेष्ठं ज्येष्ठो लभते। इदं च यदि ज्येष्ठो गुणवानितरे निर्गुणास्तद्विषयं।। ११४।।

---

१. उद्धार-पैतृक सम्पत्ति से अलग किया गया वह भाग जिसका सर्वाधिक लाभ केवल ज्येष्ठ पुत्र को ही मिलता है। 'उद्धार' का धन बाँटने के बाद शेष धन को भी सभी पुत्र बराबर विभाजित करते हैं।

इसके अतिरिक्त सभीप्रकार के धनों के मध्य से श्रेष्ठ धन ज्येष्ठ पुत्र को ही ग्रहण करना चाहिए। साथ ही जो वस्तु दस-दस वस्तुओं में अधिक एवं श्रेष्ठ हो उसे भी वही प्राप्त करे।। ११४।।

सर्वेषां समगुणत्वे तु-

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु।
यत्किंचिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम्।। ११५।।

"दशतश्चाप्नुयाद्वरम्" (अ० ९ श्लो० ११४) इति योऽयमुद्धार उक्तः सोऽयमध्ययनादिकर्मसमृद्धानां भ्रातृणां ज्येष्ठस्य नास्ति। तत्रापि यत्किंचिदस्य देयमिति। द्रव्यं पूजावृद्धिकरं ज्येष्ठाय देयम्। एवंच समगुणेषूद्धारप्रतिषेधदर्शनात्पूर्वत्र गुणोत्कर्षाविशेषापेक्षयोद्धारवैषम्यं बोद्धव्यम्।। ११५।।

दस में से एक 'उद्धार' प्रदान करने का नियम उन बड़े पुत्र के लिए नहीं है, जो अध्ययनादि अपने कर्मों में दक्ष है। फिर भी छोटे भाइयों को उस (बड़े भाई) का मान बढ़ाने के लिए उसे कुछ न कुछ अवश्य देना चाहिए।। ११५।।

एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत्।
उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना।। ११६।।

एवमुक्तप्रकारेण समुद्धतविंशद्भागाधिके धने समान्भागान् भ्रातृणां कल्पयेत्। विंशतितमभागादौ पुनरनुद्धृत इयं वक्ष्यमाणभागकल्पना भवेत्।। ११६।।

इसप्रकार उद्धारभाग को निकालने के पश्चात् अवशिष्ट पैतृक सम्पत्ति को बराबर हिस्सों में बाँट लेना चाहिए। उद्धार न निकालने की स्थिति में इन पुत्रों के भागों का विभाजन इसप्रकार करना चाहिए।। ११६।।

एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः।
अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः।। ११७।।

एकाधिकमंशं द्वावंशाविति यावत्। ज्येष्ठपुत्रो गृह्णीयात्। अधिकमर्थं यत्रांशे सार्धमंशं ज्येष्ठादनन्तरजातो गृह्णीयात्। कनिष्ठाः पुनरेकैकमंशं गृह्णीयुरिति व्यवस्थितो धर्मः। इदं तु ज्येष्ठतदनुजयोर्विद्यादिगुणवत्त्वापेक्षया, कनिष्ठानां च निर्गुणवत्त्वे बोद्धव्यम्। ज्येष्ठतदनुजयोरधिकदानदर्शनात्।। ११७।।

सबसे बड़ा पुत्र एक भाग अधिक ग्रहण करे। उससे छोटा पुत्र डेढ़ भाग तथा अन्य छोटे पुत्र एक-एक भाग प्राप्त करें। यही धर्म की व्यवस्था है।। ११७।।

सवेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक्।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः।। ११८।।

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्चत्वारो भ्रातरः स्वजात्यपेक्षया स्वेभ्यश्चतुरोंऽशान् हरेयुः। विप्र इत्यादिना वक्ष्यमाणेभ्यो भागेभ्य आत्मीयादात्मीयाद्भागाच्चतुर्थभागं पृथक्कन्याभ्योऽनूढाभ्यो भगिनीभ्यो या यस्य सोदर्या भगिनी स तस्या एवं संस्कारार्थमिति एवं दद्युः। सोदर्याभावे विमातृजैरुत्कृष्टैरपकृष्टैरपि संस्कार्यैव। तथाच याज्ञवल्क्यः— "असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः। भगिन्यश्च निजादंशंद्दत्वांशं तु तुरीयकम्।।" यदि भगिनीसंस्कारार्थं चतुर्भागं दातुं नेच्छन्ति तदा पतिता भवेयुः। एतेनैकजातीयवैमात्रेयबहुपुत्रभगिनीसद्भावेऽपि सोदर्यभगिनीभ्यश्चतुर्थभागदानमवगन्तव्यम्।। ११८।।

अविवाहित कन्याओं के सभी भाई अपने-अपने भागों में से अलग-अलग चतुर्थांश उन्हें दे देवें और यदि वे देने के इच्छुक न हों तो वे पतित माने जावें।। ११८।।

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत्।
अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते।। ११९।।

एकशफा अश्वादयः। छागमेषाद्येकशफसहितं विभागकाले समं कृत्वा विभक्तुमशक्यं तत्र विभजेत्किंतु ज्येष्ठस्यैव तत्स्यान्नतु तत्तुल्यद्रव्यान्तरदानेन समीकृत्य विक्रीय वा तन्मूल्यं विभजेत्। अजाविकमिति पशुद्वन्द्वाद्विभाषैकवद्भावः।। ११९।।

बकरी, भेड़ और एक खुर वाले पशु, घोड़े आदि यदि विषम संख्या में हों, बांटने में न आ रहे हों तो ऐसी विषम संख्या वाली सभी भेड़-बकरियाँ बड़े पुत्र को ही प्राप्त होती हैं।। ११९।।

यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि।
समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः।। १२०।।

कनिष्ठो यदि ज्येष्ठभ्रातृभार्यायां नियोगेन पुत्रं जनयेत्तदा तेन पितृव्येण सह तस्य क्षेत्रजस्य समो विभागः स्यान्नतु पितृवत्सोद्धारो भवतीति विभागव्यवस्था नियता। अनियोगोत्पन्नस्यानंशित्वं वक्ष्यति। यद्यपि "समेत्य भ्रातरः समम्" (अ० ९ श्लो० १०४) इत्युक्तं तथाप्यस्मादेव लिङ्गात्पौत्रस्यापि मृतपितृकस्य पैतामहे धने पितृव्यवद्विभागोऽस्तीति गम्यते।। १२०।।

यदि छोटा भाई बड़े भाई की पत्नी में नियोग द्वारा सन्तानोत्पत्ति करे तो उस पुत्र का भी पैतृक सम्पत्ति में समान हिस्सा होना चाहिए, यही व्यवस्थित धर्म है।। १२०।।

ज्येष्ठभ्रातुः क्षेत्रजः पुत्रोऽपि पितेव सोद्धारविभागी युक्त इतीमां शङ्कां निराकृत्य पूर्वोक्तमेव द्रढयति—

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते।
पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत्।। १२१।।

अप्रधानं क्षेत्रजः पुत्रः प्रधानस्य क्षेत्रिणः पितृधर्मेण सोद्धारविभागग्रहणरूपेण न संबध्यते। क्षेत्र्यपि पिता तद्द्वारेणापत्योत्पादने प्रधानम्। तस्मात्पूर्वोक्तेनैव धर्मेण विभागव्यवस्थारूपेण पितृव्येन सह तं क्षेत्रजं विभजेदिति पूर्वस्यैव शेषः।। १२१।।

प्रधान की अप्रधानता मानना धर्म की दृष्टि से उचित नहीं है तथा पुत्रोत्पत्ति में पिता की प्रधानता स्वतःसिद्ध है। इसलिए पैतृक सम्पत्ति में क्षेत्रज पुत्र को भी न्यायोचित दृष्टि से उसका हिस्सा प्रदान करना चाहिए।। १२१।।

पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः।
कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत्।। १२२।।

यदि प्रथमोढायां कनीयान्पुत्रो जातः पश्चादूढायां च ज्येष्ठस्तदा तत्र कथं विभागो भवेदिति संशयो यदि स्यात्किं मातुरुद्वाहक्रमेण पुत्रस्य ज्येष्ठत्वमुत स्वजन्मक्रमेणेति तदाह।। १२२।।

इसके अतिरिक्त पहले विवाहित ज्येष्ठ पत्नी से यदि कनिष्ठ पुत्र तथा बाद में विवाहित कनिष्ठ पत्नी से यदि ज्येष्ठ पुत्र की उत्पत्ति हो तो उस स्थिति में किस प्रकार सम्पत्ति का बँटवारा किया जाए, इस विषय में संशय होने पर।। १२२।।

एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः।
ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः।। १२३।।

पूर्वस्यां जातः पूर्वजः। "ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्" (पा० सू० ६/३/६३) इति ह्रस्वत्वम्। स कनिष्ठोऽप्येकं वृषभमुद्धारं गृह्णीयात्ततः श्रेष्ठवृषभादन्ये ये सन्त्यग्राः श्रेष्ठवृषभास्ते तस्माज्ज्यैष्ठिनेयान्मातृत ऊनानां कनिष्ठेयानां प्रत्येकमेकैकशो भवन्तीति मात्रुद्वाहक्रमेण ज्येष्ठ्यम्।। १२३।।

पहले उत्पन्न हुआ वह कनिष्ठ पत्नी का पुत्र उद्धारस्वरूप एक श्रेष्ठ बैल अधिक प्राप्त कर ले। उसके पश्चात् उत्पन्न हुए दूसरे पुत्र अपनी माताओं के विवाहक्रम के अनुसार ही ज्येष्ठ होने के कारण, वे भी एक-एक वृषभ 'उद्धार स्वरूप' ग्रहण कर लें।। १२३।।

ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभषोडशाः।
ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा।। १२४।।

प्रथमोढायां पुनर्यो जातो जन्मना च भ्रातृभ्यो ज्येष्ठः स वृषभः षोडशो यासां गवां ता गृह्णीयात्। पञ्चदश गा एकं वृषभमित्यर्थः। ततोऽनन्तरं येऽन्ये बह्वीभ्यो जातास्ते स्वमातृभागत ऊढज्येष्ठापेक्षया शेषा भागादि विभजेन्निति निश्चयः।। १२४।।

जबकि पूर्व में विवाहित ज्येष्ठ पत्नी में उत्पन्न हुआ ज्येष्ठ पुत्र सोलह अतिरिक्त श्रेष्ठ बैल प्राप्त कर ले। शेष भाइयों को माताओं के विवाहक्रम के अनुसार उनका हिस्सा दिया जाना चाहिए, ऐसी मान्यता है।। १२४।।

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः।
न मातृतो ज्येष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते।। १२५।।

समानजातीयस्त्रीषु जातानां पुत्राणां जातिगतविशेषाभावे सति न मातृक्रमेण ज्यैष्ठ्यमृषिभिरुच्यते। जन्मज्येष्ठानां तु पूर्वोक्त एव विंशतिभागादिरुद्धारो बोद्धव्यः। एवंच मातृज्यैष्ठयस्य विहितप्रतिषिद्धत्वात्षोडशीग्रहणाग्रहणवद्विकल्पः। स च गुणवन्निर्गुणतया भ्रातृणां गुरुलघुत्वावगमाव्द्यवस्थितः। अतएव " जन्मविद्यागुणज्येष्ठो त्र्यंशं दायादवाप्नुयात्" इति बृहस्पत्यादिभिर्जन्मज्येष्ठस्य विद्याद्युत्कर्षेणोद्धारोत्कर्ष उक्तः। "निर्गुणस्यैकवृषभम्" इति, मन्दगुणस्य "वृषभषोडशाः" इति मातृज्यैष्ठ्याश्रयणेनोद्धारो बोद्धव्यः। मातृज्यैष्ठ्यविधिं त्वनुवादं मेधातिथिरवदत्। गोविन्दराजस्त्वन्यमतं जगौ।। १२५।।

इसके अतिरिक्त समान जाति की स्त्रियों में उत्पन्न पुत्रों को माताओं के विवाह के क्रम के अनुसार छोटा-बड़ा नहीं माना जाएगा, अपितु उनकी ज्येष्ठता जन्म से ही कही गई है।। १२५।।

न केवलं विभागे जनमज्यैष्ठ्यं किंतु—

जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्।
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता।। १२६।।

सुब्रह्मण्याख्यो मन्त्रो ज्योतिष्टोम इतीन्द्रस्याह्वानार्थं प्रयुज्यते। तत्र प्रथमपुत्रेण पितरमुद्दिश्याह्वानं क्रियते। अमुकपितायजत इत्येवमृषिभिः स्मृतम्। तथा यमयोर्गर्भ एककालं निषिक्तयोरपि जन्मक्रमेणैव ज्येष्ठता स्मृता गर्भेष्विति बहुवचनं स्त्रीबहुत्वा-पेक्षया।। १२६।।

केवल पैतृक सम्पत्ति विभाजन में ही ज्येष्ठता का विचार अपेक्षित नहीं है, अपितु ज्योतिष्टोम याग में इन्द्र के आह्वान के लिए प्रयुक्त सुब्रह्मण्य मन्त्र के उच्चारण में भी जन्मविषयक ज्येष्ठता पर विचार किया जाता है। यद्यपि जुड़वाँ पुत्र गर्भ में एक साथ स्थान ग्रहण करते हैं, किन्तु उनकी ज्येष्ठता जन्म से मानी गई है।। २६।।

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रीकाम्।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम्।। १२७।।
(अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति।। ३।।)

अविद्यमानपुत्रो यदस्यामपत्यं जायेत तन्मम श्राद्धाद्यौर्ध्वदेहिककरं स्यादिति कन्यादानकाले जामात्रा सह संप्रतिपत्तिरूपेण विधानेन दुहितरं पुत्रिकां कुर्यात्।। १२७।।

पुत्ररहित पिता को अपनी वंशवृद्धि हेतु कन्या दान के समय ही जामाता के साथ अनुबन्ध रूप इस विधि के द्वारा यह कहकर अपनी पुत्री को ही 'पुत्रिका'[१] बना लेना चाहिए कि 'इस कन्या में जो सन्तान होगी वही मेरी श्राद्धादि और्ध्वदेहिक क्रियाओं का सम्पादन करेगी'।। १२७।।

(इसके लिए पिता को कन्या के विवाह के अवसर पर जामाता के प्रति यह घोषणा करनी चाहिए मैं तुम्हें भ्रातारहित अलङ्कृत-कन्या प्रदान कर रहा हूँ, किन्तु इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह मेरा पुत्र कहलाएगा।। ३।।)

अत्र परप्रतिपत्तिरूपमनुवादमाह—

अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः।। १२८।।

दक्षः प्रजापतिः पुत्रोत्पादनविधिज्ञः स्ववंशवृध्यर्थमनेनोक्तविधानेन कृत्स्ना दुहितरः पूर्वं पुत्रिकाः स्वयं कृतवान्। कात्स्न्र्येऽथशब्दः।। १२८।।

इतना ही नहीं प्राचीन समय में इसी विधान से स्वयं दक्ष प्रजापति ने भी अपने वंश की वृद्धि के लिए अपनी पुत्रियों को 'पुत्रिका' बनाया था।। १२८।।

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम्।। १२९।।

स दक्षो भाविपुत्रिकापुत्रलाभेन प्रीतात्मालंकारादिना सत्कृत्य दश पुत्रिका धर्माय, त्रयोदश कश्यपाय, सप्तविंशतिं चन्द्राय द्विजानामोषधीनां च राज्ञे दत्तवान्। सत्कारवचनमन्येषामपि पुत्रिकाकरणे लिङ्गम्। दशेत्यादि च बह्वीनामपि पुत्रिकाकरणज्ञापकम्।। १२९।।

---

१. पुत्रिका' वह कन्या कहलाती है जिसकी सन्तान को व्यक्ति प्रत्येक दृष्टि से अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देता है। विवाह के समय ही इस बात का कथन कर दिया जाता है।

उस समय दक्षप्रजापति ने प्रसन्न होकर अत्यन्त सत्कारपूर्वक दस कन्याएँ धर्म को, तेरह कन्याएँ कश्यप को तथा सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को 'पुत्रिका' धर्मस्वरूप प्रदान की थीं।। १२९।।

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।। १३०।।

आत्मस्थानीयः पुत्रः "आत्मा वै पुत्रनामासि" इति मन्त्रलिङ्गात्तत्समा च दुहिता तस्या अप्यङ्गेभ्य उत्पादनात्। अतस्तस्यां पुत्रिकायां पितुरात्मस्वरूपायां विद्यमानायामपुत्रस्य मृतस्य पितुर्धनं पुत्रिकाव्यतिरिक्तः कथमन्यो हरेत्।। १३०।।

व्यक्ति स्वयं जैसा होता है पुत्र भी वैसा ही होता है (आत्मा वै जायते पुत्रः) तथा पुत्री भी पुत्र के समान ही है। अतः आत्मा के रूप में उस पुत्री में विद्यमान रहते हुए, अन्य कोई व्यक्ति उसका धन कैसे हरण कर ले? (इसी दृष्टि से 'पुत्रिका विधान' किया गया है)।। १३०।।

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः।
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम्।। १३१।।

मातुर्यद्धनं तत्तस्यां मृतायां कुमारीभाग एव स्यान्न पुत्राणां तत्र भागः। कुमारी चानूढाभिप्रेता। तथा गोतमः—"स्त्रीधनं दुहितॄणामदत्तानामप्रतिष्ठितानां च अपुत्रस्य च मातामहस्य दौहित्र एव प्रकृतत्वात्पौत्रिकेयः समग्रं धनं गृह्णीयात्" इति।। १३१।।

इसके अतिरिक्त माता का जो भी धन (यौतुक-विवाह के अवसर पर पिता एवं भाई आदि से प्राप्त धन) होता है, वह सब कन्या का ही हिस्सा होता है। इतना ही नहीं पुत्रहीन नाना के सम्पूर्ण धन को उसके दौहित्र (पुत्री के पुत्र) को ही प्राप्त कर लेना चाहिए।। १३१।।

दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्।
स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च।। १३२।।

दौहित्रः प्रकृतत्वात्पौत्रिकेय एव, तस्य मातामहधनग्रहणमनन्तरोक्तं जनकधनग्रहणं च। पिण्डदानार्थोऽयमारम्भः, पितृशब्दस्य तत्रैव प्रसिद्धत्वात्। अन्यस्य पात्रिकेयः पुत्रान्तररहितस्य जनकस्य समग्रं धनं गृह्णीयात्स एव पितृमातामहाभ्यां द्वौ पिण्डौ दद्यात्। पिण्डदानं श्राद्धोपलक्षणार्थम्। पौत्रिकेयत्वेन जनकधनग्रहणपिण्डदानव्यामोह-निरासार्थं वचनम्।। १३२।।

इसप्रकार पुत्रहीन पिता की सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति को पुत्री का पुत्र (दौहित्र) ग्रहण कर ले एवं श्राद्धादि के अवसर पर उसे पहला अपने पिता को तथा दूसरा अपने नाना के लिए इसप्रकार दो पिण्ड देने चाहिएँ।। १३२।।

पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः।
तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः।। १३३।।

पौत्रपौत्रिकेययोर्लोके धर्मकृत्ये न कश्चिद्विशेषोऽस्ति। यस्मात्तयोर्मातापितरौ तस्य देहादुत्पन्नाविति पूर्वस्यैवानुवादः।। १३३।।

इस संसार में धर्म की दृष्टि से पौत्र एवं दौहित्र में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है, क्योंकि उन दोनों की उत्पत्ति (मूलतः एक की पिता के, एक की माता के) एक ही माता-पिता के शरीर से हुई है।। १३३।।

पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनु जायते।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः।। १३४।।

कृतायां पुत्रिकायां यदि तत्कर्तुः पुत्रोऽनन्तरं जायते तदा तयोर्विभागकाले समो विभागो भवेत्। नोद्धारः पुत्रिकायै देयः। यस्माज्ज्येष्ठाया अपि तस्या उद्धारविषये ज्येष्ठता नादरणीया।। १३४।।

किन्तु कन्या को पुत्रिका बनाने के पश्चात् यदि किसी व्यक्ति को पुत्र उत्पन्न हो जाता है तो दौहित्र एवं पुत्र को सम्पत्ति के बराबर भाग की प्राप्ति होनी चाहिए, क्योंकि स्त्री की ज्येष्ठता नहीं मानी जाती है।। १३४।।

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन।
धनं तत्पुत्रिकाभर्ता हरेतैवाविचारयन्।। १३५।।

अपुत्रायां पुत्रिकायां कथंचन मृतायां तदीयधनं तद्भर्तैवाविचारयन्गृह्णीयात्। पुत्रिकायाः पुत्रसमत्वेनानपत्यस्य पत्नीरहितस्य मृतपुत्रस्य पितुर्धनग्रहणप्रसक्तौ तन्निवारणार्थमिदं वचनम्।। १३५।।

जबकि बिना पुत्र हुए ही पुत्रिका कन्या के किसी कारण मर जाने पर, कन्या के पिता का वह सब धन, बिना किसी सोच-विचार के पुत्रिका के पति को ही ग्रहण कर लेना चाहिए।। १३५।।

अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सदृशात्सुतम्।
पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम्।। १३६।।

अकृता वा कृता वेति पुत्रिकाया एव द्वैविध्यं, तत्र ''यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम्'' (अ० ९ श्लो० १२७) इत्यभिधाय कन्यादानकाले वरानुमत्या या क्रियते सा कृताभिसंधिमात्रकृता वाग्व्यवहारेण न कृता। तथा गोतमः— ''अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकामेकेषाम्''। अतएव ''पुत्रिकाधर्मशंकया'' (अ० ३ श्लो०

११) इति प्रागविवाह्यत्वमुक्तम्। पुत्रिकेव कृताऽकृता वा पुत्रं समानजातीयाद्वोढुरुत्पादयेत्तेन दौहित्रेण पौत्रकार्यकरणात्पौत्रिकेयवान्मातामहः पौत्री। तथा चासौ तस्मै पिण्डं दद्यात्। गोविन्दराजस्तु "अकृता वा" इत्यपुत्रिकैव दुहिता तत्पुत्रोऽपि मातामहधने पौत्रिकेय इव मातामह्यादिसत्त्वेऽप्यधिकारीत्याह। तन्न। पुत्रिकायाः पुत्रतुल्यत्वादपुत्रिकातत्पुत्रयोरतुल्यत्वेन तत्पुत्रयोस्तुल्यत्वायोग्यत्वादिति।। १३६।।

अपनी पुत्री को पुत्रिका मानने अथवा न मानने पर भी यदि पुत्री समान वर्ण के पति से पुत्र प्राप्त करती है तो नाना उसी से पुत्रवान् कहलाएगा। इसलिए वही नाना को पिण्डदान देगा तथा वही नाना की धनसम्पत्ति का अधिकारी होगा।। १३६।।

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्।। १३७।।

पुत्रेण जातेन स्वर्गादिलोकान्प्राप्नोतीति पौत्रेण तेष्वेव चिरकालमवतिष्ठते। तदनन्तरं पुत्रस्य पौत्रेणादित्यलोकं प्राप्नोति। अस्य च दायभागप्रकरणेऽभिधानं पितुर्धने पत्न्यादिसद्भावेऽपि पुत्रस्य तदभावे पौत्रस्येत्येवं पुत्रसंतानाधिकारबोधनार्थम्।। १३७।।

व्यक्ति पुत्र द्वारा स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है तथा पौत्र द्वारा वहाँ चिरकाल तक विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त पुत्र के पौत्र से तो वह आदित्यलोक को ही प्राप्त कर लेता है।। १३७।।

पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा।। १३८।।

यस्मात्पुंनामधेयनरकात्सुतः पितरं त्रायते तस्मात्त्राणादात्मनैव ब्रह्मणा पुत्र इति प्रोक्तः। तस्मान्महोपकारकत्वात्पुत्रस्य युक्तं तदीयपुंसंतानस्य दायभागित्वमिति पूर्वदार्ढ्यार्थमिदम्।। १३८।।

क्योंकि पुत्र माता-पिता को 'पुम्' नामक नरक से बचाता है। इसलिए ब्रह्मा ने इसे स्वयं ही पुत्र कहा है।। १३८।।

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते।
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत्।। १३९।।

दौहित्रः पुत्रिकापुत्रः। पुत्रदौहित्रयोर्लोके कश्चिद्विशेषो न संभाव्यते, यस्माद्दौहित्रोऽपि मातामहं परलोके पौत्रवन्निस्तारयति। एतच्च पौत्रिकेयस्य पौत्रेण साम्यप्रतिपादनार्थं पुत्रिकाकरणानन्तरजातपुत्रेण सह धने तुल्यभागबोधनार्थम्।। १३९।।

संसार में पुत्र के पुत्र पौत्र में तथा पुत्री के पुत्र दौहित्र में कोई विशेष अन्तर नहीं

माना गया है, क्योंकि दौहित्र भी पुत्र के समान ही मातामह को परलोक में पार उतारता है।। १३९।।

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः।
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः।। १४०।।

पौत्रिकेयः प्रथमं मात्रे पिण्डं, द्वितीयं मातुः पित्रे, तृतीयं मातुः पितामहाय दद्यात्। पित्रादीनां तु "पित्रे मातामहाय च" (अ० ९ श्लो० १३२) इत्युक्तात्वात्पितृक्रमेणैव पिण्डदानम्।। १४०।।

पुत्रिका के पुत्र को सर्वप्रथम अपनी माता को पिण्ड प्रदान करना चाहिए, जबकि दूसरा पिण्ड मातामह को एवं तीसरा पिता के पिता अर्थात् पितामह को देना चाहिए।। १४०।।

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्रिमः।
स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः।। १४१।।

"पुत्रा रिक्थहराः पितुः" (अ० ९ श्लो० १८५) इति द्वादश पुत्राणामेव रिक्थहरत्वं वक्ष्यति। "दशापरे तु क्रमशः" (अ० ९ श्लो० १६५) इत्यौरसक्षेत्रजाभावेदत्तस्य पितृ रिक्थहरत्वं प्राप्तमेव। अतः सत्यप्यौरसपुत्रे दत्तकस्य सर्वगुणोपपन्नस्य पितृरिक्थभागप्राप्त्यर्थमिदं वचनम्। यस्य दत्तकः पुत्रोऽध्ययनादिसर्वगुणोपपन्नो भवति सोऽन्यगोत्रादागतोऽपि सत्यप्यौरसे पितृरिक्थभागं गृह्णीयात्। अत्र "एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः" (अ० ९ श्लो० १६३) इत्यौरसस्य सर्वोत्कर्षाभिधानात्तेन नास्य समभागित्वं किंतु क्षेत्रजोक्तषष्ठभागित्वमेवास्य न्याय्यम्। गोविन्दराजस्त्वौरसक्षेत्रजाभावे सर्वगुणोपपन्नस्यैव दत्तकस्य पितृरिक्थभागित्वार्थमिदं वचनमित्यवोचत्। तत्र। कृत्रिमादीनां निर्गुणानां पितृरिक्थभागित्वं दत्तकस्य तु तत्पूर्वपठितस्यापि सर्वगुणोपपन्नस्यैवेत्यन्याय्यत्वात्।। १४१।।

किन्तु यदि किसी ने सभी गुणों से युक्त किसी बालक को अपना दत्तकपुत्र बनाया हो तो अन्य गोत्र से उत्पन्न होते हुए भी वह उसकी धन-सम्पत्ति का स्वामी होगा।। १४१।।

गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्रिमः क्वचित्।
गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा।। १४२।।

गोत्रधने जनकसंबन्धिनी दत्तको न कदाचित्प्राप्नुयात्। पिण्डश्च गोत्ररिक्थानुगामी यस्य गोत्ररिक्थे भजते तस्यैव स पिण्डो दीयते। तस्मात्पुत्रं ददतो जनकस्य स्वधापिण्डश्राद्धादि तत्पुत्रकर्तृकं निवर्तते।। १४२।।

गोद लिया हुआ पुत्र कहीं भी उत्पन्न करने वाले अपने पिता की धन-सम्पत्ति को प्राप्त नहीं करता है, अपितु जिसने गोद लिया है, उसी की धन-सम्पत्ति को प्राप्त करता है एवं श्राद्धादि कार्य करते हुए उसी को पिण्ड प्रदान करता है।। १४२।।

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात्।
उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ।। १४३।।

यो गुर्वादिनियोगं विना जातो यश्च सपुत्राया नियोगेनापि देवरादेः कामादुत्पादितस्तावुभौ क्रमेण जारोत्पन्नकामाभिलाषजौ धनभागं नार्हतः।। १४३।।

इसके अलावा नियोग से अतिरिक्त पर-पुरुष से उत्पन्न पुत्र एवं पहले से पुत्रिणी होते हुए भी देवर से उत्पन्न पुत्र, ये दोनों ही पिता की सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकारी नहीं होते हैं, क्योंकि ये दोनों क्रमशः 'जारज' एवं 'कामज' सन्तान होती हैं[1]।। १४३।।

नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः।
नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः।। १४४।।

नियुक्तायामपि स्त्रियां घृताभ्यक्तत्वादिनियोगेतिकर्तव्यतां विना पुत्रो जातः स क्षेत्रिकस्य पितुर्धनं लब्धुं नार्हति। यस्मादसौ पतितेनोत्पादितः। "नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा" (अ० ९ श्लो० ६३) इत्यनेन पतितस्योक्तत्वात्।। १४४।।

नियोग के लिए नियुक्त स्त्री से भी यदि कोई पुत्र नियोग के नियमों का पूर्णरूप से पालन करने से उत्पन्न नहीं हुआ है, तो भी वह पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी नहीं है, क्योंकि उत्पन्न किया गया वह वस्तुतः पतित है।। १४४।।

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः।
क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः।। १४५।।

तत्र नियुक्तायां यो जातः क्षेत्रजः पुत्र औरस इव धनं हरेत्। यस्मात्तत्स्य कारणभूतं बीजं तत्क्षेत्रस्वामिन एव, तत्कार्यकरणत्वात्। अपत्यमपि च धर्मतस्तदीयं तत् "यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि" (अ० ९ श्लो० १२०) इत्यनेन क्षेत्रजस्य पितामहधने पितृव्येन सह समभागस्य प्रोक्तत्वात्। गुणवतः क्षेत्रजस्य और सवत्स्वोद्धारभागप्राप्त्यर्थमिदमौरसतुल्यत्वाभिधानम्।। १४५।।

जबकि इसी विषय में नियोग से विधिवत् उत्पन्न पुत्र, औरस पुत्र के समान ही पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी होता है, क्योंकि वह क्षैत्रिक (क्षेत्र के स्वामी) का बीज होने के साथ-साथ धर्म के अनुसार नियोग से उत्पन्न हुआ है।। १४५।।

---

१. जारज-अवैध सन्तान, कामज-कामवासना के वशीभूत उत्पन्न सन्तान।

धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च।
सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम्।। १४६।।

यो मृतस्य भ्रातुः स्थावरजङ्गमं धनं पत्न्या रक्षणाक्षमया समर्पितं रक्षेत्तां च पुष्णीयात्स नियोगधर्मेण तस्यामुत्पादितस्य भ्रातुरपत्यस्य दद्यात्। एतच्च ''धनं यो बिभृयाद्भ्रातुः'' इत्यभिधानाद्विभक्तभ्रातृविषयम्, ''यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायाम्'' (अ० ९ श्लो० १२०) इति समभागाभिधानात्।। १४६।।

इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मृत भाई के धन एवं स्त्री को धारण करता है। नियोग विधि से उस स्त्री में पुत्र उत्पन्न करके, भाई का वह सम्पूर्ण धन उसे उसी उत्पन्न हुए पुत्र को प्रदान कर देना चाहिए।। १४६।।

या नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नुयात्।
तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते।। १४७।।

या स्त्री गुर्वादिभिरनुज्ञाता देवराद्वान्यतो वा सपिण्डात्पुत्रमुत्पादयेत्स यदि कामजो भवति तदा तमरिक्थभाजं मन्वादयो वदन्ति। अकामज एव रिक्थभागी। स च व्याहृतो नारदेन—''मुखान्मुखं परिहरन्गात्रैर्गात्राण्यसंस्पृशन्। कुले तदवशेषे च संतानार्थं न कामतः।।'' इति।। १४७।।

किन्तु नियोगादि के लिए नियुक्त की गई भी जो स्त्री, देवर से अथवा अन्य किसी सजातीय व्यक्ति से यदि पुत्र प्राप्त कर लेती है तो कामवासना के वशीभूत होकर उत्पन्न किया गया वह पुत्र, पैतृकसम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता है, क्योंकि (लोगों द्वारा) उसे व्यर्थ में उत्पन्न हुआ कहा जाता है।। १४७।।

एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु।
बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत।। १४८।।

समानजातीयासु भार्यासु एकेन भर्त्रा जातानामेष विभागविधिर्बोद्धव्यः। इदानीं नानाजातीयासु स्त्रीषु बह्वीषूत्पन्नानां पुत्राणां विभागं शृणुत।। १४८।।

यह विधान समानजाति वाली पत्नियों में एक पति द्वारा उत्पन्न पुत्रों में सम्पत्तिविभाजन का समझना चाहिए, अब आप लोग विभिन्न जातियों की बहुत-सी स्त्रियों में एक पति द्वारा उत्पन्न पुत्रों का सम्पत्ति-विभाजन सुनिए।। १४८।।

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः।
तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः।। १४९।।

ब्राह्मणस्य यदि क्रमेण ब्राह्मण्याद्याश्चतस्रो भार्या भवेयुस्तदा तासां त्रिषूत्पन्नेष्वयं वक्ष्यमाणो विभागविधिर्मन्वादिभिरुक्तः।। १४९।।

किसी ब्राह्मण की यदि क्रमशः (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) चार वर्णों की पत्नियाँ हों तो उनमें उत्पन्न हुए पुत्रों में सम्पत्ति-विभाजन की यह विधि कही गई है।। १४९।।

कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च वेश्म च।
विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः।। १५०।।

कीनाशः कर्षकः, गवां सक्तो वृषः, यानमश्वादि, अलंकारोऽङ्गुलीयकादि, वेश्म गृहं च प्रधानं यावन्तश्चांशास्तेष्वेकः प्रधानभूतोंऽश इत्येतद्ब्राह्मणीपुत्रस्योद्धारार्थं देयम्। अवशिष्टं वक्ष्यमाणरीत्या विभजनीयम्।। १५०।।

खेती करने वाला बैल, गायों में आसक्त साँड, रथ-अश्वादि सवारी, आभूषण, घर तथा घर की प्रमुख वस्तुओं में से एक श्रेष्ठ वस्तु 'उद्धार' के रूप में प्रधानभूत ब्राह्मणी पुत्र को प्रदान करनी चाहिए।। १५०।।

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः।
वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत्।। १५१।।

त्रीनंशान्ब्राह्मणो धनादृह्णीयात्। द्वौ क्षत्रियापुत्रःसार्धं वैश्यापुत्रः। अंशं शूद्रा सुतः। एवंच यत्र ब्राह्मणीक्षत्रियापुत्रौ द्वावेव विद्येते तत्र पञ्चधा कृते धने त्रयो भागा ब्राह्मणस्य, द्वौ क्षत्रियापुत्रस्य। अनयैव दिशा ब्राह्मणीवैश्यापुत्रादौ द्विबहुपुत्रादौ च कल्पना कार्या।। १५१।।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मणी का पुत्र, पिता के धन से तीन अंश प्राप्त कर ले तथा क्षत्रिय स्त्री का पुत्र दो अंश ग्रहण करे। साथ ही वैश्य स्त्री का पुत्र डेढ़ अंश एवं शूद्र स्त्री का पुत्र केवल एक अंश प्राप्त करे।। १५१।।

सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च।
धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनानेन धर्मवित्।। १५२।।

यद्वा सर्वं रिक्थप्रकारमनुद्धतोद्धारं दशधा कृत्वा, विभागधर्मज्ञो धर्मादनपेतं विभागमनेन वक्ष्यमाणविधिना कुर्वीत।। १५२।।

अथवा ('उद्धार' निकाले बिना) विभाजन करने योग्य सम्पूर्ण धन के दस समान भाग करके, धर्म को जानना वाला व्यक्ति इस विधि से धर्मसम्मत विभाजन करे।। १५२।।

चतुरोंऽशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः।
वैश्यापुत्रो हरेद्द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत्।। १५३।।

चतुरो भागान्ब्राह्मणो गृह्णीयात्। त्रीन्क्षत्रियापुत्रः। द्वौ वैश्यापुत्रः। एकं शूद्राजः। अत्रापि ब्राह्मणीक्षत्रियापुत्रसद्भावे सप्तधा धने कृते चत्वारो भागा ब्राह्मणस्य। त्रयः क्षत्रियापुत्रस्य। एवं ब्राह्मणीवैश्यापुत्रादौ द्विबहुपुत्रेषु च कल्पना कार्या।। १५३।।

(इन दस भागों में से) चार भागों को ब्राह्मणी का पुत्र तथा तीन भागों को क्षत्रिय स्त्री का पुत्र ग्रहण करे। वैश्य स्त्री का पुत्र दो अंशों को एवं शूद्र स्त्री का पुत्र एक अंश को प्राप्त कर लेवे।। १५३।।

यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत्।
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः।। १५४।।

यदि ब्राह्मणो द्विजातिस्त्रीषु सर्वासु विद्यमानपुत्रः स्यादविद्यमानपुत्रो वा तथापि शूद्रापुत्रायानन्तराधिकारी यस्तेषु दशमभागादधिकं धर्मतो न दद्यात्। एवं च शूद्रापुत्रविषये निषेधादि विद्यमानसजातिपुत्रस्य क्षत्रियावैश्यापुत्रौ सर्वरिक्थहरौ स्याताम्।। १५४।।

शूद्रा स्त्री से उत्पन्न हुआ पुत्र भले ही सत्पुत्र हो अथवा असत्पुत्र, धर्म के अनुसार पैतृक-सम्पत्ति से उसे दशमांश से अधिक प्रदान नहीं करना चाहिए।। १५४।।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक्।
यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत्।। १५५।।

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां शूद्रापुत्रो धनभाङ्न भवति, किंतु यदेव धनमस्मै पिता दद्यात्तदेव तस्य भवेत्। एवंच पूर्वोक्तविभागनिषेधाद्विकल्पः सच गुणवदगुणापेक्षः। अथवा अनूढशूद्रापुत्रविषयोऽयं दशमभागनिषेधः।। १५५।।

वस्तुतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की शूद्र स्त्री का पुत्र पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता है। इसे तो जितना भी धन इसका पिता स्वेच्छा से प्रदान कर दे, वही इसका दायभाग समझना चाहिए।। १५५।।

समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम्।
उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम्।। १५६।।

द्विजातीनां समानजातिभार्यासु ये पुत्रा जातास्ते सर्वे ज्येष्ठायोद्धारं दत्त्वावशिष्टं समभागं कृत्वा ज्येष्ठेन सहान्ये विभजेरन्।। १५६।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन द्विजाति के सभी पुत्र जो समान जाति की स्त्रियों में उत्पन्न हुए हैं, ज्येष्ठ पुत्र को 'उद्धार' प्रदान करके, शेष भाग को बराबर-बराबर बाँट लेवें।। १५६।।

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते।
तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत्।। १५७।।

शूद्रस्य पुनः समानजातीयैव भार्योपदिश्यते नोत्कृष्टावकृष्टा वा। तस्यां च ये जातास्ते यदि पुत्रशतमपि तदा समभागा एव भवेयुः। तेनोद्धारः कस्यचिन्न देयः ।। १५७।।

शूद्र के लिए तो समान जाति (अर्थात् शूद्र वर्ण) की स्त्री का ही विधान है, वह अन्य वर्ण की स्त्री से विवाह नहीं कर सकता है। इसलिए उसमें उत्पन्न हुए पुत्र भले ही सौ की संख्या में हों वे पैतृक-सम्पत्ति के बराबर के हकदार होंगे।। १५७।।

पुत्रान्द्वादश यानाह नृणां स्वायंभुवो मनुः।
तेषां षड्बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः।। १५८।।

यान्द्वादश पुत्रान्हैरण्यगर्भो मनुराह तेषां मध्यादाद्याः षड् बान्धवाः गोत्रदायादाश्च, तस्माद्बान्धवत्वेन सपिण्डसमानोदकानां पिण्डोदकदानादि कुर्वन्त्यनन्तराभावे च गोत्रदायं गृह्णन्ति पितृरिक्थभाक्त्वस्य "पुत्रा रिक्थहराः पितुः (अ० ९ श्लो० १८५)" इति द्वादशविधपुत्राणामेव वक्ष्यमाणत्वात्। उत्तरे षट् न गोत्रधनहरा भवन्ति। बान्धवास्तु भवन्ति ततश्च बन्धुकार्यमुदकक्रियादि कुर्वन्ति। मेधातिथिस्तुषडदायादबान्धवाः इत्याद्युत्तरषट्कस्यादायत्वमबान्धवत्वं चाह। तन्न। बाधायनेन बन्धुत्वस्याभिहितत्वात्। तदाह-"कानीनं च सहोढं च क्रीतं पौनर्भवं तथा। स्वयंदत्तं निषादं च गोत्रभाजः प्रचक्षते"।। १५८।।

स्वायंभुव मनु ने मनुष्यों के जिन बारह पुत्रों का कथन किया है, उनमें छः दायद और छः अदायद बन्धु कहे गए हैं।। १५८।।

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट्।। १५९।।

औरसादयो वक्ष्यमाणाः षड्रिक्थभाजो बान्धवाश्च भवन्ति।। १५९।।

औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गुप्तरूप से उत्पन्न, अन्य द्वारा पाला गया परित्यक्त पुत्र ये छः बान्धव उत्तराधिकार में प्राप्त होने वाली सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं।। १५९।।

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा।
स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः।। १६०।।

कानीनादयो वक्ष्यमाणलक्षणाः षड्गोत्ररिक्थहरा न भवन्ति बान्धवाश्च भवन्तीति व्याख्यातम्।। १६०।।

इसके अतिरिक्त अविवाहित कन्या का पुत्र (कानीन), विवाह के समय स्त्री के साथ आया हुआ (सहोढ), खरीदा गया, पत्नी के अन्य विवाह से उत्पन्न (पौनर्भव), बिना माँगे अन्य द्वारा दिया गया (स्वयं दत्त) तथ शूद्रा स्त्री से उत्पन्न, ये छः बान्धव जायदाद के अधिकारी नहीं हैं।। १६०।।

औरसेन सह क्षेत्रजादीनां पाठात्तुल्यत्वाशङ्कायां तन्निरासार्थमाह—

यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरञ्जलम्।
तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः।। १६१।।

तृणादिनिर्मितकुत्सितोडुपादिभिरुदकं तरन्यथाविधं फलं प्राप्नोति तथाविधमेव कुपुत्रैः क्षेत्रजादिभिः पारलौकिकं दुःखं दुरुत्तरं प्राप्नोति। इत्यनेन क्षेत्रजादीनां मुख्यौरसपुत्रवत्संपूर्णकार्यकरणक्षमत्वं न भवतीति दर्शितम्।। १६१।।

दोषयुक्त नौका से नदी के जल को पार करता हुआ व्यक्ति जैसा फल प्राप्त करता है, कुपुत्रों से संसाररूपी सागर को पार करता हुआ व्यक्ति वैसा ही फल पाता है।। १६१।।

यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ।
यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः।। १६२।।

"अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः।।" (अ० २ श्लो० १२७) इति याज्ञवल्क्योक्तविषये, यदा क्षेत्रिकस्य पितुः क्षेत्रजानन्तरमौरसः पुत्रो भवति तदा तावौरसक्षेत्रजावेकरिक्थिनावेकस्य पितुर्यद्यपिरिक्थार्हौ भवतस्तथापि यद्यस्य जनकसंबन्धि तदेव स गृह्णीयान्न क्षेत्रजः क्षेत्रिकपितुः यत्तु वक्ष्यति—"षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात्। औरसो-विभजन्दायम्" (अ० ९ श्लो० १६४) इति तत्पुत्रबहुलस्य। यत्तु याज्ञवल्क्येनोभय-संबन्धि रिक्थहरत्वमुक्तं तत्क्षेत्रिकपितुरौरसपुत्राभावे बोद्धव्यम्। मेधातिथिगोविन्दराजौ तु औरसमनियुक्तापुत्रं च विषयीकृत्येमं श्लोकं व्याचक्षाते। तन्न। अनियुक्तापुत्रस्याक्षेत्र-जत्वात्। "अनियुक्तासुतश्च" (अ० ९ श्लो १४३) इत्यनेन तस्य रिक्थग्रहणनिषेधात्। "यद्येकरिक्थिनौ" इत्यनन्वयाच्च।। १६२।।

सन्तान न होने की स्थिति में नियोग विधि द्वारा एक पुत्र के होने पर, यदि दूसरा औरस पुत्र भी उत्पन्न हो जाए, तो वे दोनों अपने-अपने पिता की पैतृक सम्पत्ति को ही प्राप्त करें, एक के दायभाग को दूसरा ग्रहण न करे।। १६२।।

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम्।। १६३।।

व्याध्यादिना प्रथमौरसपुत्राभावे क्षेत्रजादिषु कृतेषु पश्चादौषधादिना विगतव्याधेरौरस उत्पन्ने सतीदमुच्यते। औरस एवैकः पुत्रः पितृधनस्वामी। शेषाणां क्षेत्रजव्यतिरिक्तानां तस्य षष्ठांशादेर्वक्ष्यमाणत्वात्पापसंबन्धपरिहारार्थं ग्रासाच्छादनं दद्यात्।।

क्योंकि अकेला औरस पुत्र ही वस्तुतः पैतृक सम्पत्ति में दायभाग का अधिकारी होता है। पुनरपि अन्य पुत्रों के लिए भी दयावश भरणपोषण की व्यवस्था कर देनी चाहिए।। १६३।।

षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात्।
औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा।। १६४।।

औरसः पुत्रः पितृसंबन्धि दायं विभजन्, क्षेत्रजस्य षष्ठमंशं पञ्चमं वा दद्यात्। निर्गुणसगुणापेक्षश्चायं विकल्पः।। १६४।।

अतः पैतृक सम्पत्ति का विभाजन करते हुए औरस पुत्र को, पिता से प्राप्त हुए धन से, नियोग द्वारा उत्पन्न हुए पुत्र को (क्षेत्रज) भी पाँचवाँ अथवा छठा भाग दे देना चाहिए।। १६४।।

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ।
दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः।। १६५।।

औरसक्षेत्रजौ पुत्रावुक्तप्रकारेण पितृधनहरौ स्याताम्। अन्ये पुनर्दश दत्तकादयः पुत्रा गोत्रभाजो भवन्ति, "पूर्वाभावे परः परः" (याज्ञ० अ० २ श्लो० १३२) इत्येवं क्रमेण धनांशहराश्च।। १६५।।

इसलिए औरस एवं क्षेत्रज ये दोनों पुत्र पैतृक सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं, किन्तु ऊपर बताए गए दूसरे (दत्तकादि) दस तो क्रमशः पितृसम्पत्ति में से केवल गोत्रधन के भागीदार होते हैं।। १६५।।

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम्।
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम्।। १६६।।

स्वभार्यायां कन्यावस्थायामेव कृतविवाहसंस्कारायां यं स्वयमुत्पादयेत्तं पुत्रमौरसं मुख्यं विद्यात्। ''सवर्णायां संस्कृतायामुत्पादितमौरसपुत्रं विद्यात्'' इति बौधायन-दर्शनात्सजातीयायामेव स्वयमुत्पादित औरसो ज्ञेयः।। १६६।।

विवाहादि संस्कार की गई अपनी धर्मपत्नी में व्यक्ति, अपने वीर्य द्वारा स्वयं जिस सन्तान को उत्पन्न करता है। सर्वप्रथम उत्पन्न हुए उस पुत्र को ही 'औरस' पुत्र समझना चाहिए।। १६६।।

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा।
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः।। १६७।।

यो मृतस्य नपुंसकस्य प्रसवविरोधिव्याध्युपेतस्य वा भार्यायां घृताक्तत्वा-दिनियोगधर्मेण गुरुनियुक्तायां जातः स क्षेत्रजः पुत्रो मन्वादिभिः स्मृतः।। १६७।।

मरे हुए पति की, नपुंसक की अथवा (सन्तति उत्पन्न करने में असमर्थ कर देने वाली) व्याधि से युक्त व्यक्ति की, नियोग के नियमों का पालन करने के लिए नियुक्त की गई पत्नी में उत्पन्न हुआ जो पुत्र होता है, वही वस्तुतः 'क्षेत्रज' कहलाता है।। १६७।।

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः।। १६८।।

''शुक्रशोणितसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकस्तस्य प्रदानविक्रयपरित्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः'' इति वसिष्ठस्मरणान्माता पिता वा परस्परानुज्ञया यं पुत्रं परिग्रहीतुः समानजातीयं तस्यैव पुत्राभावनिमित्तायामापदि प्रीतियुक्तं न तु भयादिना उदकपूर्वं दद्यात्स दत्त्रिमाख्यः पुत्रो विज्ञेयः।। १६८।।

इसीप्रकार आपातकाल में माता-पिता विधिविधान के साथ संकल्पपूर्वक अपने पुत्र को, समानरूप से प्रसन्नता के साथ यदि समान जाति के किसी अन्य व्यक्ति को दे देवें, तो उसे 'दत्त्रिम'[1] (दत्तक) पुत्र समझना चाहिए।। १६८।।

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम्।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः।। १६९।।

यं पुनः समानजातीयपित्रोः पारलौकिकश्राद्धादिकरणाकरणाभ्यां गुणदोषौ भवत इत्येवमादिज्ञं, पुत्रगुणैश्च मातापित्रोराराधनादियुक्तं पुत्रं कुर्यात्स कृत्रिमाख्यः पुत्रो वाच्यः।। १६९।।

---

१. दत्त्रिम-इसे माता-पिता स्वयं विधिविधानपूर्वक प्रदान करते हैं।

जबकि गुण एवं दोषों को भलीप्रकार जांच परखकर, पुत्र सम्बन्धी (सेवादि) सभी गुणों से युक्त, समान जाति के पुत्र को यदि व्यक्ति अपने पुत्ररूप में स्वीकार कर ले, तो वह 'कृत्रिम'[1] पुत्र समझने योग्य है।। १६९।।

उत्पद्यते गृहे तस्य न च ज्ञायेत कस्य सः।
स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः।। १७०।।

यस्य गृहेऽवस्थितायां भार्यायां पुत्र उत्पद्यते, सजातीयोऽयं भवतीति ज्ञानेऽपि कस्मात्पुरुषविशेषाज्जातोऽसाविति न ज्ञायते स गृहेऽप्रकाशमुत्पन्नस्तस्य पुत्रः स्याद्यदीयायां भार्यायां जातः।। १७०।।

यदि घर में ऐसा पुत्र उत्पन्न हो कि जिसके विषय में यह ज्ञात न हो सके कि वह किसका है, तो यह उसी व्यक्ति का पुत्र कहलाएगा, जिसकी पत्नी में उसका जन्म हुआ है और यह घर में 'गूढोत्पन्न' कहलाएगा।। १७०।।

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा।
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते।। १७१।।

मातापितृभ्यां त्यक्तं, तयोरन्यतरमरणेनान्यतरेण वा त्यक्तं, पुत्रं स्वीकुर्यात्सोपविद्धाख्यः पुत्र उच्यते।। १७१।।

माता-पिता इन दोनों ने ही अथवा इनमें से किसी एक ने जिसे छोड़ दिया हो, यदि उस पुत्र को कोई व्यक्ति स्वीकार कर लेता है तो वह 'अपविद्ध' पुत्र कहलाता है।। १७१।।

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम्।। १७२।।

पितृगृहे कन्या यं पुत्रमप्रकाशं जनयेत्तं कन्यापरिणेतुः पुत्रं नाम्ना कानीनं वदेत् ।। १७२।।

यदि अविवाहित कन्या अपने पिता के घर में एकान्त में गुप्त रीति से पुत्र को उत्पन्न करे तथा कन्या के साथ विवाह करने वाला पति उसे स्वीकार कर ले तो उसे उसी के 'कानीन' पुत्र के नाम से कहना चाहिए।। १७२।।

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते।। १७३।।

---

१. कृत्रिम–इसे स्वयं गुणादि देखकर पुत्ररूप में स्वीकार किया जाता है।

या गर्भवती अज्ञातगर्भा ज्ञातगर्भा वा परिणीयते, स गर्भस्तस्यां जातः परिणेतुः पुत्रो भवति सहोढ इति व्यपदिश्यते।। १७३।।

जानबूझकर अथवा अनजाने में यदि कोई व्यक्ति गर्भिणी कन्या से विवाह कर लेता है तो गर्भ उसके विवाहित पति का होता है तथा उससे उत्पन्न पुत्र 'सहोढ' इस रूप में कहलाता है।। १७३।।

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात्।
स क्रीतकः सुतस्यस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा।। १७४।।

यः पुत्रार्थं मातापित्रोः सकाशाद्यं क्रीणीयात्स क्रीतकस्तस्य पुत्रो भवति। क्रेतुर्गुणैस्तुल्यो हीनो भवेन्न तत्र जातितः सादृश्यवैसादृश्ये।। "सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः" (अ० २ श्लो० १३३) इति याज्ञवल्क्येन सर्वेषामेव पुत्राणां सजातीयत्वाभिधानत्वेन मानवेऽपि क्रीतव्यतिरिक्ताः सर्वे पुत्राः सजातीया बोद्धव्याः।। ७४।।

किन्तु अपना वंश चलाने के लिए निःसन्तान माता-पिता द्वारा जो पुत्र उसके माता-पिता से खरीदा जाए, वह सजातीय हो अथवा विजातीय उसे 'क्रीतक पुत्र' समझना चाहिए।। १७४।।

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते।। १७५।।

या भर्त्रा परित्यक्ता मृतभर्तृका वा स्वेच्छयान्यस्य पुनर्भार्या भूत्वा यमुत्पादेत्स उत्पादकस्य पौनर्भवः पुत्र उच्यते।। १७५।।

इसके अतिरिक्त पति द्वारा परित्यक्त अथवा विधवा स्त्री जो स्वेच्छापूर्वक अन्य पुरुष से विवाह करने के पश्चात् पुत्र उत्पन्न करे, तो वह 'पौनर्भव' कहलाता है।। १७५।।

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति।। १७६।।

सा स्त्री यद्यक्षतयोनिः सत्यन्यमाश्रयेत्तदा तेन पौनर्भवेन भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति। यद्वा कौमारं पतिमुत्सृज्यान्यमाश्रित्य पुनस्तमेव प्रत्यागता भवति तदा तेन कौमारेण भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति।। १७६।।

यदि कन्या का कौमार्य सुरक्षित है और वह अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुष के पास चली जाए अथवा पुनः पूर्वपति के पास आ जाए तो वह उस 'पुनर्भव' पति के साथ पुनर्विवाह नामक संस्कार के योग्य होती है।। १७६।।

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात्।
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः।। १७७।।

यो मृतमातापितृकस्त्यागोचितकारणं विना द्वेषादिना ताभ्यां त्यक्तो वात्मानं यस्मै ददाति स स्वयंदत्ताख्यस्तस्य पुत्रो मन्वादिभिः स्मृतः।। १७७।।

इसके अतिरिक्त माता-पिता से रहित अथवा अकारण ही उनके द्वारा त्यागा हुआ जो पुत्र अपने आपको स्वयं किसी को दे देता है। ऐसा पुत्र 'स्वयंदत्त' कहलाता है।। १७७।।

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम्।
सपारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः।। १७८।।

''विन्नास्वेष विधिः स्मृतः'' (अ० १ श्लो० १२) इति याज्ञवल्क्यदर्शनात्परिणीतायामेव शूद्रायां ब्राह्मणः कामार्थं पुत्रं जनयेत्स जीवन्नेव शवतुल्य इति पारशवः स्मृतः। यद्यप्ययं पित्रुपकारार्थं श्राद्धादि करोत्येव तथाप्यसंपूर्णोपकारकत्वाच्छवव्यपदेशः।। १७८।।

किन्तु काम के वशीभूत होकर ब्राह्मण, शूद्र वर्ण की स्त्री में जिस पुत्र को उत्पन्न करता है, जीवित रहते हुए भी शव के समान होने के कारण उसे 'पारशव' की संज्ञा प्रदान की गई है।। १७८।।

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत्।
सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः।। १७९।।

ध्वजाहताद्युक्तलक्षणायां दास्यां, दाससंबन्धिन्यां वा दास्यां, शूद्रस्य यः पुत्रो जायते स पित्रानुज्ञातपरिणीतापुत्रैः समांशभागो भवान्भवत्वित्यनुज्ञातस्तुल्यभागं लभत इति शास्त्रव्यवस्था नियता।। १७९।।

इसके अलावा जो शूद्र वर्ण की दासी में अथवा दास की पत्नी में (द्विजाति द्वारा) पुत्र उत्पन्न होता है। पिता की आज्ञा प्राप्त करके वह पैतृकसम्पत्ति से अपने हिस्से को प्राप्त कर सकता है, ऐसी शास्त्रव्यवस्था है।। १७९।।

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान्।
पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः।। १८०।।

एतान्क्षेत्रजादीनेकादश पुत्रान्, पुत्रोत्पादनविधिलोपः पुत्रकर्तव्यश्राद्धादिलोपश्च मा भूदित्येवमर्थं पुत्रप्रतिच्छन्दकान्मुनय आहुः।। १८०।।

इसप्रकार हमारे द्वारा पूर्व में कहे गए क्षेत्रजादि इन ग्यारह पुत्रों को, श्राद्धादि क्रियाओं का लोप न हो जाए, इस दृष्टि से विद्वानों ने पुत्र के समान ही कहा है।। १८०।।

य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः।
यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु।। १८१।।

य एते क्षेत्रजादयोऽन्यबीजोत्पन्नाः पुत्रा औरसपुत्रप्रसङ्गेनोक्तास्ते यद्वीजोत्पन्नास्तस्यैव पुत्रा भवन्ति न क्षेत्रिकादेरिति सत्यौरसे पुत्रे पुत्रिकायां च सत्यां न ते कर्तव्या इत्येवं परमिदम्, अन्यबीजजा इत्येकादशपुत्रोपलक्षणार्थम्। स्वबीजजातावपि पौनर्भवशौद्रौ न कर्तव्यौ। अत एव वृद्धबृहस्पतिः-"आज्यं विना यथा तैलं सद्भिः प्रतिनिधिः स्मृतः। तथैकादश पुत्रास्तु पुत्रिकौरसयोर्विना"।। १८१।।

यह जो प्रसङ्गवश अन्य पुरुष के वीर्य से उत्पन्न पुत्रों का यहाँ कथन किया गया, जिनके बीज से ये उत्पन्न होते हैं, वस्तुतः उसके नहीं होते, अपितु दूसरे के ही होते हैं।। १८१।।

भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्।
सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्।। १८२।।

भ्रातृणामेकमातापितृकाणां मध्ये यद्येकः पुत्रवान्स्यादन्ये च पुत्ररहितास्तदा तेनैकपुत्रेण सर्वान्भ्रातॄन्सपुत्रान्मनुराह। ततश्च तस्मिन्सत्यन्ये पुत्रप्रतिनिधयो न कर्तव्याः। स एव पिण्डदोंऽशहरश्च भवतीत्यनेनोक्तम्। एतच्च "पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुता" (अ० २ श्लो० १३५) इति याज्ञवल्क्यवचनाद्भ्रातृपर्यन्ताभावे बोद्धव्यम्।। १८२।।

एक ही माता-पिता में उत्पन्न सहोदर भाइयों में यदि एक भी पुत्रवान् हो तो मनु के अनुसार उन सभी भाइयों को पुत्रवान् समझना चाहिए।। १८२।।

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत्।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः।। १८३।।

एकपतिकानां सर्वासां स्त्रीणां मध्ये यद्येका पुत्रवती स्यात्तदा तेन पुत्रेण सर्वास्ताः पुत्रयुक्ता मनुराह। ततश्च सपत्नीपुत्रे सति स्त्रिया न दत्तकादिपुत्राः कर्तव्या इत्येतदर्थमिदम्।। १८३।।

इसीप्रकार एक व्यक्ति की अनेक पत्नियों में एक स्त्री भी यदि पुत्रवती है तो आचार्य मनु ने उस पुत्र के कारण उन सभी स्त्रियों को भी पुत्रवती कहा है।। १८३।।

श्रेयस: श्रयेसोऽलाभे पापीयान्रिक्थमर्हति।
बहवश्चेत्तु सदृशा: सर्वे रिक्थस्य भागिन:।। १८४।।

औरसादीनां सर्वेषां पुत्राणां प्रकृतत्वादौरसादीनुपकम्य तेषां पूर्व: पूर्व: श्रेयान्स एव दायहर:, "सचान्यान्बिभृयात्" इति विष्णुवचनात्। औरसादीनां पुत्राणां पूर्वपूर्वाभावे पर: परो रिक्थमर्हति। पूर्वसद्भावे परसंवर्धनं स एव कुर्यात्। एवंच सिद्धे शूद्रापुत्रस्य द्वादशपुत्रमध्ये पाठ:क्षेत्रजादिसद्भावे, धनानर्हत्वज्ञापनासर्थत्वेन सार्थक:। अन्यथा तु क्षत्रियावैश्यापुत्रवदौरसत्वात्क्षेत्रजादिसद्भावे धनानर्हत्वज्ञापनार्थत्वेन सार्थक:। अन्यथा तु क्षत्रियावैश्यापुत्रवदौरसत्वात्क्षेत्रजादिसद्भावेऽपि धनं लभेत्पूर्वस्य परसंवर्धनमात्रं चापवादेतरविषये द्रष्टव्यम्। क्षेत्रजगुणवद्दत्तकपुत्रयो: पञ्चमं षष्ठं वा भागमौरसो दद्यादिति विहित्वात्। यदि तु समानरूपा: पौनर्भवादयो बहव: पुत्रास्तदा सर्वं एव विभज्य रिक्थं गृह्णीयु:।। १८४।।

(पूर्व में बताए गए बारह प्रकार के पुत्रों में) क्रमश: श्रेष्ठ-श्रेष्ठ पुत्र के अभाव में निकृष्ट पुत्र भी पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी होता है और यदि वे पुत्र भी अनेक हों तो सभी एक समानरूप से पैतृक सम्पत्ति में बराबर के हकदार होंगे।। १८४।।

न भ्रातरो न पितर: पुत्रा रिक्थहरा: पितु:।
पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च।। १८५।।

न सोदरभ्रातरो, न पितर: किंतु औरसाभावे क्षेत्रजादयो गौणपुत्रा: पितृरिक्थ-हरा भवन्तीत्यनेनोच्यते। औरसस्य तु "एक एवौरस: पुत्र:" (अ० ९ श्लो० १६३) इत्यनेनैव सिद्धत्वात्। अविद्यमानमुख्यपुत्रस्य पत्नीदुहितृरहितस्य च पिता धनं गृह्णीयात्तेषां मातुश्चाभावेन भ्रातरो धनं गृह्णीयु:। एतच्चानन्तरं प्रपञ्चयिष्याम:।। १८५।।

अपने पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी उसके पुत्र ही होते हैं, भाई अथवा पिता उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी नहीं होते, किन्तु सन्तानहीन व्यक्ति की धनसम्पत्ति को उसके मरने पर पिता और भाई ग्रहण कर सकते हैं।। १८५।।

इदानीं क्षेत्रजानामप्यपुत्रपितामहादिधनेऽप्यधिकारं दर्शयितुमाह-

त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्ड: प्रवर्तते।
चतुर्थ: संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते।। १८६।।
(असुतास्तु पितु: पत्न्य: समानांशा:प्रकीर्तिता:।
पितामह्यश्च ता: सर्वा मातृकल्पा: प्रकीर्तिता।। ४।।)

त्रयाणां पित्रादीनामुदकदानं कार्यं, त्रिभ्य एव च तेभ्यः पिण्डो देयः। चतुर्थश्च पिण्डोदकयोर्दाता। पञ्चमस्यात्र संबन्धो नास्ति। तस्माद्युक्तोऽपुत्रपितामहादिधने गौणपौत्राणामधिकारः। औरसपुत्रपौत्रयोश्च "पुत्रेण लोकाञ्जयति" (अ० ९ श्लो० ३७) इत्यनेनैवात्र पितामहादिधनभागित्वमुक्तम्।।१८६।।

पिता, पितामह तथा प्रपितामह ये तीनों ही श्राद्धकर्म के अधिकारी हैं, इन्हीं तीन को पिण्ड भी दिया जाता है। चतुर्थ इस सबका देने वाला प्रपौत्र स्वयं है। अतः इसमें पाँचवें का कोई कार्य नहीं होता है।। १८६ ।।

[इसके अतिरिक्त पिता की निःसन्तान पत्नियाँ भी पति की सम्पत्ति में समान अंश की भागीदार कही गई हैं। इतना ही नहीं पितामही (दादी) आदि भी सभी माता के समान ही मानी गई हैं।। ४।।]

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत्।
अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा।। १८७।।
(हरेरनृत्विजो वापि न्यायवृत्ताश्च याः स्त्रियः।।५।।)

अस्य सामान्यवचनस्योक्तौरसादिसपिण्डमात्रविषयत्वे वैयर्थ्यात्ततश्चानुक्त-पत्न्यादिदायप्राप्त्यर्थमिदम्। सपिण्डमध्यात्संनिकृष्टतरो यः सपिण्डः पुमान् स्त्री वा तस्य मृतधनं भवति। तत्र "एक एवौरसः पुत्रः" (अ० ९ श्लो० १६३) इत्युक्तत्वात्स एव मृतधने स्वाधिकारी। क्षेत्रजगुणवद्दत्तकयोस्तु-यथोक्तं पञ्चमं षष्ठं वा भागं दद्यात्। कृत्रिमादिपुत्राणां संवर्धनमात्रं कुर्यात्। औरसाभावे पुत्रिका तत्पुत्रश्च "दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम्" (अ० ९ श्लो० १३२) इत्युक्तत्वादौ-रसपुत्ररहित एव तत्रापुत्रो विवक्षितः। तदभावे क्षेत्रजादय एकादश पुत्राः क्रमेण पितृधनाधिकारिणः। परिणीतशूद्रापुत्रस्तु दशमभागमात्राधिकारी "नाधिकं दशमाद्द्याच्छूद्रापुत्राय" (अ० ९ श्लो० १५४) इत्याद्युक्तत्वात्। दशमभागावशिष्टं धनं सनिकृष्टसपिण्डो गृह्णीयात्। त्रयोदशविधपुत्राभावे पत्नी सर्वभर्तृधनभागिनी। यदाह याज्ञवल्क्यः—"पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः। एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः। स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः।।" (अ० २ श्लो० १३५-३६) बृहस्पतिरप्याह-"आम्नाये स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभिः। शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्यफले समा।। यस्य नोपरता भार्या देहार्धं तस्य जीवति। जीवत्यर्धशरीरे तु कथमन्यः स्वमाप्नुयात्।। सकुल्यैर्विद्यमानैस्तु पितृमातृसनाभिभिः। अपुत्रस्य प्रमीतस्य पत्नी तद्भागहारिणी। पूर्वप्रमीताग्निहोत्रं मृते भर्तरि तद्धनम्। विन्देत्पतिव्रता नारी धर्म एष सनातनः। जङ्गमं स्थावरं हेम कुप्यं धान्यमथाम्बरम्। आदाय दापयेच्छ्राद्धं मासषाण्मासिका-दिकम्।। पितृव्यगुरुदौहित्रान्भर्तृस्वस्रीयमातुलान्। पूजयेत्कव्यपूर्ताभ्यां वृद्धानप्यतिथीं-

स्त्रिय:।। तत्सपिण्डा बान्धवा वा ये तस्या: परिपन्थिन:। हिंस्युर्धनानि तान्राजा चौरदण्डेन शासयेत्।।" वृद्धमनु:—"अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता। पत्न्येव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमर्थं लभेत च।।" यदुक्तम्-"स्त्रीणां तु जीवनं दद्यात्" इति संवर्धनमात्रवचनं, तद्दु:शीलाधार्मिकसविकारयौवनस्थपत्नीविषयम्। अतो यन्मेधातिथिना पत्नीनामंशभागित्वं निषिद्धमुक्तं तदसंबद्धम्। "पत्नीनामंशभागित्वं बृहस्पत्यादिसंमतम्। मेधातिथिर्निराकुर्वन्न प्रीणाति सतां मन:।।" पत्न्यभावेऽप्यपुत्रिका दुहिता तदभावे पिता माता च तयोरभावे सोदर्यभ्राता तदभावे तत्सुत:। "मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम्" (अ० ९ श्लो० २१७) इति वक्ष्यमाणत्वात्। पितृमाता तदभावेऽन्योऽपि संनिकृष्टसपिण्डो मृतधनं गृह्णीयात्। तद्यथा पितामहसंताने-ऽविद्यमाने प्रपितामहसंतान एव। तदप्युक्तम्। अत ऊर्ध्वं सपिण्डसंतानाभावे समानोदक आचार्य: शिष्यश्च क्रमेण धनं गृह्णीयात्।। १८७।।

इसके पश्चात् सम्बन्धियों में जो सर्वाधिक निकट सपिण्डादि हों, वे-वे उस धन के अधिकारी होंगे तथा उनके अभाव में उस कुल का आचार्य अथवा शिष्य ही पैतृक धन-सम्पत्ति के उत्तराधिकारी माने जाएँगे।। १८७।।

(ऋत्विक् (आचार्य) के अभाव में विधिवत् विवाहित एवं मर्यादित आचरण वाली जो पत्नियाँ हैं वे भी व्यक्ति की सम्पत्ति को ग्रहण कर सकती हैं।। ५।।)

सर्वेषामाप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिन:।
त्रैविद्या: शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते।। १८८।।

एषामभाव इति वक्तव्ये सर्वेषामभाव इति यदुक्तं तत्सब्रह्मचार्यादेरपि धनहारित्वार्थम्। सर्वेषामभावे ब्राह्मणा वेदत्रयाध्यायिनो बाह्यान्तरशौचयुक्ता जितेन्द्रिया धनहारिणो भवन्ति त एव च पिण्डदा:, तथा सति धनिनो मृतस्य श्राद्धादिधर्महानिर्न भवति।। १८८।।

किन्तु इन सभी के अभाव में तो वेदों को जानने वाले, पवित्र एवं जितेन्द्रिय वेदपाठी ब्राह्मण ही व्यक्ति की पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होंगे। ऐसा करने पर धर्म की हानि नहीं होती है।। १८८।।

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थिति:।
इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृप:।। १८९।।

ब्राह्मणसंबन्धि धनं न राज्ञा कदाचिद्ग्राह्यमिति शास्त्रमर्यादा। किंतूक्तलक्ष-णब्राह्मणाभावे ब्राह्मणमात्रेभ्योऽपि देयम्। क्षत्रियादिधनं पुन: पूर्वोक्तरिक्थहराभावे राजा गृह्णीयात्।। १८९।।

यदि व्यक्ति की पैतृक सम्पत्ति का कोई भी उत्तराधिकारी न हो तो ब्राह्मण को छोड़कर दूसरे वर्णों का धन राजा को ग्रहण कर लेना चाहिए, किन्तु उसे ब्राह्मण का धन कभी भी नहीं लेना चाहिए, ऐसी नित्य शास्त्रमर्यादा मानी गई है।। १८९।।

संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत्।
तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत्।। १९०।।

अनपत्यस्य मृतस्य भार्या समानगोत्रात्पुंसो गुरुनियुक्ता सती नियोगधर्मेण पुत्रमुत्पादयेत्। तस्मिन्मृतविषये यद्धनजातं भवेत्तत्तस्मिन्पुत्रे समर्पयेत्। "देव राद्वा सपिण्डाद्वा" (अ० ९ श्लो० ५९) इत्युक्तत्वात्। सगोत्रान्नियोगप्राप्त्यर्थं तज्जस्य च रिक्थभागित्वार्थमिदम्।। १९०।।

यदि ब्राह्मण निःसन्तान ही मर जाए तो राजा को उसके सगोत्री ब्राह्मण की सहमति लेकर, उसके पुत्र को मृतब्राह्मण का पुत्र घोषित कर देना चाहिए तथा उसे मृत ब्राह्मण की धनसम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाकर, वह सम्पूर्ण जायदाद उसी को समर्पित कर दे।। १९०।।

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने।
तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः।। १९१।।

"यद्येकरिक्थिनौ स्याताम्" (अ० ९ श्लो० १६२) इत्यौरसक्षेत्रजयोरुक्तमिदं त्वौरसपौनर्भवविषयम्। यदोत्पन्नौरसभर्तुर्मृतत्वाद्बालापत्यतया स्वामिधनं स्वीकृत्य पौनर्भवभर्तुः सकाशात्पुत्रान्तरं जनयेत्तस्यापि च पौनर्भवस्य भर्तुर्मृतत्वाद्रिक्थहरान्तराभावाद्धनं गृहीतवती, पश्चात्तौ द्वाभ्यां जातौ यदि विवदेयातां स्त्रीहस्तगतधने तदा तयोर्यस्य यज्जनकस्य धनं स तदेव गृह्णीयान्न त्वन्यपितृजोऽन्यजनकस्य।। १९१।।

इसीप्रकार यदि दो भिन्न पुरुषों द्वारा एक ही स्त्री से दो भिन्न पुत्रों को जन्म दिया गया हो तथा उन दोनों में पैतृक सम्पत्ति के विषय में विवाद हो तो उस स्थिति में उन्हें अपने-अपने पिता की सम्पत्ति को ही ग्रहण करना चाहिए, कोई भी अन्य का धन ग्रहण न करे।। १९१।।

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः।
भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः।। १९२।।

मातरि मृतायां सोदर्यभ्रातरो भगिन्यश्च सोदर्या अनूढा मातधनं समं कृत्वा गृह्णीयुः। ऊढास्तु धनानुरूपं संमानं लभन्ते। तदाह बृहस्पतिः—"स्त्रीधनं स्यादपत्यानां दुहिता च तदंशिनी। अपुत्रा चेत्समूढा तु लभते मानमात्रकम्।।" ततश्चानूढानां पितृधन इवोढानां मातृधनं भ्रात्रा स्वादंशाच्चतुर्थभागो देयः।। १९२।।

जबकि माता के मरने के पश्चात् सभी सहोदर भाई और सहोदर बहनें माता की धनसम्पत्ति का आपस में बराबर-बराबर विभाजन कर लेवें।। १९२।।

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः।
मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम्।। १९३।।

तासां दुहितॄणां या अनूढा दुहितरस्ताभ्योऽपि मातामहीधनाद्यथा तासां पूजा भवति तथा प्रीत्या किंचिद्दातव्यम्।। १९३।।

उन सहोदर बहनों की जो पुत्रियां हों, उनको भी अपनी नानी की जायदाद में से प्रसन्नतापूर्वक जितना सम्भव हो सके, कुछ न कुछ धन अवश्य देना चाहिए।। १९३।।

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।। १९४।।

अध्यग्नीति "अव्ययं विभक्तिसमीप-"(पा० सू० २/१/६) इत्यादिसूत्रेण समीपार्थेऽव्ययीभावः। विवाहकाले अग्निसंनिधौ यत्पित्रादिदत्तं तदध्यग्नि स्त्रीधनम्। तदाह कात्यायनः—"विवाहकाले यत्स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसंनिधौ तदध्यग्नि कृतं सद्भिः स्त्रीधनं परिकीर्तितम्।।" यत्तु पितृगृहाद्भर्तुर्गृहं नीयमानया लब्धं तदध्यावाहनिकं तथा च कात्यायनः—"यत्पुनर्लभते नारी नीयमाना तु पैतृकात्। अध्यावाहनिकं नाम तत्स्त्रीधनमुदाहृतम्।।" यत्तु प्रीतिहेतुकर्मणि भर्त्रादिदत्तं तथा भ्रात्रा पित्रा च समयान्तरे यद्दत्तम् एवं षट्प्रकारकं स्त्रीधनं स्मृतम्।। १९४।।

इस संसार में स्त्रीधन छः प्रकार का माना गया है-विवाह संस्कार के समय पितृ-पक्ष द्वारा प्रदत्त, विवाह के पश्चात् पिता के घर से प्राप्त हुआ, समय-समय पर पति द्वारा प्रसन्न होकर दिया गया, कन्या के किसी कार्य से प्रसन्न होकर अथवा किसी विशेष अवसर पर उपहारस्वरूप प्राप्त धन, भाई द्वारा प्रदत्त, पिता से प्राप्त एवं माता से प्राप्त धन।। १९४।।

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत्।
पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत्।। १९५।।

अन्वाधेयं व्याख्यातं कात्यायनेन—"विवाहात्परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुले स्त्रिया। अन्वाधेयं तदुक्तं तु सर्वबन्धुकुले तथा।।" विवाहादूर्ध्वं भर्तृकुले पितृकुले वा यत्स्त्रिया लब्धं भर्त्रा च प्रीतेन दत्तं, यदध्यग्न्यादि पूर्वश्लोके उक्तं तद्भर्तरि जीवति मृतायाः स्त्रियाः सर्वधनं तदपत्यानां भवति।। १९५।।

स्त्री के विवाह के पश्चात् पति के कुल से अथवा पितृपक्ष से या फिर पति से

प्राप्त हुआ जो भी स्त्री का छः प्रकार का धन है। पति के जीवित रहते हुए भी तथा स्त्री के मरने पर भी वह सब उस स्त्री की सन्तानों को ही प्राप्त होता है, पति को नहीं ।। १९५।।

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु।
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते।। १९६।।

ब्राह्मादिषु पञ्चसु विवाहेषूक्तलक्षणेषु यत्स्त्रियाः षड्विधं धनं तदनपत्यायां मृतायां भर्तुरेव मन्वादिभिरिष्यते।। १९६।।

इसके अतिरिक्त ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व एवं प्राजापत्य इन पाँच प्रकार के विवाहों में जो भी धन स्त्री को प्राप्त हुआ है, वह सब उसके निःसन्तान मर जाने पर उसके पति का ही माना गया है।। १९६।।

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु।
अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते।। १९७।।

यत्पुनः स्त्रिया आसुरराक्षसपैशाचेषूक्तलक्षणेषु विवाहेषु यत्स्त्रियाः षड्विधं धनमपि तदनपत्यायां मृतायां मातापित्रोरिष्यते।। १९७।।

किन्तु जो धन स्त्री को आसुर आदि विवाहों में प्रदान किया गया हो, वह सब स्त्री के निःसन्तान मरने पर उसके माता-पिता का ही हो जाता है।। १९७।।

स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन।
ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत्।। १९८।।

ब्राह्मणस्य नानाजातीयासु स्त्रीषु क्षत्रियादिस्त्रियामनपत्यपतिकायां मृतायां, तस्याः पितृदत्तं धनं सजातिविजातिसापत्यकन्यापुत्रसद्भावेऽपि ब्राह्मणीसापत्नेयी कन्या गृह्णीयात्। तदभावे तदपत्यस्य तद्धनं भवेत्।। १९८।।

जबकि स्वयं के द्वारा अर्जित अथवा पिता द्वारा किसी भी स्थिति में प्रदान किया गया स्त्री का धन, उसके निःसन्तान मरने पर ब्राह्मणी स्त्री से उत्पन्न कन्या अथवा उसके अभाव में उसका पुत्र प्राप्त कर लेवे।। १९८।।

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात्।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया।। १९९।।

भ्रात्रादिबहुसाधारणात्कुटुम्बधनाद्भार्यादिभिः स्त्रीभी रत्नालंकाराद्यर्थं धनसंचयं न कर्तव्यम्। नापि च भर्तुराज्ञां विना भर्तृधनादपि कार्यम्। ततश्च नेदं स्त्रीधनम्।। १९९।।

स्त्रियों को बहुत से सदस्यों वाले परिवार के बीच में रहते हुए चुपके-चुपके

निजी धन संग्रह नहीं करना चाहिए और न ही अपने पति की आज्ञा के बिना अपने धन में से व्यय ही करना चाहिए।। १९९।।

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत्।
न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते।। २००।।

भर्तरि जीवति तत्संमताभिर्योऽलंकारः स्त्रीभिर्धृतस्तस्मिन्मृते विभागकाले तं पुत्रादयो न भजेरन्। भजमानाः पापिनो भवन्ति।। २००।।

इसके अलावा पति के जीवित रहते हुए स्त्रियों द्वारा जिन आभूषणों को अपने शरीर पर धारण कर लिया गया है, (पति के मरने के पश्चात्) उन आभूषणों का पिता के धन के उत्तराधिकारी परस्पर बँटवारा न करें, फिर भी यदि वे उनका विभाजन करें तो वे 'पतित' होते हैं (अतः माता के मरने के पश्चात् ही उसके आभूषण रूप धनसम्पत्ति का विभाजन करना चाहिए, जीवित रहते हुए नहीं)।। २००।।

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा।
उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः।। २०१।।

नपुंसकपतितं जात्यन्धश्रोत्रविकलोन्मत्तजडमूकाश्च ये च कुणिपङ्ग्वादयो विकलेन्द्रियास्ते पित्रादिधनहरा न भवन्ति। किंतु ग्रासाच्छादनभागिनः।। २०१।।

नपुंसक और पतित, जन्म से अन्धे और बहरे, पागल, मूर्ख एवं गूंगे तथा जो कोई भी इन्द्रियों से पूर्णतया विकलांग हैं, ये सभी पैतृकसम्पत्ति में भागीदार नहीं होते हैं।। २०१।।

तदेवाह—

सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा।
ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत्।। २०२।।

सर्वेषामेषां क्लीबादीनां शास्त्रज्ञेन रिक्थहारिणा यावज्जीवं स्वशक्त्या ग्रासाच्छादनं देयम। अददत्पापी स्यात्।। २०२।।

बुद्धिमान् व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह घर के सभी सदस्यों को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन एवं वस्त्र प्रदान करता रहे, क्योंकि न देने पर वह 'पतित' कहलाएगा।। २०२।।

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति।। २०३।।

कथंचनेत्यभिधानात्क्लीबादयो विवाहनर्हा इति सूचितम्। यदि कथंचिदेषां विवाहेच्छा भवेत्तदा क्लीबस्य क्षेत्रज उत्पन्नेऽन्येषामुत्पन्नापत्यानामपत्यं धन-भाग्भवति।। २०३।।

पूर्व में कहे गए नपुंसकादि भी यदि किसी कारण विवाह करने के इच्छुक होंवे तो उनके नियोगादि से उत्पन्न पुत्र दायभाग के अधिकारी होते हैं।। २०३।।

यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालितः।। २०४।।

पितरि मृते सति भ्रातृभिः सहाविभक्तो ज्येष्ठः किंचित्स्वेन पौरुषेण धनं लभते।। ततो धनाद्विद्याभ्यासवतां कनिष्ठभ्रातृणां भागो भवति नेतरेषाम्।। २०४।।

(संयुक्त परिवार में रहते हुए) पिता के मरने पर यदि बड़ा भाई अपने पुरुषार्थ से जो कुछ भी धन एकत्रित करता है, उसमें पढ़े-लिखे होने पर छोटे भाइयों का हिस्सा होता है, दूसरे मूर्ख भाइयों का नहीं।। २०४।।

अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत्।
समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा।। २०५।।

सर्वेषां भ्रातृणां कृषिवाणिज्यादिचेष्टया यदि धनं स्यात्तदा पित्र्यवर्जिते तस्मिन्धने स्वार्जिते समो विभागः स्यात्र तूद्धारोऽपित्र्य इति निश्चयः।। २०५।।

किन्तु संयुक्त परिवार में यदि अनपढ़ भाइयों के प्रयत्नों से धन एकत्रित किया गया हो तो उस स्थिति में पितृधन को छोड़कर शेषधन में सभी बराबर के हिस्सेदार होंगे, ऐसी मान्यता है।। २०५।।

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत्।
मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च।। २०६।।

विद्यामैत्रीविवाहार्जितं माधुपार्किकं मधुपर्कदानकाले पूज्यतया यल्लब्धं तस्यैव तत्स्यात्। " यत्किंचित्पितरि" (अ० ९ श्लो० २०४) इत्युक्त्वायमपवादः। विद्याधनं च व्याहृतं कात्यायनेन "परभक्तप्रदानेन प्राप्ता विद्या यदान्यतः। तया प्राप्तं च विधिना विद्याप्राप्तं तदुच्यते।। उपन्यस्ते च यल्लब्धं विद्यया पणपूर्वकम्। विद्याधनं तु तद्विद्याद्विभागे न विभज्यते।। शिष्यादार्त्विज्यतः प्रश्नात्संदिग्धप्रश्ननिर्णयात्।। स्वज्ञानशंसनाद्वादाल्लब्धं प्राज्यधनाच्च यत्।। विद्याधनं तु तत्प्राहुर्विभागे न विभज्यते।।" अतो यन्मेधातिथिगोविन्दराजाभ्यां माधुपर्किकमार्त्विज्यधनं व्याख्यातं तदयुक्तम्, विद्याधनत्वात्।। २०६।।

जबकि अपनी विद्या से प्राप्त हुआ, मित्र से प्राप्त, विवाह में प्राप्त हुआ एवं समाज में पूज्यभावादि के कारण उपहारस्वरूप प्राप्त हुआ जो जिसका धन है, वह उसी का होता है।। २०६।।

भ्रातृणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा।
स निर्भाज्यः स्वकादंशात्किंचिद्दत्त्वोपजीवनम्।। २०७।।

राजानुगमनादिकर्मणा यो धनमर्जितुं शक्तो भ्रातृणां साधारणं धनं नेच्छति स स्वीयादंशात्किंचिदुपजीवनं दत्त्वा भ्रातृभिः पृथक्कार्यः। तेन तत्पुत्रास्तत्र धने कालान्तरे न विवदन्ते।। २०७।।

अनेक भाइयों में जो अपने परिश्रम से धन कमाने में समर्थ हों और पितृधन में से हिस्सा न लेना चाहें तो उसे भी पितृधन के अपने-अपने हिस्सों में से कुछ धन (उपजीविका) प्रदान करके उसे अलग कर देना चाहिए।। २०७।।

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम्।
स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति।। २०८।।

पितृधनानुपघातेन यत्कृष्यादिक्लेशादर्जयेत्तत्स्वचेष्टाप्राप्तनमनिच्छन्भ्रातृभ्यो दातुं नार्हति।। २०८।।

पिता के धन को उपयोग में लाए बिना, अपने परिश्रम द्वारा ही कोई व्यक्ति जो भी धन कमाता है, वह उसी का होता है, यदि वह उसे न देने का इच्छुक हो तो उसे इसके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।। २०८।।

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात्।
न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम्।। २०९।।

यत्पुनः पितृसंबन्धि धनं तेनासामर्थ्येनोपेक्षितत्वादनवाप्तं पुत्रः स्वशक्त्या प्राप्नुयात्तत्स्वयमर्जितमनिच्छन्पुत्रैः सह न विभजेत्।। २०९।।

यदि पिता पूर्व में प्राप्त न हो पाने वाले किसी पैतृकधन को अपने प्रयत्नों द्वारा प्राप्त कर ले, तो सम्मिलितरूप से रहते हुए भी यदि वह उसे अपने पुत्रों में या पिता के पुत्रों में न बाँटना चाहे तो न बाँटे, क्योंकि वह उसका अपने परिश्रम द्वारा कमाया हुआ धन माना जाएगा।। २०९।।

विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते।। २१०।।

पूर्वं सोद्धारं निरुद्धारं वा विभक्ता भ्रातरः पश्चादेकीकृत्य धनं सह जीवन्तो यदि पुनर्विभागं कुर्वन्ति तदा तत्र समो विभागः कार्यः। ज्येष्ठस्योद्धारो न देयः।। २१०।।

इसीप्रकार एक बार पैतृकसम्पत्ति का बंटवारा किए हुए सभी भाई, यदि सम्मिलित होने के बाद फिर से अलग होना चाहें तो उस स्थिति में भी सभी को समान हिस्सा प्राप्त होगा। तब बड़े भाई को 'उद्धार' भाग प्राप्त नहीं होता है।। २१०।।

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः।
म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते।। २११।।

येषां भ्रातृणां मध्ये कश्चिद्विभागकाले प्रव्रज्यादिना स्वांशाद्धीयेन्मृतो वा भवेत्तस्य भागो न लुप्यते।। २११।।

जिनमें बड़ा अथवा छोटा भाई बँटवारे के समय अपने दायभाग से वंचित रह जाता है, यदि उसकी मृत्यु हो जाए अथवा अन्य किसी कारणवश बँटवारे में भाग न ले सके तो उसका हिस्सा नष्ट नहीं होता है (अपितु उसके पुत्र एवं पत्नी आदि को दिया जाता है।)।। २११।।

किंतु—

सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम्।
भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः।। २१२।।

सोदर्या भ्रातरः समागम्य सहिताः भगिन्यश्च सोदर्यास्तमंशं समं कृत्वा विभजेरन्सोदर्याणां सापत्न्यानामपि मध्याद्ये मिश्रीकृतधनत्वेनैकयोगक्षेमास्ते विभजेयुः समं सर्वे सोदर्याः सपत्न्या वा। एतच्च पुत्रपुत्रीपितृमात्रभावे द्रष्टव्यम्।। २१२।।

उसके स्त्री, पुत्रादि न होने पर, उसके साथ में रहने वाले, शुभेच्छु सगे भाई एवं सगी बहनें एकत्रित होकर उस हिस्से को आपस में बराबर विभाजित कर लें।। २१२।।

यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः।
सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः।। २१३।।

यो ज्येष्ठो भ्राता लोभात्कनीयसो भ्रातॄन्वञ्चयेत्स ज्येष्ठभ्रातृपूजाशून्यः सोद्धारभागरहितश्च राजदण्ड्यश्च स्यात्।। २१३।।

जो बड़ा भाई लोभवश पैतृक सम्पत्ति विभाजन के समय छोटे भाइयों को धोखा दे तो उसे बड़ा नहीं मानना चाहिए तथा उसे बड़े भाई को दिया जाने वाला 'उद्धार भाग' भी नहीं देना चाहिए। साथ ही वह राजा द्वारा दण्डनीय भी होता है।। २१३।।

सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम्।
न चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम्।। २१४।।

अपतिता अपि ये भ्रातरो द्यूतवेश्यासेवादिविकर्मासक्तास्ते रिक्थं नार्हन्ति। नच कनिष्ठेभ्योऽननुकल्प्य ज्येष्ठः साधारणधनादात्मार्थमसाधारणधनं कुर्यात्।। २१४।।

यद्यपि जुए आदि अनुचित कार्यों में संलग्न रहने वाले सभी भाई पैतृकधन के अधिकारी नहीं होते हैं तथापि छोटे भाइयों को दिये बिना बड़ा भाई पैतृकधन पर एकाधिकार न करे।। २१४।।

भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन।। २१५।।

भ्रातृणां पित्रा सहावस्थितानामविभक्तानां यदि सह धनार्जनार्थमुत्थानं भवेत्तदा विभागकाले न कस्यचित्पुत्रस्याधिकं पिता कदाचिद्दद्यात्।। २१५।।

एक साथ सम्मिलित रूप में रहते हुए सभी भाइयों ने यदि धन कमाया हो पिता को किसी भी स्थिति में पुत्रों के हिस्सों को विषमरूप में नहीं देना चाहिए।। २१५।।

ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम्।
संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह।। २१६।।

यदा जीवतैव पित्रा पुत्राणामिच्छया विभागः कृतस्तदा विभागादूर्ध्वं जातः पुत्रः पितरि मृते पितृरिक्थमेव गृह्णीयात्। ये कृतविभागाः पित्रा सह पुनर्मिश्रीकृतधनास्तैः सहासौ पितरि मृते विभजेत्।। २१६।।

(पिता की जीवित अवस्था में ही) पैतृकसम्पत्ति के विभाजन के पश्चात् उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के हिस्से को ही प्राप्त कर ले अथवा जो पुत्र पिता के साथ सम्मिलित रूप में रह रहे हैं, वह उनके साथ बराबर का हिस्सा प्राप्त कर ले।। २१६।।

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात्।
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम्।। २१७।।

अनपत्यस्य पुत्रस्य धनं माता गृह्णीयात्पूर्वं ''पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थम्'' (अ० ९ श्लो० १८५) इत्युक्तत्वात्, इह माता हरेदित्यादि याज्ञवल्क्येन ''पितरौ'' (अ० २ श्लो० १३५) इत्येकशेषकरणात्, विष्णुना च—''अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि तदभावे दुहितृगामि तदभावे पितृगामि'' इत्येकशेषस्यैव कृतत्वात्, मातापितरौ विभज्य गृह्णीयाताम्। मातरि मृतायां पत्नीपितृभ्रातृजाभावे पितुर्माता धनं गृह्णीयात्।। २१७।।

सन्तानहीन पुत्र के धन को सर्वप्रथम माता प्राप्त कर ले तथा माता के भी मरने पर पिता की माता (दादी) वह धन ग्रहण कर ले।। २१७।।

ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि।
पश्चादृश्येत यत्किंचित्तत्सर्वं समतां नयेत्।। २१८।।

ऋणे पित्रादिधार्यमाणे धने च तदीये सर्वस्मिन्यथाशास्त्रं विभक्ते सति पश्चाद्यत्किंचित्पैतृकं ऋणं धनं वा विभागकालेऽज्ञातमुपलभ्येत तत्सर्वं समं कृत्वा विभजनीयं, नतु शोध्यं ग्राह्यं न वा ज्येष्ठस्योद्धारो देयः।। २१८।।

पिता के सम्पूर्ण ऋण एवं धन का विधिवत् विभाजन होने के पश्चात् जो कुछ भी ऋण और धन बाद में पता चले तो उस सभी का भी वे लोग समानरूप से आपस में बँटवारा करें।। २१८।।

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः।
योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते।। २१९।।

वस्त्रं वाहनमाभरणमविभागकाले यद्येनोपभुक्तं तत्तस्यैव न विभाज्यम्। एतच्च नातिन्यूनाधिकमूल्यविषयम्। यत्तु बहुमूल्यमाभरणादिकं तद्विभाज्यमेव। तद्विषयमेव "विक्रीय वस्त्राभरणम्" इति बृहस्पतेर्विभागवचनम्। कृतान्नमोदनसक्त्वादि तत्र विभजनीयम्। तत्रातिप्रचुरतरमूल्यं सक्त्वादि तावन्मात्रमूल्यधनेन "कृतानं चाकृतान्नेन परिवर्त्य विभज्यते" इति बृहस्पतिवचनाद्विभजनीयमेव। उदकं कूपादिगतं सर्वैरुपभोग्यमविभजनीयम्। स्त्रियो दास्याद्या यास्तुल्यभागा न भवन्ति ता न विभाज्याः। किंतु तुल्यं कर्म कारयितव्याः। योगक्षेमं मन्त्रिपुरोहितादि योगक्षेमहेतुत्वात् प्रचारो गवादीनां प्रचारमार्गः एतत्सर्वं मन्वादयोऽविभाज्यमाहुः।। २१९।।

सम्पत्ति-विभाजन के समय वस्त्र, वाहन, आभूषण, पकाया हुआ अन्न, जलस्त्रोत, दासियाँ तथा जीवननिर्वाह की अत्यन्त उपयोगी वस्तुएँ तथा प्रवेशद्वार ये सभी विभाजन के योग्य नहीं कही गई हैं।। २१९।।

अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः।
क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत।। २२०।।

एष दायभागः पुत्राणां क्षेत्रजादीनां क्रमेण विभागकरणप्रकारो युष्माकमुक्तः। इदानीं द्यूतव्यवस्थां श्रृणुत।। २२०।।

यह मैंने तुम्हें दायभाग का विभाजन तथा 'क्षेत्रज' आदि पुत्रों को पैतृकसम्पत्ति का भाग प्रदान करने की विधि का क्रमशः कथन किया। अब आगे द्यूतविषयक नियमों को सुनिए।। २२०।।

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्।
राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम्।। २२१।।

द्यूतसमाह्वयौ वक्ष्यमाणलक्षणौ राजा स्वराष्ट्रान्निवर्तयेत्। यस्मादेतौ द्वौ दोषौ राज्ञां राज्यविनाशकारिणौ।। २२१।।

अचेतन वस्तुओं को दाँव पर लगाकर खेला जाने वाला 'द्यूत' एवं चेतन प्राणियों की बाजी लगाकर खेला जाने वाला 'समाह्वय' इन दोनों को ही राजा को अपने राज्य में प्रतिबन्धित कर देना चाहिए, क्योंकि ये दोनों दोष राजाओं के राज्यों को नष्ट करने वाले हैं।। २२१।।

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ।
तयोर्नित्यं प्रतिघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत्।। २२२।।

प्रकटमेतच्चौर्यं यद्द्यूतसमाह्वयौ, तस्मात्तन्निवारणे राजा नित्यं यत्नयुक्तः स्यात्।

जुआ और समाह्वय ये दोनों ही वस्तुतः प्रत्यक्षरूप में होने वाली चोरियाँ हैं। अतः राजा को इन दोनों को रोकने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिए।। २२२।।

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः।। २२३।।

अक्षशलाकादिभिरप्राणैर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतं कथ्यते। यः पुनः प्राणिभिर्मेषकुक्कुटादिभिः पणपूर्वकं क्रियते स समाह्वयो ज्ञेयः। लोकप्रसिद्धयोरप्यनयोर्लक्षणकथनं परिहारार्थम्।। २२३।।

ताश, पासा, कौड़ी इत्यादि अचेतन वस्तुओं से जो खेला जाता है इस संसार में उसे 'द्यूत' कहा जाता है, किन्तु जो मुर्गा, तीतर, बटेर, घोड़े आदि जीवित प्राणियों पर दाँव लगाकर खेला जाए उसे 'समाह्वय' समझना चाहिए।। २२३।।

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः।। २२४।।

द्यूतसमाह्वयौ यः कुर्याद्यो वा सभिकः कारयेत्तेषामपराधापेक्षया राजा हस्तच्छेदादि वधं कुर्यात्। यज्ञोपवीतादिद्विजचिह्नधारिणः शूद्रान्हन्यात्।। २२४।।

जो व्यक्ति जुए और समाह्वय इन दोनों को स्वयं खेले अथवा दूसरों को खिलाएँ, भले ही वे बाह्यरूप से द्विजातियों के चिह्नों से युक्त हों अथवा शूद्रों हों, राजा उन सभी को दण्डित करे।। २२४।।

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाषण्डस्थांश्च मानवान्।
विकर्मस्थाञ्छौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात्।। २२५।।

द्यूतादिसेविनो, नर्तकगायकान्, वेदविद्विषः, श्रुतिस्मृतिबाह्यव्रतधारिणः, अनापदि परकर्मजीविनः, शौण्डिकान्मद्यकरान्मनुष्यान् क्षिप्रं राजा राष्ट्रान्निर्वासयेदिति। कितवप्रसङ्गेनान्येषामप्यभिधानम्।। २२५।।

राजा को अपने राज्य से जुआरी, नाच-गाने से जीविका चलाने वाले, क्रूरकर्म करने वाले, पाखण्डी, शास्त्रविरुद्ध आचरण करने वाले तथा शराब बेचने वाले लोगों को शीघ्र ही निकाल देना चाहिए।। २२५।।

अत्र हेतुमाह—

एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः।
विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः।। २२६।।

एते कितवादयो गूढचौरा राष्ट्रे वसन्तो नित्यं वञ्चनात्मकक्रियया सज्जनान्पीडयन्ति।। २२६।।

ये सभी वस्तुतः छुपे हुए चोर हैं तथा राज्य में रहकर शास्त्रविरुद्ध कार्य करते हुए राजा एवं उसकी सीधी सादी प्रजा को हमेशा दुःख पहुँचाते रहते हैं।। २२६।।

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत्।
तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्।। २२७।।

नेदानीमेव परं किंतु पूर्वस्मिन्नपि कल्पे द्यूतमेतदतिशयेन वैरकरं दृष्टम्। अतः प्राज्ञः परिहासार्थमपि तन्न सेवेत।। २२७।।

यह जुआ प्राचीनकाल में भी महान् शत्रुता उत्पन्न करने वाला देखा गया है। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति को कभी परिहास में भी जुआ नहीं खेलना चाहिए।। २२७।।

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः।
तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा।। २२८।।

यो मनुष्यस्तद्द्यूतं गूढं प्रकटं वा कृत्वा सेवेत तस्य यथा नृपतेरिच्छा भवति तथाविधो दण्डो भवति।। २२८।।

जो व्यक्ति छिपकर अथवा प्रत्यक्षरूप से जुए को खेले तो राजा उसे अपनी इच्छानुसार यथोचित दण्ड प्रदान करे।। २२८।।

इदानीं पराजितानां धनाभावे सतीदमाह—

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन्।
आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः।। २२९।।

क्षत्रवैश्यशूद्रजातीयो निर्धनत्वेन दण्डं दातुमसमर्थस्तदुचितकर्मकरणेन दण्डशोधनं कुर्यात्। ब्राह्मणः पुनर्यथालाभं क्रमेण दद्यान्न कर्म कारयितव्यः।। २२९।।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीनों यदि राजदण्ड देने में असमर्थ हों तो ये उसके बदले काम करके ऋणमुक्त होवें तथा ब्राह्मण इस दण्ड को धीरे-धीरे देवे।। २२९।।

स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम्।
शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम्।। २३०।।

स्त्रीबालादीनां पुनः शिफावेणुदलप्रहाररज्जुबन्धनादिभिर्दमनं राजा कुर्यात्।। २३०।।

इसके अतिरिक्त स्त्री, बालक, उन्मत्त, वृद्ध, दरिद्र और रोगी को राजा कोड़े, बाँस की छड़ी द्वारा ताड़न करना, रस्सी से बाँधना आदि सामान्य दण्ड ही प्रदान करे।। २३०।।

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम्।
धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः।। २३१।।

ये व्यवहारावेक्षणादिषु कार्येषु राज्ञा नियुक्ता उत्कोचधनतेजसा विकारं भजन्तः स्वाम्यादीनां कार्यं नाशयेयुस्तान्गृहीतसर्वस्वान् राजा कारयेत्।। २३१।।

किन्तु राजकार्यों में नियुक्त जो कर्मचारी रिश्वत आदि से प्रभावित होकर वादी एवं प्रतिवादियों के मुकदमे आदि को प्रभावित करें तो राजा को उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन लेनी चाहिए।। २३१।।

कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान्।
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्विट्सेविनस्तथा।। २३२।।

कूटराजाज्ञालेखकान् अमात्यानां च भेदकान् स्त्रीबालब्राह्मणघातिनः शत्रुसेविनश्च राजा हन्यात्।। २३२।।

कूटनीतिपूर्वक शासन करने वाले, प्रजा को (बुरे कार्यों में लिप्त करके) बिगाड़ने वाले, स्त्री, बालक और ब्राह्मणों को कष्ट देने वाले, शत्रुओं की सेवा करने वाले राजकर्मचारियों को राजा मृत्युदण्ड प्रदान करे।। २३२।।

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत्।
कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्तयेत्।। २३३।।

(तीरितं चानुशिष्टं च यो मन्येत विकर्मणा।
द्विगुणं दण्डमास्थाय तत्कार्यं पुनरुद्धरेत्।। ६।।)

यत्र क्वचिदृणादानादिव्यवहारे यत्कार्यं धर्मतस्तीरितम्। "पार तीर कर्मसमाप्तौ" इति चुरादौ पठ्यते। शास्त्रव्यवस्थानिर्णीतम्। अनुशिष्टं दण्डपर्यन्ततां च नीतं स्यात्तत्कृतमङ्गीकुर्यान्न पुनर्निवर्तयेत्। एतच्चाकारणात्। अतः कारणकृतं निवर्तयेदेव।। २३३।।

यदि किसी विवाद के सम्बन्ध में ठीकप्रकार निर्णय हो चुका हो तथा दण्ड का आदेश भी दे दिया गया हो, तो विधिविधान के अनुसार उस निर्णय को ही मान्य करना चाहिए, उसकी दोबारा सुनवाई नहीं करे।। २३३।।

(सुनवायी के पश्चात् निर्णय किए गए तथा उसके लिए दण्ड का विधान किए गए मुकदमें को राजा यदि अन्यायपूर्ण (अनुचित) समझे तो उस राजकर्मचारी पर दुगना दण्ड देकर उसकी सुनवाई पुनः करावे।। ६।।)

अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा।
तत्स्वयं नृपतिः कर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत्।। २३४।।

राजामात्याः प्राड्विवाको वा व्यवहारेक्षणे नियुक्तो यदसम्यग्व्यवहारनिर्णयं कुर्युस्तत्स्वयं राजा कुर्यात्पणसहस्रं च तान्दण्डयेत्। इदं चोत्कोचधनग्रहणेतरविषयम्। उत्कोचग्रहणे "ये नियुक्तास्तु" (अ० ९ श्लो० २३१) इत्युक्तत्वात्।। २३४।।

किन्तु मन्त्री अथवा न्यायाधीश यदि किसी मुकदमे की निर्णय अनुचित कर दें तो उसका निर्णय राजा को स्वयं करना चाहिए तथा गलत निर्णय करने वाले उन अधिकारियों को एक हजार पण का दण्ड प्रदान करे।। २३४।।

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
एते सर्वे पृथग्ज्ञेया महापातकिनो नराः।। २३५।।

यो मनुष्यो ब्राह्मणं हतवान्स ब्रह्महा, सुरापो द्विजातिः पैष्ट्याः पाता ब्राह्मणश्च पैष्टीमाध्वीगौडीनां, तस्करो ब्राह्मणसुवर्णहारी मनुष्यः, यश्च कश्चिद्गुरुपत्नीगामीत्येते सर्वे प्रत्येकं महापातकिनो बोद्धव्याः।। २३५।।

ब्राह्मण की हत्या करने वाला, मदिरापान करने वाला, चोरी करने वाला, गुरुपत्नी से सम्पर्क करने वाला, ये सभी लोग अलग-अलग महापातकी समझने चाहिएँ।। २३५।।

चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम्।
शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत्।। २३६।।

चतुर्णामप्येषां नहापातकिनां प्रायश्चित्तमकुर्वतां शारीरं धनग्रहणेन च धनसंबन्धमपराधानुसारेण धर्मादनपेतं वक्ष्यमाणं दण्डं कुर्यात्।। २३६।।

ये चारों यदि प्रायश्चित्त न करें तो इन्हें न्यायसिद्धान्त के अनुसार अर्थदण्ड सहित शारीरिक दण्ड प्रदान करना चाहिए।। २३६।।

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः।
स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान्।। २३७।।

''नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युः'' (अ० ९ श्लो० २४०) इति वक्ष्यमाणत्वाल्ललाटमेवाङ्कनस्थानमवगम्यते।। तत्र गुरुपत्नीगमने यावज्जीवस्थायि तप्तलोहेन ललाटे भगाकृतिं गुरुपत्नीगमनचिह्नं कार्यम्। एवं सुरापाने कृते पातुर्दीर्घं सुराध्वजाकारं, सुवर्णापहारे सत्यपहर्तुः कुक्कुरपादरूपं कार्यम्। ब्रह्महणि कबन्धः पुमान्कर्तव्यः ।।२३७।।

गुरुपत्नी के साथ गमन करने पर (तप्त लोहे से) उसके मस्तक पर 'भग' का चिह्न अंकित कर देना चाहिए। इसीप्रकार मदिरापान करने पर उसके मस्तक पर सुरापात्र का और चोरी करने पर कुत्ते के पैर का तथा ब्रह्महत्या करने पर बिना सिर वाले पुरुष का (चिह्न अंकित करना चाहिए)।। २३७।।

असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याविवाहिनः।
चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः।। २३८।।

अन्नादिकं नैते भोजयितव्याः, न चैते याजनीयाः, नाप्येतेऽध्यापनीयाः, नाप्येतैः कन्यादानसंबन्धः कर्तव्यः। एते च निर्धनत्वाद्याचनादिदैन्ययुक्ताः सर्वश्रौतादिकर्मवर्जिताः पृथिवीं पर्यटेयुः।। २३८।।

इन चारों प्रकार के महापातकियों के साथ व्यक्ति को खान-पान, यजन-याजन, पठन-पाठन एवं विवाहादि सम्बन्ध नहीं करने चाहिएँ। अतः ये सभी धर्म से बहिष्कृत होकर दीनहीन स्थिति में ही पृथ्वी पर विचरण करें।। २३८।।

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः।
निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम्।। २३९।।

ज्ञातिभिः संबन्धिभिर्मातुलाद्यैरेते कृतांकास्त्यजनीयाः, नचैषां दया कार्या, नाप्येते नमस्कार्या इतीयं मनोराज्ञा।। २३९।।

मस्तक पर अंकित चिह्न वाले ये व्यक्ति जाति एवं बिरादरी से भी त्यागने योग्य हैं। मनु के अनुसार मनुष्य को इन पर कभी भी दया नहीं करनी चाहिए और न ही इनको नमस्कार करना चाहिए।। २३९।।

प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम्।
नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम्।। २४०।।

शास्त्रविहितं प्रायश्चितं पुनः कुर्वाणा ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा राज्ञा ललाटेऽङ्कनीया न भवेयुः। उत्तमसाहसं पुनर्दण्डनीयाः।। २४०।।

किन्तु अपने-अपने वर्ण के अनुसार प्रायश्चित्त करते हुए ये सभी, राजा द्वारा मस्तक पर चिह्न अंकित करने योग्य नहीं होते हैं, अपितु इन्हें केवल 'उत्तम साहस' (एक हजार पण) का दण्ड देना चाहिए।। २४०।।

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः।
विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः।। २४१।।

"इतरे कृतवन्तस्तु" इत्युत्तरश्लोके श्रूयमाणम् "अकामतः" (अ० ९ श्लो० २४२) इति चात्रापि योजनीयम्। तेनाकामत इत्येतेष्वपराधेषु गुणवतो ब्राह्मणस्य मध्यमसाहसो दण्डः कार्यः। पूर्वोक्तस्तूत्तम साहसो निर्गुणस्य द्रष्टव्यः। कामतस्तेष्वपराधेषु धनधान्यादिपरिच्छदसहितो ब्राह्मणो देशान्निर्वास्यः।। २४१।।

इन्हीं अपराधों में ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति को मध्यम साहस का दण्ड ही प्रदान करना चाहिए अथवा उसे धन धान्यादि सामग्रियों सहित अपने राज्य से निकाल देना चाहिए।। २४१।।

इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः।
सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम्।। २४२।।

ब्राह्मणादन्ये पुनः क्षत्रियादय एतानि पापान्यनिच्छन्तः कृतवन्तः सर्वस्वहरणमर्हन्ति। इदं च सर्वस्वहरणं पूर्वोक्तेनोत्तमसाहसेन वृत्तापेक्षया व्यवस्थापनीयम्। इच्छया पुनरेषामेतेष्वपराधेषु प्रवासनं वधोऽर्हति। "प्रवासनं परासनं निषूदनं निहिंसनम्" (अमरकोषे क्षत्रियवर्गे श्लो० ११३) इति वधपर्यायं प्रवासनशब्दं पठन्त्याभिधानिकाः।। २४२।।

किन्तु दूसरे वर्णों (क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के लोग, न चाहते हुए भी अज्ञानवश यदि इन पापपूर्ण कार्यों को करते हुए पाए जाएँ तो वे सभी कुछ हरण करने योग्य हैं, किन्तु यदि उन्होंने जानबूझकर ऐसा किया हो तो उन्हें देश से निकाल देना चाहिए।। २४२।।

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम्।
आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते।। २४३।।

धार्मिको राजा महापातकसंबन्धि धनं दण्डरूपं न गृह्णीयात्। लोभात्पुनस्तद्गृह्णन्महापातकदोषेण संयुज्यते।। २४३।।

श्रेष्ठ राजा को कभी महापातकी का धन ग्रहण नहीं करना चाहिए, किन्तु लोभवश लेता हुआ वह उसी दोष का भागी होता है (जो उस व्यक्ति द्वारा किया गया है)।। २४३।।

का तर्हि दत्तधनस्य प्रतिपत्तिरित्येतदर्थमाह—

अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत्।
श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत्।। २४४।।

तद्दण्डधनं नद्यादिजले प्रक्षिपेद्वरुणाय दद्याच्छ्रुतवृत्तसंपन्नब्राह्मणाय वा दद्यात्।। २४४।।

इन महापातकियों से दण्डस्वरूप प्राप्त हुए धन को राजा, जलों में प्रवेश करके वरुणयज्ञ हेतु दे देवे अथवा वेद के अनुसार आचरण करने वाले वेदपाठी ब्राह्मण को दानस्वरूप प्रदान कर दे।। २४४।।

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः।
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः।। २४५।।

महापातकिदण्डधनस्य वरुणः स्वामी यस्माद्राज्ञामपि दण्डधारित्वात्प्रभुः। तथा ब्राह्मणः समस्तवेदाध्यायी सर्वस्य जगतः प्रभुः। अतः प्रभुत्वात्तौ दण्डधनमर्हतः।। २४५।।

क्योंकि राजाओं के लिए भी दण्ड को धारण करने वाला वह वरुण वस्तुतः दण्ड का स्वामी है तथा वेदपाठी ब्राह्मण तो सम्पूर्ण संसार का स्वामी ही होता है।। २४५।।

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम्।
तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः।। २४६।।
निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक्।
बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते।। २४७।।

यत्र देशे प्रकृतं महापातकिधनं राजा न गृह्णाति तत्र परिपूर्णेन कालेन मनुष्या उत्पद्यन्ते, दीर्घायुषश्च भवन्ति। वैश्यानां च यथैव धान्यादिसस्यान्युप्तानि तथैव पृथक् पृथक् जायन्ते। अकाले न बाला म्रियन्ते। दीर्घजीविन इत्युक्तेऽप्यादरार्थं बालानां पुनर्वचनम्। व्यङ्गं च न किंचिद्भूतमुत्पद्यते।। २४६।। २४७।।

जिस देश का राजा पापियों से प्राप्त होने वाले धन को ग्रहण नहीं करता है। वहाँ लोग समय पर एवं दीर्घजीवी उत्पन्न होते हैं।। २४६।। तथा वैश्य जिसप्रकार इच्छानुसार अलग-अलग धान्यादि बोते हैं, उसीप्रकार वे अलग-अलग गुणों से युक्त (उत्पन्न होते हैं) बच्चे मरते नहीं हैं और न ही सन्तान विकारयुक्त उत्पन्न होती हैं।। २४७।।

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामदवरवर्णजम्।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः।। २४८।।

शरीरपीडाधनग्रहणादिना शूद्रमिच्छातो ब्राह्मणान्बाधमानं छेदादिभिरुद्वेग-करैर्वधोपायैर्नृपो हन्यात्।। २४८।।

जबकि जानबूझकर ब्राह्मणों को पीड़ित करते हुए, निम्नवर्ण में उत्पन्न हुए शूद्र को, राजा अनेकप्रकार के तड़फाने वाले कठोरतम दण्ड प्रदान करके नियन्त्रित करे।। २४८।।

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे।
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः।। २४९।।

अवध्यस्य वधे यावानधर्मो नृपतेः शास्त्रेण ज्ञातस्तावानेव वध्यस्य त्यागेऽपि। यथाशास्त्रं दण्डं तु कुर्वतो धर्मः स्यात्तस्मात्तं कुर्यात्।। २४९।।

शास्त्र के अनुसार निर्दोष को दण्डित करने पर राजा जितना दोषी माना गया है, उतना ही दोषी वह दण्डित करने योग्य व्यक्ति को छोड़ देने पर होता है, क्योंकि अपराध को रोकने के लिए न्याय के अनुसार दण्ड देना ही उसका धर्म है।। २४९।।

उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः।
अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः।। २५०।।

अष्टादशसु ऋणादानादिषु व्यवहारपदेषु परस्परं विवदमानयोरर्थिप्रत्यर्थिनोः कार्यनिर्णयोऽयं विस्तरेणोक्तः।। २५०।।

यह मैंने आपसे, आपस में झगड़ा करने वाले वादी-प्रतिवादियों के अट्ठारह प्रकार के मुकदमों के निर्णय के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहा।। २५०।।

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः।
देशानलब्धांल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत्।। २५१।।

अनेनोक्तप्रकारेण धर्मादनपेतान् व्यवहारान् निर्णयन् राजा जनानुरागादलब्धान्दे-

शांल्लब्धुमिच्छेल्लब्धांश्च सम्यक्पालयेत्। एवं सम्यग्व्यवहारदर्शनस्यालब्ध-प्रदेशप्राप्त्यर्थत्वमुक्तम्।। २५१।।

इसप्रकार धार्मिककार्यों को करता हुआ राजा अप्राप्त देशों को जीतकर प्राप्त करने की इच्छा करे तथा प्राप्त हुए देशों का भलीप्रकार पालन करे।। २५१।।

सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः।
कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम्।। २५२।।

''जाङ्गलं सस्यसंपन्नम्'' (अ० ७ श्लो० ६९) इत्युक्तरीत्या सम्यगाश्रितदेश-स्तत्र सप्तमाध्यायोक्तप्रकारेण कृतदुर्गश्चौरसाहसिकादिकण्टकनिराकरणे प्रकष्टं यत्नं सदा कुर्यात्।। २५२।।

अत: अच्छी प्रकार बसे हुए देश में आश्रय लेकर शास्त्रोक्त विधि से दुर्ग का निर्माण करके राजा अपने राज्य के समाजकण्टकों को निकलने में नित्य श्रेष्ठप्रयत्न करता रहे।। २५२।।

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात्।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः।। २५३।।

यस्मात्साध्वाचाराणां रक्षणाच्चोरादीनां च शासनात्प्रजापालनोद्युक्ता राजानः स्वर्गं गच्छन्ति। तस्मात्कण्टकोद्धरणे यत्नं कुर्यात्।। २५३।।

क्योंकि राज्य में उत्तम आचरण करने वाले लोगों की रक्षा करने से तथा समाज कण्टकों के विनाश से, प्रजाओं के पालन में लगे हुए राजा लोग, मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।। २५३।।

अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते।। २५४।।

यथा पुनर्नृपतिश्चौरादीननिराकुर्वन् षड्भागाद्युक्तं करं गृह्णाति तस्मै राष्ट्रवासिनो जनाः कुप्यन्ति। कर्मान्तरार्जिताप्यस्य स्वर्गप्राप्तिरनेन दुष्कृतेन प्रतिबध्यते।। २५४।।

किन्तु जो राजा प्रजाओं से 'कर' वसूल करता है तथा चोरादि को नियन्त्रित (दण्डित) नहीं करता, उसकी प्रजा क्षुब्ध होकर विद्रोह कर देती हैं तथा वह स्वर्ग से वंचित रह जाता है।। २५४।।

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम्।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः।। २५५।।

यस्य राज्ञो बाहुवीर्याश्रयेण राष्ट्रं चौरादिभयरहितं भवति तस्य नित्यं तद्वृद्धिं गच्छति। उदकसेकेनेव वृक्षः।। २५५।।

इसके अतिरिक्त जिस राजा के बाहुबल के आश्रित होकर राष्ट्र निर्भय हो जाता है तो उसका वह राष्ट्र हमेशा ठीक उसीप्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है, जिसप्रकार जल द्वारा सींचा जाता हुआ वृक्ष सदैव बढ़ता है।। २५५।।

द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान्।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः।। २५६।।

चार एव चौरज्ञानहेतुत्वाच्चक्षुरिव यस्यासौ राजा, चारैरेव प्रकटतया गूढतया द्विप्रकारान्यायेन परधनग्राहिणो जानीयात्।। २५६।।

गुप्तचर ही हैं नेत्र जिसके ऐसा राजा, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्षरूप से दूसरों के धनों का हरण करने वाले दोनों प्रकार के चोरों को भलीप्रकार जान लेवे।। २५६।।

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः।
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः।। २५७।।

तेषां पुनश्चौरादीनां मध्याद्ये तुलाप्रतिमानलोष्टचयादिना हिरण्यादिपण्यविक्रयिण परधनमनुचितेन गृह्णन्ति ते प्रकाशवञ्चकाः स्तेनाश्चौराः सन्धिच्छेदादिना गुप्ताटव्याश्रयाश्च परधनं गृह्णन्ति ते प्रच्छन्नवञ्चकाः।। २५७।।

उनमें अनेक प्रकार की वस्तुओं को विक्रय करके जीविका चलाने वाले व्यापारी (माप तोल मूल्यादि में हेराफेरी करने के कारण) 'प्रकटचोर' हैं तथा जो रात्रि में चोरी करते हैं और दिन में जंगल में छिपकर रहते हैं, ये 'गुप्त चोर' होते हैं।। २५७।।

किंच—

उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा।
मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह।। २५८।।
असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः।
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः।। २५९।।
एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशांल्लोककण्टकान्।
निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः।। २६०।।

उत्कोचका ये कार्यिभ्यो धनं गृहीत्वा कार्यमयुक्तं कुर्वन्ति। औपधिका भयदर्शनाद्ये धनमुपजीवन्ति। वञ्चका ये सुवर्णादि द्रव्यं गृहीत्वा परद्रव्यप्रक्षेपेण वञ्चयन्ति। कितवा द्यूतसमाह्वयदेविनः। धनपुत्रलाभादिमङ्गलमादिश्य ये वर्तन्ते ते मङ्गलदेशवृत्ताः।

भद्राः कल्याणाकारप्रच्छन्नपापा ये धनग्राहिणः। ईक्षणिका हस्तरेखाद्यवलोकनेन शुभाशुभफलकथनजीविनः। महामात्रा हस्तिशिक्षाजीविनः। चिकित्सकाश्चिकित्सा-जीविनः असम्यक्कारिण इति महामात्रचिकित्सकविशेषणम्। शिल्पोपचारयुक्ता-श्चित्रलेखाद्युपायजीविनः तेऽप्यनुपजीव्यमानशिल्पोपायप्रोत्साहनेन धनं गृह्णन्ति। पण्यस्त्रियश्च परवशीकरणकुशला इत्येवमादीन्प्रकाशं लोकवञ्चकांश्चारैर्जानीयात्। अन्यानपि प्रच्छन्नचारिणः शूद्रादीन्ब्राह्मणादिवेषधारिणो धनग्राहिणो जानीयात् ।। २५८।। २५९।। २६०।।

इसके अतिरिक्त रिश्वत लेने वाले, डराकर धन लेने वाले, ठगी करने वाले, जुआरी, पुत्र एवं धन प्राप्ति का लालच देकर धन ऐंठने वाले, भद्ररूप धारण करके धोखा देने वाले, साथ ही हस्तरेखादि देखकर धन ग्रहण करने वाले।। २५८।।

धनादि लेकर अनुचित कार्य करने वाले राजकर्मचारी, हाथियों के शिक्षक, पैसा ऐंठने वाले वैद्य, अनुचित धन वसूल करने वाले शिल्पी (चित्रकारादि) एवं धन ठगने में निपुण वेश्याएँ।। २५९।।

इत्यादि तथा श्रेष्ठ वेश धारण करके गुप्तरूप से विचरण करने वाले, दूसरे दुष्ट लोगों को तथा अन्य प्रत्यक्ष समाज कण्टकों को गुप्तचरादि के द्वारा भलीप्रकार जान लेना चाहिए।। २६०।।

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः।
चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत्।। २६१।।

तानुक्तान्वञ्चकान्सभ्यैः प्रच्छन्नैस्तत्कर्मकारिभिर्वणिजां स्तेये वणिग्भिरित्येवमादिभिः पुरुषैरेतव्द्यतिरिक्तैः सप्तमाध्यायोपदिष्टकापटिकादिभिश्चारैरनेकस्थानस्थैर्ज्ञात्वा प्रोत्साद्य स्ववशान्कुर्यात्।। २६१।।

गुप्तरूप से किसी भी विषय में जानकारी प्राप्त करने में कुशल, श्रेष्ठ आचरण सम्पन्न, अनेक स्थानों पर नियुक्त किए गए, उत्तम गुप्तचरों द्वारा उन-उन समाजकण्टकों को जानकर, उन्हें पकड़वाकर अपने नियन्त्रण (कारागृहादि) में रखना चाहिए।। २६१।।

तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः।
कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः।। २६२।।

तेषां प्रकाशाप्रकाशतस्कराणां स्वकर्मणि चौर्यादौ ये पारमार्थिका दोषाः संधिच्छेदादयस्ताँल्लोके प्रख्याप्य तद्गतधनशरीरादिसामर्थ्यापेक्षयाऽपराधापेक्षया च राजा दण्डं कुर्यात्।। २६२।।

इसके पश्चात् अपने-अपने कार्यों में किए गए उनके दोषों का विशेषरूप से विस्तारपूर्वक कथन करके, उसके वर्णादि की स्थिति (बल) एवं अपराध की प्रकृति के अनुसार राजा उसे ठीक-ठीक दण्ड प्रदान करे।। २६२।।

नहि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः।
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ।। २६३।।

यस्माच्चौराणां पापाचरणबुद्धीनां विनीतवेषेण पृथिव्यां चरतां दण्डव्यतिरेकेण पापक्रियायां नियमं कर्तुमशक्यमत एषां दण्डं कुर्यात्।। २६३।।

क्योंकि प्रत्यक्ष चोरों तथा पृथ्वी पर गुप्तरूप से विचरण करने वाले (अप्रत्यक्ष) चोरों एवं पाप में बुद्धि रखने वालों के पापों को, दण्ड के अभाव में किसी भी स्थिति में नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है।। २६३।।

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ।
चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च।। २६४।।
जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च।
शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च।। २६५।।
एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः।
तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत्।। २६६।।

सभा ग्रामनगरादौ नियतं जनसमूहस्थानं, प्रपा जलदानगृहं, अपूपविक्रयवेश्म, पण्यस्त्रीगृहं, मद्यान्नविक्रयस्थानानि, चतुष्पथाः, प्रख्यातवृक्षमूलानि, जनसमूहस्थानानि, जीर्णवाटिका, अटव्यः, शिल्पगृहाणि, शून्यगृहाणि, आम्रादिवनानि, कृत्रिमोद्यानानि। एवंप्रकारान्देशान्सैन्यैः पदातिसमूहैः स्थावरजङ्गमैरेकस्थानस्थितैः प्रचारिभिश्चान्यैश्चारैस्तस्करनिवारणार्थं चारयेत्। प्रायेणैवंविधे देशेऽन्नपानस्त्रीसंभोगस्वप्रहर्त्राद्यन्वेषणार्थं तस्करा अवतिष्ठन्ते।। २६४।। २६५।। २६६।।

सभास्थल, प्याऊ, हलवाई की दूकान, वेश्यालय, मधुशाला, मण्डी, चौराहा, विशेष (पूजनीय) वृक्ष तथा समाज (जनसमूह), जीर्ण उद्यान, जंगल, बढई, लुहार आदि के प्रतिष्ठान, सूने पड़े हुए स्थान, वन एवं उपवन,।। २६४-२६५।।

इसप्रकार के सभी स्थानों पर चोरी रोकने के लिए राजा अस्थायी एवं स्थायी चौकियाँ बनाकर गश्त लगाने वाले सिपाहियों एवं गुप्तचरों को नियुक्त करे ।। २६६।।

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः।
विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः।। २६७।।

तेषां साहाय्यं प्रतिपद्यमानैस्तच्चरितानुवृत्तिभिः संधिच्छेदादिकर्मानुष्ठानवेदिभिः पूर्वचौरैश्चाररूपैश्चारमायानिपुणैस्तस्काराञ्जनीयादुत्सादयेच्च।। २६७।।

इसके अतिरिक्त चोरों के सहायक, अनुगामियों, उनकी अनेक क्रियाशैलियों से परिचित, निपुण, भूतपूर्व चोरों के द्वारा राजा चोर, डाकुओं को भलीप्रकार जान ले तथा उन्हें पूर्णतया नष्ट कर देवे।। २६७।।

भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः।
शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम्।। २६८।।

ते पूर्वचौराश्चरभूता आगच्छतास्मद्गृहं गच्छामस्तत्र मोदकपायसादीन्यश्नीम इत्येवं भक्ष्यभोज्यव्याजेन, अस्माकं देशे ब्राह्मणोऽस्ति सोऽभिलषितार्थसिद्धिं जानाति तं पश्याम इत्येवं ब्राह्मणानां दर्शनैः, कश्चिदेक एव बहुभिः सह योत्स्यते तं पश्याम इत्येवं शौर्यकर्मव्याजेन तेषां चौराणां राज्ञो दण्डधारकपुरुषाः समागमं कुर्युग्राहयेयुश्च।। २६८।।

ये सहयोगी एवं गुप्तचर खाने-पीने के बहाने, ब्रह्मवेत्ता विद्वानों के दर्शनों के लिए तथा शौर्यकर्म दिखाने का बहाना बनाकर, उन चोर-डाकुओं से मिलें (तथा उन्हें पकड़वा देवें)।। २६८।।

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये।
तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान्।। २६९।।

ये चौरास्तत्र भक्ष्यभोज्यादौ निग्रहणशङ्कया नोपसर्पन्ति ये च मूले राजनियुक्तपुराणचौरवर्गे प्रणिहिताः सावधानभूताः तैः सह संगतिं भजन्ते तांश्चौरांस्तेभ्य एव ज्ञात्वा तदेकतापन्नमित्रपित्रादिज्ञातिस्वजनसहितान्बलादाक्रम्य राजा हन्यात्।। २३९।।

किन्तु जो चोर पकड़े जाने के भय से उक्त बातों में आकर इन स्थानों पर न आवें तो राजा उनके मित्र, सम्बन्धी एवं बन्धुओं को बलपूर्वक पकड़कर दण्डित करे।। २६९।।

न होढेन बिना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः।
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन्।। २७०।।

धार्मिको राजा हृतद्रव्यसंधिच्छेदोपकरणव्यतिरेकेणानिश्चितचौरभावं न घातयेत्किंतु हृतद्रव्येण चौर्योपकरणेन च निश्चितचौरभावमविचारयन्घातयेत्।। २७०।।

न्यायप्रिय राजा चोरी का माल बरामद न होने की स्थिति में चोर को दण्डित न करे, किन्तु चोरी का सामान एवं सेंध मारने के उपकरण आदि प्राप्त होने पर, बिना कोई सोच-विचार करते हुए उसे अवश्य दण्डित करे।। २७०।।

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः।
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत्।। २७१।।

ग्रामादिष्वपि ये केचिच्चौराणां चौरत्वं ज्ञात्वा भक्तदाः, चौर्योपयुक्तभाण्डादि गृहावस्थं ये ददति तानपि नैरन्तर्याद्यपराधगोचरापेक्षया घातयेत्।। २७१।।

गाँवों में जो कोई भी चोरों का सहयोग करने वाले, उन्हें भोजन, बर्तन एवं स्थान आदि की सुविधा उपलब्ध कराने वाले हों, राजा उन सबको भी दण्डित करे।। २७१।।

राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान्।
अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिव द्रुतम्।। २७२।।

ये राष्ट्रेषु रक्षानियुक्ताः, ये च सीमान्तवासिनः क्रूराः सन्तश्चौर्योपदेशे मध्यस्था भवन्ति तांश्चौरवत्क्षिप्रं दण्डयेत्।। २६२।।

इसके अलावा राष्ट्र में रक्षा के लिए नियुक्त राजकर्मचारी तथा सीमा की रक्षा करने वाले सामन्तों को, राजा यदि चोरादि से मिलकर मध्यस्थता करने वाला समझे, तो उन्हें भी चोरों के समान ही अविलम्ब दण्डित करे।। २७२।।

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः।
दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम्।। २७३।।

याजनप्रतिग्रहादिना परस्य यागदानादिधर्ममुत्पाद्य यो जीवति स धर्मजीवनो ब्राह्मणः सोऽपि यो धर्ममर्यादायाच्च्युतो भवति तमपि स्वधर्मात्परिभ्रष्टं दण्डेनोपतापयेत्।। २७३।।

धार्मिक कार्यों को सम्पादित करके अपनी आजीविका चलाने वाला ब्राह्मण भी यदि धर्ममर्यादाओं का उल्लंघन करता है तो राजा उस धर्मभ्रष्ट को भी दण्डित करे, क्योंकि अपने धर्म से भ्रष्ट होना भी अपराध के अन्तर्गत आता है।। २७३।।

ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने।
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः।। २७४।।

ग्रामलुण्ठने तस्करादिभिः क्रियमाणे, हिताभङ्गे जलसेतुभङ्गे जाते। "क्षेत्रोत्पन्नसस्यनाशने वृत्तिभङ्गे च" इति मेधातिथिः। पथि चौरदर्शने तन्निकटवर्तिनो

यथाशक्तितो ये रक्षां न कुर्वन्ति ते शय्यागवाश्वादिपरिच्छदसहिता देशान्निर्वासनीयाः।। २७४।।

तस्करादि द्वारा गाँव को लूटने पर, पुलादि को तोड़ने पर (या खेत में उत्पन्न अन्नादि को नष्ट करने पर), मार्ग में चोर के दिखायी पड़ने पर[1], पास में स्थित लोग अपनी शक्ति के अनुसार यदि रक्षा हेतु प्रयास नहीं करते हैं, तो राजा उन्हें गृहसामग्री के साथ अपने राज्य से निकाल देवे।। २७४।।

राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान्।
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान्।। २७५।।

राज्ञो धनगृहाद्धनापहारिणस्तथा तदाज्ञाव्याघातकारिणः शत्रूणां व राज्ञा सह वैरिवृद्धिकारिणोऽपराधापेक्षया करचरणजिह्वाच्छेदनादिभिर्नानाप्रकारदण्डैर्घातयेत्।। २७५।।

इसके अतिरिक्त राजकोष को चुराने वाले, राज्यविरोधी गतिविधियों में लगे हुए तथा शत्रुओं को राज्य की गोपनीय बातों को बताने वालों को भी राजा अनेकप्रकार के दण्डों से दण्डित करे।। २७५।।

संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः।
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत्।। २७६।।

ये रात्रौ संधिच्छेदं कृत्वा परधनं तस्करा मुष्णन्ति तेषां राजा हस्तद्वयं छित्त्वा तीक्ष्णे शूले तानारोपयेत्।। २७६।।

जो चोर रात्रि में सेंध मारकर चोरी करते हैं, राजा उनके हाथ कटवाकर उन्हें तीक्ष्ण शूली पर चढ़वा देवे।। २७६।।

अङ्गुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे।
द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति।। २७७।।

पटप्रान्तादिस्थितं सुवर्णादिकं ग्रन्थिमोक्षणेन यश्चोरयति स ग्रन्थिभेदस्तस्य प्रथमे द्रव्यग्रहणेऽङ्गुलीश्छेदयेत्। ते चाङ्गुष्ठतर्जन्यौ ''उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसंदंशहीनकौ'' (अ० २ श्लो० २७४) इति याज्ञवल्क्यवचनात्। द्वितीये ग्रहणे हस्तपादौ छेदयेत्। तृतीये ग्रहणे वधार्हो भवति।। २७७।।

इसके अतिरिक्त जेब काटने वाले चोर के प्रथम बार पकड़े जाने पर राजा को

---

१. यहाँ योषाभिमर्षणे पाठ भी उपलब्ध होता है तब 'मार्ग में स्त्री के साथ बलात्कार करने पर' अर्थ होगा।

उसकी अङ्गुली कटवा देनी चाहिए, दूसरी बार पकड़े जाने पर हाथ-पैर तथा तीसरी बार में वह वध के ही योग्य होता है।। २७७।।

अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान्।
संनिधातृंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः।। २७८।।

ग्रन्थिभेदादिकारिणो विज्ञायाग्निभक्तशस्त्रावस्थानप्रदान्मुष्यत इति मोषश्चौरधनं तस्यावस्थापकांश्चौरवद्राजा निगृह्णीयात्।। २७८।।

राजा को ओरों के लिए अग्नि, भोजन, शस्त्र, स्थान उपलब्ध कराने वाले एवं चोरी का सामान रखने वाले लोगों को भी चोर के समान ही (समान अपराधी मानकर) दण्डित करना चाहिए।। २७८।।

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा।
यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम्।। २७९।।

यः स्नानदानादिना जनोपकारकं तडागं सेतुभेदादिना विनाशयति तमप्सु मज्जनेन प्रकारान्तरेण वा हन्यात्। यद्वा यदि तडागं पुनः संस्कुर्यात्तदोत्तमसाहसं दण्ड्यः।। २७९।।

तालाब आदि को तोड़ने वाले व्यक्ति को सामान्य तरीके से अथवा जल में ही डुबोकर मार डालना चाहिए अथवा उससे तोड़े हुए तालाब को फिर से ठीक करा दे तथा उसे 'उत्तम साहस' का दण्ड प्रदान करे।। २७९।।

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्।
हस्त्यश्वरथहर्तृंश्च हन्यादेवाविचारयन्।। २८०।।

राजसंबन्धिधान्यादिषु धनागारायुधगृहयोर्देवप्रतिमागृहस्य च बहुधनव्ययसाध्यस्य विनाशकान्हस्त्यश्वरथस्य चापहर्तॄञ्शीघ्रमेव हन्यात्। यत्तु संक्रमध्वजयष्टिदेवता-प्रतिमाभेदिनः पञ्चशतदण्डं वक्ष्यति सोऽस्मादेव देवतागारभेदकस्य वधविधानान्मृन्मय-पूजितोज्झितदेवताप्रतिमाविषयोऽत्र द्रष्टव्यः।। २८०।।

राजा के भाण्डारगृह, शास्त्रागार, मन्दिरादि को तोड़ने वालों तथा हाथी, घोड़ा, रथ आदि चुराने वालों को तो राजा बिना सोच-विचार करते हुए, मृत्युदण्ड ही प्रदान करे दे।। २८०।।

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत्।
आगमं वाप्यपां भिद्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम्।। २८१।।

यः पुनः प्रजार्थं पूर्वं केनचित्कृतस्य तडागस्योदकमेव गृह्णाति कृत्स्नतडागोद-

कनाशने वधदण्डः प्रागुक्तः। तथोदकगमनमार्गं सेतुबन्धादिना यो नाशयति स प्रथमसाहसं दण्ड्यः।। २८१।।

जो व्यक्ति अन्य किसी व्यक्ति के द्वारा पूर्व में बनाए हुए तालाब का पानी चुरा ले अथवा उसमें जल आने के रास्ते को तोड़ दे, तो वह व्यक्ति 'प्रथम साहस' अर्थात् (एक हजार पण) दण्ड देने योग्य होता है।। २८१।।

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि।
स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत्।। २८२।।

अनार्तः सन्यो राजपथेषु पुरीषं कुर्यात्स कार्षापणद्वयं दण्डं दद्यात्स चामेध्यं शीघ्रमेवापसारयेत्।। २८२।।

जो व्यक्ति स्वस्थ स्थिति में भी मुख्य मार्ग पर मूलमूत्रादि कर दे तो उसे दो कार्षापण का दण्ड देना चाहिए, साथ ही वह मलमूत्र भी अविलम्ब उसी से साफ करावे।। २८२।।

आपद्गतोऽथवा वृद्धा गर्भिणी बाल एव वा।
परिभाषणमर्हन्ति यच्च शोध्यमिति स्थितिः।। २८३।।

व्याधितवृद्धगर्भिणीबाला न दण्डनीयाः किंतु ते पुनः किंकृतमिति परिभाषणीयाः। तच्चामेध्यं शोधनीया इति शास्त्रमर्यादा।। २८३।।

रोगी अथवा आपत्तिग्रस्त व्यक्ति, वृद्धा, गर्भवती अथवा बालक, यदि राजमार्ग को गन्दा करे तो इसके लिए उन्हें केवल समझा देना चाहिए तथा उसे (अपने स्तर पर) साफ करा दे, ऐसी शास्त्र-मर्यादा है।। २८३।।

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्या प्रचरतां दमः।
अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः।। २८४।।

सर्वेषां कायशल्यादिभिषजां दुश्चिकित्सां कुर्वतां दण्डः कर्तव्यः। तत्र गवाश्वादिविषये दुश्चिकित्सायां प्रथमसाहसदण्डो मानुषविषये पुनर्मध्यमसाहसः।। २८४।।

पशुओं की गलत चिकित्सा करने वाले सभी चिकित्सकों को 'प्रथम साहस' का दण्ड एवं मनुष्यों की अनुचित चिकित्सा करने वालों को 'मध्यम साहस' का दण्ड प्रदान करना चाहिए।। २८४।।

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च।। २८५।।

संक्रमो जलोपरि गमनार्थं काष्ठशिलादिरूपः, ध्वजचिह्नं राजद्वारादौ, यष्टिः पुष्करिण्यादौ, प्रतिमाश्च क्षुद्रा मृन्मय्यादयस्तासां विनाशकः पञ्चशतपणान्दद्यात्तच्च विनाशितं सर्वं पुनर्नवं कुर्यात्।। २८५।।

इसके अतिरिक्त लकड़ी के पुल, ध्वजा की यष्टि तथा मूर्तियों को तोड़ने वालों को राजा पाँच सौ पण का दण्ड देवे एवं उस सबकी मरम्मत भी करा लेवे।। २८५।।

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा।
मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः।। २८६।।

अदुष्टद्रव्याणामपद्रव्यप्रक्षेपेण दूषणे, मणीनां च माणिक्यादीनामभेद्यानां विदारणे, वेध्यानामपि मुक्तादीनामनवस्थानवेधने प्रथमसाहसो दण्डः कार्यः। सर्वत्र परकीयद्रव्यनाशे द्रव्यान्तरदानादिना स्वामितुष्टिः कार्या।। २८६।।

अदूषित पदार्थों को दूषित करने, उन्हें तोड़ने तथा मूल्यवान् मणियों को बुरी तरह बेधने पर, राजा को 'प्रथम साहस' का दण्ड देना चाहिए।। २८६।।

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा।
समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा।। २८७।।

समैः सममूल्यदातृभिः सहोत्कृष्टापकृष्टद्रव्यदानेन यो विषमं व्यवहरति सममूल्यं द्रव्यं दत्त्वा यः कस्यचिद्बहुमूल्यं कस्यचिदल्पमूल्यमिति विषमं मूल्यं गृह्णाति सोऽनुबन्धविशेषापेक्षया प्रथमसाहसं मध्यमसाहसं वा दण्डं प्राप्नुयात्।। २८७।।

किन्तु जो व्यक्ति समान मूल्य की वस्तुओं के बदले अथवा उसके मूल्य से कम मूल्य या वस्तु देने का प्रयास करे, वह इसके लिए 'पूर्व साहस अथवा मध्यम साहस' का दण्ड प्राप्त करने योग्य होता है।। २८७।।

बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत्।
दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः।। २८८।।
प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम्।
द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत्।। २८९।।

बन्धनगृहाणि सर्वजनदृश्ये राजमार्गे कुर्यात् यत्र निगडबन्धनाद्युपेताः क्षुत्तृष्णाभिभूता दीर्घकेशनखश्मश्रवः कृशाः पापकारिणोऽन्यैरकार्यकारिभिरकार्यनिवृत्त्यर्थं दृश्येरन् राजगृहपुरादिसंबन्धिनः प्राकारस्य भेदकं तदीयानामेव परिखाणां पूरयितारं तद्गतानां द्वाराणां भञ्जकं शीघ्रमेव देशान्निर्वासयेत्।। २८८।। २८९।।

राजा को सभी कारागृह प्रमुख मार्गों पर ही बनवाने चाहिएँ, जहाँ लोगों को हथकड़ी एवं बेड़ियों से दु:खी, दाढ़ी आदि बढ़ने से विकृत अपराधी लोग दिखायी देते रहे (जिससे प्रजा के मन में अपराधों के प्रति भय उत्पन्न हो)।। २८८।।

नगर की चारदीवारी को तोड़ने वाले, सुरक्षा के लिए खोदी गई खाइयों को पाटने वाले तथा मुख्यद्वारों को तोड़ने वाले लोगों को राजा अविलम्ब राज्य से निर्वासित कर दे।। २८९।।

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः।
मूलकर्मणि चानाप्तेः कृत्यासु विविधासु च।। २९०।।

अभिचारहोमादिषु शास्त्रीयेषु मारणोपायेषु लौकिकेषु च मूलनिखननपद-पांशुग्रहणादिषु कृतेष्वनुत्पन्नमरणफलेषु द्विशतपणग्रहणरूपो दण्ड: कर्तव्य:। मरणे तु मानुषमारणदण्ड:। एवं मातृपितृभार्यादिव्यतिरिक्तैरसत्यैर्व्यामोह्य धनग्रहणाद्यर्थं वशीकरणे तथा कृत्यासूच्चाटनापाटवादिहेतुषु क्रियमाणासु नानाप्रकारसु द्विशतपणदण्ड एवं कर्तवय:।। २९०।।

मारण, मोहन एवं उच्चाटन आदि सभीप्रकार के शास्त्रीय अभिचार कर्मों के करने पर एवं मूल निखनन, पैरों की धूल लेने आदि विविध प्रकार के टोने-टोटके आदि कृत्या कर्म करने पर, जिनसे मरणादि न हुआ हो, राजा को दो सौ पण दण्ड देना चाहिए।। २९०।।

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च।
मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम्।। २९१।।

अबीजं बीजप्रोहासमर्थं व्रीह्यादि प्रोहसमर्थमिति कृत्वा यो विक्रीणीते, तथापकृष्टमेव कतिपयोत्कृष्टप्रक्षेपेण सर्वमिदं सोत्कर्षमिति कृत्वा यो विक्रीणीते यश्च ग्रामनगरादिसीमां विनाशयति स विकृतनासाकरचरणकर्णादिरूपं वधंप्राप्नुयात्।। २९१।।

निम्न कोटि के बीज को बेचने वाले तथा उसीप्रकार उत्कृष्ट बीज में निष्कृट मिलाकर बेचने वाले एवं मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, लोगों को विकृत कर उनके स्वरूप को बिगाड़ देने वाला दण्ड दिया जाना चाहिए।। २९१।।

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः।
प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः।। २९२।।

सर्वकण्टकानां मध्येऽतिशयेन पापतमं सुवर्णकारं तुलाच्छद्मकषपरिवर्तापद्रव्य-प्रक्षेपादिना हेमादिचौर्ये प्रवर्तमानमनुबन्धापेक्षयाङ्गविशेषेण सर्वदेहं वा खण्डशश्छेदयेत् ।। २१२।।

सभीप्रकार के दुष्टों में सर्वाधिक दुष्ट वस्तुतः सुनार होता है। अतः उसके अपराध करने पर राजा उसके अङ्गों को छुरी से छोटा-छोटा कटवा दे।। २९२।।

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च।
कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत्।। २९३।।

कृष्यमाणभूमिद्रव्याणां हलकुद्दालादीनामपहरणे, खङ्गादीनां च शस्त्राणां, औषधस्य च कल्याणघृतादेश्चौर्ये सत्युपयोगकालेतरकालापेक्षया प्रयोजनापेक्षया च राजा दण्डं कुर्यात्।। २९३।।

खेती के यन्त्र हल, कुदालादि, शस्त्र एवं औषधि के चुराने पर राजा देश, काल एवं कार्य की प्रकृति के अनुसार ही दण्ड का निर्धारण करे।। २९३।।

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा।
सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते।। २९४।।

स्वामी राजा, अमात्यो मन्त्र्यादिः, पुरं राज्ञः कृतदुर्गनिवासनगरं, राष्ट्रं देशः, कोशोवित्तनिचयः, दण्डो हस्त्यश्वरथपादातं, मित्रं त्रिविधं सप्तमाध्यायोक्तमित्येताः सप्त प्रकृतयोऽङ्गानि। सप्ताङ्गमिदं राज्यमित्युच्यते।। २९४।।

राजा, अमात्य, राजधानी (मिला) राज्य, खजाना, दण्ड और मित्र ये सात प्रकृतियाँ हैं, इनसे युक्त राज्य सात अङ्गों वाला कहलाता है।। २९४।।

ततः किमित्याह—

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम्।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत्।। २९५।।

आसां राज्यप्रकृतीनां सप्तानां क्रमोक्तानामुत्तरस्याविनाशमपेक्ष्य पूर्वस्याः पूर्वस्या विनाशविषये गरीयो व्यसनं जानीयात्। तथाहि। मित्रव्यसनात्सबलव्यसनं गरीयः, संपन्नबलस्यैवामित्रानुग्रहे सामर्थ्यात्। एवं बलात्कोशो गरीयान्, कोशनाशे बलस्यापि नाशात्। कोशाद्राष्ट्रं गरीयः, राष्ट्रनाशे कुतः कोशोत्पत्तिः। एवं राष्ट्राद्दुर्गनाशोऽपि, दुर्गादिव यवसेन्धनादिसंपन्नाद्राज्यरक्षासिद्धिः। दुर्गादमात्यो गरीयान्, प्रधानामात्यनाशे सर्वाङ्गवैकल्यात्। अमात्यादप्यात्मा, सर्वस्यात्मार्थत्वात्। तस्मादुत्तरापेक्षया पूर्वंयत्नतो रक्षेत्।। २९५।।

राज्य की इन सात प्रकृतियों में क्रमशः पहली-पहली प्रकृतिविषयक आपत्ति को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण समझना चाहिए।। २९५।।

सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत्।
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते।। २९६।।

उक्तसप्ताङ्गवतो लोके राष्ट्रस्य त्रिदण्डवदन्योन्यसंबन्धस्य परस्परविलक्षणोपकारणान्न किंचिदङ्गमधिकं भवति। यद्यपि पूर्वश्लोके पूर्वपूर्वाङ्गस्याधिक्यमुक्तं तथाप्येषामङ्गानां मध्यादन्यस्याङ्गसंबन्धिनमपकारमन्यदङ्गं कर्तुं न शक्नोति, तस्मादुत्तरोत्तराङ्गमप्यपेक्षणीयमितयेवंपरोऽयमाधिक्यनिषेधः। तत्र प्रसिद्धं यतित्रिदण्डमेव दृष्टान्तः तद्धि चतुरङ्गुलगोवालवेष्टनादन्योन्यसंबन्धं, न च तन्मध्ये त्रिदण्डधारणशास्त्रार्थे कश्चिद्दण्डोऽधिको भवति।। २९६।।

यहाँ तिपाई के समान सात प्रकृतिरूपी अङ्गों पर स्थित राज्य के सभी अङ्ग परस्पर आश्रित होने एवं अपने-अपने गुण वैशिष्ट्य के कारण कोई भी किसी से कम अथवा बढ़कर नहीं है।। २९६।।

तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते।
येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिञ्श्रेष्ठमुच्यते।। २९७।।

यस्मात्तेषु तेषु संपाद्येषु कार्येषु तत्तदङ्गस्यातिशयो भवति, तत्कार्यमन्येन कर्तुमशक्तेः। एवंच येनाङ्गेन यत्कार्यं संपाद्यते तस्मिन्कार्ये तदेव प्रधानमुच्यते। ततश्चान्योन्यगुणविशेषादि यदुक्तं तदेवानेन स्फुटीकृतम्।। २९७।।

उन-उन प्रकृतियों के अपने-अपने कार्यों में उन-उन अङ्गों का वैशिष्ट्य माना गया है तथा जिसके द्वारा जो कार्य सिद्ध होता है, उसमें वही प्रकृति श्रेष्ठ मानी गई है।। २९७।।

चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम्।
स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः।। २९८।।

सप्तमाध्यायोक्तकापटिकादिना बलस्योत्साहयोगेने कर्मणां च हस्तिबन्धवणिक्पथादीनामनुष्ठानेन जातां शत्रोरात्मनश्च शक्तिं राजा सदा जानीयात्।। २९८।।

राजा को गुप्तचरों एवं उत्साहित कर्मचारियों द्वारा तथा राज्य की शक्ति को बढ़ाने वाले अनेक कार्यों को करने से, अपनी एवं शत्रुराजा की शक्ति की हमेशा जानकारी रखनी चाहिए।। २९८।।

पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च।
आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम्।। २९९।।

पीडनानि मारकादीनि कामक्रोधोद्भवानि, दुःखानि च स्वपरचक्रगतानि तेषां च गुरुलघुभावं पर्यालोच्य संधिविग्रहादि कार्यमारभेत।। २९९।।

राजा को किसी भी कार्य के सम्बन्ध में आने वाली कठिनाइयों, आपत्तियों एवं उनके गुरु लाघव को भलीप्रकार सोच-विचारने के पश्चात् ही उस कार्य का प्रारम्भ करना चाहिए।। २९९।।

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते।। ३००।।

राजा स्वराज्यवृद्धिपरापचयनिमित्तानि कार्याणि कथंचिदिदं संजातमिति छलान्यप्यारभ्यात्मना खिन्नः पुनःपुनस्तान्यारभेतैव यस्मात्कर्माणि सृज्यमानं पुरुषं श्रीर्नितरां सेवते। तथा नाब्राह्मणे नानाश्रये श्रीरस्तीति प्ररोहितापि शोषमेति,।। ३००।।

किसी कार्य को प्रारम्भ करने के पश्चात् बार-बार थक जाने पर भी (विश्राम करके) पुनः उस कार्य को प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि कार्यों की समाप्तिपर्यन्त बार-बार आरम्भ करने वाला व्यक्ति ही 'विजयश्री' प्राप्त करता है।। ३००।।

न च युगानुरूपेण कर्माणि फलन्तीति राज्ञोदासितव्यं यतः—

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते।। ३०१।।

कृतत्रेताद्वापरकलयो राज्ञ एव चेष्टितविशेषास्तैरेव सत्यादिविशेषप्रवृतेः। तस्माद्राजैव कृतादियुगमभिधीयते।। ३०१।।

सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये सभी वस्तुतः राजा के ही आचार विशेष होते हैं, क्योंकि राजा ही 'युग' कहलाता है।। ३०१।।

कीदृक्चेष्टितः कृतादियुगमित्यत आह–

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम्।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम्।। ३०२।।

अज्ञानालस्यादिना यदा निरुद्यमो राजा भवति तदा कलिः स्यात्। यदा जानन्नपि नानुतिष्ठति तदा द्वापरम्। यदा कर्मानुष्ठानेऽवस्थितस्तदा त्रेता। यथाशास्त्रं पुनः कर्माण्यनुतिष्ठन्विचरति तदा कृतयुगम्। तस्माद्राज्ञा कर्मानुष्ठानपरेण भाव्यमित्यत्र तात्पर्यं नतु वास्तवकृतयुगाद्यपलापे।। ३०२।।

जब वह सोता है तब कलियुग होता है, जब वह जागता है तो द्वापर तथा जब वह प्रजा का हित करने वाले कार्यों को करने के लिए उद्यत होता है तो त्रेता युग है

एवं जब राजा (प्रजा के दु:खों को जानने के लिए) स्वयं राज्य में विचरण करता है तो सतयुग होता है।। ३०२।।

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत्।। ३०३।।

इन्द्रादिसंबन्धिनो वीर्यस्यानुरूपं चरितं राजानुतिष्ठेत्। तथाच राजा कण्टकोद्धारेण प्रतापानुरागाभ्यां संयुक्तः स्यात्।। ३०३।।

राजा को इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि एवं पृथिवी के तेजस्वी स्वभाव के अनुसार ही व्यवहार करना चाहिए।। ३०३।।

कथमिन्द्रादिचरितमनुतिष्ठेदित्याह—

वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति।
तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन्।। ३०४।।

ऋतुसंवत्सरपक्षाश्रयणेनेदमुच्यते। यथा श्रावणादींश्चतुरो मासानिन्द्रः सस्यादिसिद्धये वर्षत्येवमिन्द्रचरितमनुतिष्ठन् राजा स्वदेशायातसाधूनभिलषितार्थैः पूरयेत्।। ३०४।।

जिसप्रकार इन्द्र, वर्ष के चार माह पर्यन्त पृथ्वी पर जल की वर्षा करता है, उसी प्रकार इन्द्र के व्रत का आचरण करते हुए राजा को अपने राष्ट्र में प्रजा की कामनाओं की वर्षा करनी चाहिए।। ३०४।।

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत्।। ३०५।।

यथा सूर्यो मार्गशीर्षाद्यष्टमासान् रश्मिभिः स्तोकं स्तोकं रसमीषत्तापेनादत्ते, तथा राजा शास्त्रीयकरानपीडया सदा राष्ट्राद्गृह्णीयात्। यस्मादेतदस्यार्कव्रतम्।। ३०५।।

जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणों द्वारा आठ माह तक जल ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा राष्ट्र से हमेशा 'कर' ग्रहण करे, यही राजा का 'अर्कव्रत' है।। ३०५।।

प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम्।। ३०६।।

यथा प्राणाख्यो वायुः सर्वजन्तुष्वन्तः प्रविश्य विचरत्येवं चारद्वारेण स्वपरमण्डलजालेषु चिकीर्षितार्थज्ञानार्थमन्तः प्रवेष्टव्यम्। यस्मादेतन्मारुतं चरितम्।। ३०६।।

सभी प्राणियों में प्रवेश करके जिसप्रकार वायु सर्वत्र विचरण करता है, उसी

प्रकार राजा को गुप्तचरों द्वारा सर्वत्र प्रवेश करना चाहिए, यही उसका 'मारुतव्रत' है ।। ३०६ ।।

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्।। ३०७।।

यद्यपि यमस्य शत्रुमित्रे न स्तस्तथापि तन्निदकार्चकयोः शत्रुमित्रयोर्यथा यमः शत्रुमित्रमरणकाले तुल्यवन्नियमयत्येवं राज्ञाऽपराधकाले रागद्वेषपरिहारेण प्रजाः प्रमापणीयाः। यस्मादेतदस्य याम्यं व्रतम्।। ३०७।।

समय आने पर जिसप्रकार यमराज शत्रु एवं प्रिय सभी को मृत्यु प्रदान करता है, उसीप्रकार अपराध करने पर शत्रु एवं मित्र सभी को राजा द्वारा न्यायपूर्वक दण्डित करके, नियन्त्रित करना ही उसका 'यमव्रत' है।। ३०७।।

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते।
तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम्।। ३०८।।

सो वरुणस्य रज्जुभिर्बन्धयितुमिष्टः स यथा तेनाविशङ्कितः पाशैर्बद्ध एव लक्ष्यते। तथा पापकारिणोऽविशङ्कितानेव यावन्न पारयन्ते तावच्छासयेत्। यस्मादेतदस्य वारुणं व्रतम्।। ३०८।।

जिसप्रकार प्रत्येक अपराधी व्यक्ति वरुण के पाशों द्वारा ही बँधा हुआ दिखायी देता है, उसीप्रकार राजा को भी अपने राज्य के अपराधियों को कारागारादि में नियन्त्रित करना चाहिए, यही उसका 'वारुणव्रत' है।। ३०८।।

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः।
तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः।। ३०९।।

यथा पूर्णेन्दुदर्शनेन मनुष्या हर्षमुत्पादयन्त्येवममात्यादयो यस्मिन्दृष्टे तुष्टिमुपगच्छन्ति स चन्द्राचारचारी नरेन्द्रः।। ३०९।।

जिसप्रकार पूर्ण चन्द्रमा को देखकर लोग प्रसन्न होते हैं, उसीप्रकार जिस राजा को देखकर प्रजाएँ हर्षित होती हैं, वही राजा 'चन्द्रव्रत' वाला है।। ३०९।।

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु।
दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम्।। ३१०।।

पापकारिषु सदा दण्डपातेन प्रचण्डोऽसहनः स्यात्तथा प्रतिकूलामात्यहिंसनशीलो भवेत्। तदस्याग्निसंबन्धि व्रतं स्मृतम्।। ३१०।।

राजा को हमेशा पापकर्म करने वाले लोगों के प्रति प्रतापी, तेजस्वी तथा दुष्ट

मन्त्रियों के प्रति हिंसक प्रवृत्ति वाला होना चाहिए, वही उसका 'आग्नेयव्रत' कहा गया है।। ३१०।।

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्।। ३११।।

यथा पृथिवी सर्वाण्युच्चावचानि स्थावरजङ्गमान्युत्कृष्टापकृष्टानि समं कृत्वा धारयते तद्वद्विद्वद्धनिकगुणवद्भूतानि तदितराणि च दीनानाथादिसर्वभूतानि रक्षणधन-दानादिना सामान्येन धारयतः पृथिवीसंबन्धि व्रतं भवति।। ३११।।

जिसप्रकार पृथिवी सभी प्राणियों को समानरूप से धारण करती है, सभी प्राणियों (प्रजाओं) को समानभाव से उसीप्रकार धारण करते हुए प्रजापालन करना ही राजा का 'पार्थिवव्रत' होता है।। ३११।।

एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः।
स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च।। ३१२।।

एतैरुक्तोपायैरन्यैश्चानुक्तैरपि स्वबुद्धिप्रयुक्तो राजानलसः सन् स्वराष्ट्रे ये चौरा वसन्ति, ये च परराष्ट्रे वसन्तस्तद्देशमागत्य मुष्णन्ति, तानुभयप्रकारान्निगृह्णीयात्। "सोऽग्निर्भवति वायुश्च" (अ० ७ श्लो० ७) इत्यादिना पूर्वसिद्धवदुक्तमग्न्यादिरूप-त्वमिह तु तद्गुणयोगेन स्फुटीकृतमित्यपुनरुक्तिः।। ३१२।।

ऊपर बताए गए इन उपायों तथा अन्य उपायों से युक्त होकर एवं आलस्यरहित हुआ राजा, हमेशा अपने राष्ट्र में स्थित एवं अन्य राष्ट्र में गए हुए, चोरों को पकड़कर दण्डित करे।। ३१२।।

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत्।
ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम्।। ३१३।।

कोशक्षयादिना प्रकृष्टामप्यापदं प्राप्तो राजा ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत्। यस्मात्ते रुष्टाः सबलवाहनमेनं सद्य एव शापाभिचाराभ्यां हन्युः।। ३१३।।

बड़ी से बड़ी आपत्ति से ग्रस्त होने पर भी राजा को ब्राह्मणों के प्रति कुपित नहीं होना चाहिए, क्योंकि कुपित हुए वे लोग बल एवं वाहन सहित इसे निश्चय ही नष्ट कर सकते हैं।। ३१३।।

तथाहि—

यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान्।। ३१४।।

यैर्ब्राह्मणैरभिशापेन सर्वभक्ष्योऽग्निः कृतः, समुद्रश्चापेयजलः, चन्द्रश्च क्षययुक्तः पश्चात्पूरितस्तान्कोपयित्वा को न नश्येत्।। ३१४।।

जिन्होंने अग्नि को सर्वभक्षी एवं समुद्र को खारा बना दिया तथा क्षयग्रस्त चन्द्रमा को पूर्णता प्रदान की, ऐसे सामर्थ्यसम्पन्न उन ब्राह्मणों को क्रोधित करके भला कौन विनाश को प्राप्त नहीं होगा?।। ३१४।।

किंच–

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः।
देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात्।। ३१५।।

ये स्वर्गादिलोकान्परानन्यांश्च लोकपालान्सृजन्तीति संभाव्यते। देवांश्च शापेन मानुषादीन्कुर्वन्ति तान्पीडयन्कः समृद्धिं प्राप्नुयात्।। ३१५।।

कुपित हुए जिन ब्राह्मणों ने अन्य लोकों एवं लोकपालों की सृष्टि की तथा देवताओं को भी अदेवता कर दिया, ऐसे उनको पीड़ित करता हुआ भला कौन वृद्धि को प्राप्त होगा?।। ३१५।।

अपिच–

यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा।
ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्ताञ्जिजीविषुः।। ३१६।।

यान्ब्राह्मणान्यजनयाजनकर्तृकानाश्रित्य "अग्नौ प्रास्ताहुतिः" (अ० ३ श्लो० ७६) इति न्यायेन पृथिव्यादिलोका देवाश्च स्थितिं लभन्ते, वेद एव च येषां धनमभ्युदयसाधनतया याजनाध्यापनादिना धनोपायत्वाच्च, ताञ्जीवितुमिच्छन्को हिंस्यात्।। ३१६।।

जिनका आश्रय लेकर देवता एवं सभी लोक हमेशा स्थित रहते हैं तथा ब्रह्म ही जिनका धन है, ऐसे ब्राह्मणों को, जीवित रहने का इच्छुक भला कौन राजा पीड़ित करेगा?।। ३१६।।

एवं तर्हि विद्वांसं ब्राह्मणं सेवेतेत्यत आह–

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत्।। ३१७।।

यथाहितोऽनाहितो वाग्निर्महती देवता एवं मूर्खो विद्वांश्च ब्राह्मणः प्रकृष्टा देवतेति।। ३१७।।

ब्राह्मण विद्वान् हो अथवा मूर्ख वह वस्तुतः उसीप्रकार महान् देवता होता है, जिस प्रकार अग्नि प्रणीत अथवा अप्रणीत दोनों ही स्थितियों में महान् देव होता है ।। ३१७।।

श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते।। ३१८।।

यथाग्निर्महातेजाः श्मशाने शवं दहन्कार्येऽपि नैव दुष्टो भवति किंतु पुनरपि यज्ञेषु हूयमानोऽभिवर्धते।। ३१८।।

जिसप्रकार तेजस्वी अग्नि श्मशानों में (शवों को जलाने पर) भी दोषयुक्त नहीं होता है, तथा यज्ञों में हवन किया जाता हुआ और अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है।। ३१८।।

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत्।। ३१९।।

एवं कुत्सितकर्मस्वपि सर्वेषु यद्यपि ब्राह्मणाः प्रवर्तन्ते तथापि सर्वप्रकारेण पूज्याः। यस्मात् प्रकृष्टं तद्दैवतम्। स्तुत्यर्थत्वाच्चास्य न यथाश्रुतार्थविरोधः शङ्कनीयः।। ३१९।।

इसीप्रकार भले ही ब्राह्मण सभीप्रकार के अनिष्ट कार्यों में लिप्त रहते हों, फिर भी वे सभीप्रकार से पूजनीय हैं, क्योंकि वे महान् देवता हैं।। ३१९।।

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः।
ब्रह्मैव संनियन्तृ स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम्।। ३२०।।

क्षत्रियस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वथा पीडानुवृत्तस्य ब्राह्मणा एव शापाभिचारादिना सम्यङ्नियन्तारः। यस्मात्क्षत्रियो ब्राह्मणात्संभूतः, ब्राह्मणबाहुप्रसूतत्वात्।। ३२०।।

ब्राह्मणों के प्रति यदि क्षत्रियों की पीड़ा देने की वृत्ति सबप्रकार से अत्यधिक बढ़ जाए तो शापादि द्वारा ब्राह्मण ही उन्हें नियन्त्रित करने में सक्षम होते हैं, क्योंकि क्षत्रियों की उत्पत्ति ब्राह्मणों से ही मानी गई है।। ३२०।।

तथाच—

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति।। ३२१।।

जलब्राह्मणपाषाणेभ्योऽग्निक्षत्रियशस्त्राणि जातानि तेषां संबन्धि तेजः सर्वत्र दहनाभिभवच्छेदनार्थकं कार्यं करोति। स्वकारणेषु जलब्राह्मणपाषाणाख्येषु दहनाभिभवच्छेदनात्मकं कार्यं न करोति।। ३२१।।

क्योंकि जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय तथा पत्थर से लोहे की उत्पत्ति हुई है।

यद्यपि उनका तेज सर्वत्र प्रभावशाली होता है, किन्तु अपने जन्म देने वालों के प्रति ये भी शान्त हो जाते हैं।। ३२१।।

नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते।
ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते।। ३२२।।

ब्राह्मणरहितक्षत्रियो वृद्धिं न याति, शान्तिकपौष्टिकव्यवहारेक्षणादिधर्मविरहात्। एवं क्षत्रियरहितोऽपि ब्राह्मणो न वर्धते, रक्षां विना यागादिकर्मानिष्पत्तेः। किंतु ब्राह्मणः क्षत्रियश्च परस्परसंबद्ध एवेह लोके परलोके च धर्मार्थकाममोक्षावाप्त्या वृद्धिमेति। दण्डप्रकरणे चेयं ब्राह्मणस्तुतिब्राह्मणानामपराधिनामपि लघुदण्डप्रयोगनियमार्था।। ३२२।।

जिसप्रकार ब्राह्मणरहित क्षत्रिय वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है, ठीक उसीप्रकार क्षत्रियरहित ब्राह्मण भी वृद्धि को प्राप्त नहीं करता है। जबकि ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही मिलकर इसलोक एवं परलोक दोनों में वृद्धि प्राप्त करते हैं।। ३२२।।

यदा तु विशिष्टदर्शनिनाचिकित्स्यव्याधिना वासन्नमृत्युर्भवति तदा—

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम्।
पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे।। ३२३।।

महापातकिधनव्यतिरिक्तविनियुक्तावशिष्टसर्वदण्डधनं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा, पुत्रे राज्यं समर्प्यासन्नमृत्युः फलातिशयप्राप्तये संग्रामे प्राणत्यागं कुर्यात्। संग्रामासंभवे त्वनशनादिनापि।। ३२३।।

इसलिए दण्ड द्वारा प्राप्त हुआ सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों को दान देकर तथा राज्य, पुत्र को सौंपकर, (आसन्नमृत्यु) क्षत्रिय को अधिक फल प्राप्त करने के लिए युद्ध में प्राणत्याग करने चाहिएँ।। ३२३।।

एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः।
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत्।। ३२४।।

एवमध्यायत्रयोक्तराजधर्मेषु व्यवहार्यमाणो राजा सर्वदा यत्नवान्प्रजाहितेषु सर्वान्भृत्यान्विनियोजयेत्।। ३२४।।

इसप्रकार आचरण करता हुआ राजा हमेशा राजकार्यों में संलग्न रहते हुए अपने सभी सेवकों को भी प्रजा के हित के कार्यों में नियुक्त करे।। ३२४।।

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः।
इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः।। ३२५।।

एतद्राज्ञः कर्मानुष्ठानं पारंपर्यागततया नित्यं समग्रमुक्तम्। इदानीं वैश्यशूद्रक्रमेण वक्ष्यमाणमिदं कर्मानुष्ठानं जानीयात्।। ३२५।।

यह मैंने आपसे राजा की सनातन एवं सम्पूर्ण क्रियाविधि-विधान का कथन किया। अब मैं आपसे क्रमशः वैश्य एवं शूद्र की इसी कर्मविधि को कहता हूँ, सुनिये।। ३२५।।

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम्।
वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे।। ३२६।।

वैश्यः कृतोपनयनपर्यन्तसंस्कारो विवाहादिकं कृत्वा जीविकायां वक्ष्यमाणायां कृष्यादिकार्यार्थं पशुपालने च सदा समायुक्तः स्यात्। पशुरक्षणस्य वार्तात्वेऽपि प्राधान्यख्यापनार्थं पृथग्विधानम्। तथा चोत्तरश्लोकाभ्यां प्राधान्यं दर्शयति।। ३२६।।

यज्ञोपवीत आदि संस्कार किया हुआ वैश्य विवाह करके हमेशा व्यापार एवं पशुपालन के कार्य में संलग्न रहे।। ३२६।।

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून्।
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः।। ३२७।।

यस्माद्ब्रह्मा पशून्सृष्ट्वा रक्षणार्थं वैश्याय दत्तवानतो वैश्येन रक्षणीयाः पशव इति पूर्वानुवादः। प्रजाश्च सर्वाः सृष्ट्वा ब्राह्मणाय राज्ञे च रक्षणार्थं दत्तवानिति प्रसङ्गादेत-दुक्तम्।। ३२७।।

क्योंकि ब्रह्मा ने पशुओं को उत्पन्न करके (उनकी रक्षा के लिए) वैश्य को दे दिया, जबकि ब्राह्मण एवं राजा को सम्पूर्ण प्रजा प्रदान कर दी।। ३२७।।

न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति।
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन।। ३२८।।

पशुरक्षणं न करोमीति वैश्येनेच्छा न कार्या। अतः कृष्यादिवृत्तिसंभवेऽपि वैश्येन पशुरक्षणमवश्यं करणीयम्। वैश्ये च पशुरक्षणं कुर्वत्यन्यः पशुरक्षणं न कारयितव्यः।। ३२८।।

इसलिए 'मैं पशुओं की रक्षा नहीं करूँगा' ऐसी वैश्य की इच्छा नहीं होनी चाहिए। अतः जब तक वैश्य पशुपालन करना चाहे तब तक अन्य वर्ण के लोग किसी भी स्थिति में पशुपालन का कार्य न करें।। ३२८।।

किञ्च—

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च।
गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम्।। ३२९।।

मणिमुक्ताविद्रुमलोहवस्त्राणां, गन्धानां कर्पूरादीनां, रसानां लवणादीनामुत्तम-मध्यमानां देशकालापेक्षया मूल्योत्कर्षापकर्षं वैश्यो जानीयात्।। ३२९।।

इसके अतिरिक्त वैश्य को मणि, मोती, प्रवाल, लोहा, वस्त्र, गन्ध और विविध प्रकार के रसायनों के मूल्यों के घटने-बढ़ने का भी ज्ञान रखना चाहिए।। ३२९।।

बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च।
मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः।। ३३०।।

बीजानां सर्वेषां वपनविधिज्ञः स्यात्। इदं बीजमस्मिन्काले तत्र संहतं चोप्तं प्ररोहत्यस्मिन्नेत्येवं तथेदमूषरमिदं सस्यप्रदमित्यादि क्षेत्रदोषगुणज्ञश्च स्यात्। मानोपायांश्च प्रस्थद्रोणादीन्तुलोपायांश्च सर्वान् तत्त्वतो जानीयात्। यथान्यो न वञ्चयति।। ३३०।।

साथ ही उसे खेत के गुण एवं दोष तथा सभीप्रकार के बीजों को बोने की विधि का ज्ञाता भी होना चाहिए। इसके अलावा उसे सभीप्रकार के माप-तोल को भी भलीप्रकार जानना चाहिए।। ३३०।।

सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान्।
लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम्।। ३३१।।

इदमुत्कृष्टमेतदपकृष्टमित्येकजातीनामपि द्रव्याणां विशेषं जानीयात्तथा देशानां प्राक्पश्चिमादीनां क्व किमल्पमूल्यं किं बहुमूल्यं चेत्यादि देशगुणदोषौ बुध्येत। विक्रय-द्रव्याणां चेयता कालेन इयानपचय उपचयो वेति विद्यात्। तथास्मिन् देशे कालेऽनेन च तृणोदकयवादिना पशवो वर्धन्तेऽनेन क्षीयन्त इत्येतदपि जानीयात्।। ३३१।।

इसी के साथ उसे सभी देशों के माल के गुण-अवगुण, अच्छाई-बुराई और उन्हें बेचने से लाभ-हानि की स्थिति एवं पशुओं की वृद्धि के उपाय आदि का ज्ञान भी होना चाहिए।। ३३१।।

भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम्।
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च।। ३३२।।

गोपालमहिषपालानामितीदमस्य देयमिति देशकालकर्मानुरूपं वेतनं जानीयात्। गौडदाक्षिणात्यादीनां च मनुष्याणां नानाप्रकारा भाषा विक्रयाद्यर्थं विद्यात्तथेदं द्रव्यमेवं स्थाप्यतेऽनेन च संयुक्तं चिरं तिष्ठतीति बुद्ध्येत, तथेदं द्रव्यमस्मिन्देशे काले चेयता विक्रीयत इत्येतदपि जानीयात्।। ३३२।।

सेवकों का कार्य-वेतन, विविध देशों के लोगों की भाषा, विक्रय योग्य-वस्तुओं को रखने का स्थान, उनके मिश्रण आदि की विधियाँ एवं उन्हें खरीदने-बेचने की शैली की भी उसे भलीप्रकार जानकारी होनी चाहिए।। ३३२।।

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम्।
दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः।। ३३३।।

धर्मेण विक्रयादिनोक्तप्रकारेण धनवृद्धौ प्रकृष्टं यत्नं कुर्यात्। हिरण्यादिदान-मपेक्ष्यान्नमेव प्राणिभ्यो विशेषेण दद्यात्।। ३३३।।

वैश्य को धर्मपूर्वक धन की वृद्धि करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक सभी लोगों को विभिन्न प्रदेशों में अन्न की आपूर्ति करनी चाहिए।। ३३३।।

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः।। ३३४।।

शूद्रस्य पूनर्वेदविदां गृहस्थानां स्वधर्मानुष्ठानेन यशोयुक्तानां ब्राह्मणानां या परिचर्या सैव प्रकृष्टस्वर्गादिश्रेयोहेतुर्धर्मः।। ३३४।।

इसके अतिरिक्त वेदज्ञ ब्राह्मणों एवं यशस्वी गृहस्थों की सेवा करना ही शूद्र का परमधर्म है। इसी से वह परम कल्याणों को प्राप्त करता है।। ३३४।।

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते।। ३३५।।

बाह्याभ्यन्तरशौचोपेतः, स्वजात्यपेक्षयोत्कृष्टद्विजातिपरिचरणशीलः, अपरुषभाषी, निरहंकारः, प्राधान्येन ब्राह्मणाश्रयस्तदभावे क्षत्रियवैश्याश्रयोऽपि स्वजातित उत्कृष्टां जातिं प्राप्नोति।। ३३५।।

जो शूद्र पवित्र, विनम्र एवं अहंकाररहित होकर ब्राह्मणादि द्विजाति वर्णों के आश्रय में रहते हुए, उनकी उत्कृष्ट सेवा का हमेशा इच्छुक रहता है, अगले जन्म में वह उत्कृष्ट जाति को प्राप्त करता है।। ३३५।।

एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः।
आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत।। ३३६।।

एष वर्णानामनापदि चतुर्णामपि कर्मविधिर्धर्म उक्तः, आपद्यपि यस्तेषां धर्मः तं संकीर्णश्रवणादूर्ध्वं च क्रमेण शृणुत।। ३३६।।

यह मैंने आपसे आपत्काल को छोड़कर सामान्य अवस्था में विभिन्न वर्णों के

कर्मों की शुभ-विधि का कथन किया। अब आप लोग क्रमशः इनके आपत्कालीन कर्मों के विषय में मुझसे सुनिये।। ३२६।।

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः।। ९।।

इति श्रीकुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यां नवमोऽध्यायः।। ९।।

।। इसप्रकार मानवधर्म शास्त्र में महर्षिभृगु द्वारा कही गई संहिता के अन्तर्गत नवम अध्याय पूर्ण हुआ।।

।। इसप्रकार डॉ. राकेश शास्त्री द्वारा सम्पादित मनुस्मृति के नवम अध्याय का हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।

अथ दशमोऽध्यायः

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः।। १।।

वैश्यशूद्रधर्मानन्तरं ''संकीर्णानां च संभवम्'' (अ० १ श्लो० ११६) इति प्रतिज्ञातत्वात्तस्मिन्वाच्ये वर्णेभ्य एव संकीर्णानामुत्पत्तेः वर्णानुवादार्थं त्रैवर्णिकस्य प्रधानधर्ममध्ययनं ब्राह्मणस्य चाध्यापनमनुवदति। ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा अध्ययनानुभूतस्वकर्मानुष्ठातारो वेदं पठेयुः। एषां पुनर्मध्ये ब्राह्मण एवाध्यापनं कुर्यान्न क्षत्रियवैश्याविव्ययं निश्चयः। प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषामित्यनेनैव क्षत्रियवैश्ययोरध्यापननिषेधसिद्धौ नेतराविति पुनर्निषेधवचनं प्रायश्चित्तगौरवार्थम्।। १।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों द्विजाति वर्ण वाले व्यक्ति अपने-अपने कार्यों में स्थित रहते हुए वेदविद्या का अध्ययन करें, किन्तु केवल ब्राह्मण ही इन तीनों वर्णों को वेद-विद्या का उपदेश देवें, दूसरे नहीं, यह निश्चय है।। १।।

किंच-

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत्।। २।।

सर्वेषां वर्णानां जीवनोपायं यथाशास्त्रं ब्राह्मणो जानीयात्तेभ्यश्चोपदिशेत्स्वयं च यथोक्तवन्नियममनुतिष्ठेत्।। २।।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मण को सभी वर्णों की जीविका के उपायों के सम्बन्ध में (ज्योतिषादि द्वारा) विधिपूर्वक ठीक-ठीक ज्ञान रखना चाहिए तथा दूसरों को इसका उपदेश देना चाहिए एवं स्वयं भी (अपने कर्त्तव्यों में लिप्त रहकर) वैसा कार्य करे।। २।।

अत्रानुवादः—

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात्।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः।। ३।।

जात्युत्कर्षात्, प्रकृतिः कारणं हिरण्यगर्भोत्तमाङ्गरूपकारणोत्कर्षात्, नियम्यतेऽनेनेति नियमो वेदस्तस्याध्ययनाध्यापनव्याख्यानादियुक्तसातिशयवेदधारणात्। अतएव "ब्रह्मणश्चैव धारणात्" (अ० १ श्लो० ९३) इति सातिशयवेदधारणेनैव ब्राह्मणोत्कर्ष उक्तः। गोविन्दराजस्तु स्नातकव्रतानां धारणदिति व्याख्यातवान्। तन्न। क्षत्रियादिसाधारण्यात्। संस्कारस्योपनयनाख्यस्य क्षत्रियाद्यपेक्षया प्राधान्यविधाने विशेषाद्वर्णानामध्यापनवृत्त्युपदेशयोर्ब्राह्मण एवेश्वरः।। ३।।

अपने गुणों के वैशिष्ट्य के कारण, स्वभाव की श्रेष्ठता से, नियमों का विधिपूर्वक कठोरता से पालन करने के कारण एवं संस्कारों की विशेषता के कारण ब्राह्मण सभी वर्णों में श्रेष्ठ है।। ३।।

ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः।। ४।।

ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा द्विजाः, तेषामुपनयनविधानात्। शूद्रः पुनश्चतुर्थो वर्ण एकजातिः, उपनयनाभावात्। पञ्चमः पुनर्वर्णो नास्ति। संकीर्णजातीनां त्वश्वतरवन्माता पितृजातिव्यतिरिक्तजात्यन्तरत्वान्न वर्णत्वम्। अयं च जात्यन्तरोपदेशः शास्त्रे संव्यवहरणार्थः।। ४।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों द्विजाति वर्ण कहलाते हैं। जबकि चौथी एक जाति शूद्र भी है, किन्तु पाँचवीं जाति कोई नहीं है।। ४।।

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते।। ५।।

ब्राह्मणादिषु वर्णेषु चतुर्ष्वपि, समानजातीयासु यथाशास्त्रं परिणीतास्वक्षतयोनिष्वानुलोम्येन ब्राह्मणेन ब्राह्मण्यां क्षत्रियेण क्षत्रियायामित्यनेनानुक्रमेण ये जातास्ते मातापित्रोर्जात्या युक्तास्तज्जातीया एव ज्ञातव्याः। आनुलोम्यग्रहणं चात्र मन्दोपयुक्तमुत्तरश्लोक उपयोक्ष्यते। गवाश्वादिवदवयवसंनिवेशस्य ब्राह्मणजात्यभिव्यञ्जकाभावादेतद्ब्राह्मणादिलक्षणमुक्तम्। अत्र च पत्नीग्रहणादन्यपत्नीजनितानां न ब्राह्मणादिजातित्वम्। तथाच देवलः-"द्वितीयेन तु यः पित्रा सवर्णायां प्रजायते। अववाट इति ख्यातः शूद्रधर्मा स जातितः।। व्रतहीना न संस्कार्याः स्वतन्त्रास्वपि ये सुताः उत्पादिताः सवर्णेन व्रात्या इव बहिष्कृताः।।" व्यास-" ये तु जाताः समानासु संस्कार्याः स्युरतोऽन्यथा।" याज्ञवल्क्योऽपि-"सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः" (अ० १ श्लो० ९०) इत्यभिधाय "विन्नास्वेष विधिः स्मृतः"

(या० अ० १ श्लो० ९२) इति ब्रुवाण: प्रत्युत्पादितस्यैव ब्राह्मणादिजातित्वं निश्चिकाय।। ५।।

सभी वर्णों की समान वर्ण वाली अक्षतयोनि पत्नियों में (ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मणी से, क्षत्रिय द्वारा क्षत्राणि से) उत्पन्न सन्तान उसी जाति की समझनी चाहिए, क्योंकि उत्पन्न हुए वे अपने माता-पिता की जाति के ही होते हैं।। ५।।

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्।। ६।।

आनुलोम्येनाव्यवहितवर्णजातीयासु भार्यासु द्विजातिभिर्ये उत्पादिता: पुत्रा:, यथा ब्राह्मणेन क्षत्रियायां, क्षत्रियेण वैश्यायां वैश्येन शूद्रायां तान्मातुर्हीनजातीयत्वदोषाद्गर्हितान्पितृसदृशान्न तु पितृसजातीयान्मन्वादय आहु:। पितृसदृशग्रहणान्मातृजातेरुत्कृष्टा: पितृजातितो निकृष्टा ज्ञेया:। एतेषां च नामानि मूर्धावसिक्तमाहिष्यकरणाख्यानि याज्ञवल्क्यादिभिरुक्तानि, वृत्तयश्चैषामुशनसोक्ता:-हस्त्यश्वरथशिक्षा अस्त्रधारणं च मूर्धाभिषिक्तानां नृत्यागीतनक्षत्रजीवनं सस्यरक्षा च माहिष्याणां, द्विजातिशुश्रूषा धनधन्याध्यक्षता राजसेवादुर्गान्त:पुररक्षा च पारशवोग्रकरणानामिति।। ६।।

द्विजाति वर्ण के व्यक्तियों द्वारा एक जाति के अन्तर वाली स्त्री से उत्पन्न हुए मातृदोष से रहित उन पुत्रों को अपने समान वर्ण वाला ही कहा गया है।। ६।।

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातन:।
द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम्।। ७।।

एष पारम्पर्यागततया नित्यो विधिरनन्तरजातिभार्योत्पन्नानामुक्त: एकेन द्वाभ्यां च वर्णाभ्यां व्यवहितासूत्पन्नानां यथा ब्राह्मणेन वैश्यायां क्षत्रियेण शूद्रायां ब्राह्मणेन शूद्रायामिमं वक्ष्यमाणं धर्मादनपेतं विधिं जानीयात्।। ७।।

यहाँ तक मैंने आपसे एक जाति के अन्तर से उत्पन्न सन्तानों के सम्बन्ध में सनातनविधि का कथन किया। अब मैं आपसे दो एक जाति के अन्तर से उत्पन्न होने वाली सन्तान की इस विधि का कथन करता हूँ, सुनिए।। ७।।

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते।
निषाद: शूद्रकन्यायां य: पारशव उच्यते।। ८।।

कन्याग्रहणादत्रोढायामित्यध्याहार्यम्। "विन्नास्वेष विधि: स्मृत:" (अ० १ श्लो० ९२) इति याज्ञवल्क्येन स्फुटीकृतत्वाच्च। ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामूढाया-

मम्बष्ठाख्यो जायते। शूद्रकन्यायामूढायां निषाद उत्पद्यते। यः संज्ञान्तरेण पारशव-श्रोच्यते।।८।।

ब्राह्मण से वैश्य कन्या में 'अम्बष्ठ' नामक सन्तान उत्पन्न होती है तथा ब्राह्मण से विवाहित शूद्र कन्या में 'निषाद' उत्पन्न होता है, जिसे 'पारशव' भी कहा जाता है।।८।।

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान्।
क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते।। ९।।

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायामूढायां क्रूरचेष्टः क्रूरकर्मरतिश्च क्षत्रशूद्रस्वभाव उग्राख्यः पुत्रो जायते।। ९।।

इसीप्रकार क्षत्रिय से विवाह की गई शूद्र वर्ण की कन्या में क्रूर आचार-विचार वाली, क्षत्रिय एवं शूद्र के मिले जुले स्वभाव वाली 'उग्र' नामक सन्तति उत्पन्न होती है।।९।।

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः।। १०।।

ब्राह्मणस्य क्षत्रियादित्रयस्त्रीषु, क्षत्रियस्य वैश्यादिवर्णद्वयोः स्त्रियोः, वैश्यस्य च शूद्रायां, वर्णत्रयाणामेते षट् पुत्राः सवर्णपुत्रकार्यापेक्षयापसदा अवसन्ना निकृष्टाः स्युः।। १०।।

ब्राह्मण की क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों में, क्षत्रिय की वैश्य और शूद्र इन दो वर्णों में तथा वैश्य की शूद्र इस एक वर्ण में उत्पन्न हुई, कुल छः सन्तान 'निकृष्ट' मानी गयी हैं।। १०।।

एवमनुलोमानुक्त्वा प्रतिलोमानाह—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ।। ११।।

अत्र विवाहासंभवात्कन्याग्रहणं स्त्रीमात्रप्रदर्शनार्थम्। अत्रैव श्लोके राजविप्राङ्गना-सुताविति ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जात्या सूतनामा संजायते। वैश्याद्यथाक्रमं क्षत्रिया-ब्राह्मण्योर्मागधवैदेहाख्यौ पुत्रौ भवतः। एषां च वृत्तयो मनुनैवाभिधास्यन्ते।। ११।।

इसीप्रकार क्षत्रिय से विवाहित ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न पुत्र, जाति से 'सूत' होता है। वैश्य से क्षत्रिय कन्या में 'मागध' तथा वैश्य से ब्राह्मण कन्या में 'वैदेह' जाति वाले पुत्र उत्पन्न होते हैं।। ११।।

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणाम्।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः।। १२।।

शूद्राद्वैश्याक्षत्रियाब्राह्मणीषु क्रमेणायोगवः क्षत्ता नृणामधमश्चण्डालश्च वर्णानां संकरो येषु जनयितव्येषु ते वर्णसंकरा जायन्ते।। १२।।

इसके अतिरिक्त शूद्र से वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कन्या में क्रमशः अयोगव, क्षत्ता तथा मनुष्यों में अधम चाण्डाल, ये वर्णसङ्कर उत्पन्न होते हैं।। १२।।

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ।
क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि।। १३।।

एकान्तरेऽपि वर्णे ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठः, क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायामुग्रः, एतावानुलोम्येन यथा स्पर्शाद्यर्हौ तद्वदेकान्तरे प्रतिलोमजननेऽपि शूद्रात्क्षत्रियायां क्षत्ता, वैश्याद्ब्राह्मण्यां वैदेहः, एतावपि स्पर्शदियोग्यौ विज्ञेयौ। एकान्तरोत्पन्नयोः स्पर्शाद्यनुज्ञानादनन्तरोत्पन्नानां सूतमागधायोगवानां स्पर्शादियोग्यत्वं सिद्धं भवति। अतश्चण्डाल एवैकः प्रतिलोमतः स्पर्शादौ निरस्यते।। १३।।

जिसप्रकार अनुलोम क्रम में एक जाति के अन्तर से अम्बष्ठ एवं उग्र सन्तानों की उत्पत्ति कही गई है। उसीप्रकार प्रतिलोम क्रम में जन्म होने पर भी वे क्रमशः 'क्षत्ता' एवं 'वैदेह' कहे जाते हैं।। १३।।

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम्।
ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते।। १४।।

मातुर्दोषादिति हेतूपन्यासादनन्तरग्रहणमनन्तरवच्चैकान्तरव्यन्तरप्रदर्शनार्थम्। ये द्विजातीनामनन्तरैकान्तरद्व्यन्तरजातिस्त्रीष्वानुलोम्येनोत्पन्नाः पूर्वमुक्ताः पुत्रास्तान्हीनजाति-मातृदोषान्मातृजातिव्यपदेश्यानाचक्षते। मातापितृव्यतिरिक्तसंकीर्णजातित्वेऽप्येषां मातृजातिव्यपदेशकथनं मातृजातिसंस्कारादिधर्मप्राप्त्यर्थम्।। १४।।

द्विजाति के लोगों में जो पुत्र एक वर्ण के अन्तर वाली स्त्री से क्रमशः उत्पन्न कहे गए हैं, वे सभी माता के दोष के कारण 'अनन्तर' इस नाम से जाने जाते हैं ।। १४।।

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते।
आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः।। १५।।

क्षत्रियेण शूद्रायामुत्पन्नोग्रा उग्रा चासौ कन्या चेत्युग्रकन्या तस्यां ब्राह्मणादावृतनामा

जायते। ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पन्नाम्बष्ठा तस्यां ब्राह्मणादाभीराख्यो जायते। शूद्रेण वैश्यायामुत्पन्ना आयोगवी तस्यां ब्राह्मणाद्धिग्वणो जायते।। १५।।

इसीप्रकार ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति से उग्र जाति की कन्या में 'आवृत' नामक सन्तान उत्पन्न होती है, किन्तु 'अम्बष्ठ' कन्या में 'आभीर' तथा 'आयोगव' कन्या में 'धिग्वण' सन्तान की उत्पत्ति होती है।। १५।।

आयोगवश्च क्षत्ता च चण्डालश्चाधमो नृणाम्।
प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः।। १६।।

आयोगवः क्षत्ता चण्डालश्च मनुष्याणामधम इत्येते त्रयो व्युत्क्रमेण वैश्याक्षत्रिया-ब्राह्मणीषु पुत्रकार्यादपगतास्त्रयः शूद्रा जायन्ते। पुत्रकार्याक्षमत्वप्रतिपादनार्थमुक्तानाम-प्येषां पुनर्वचनम्। एवमुत्तरश्लोकोक्तानामपि।। १६।।

आयोगव, क्षता, चाण्डाल ये तीनों ही मनुष्यों में अधम माने गए हैं तथा इन निम्न वर्ण की कन्याओं से प्रतिलोम क्रम से उत्पन्न होने वाली सन्तान तो शूद्र से भी निकृष्ट होती हैं।। १६।।

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु।
प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः।। १७।।

क्षत्रियाब्राह्मण्योर्मागधवैदेहौ क्षत्रियाद्ब्राह्मण्यां सूत इत्येवं प्रातिलोम्येनापरेऽपि त्रयः पुत्रकार्यादपसदा जायन्ते।। १७।।

इसीप्रकार वैश्य से क्षत्रिय कन्या में उत्पन्न 'मागध' और ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न 'वैदेह' ये दोनों तथा क्षत्रिय से ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न सूत, इन तीनों से भी यदि प्रतिलोम क्रम से सन्तानोत्पत्ति हों, तो वे तीनों ही परम निकृष्ट मानी जाएँगी।। १७।।

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः।
शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः।। १८।।

निषादाच्छूद्रायां जातो जात्या पुक्कसो भवति। निषाद्यां पुनः शूद्राद्यो जातः स कुक्कुटकनामा स्मृतः।। १८।।

इसके अतिरिक्त निषाद से शूद्र जाति की कन्या में उत्पन्न सन्तान, जाति से 'पुक्कस' होती है, किन्तु शूद्र वर्ण के व्यक्ति से निषाद कन्या में उत्पन्न सन्तान को तो वस्तुतः 'कुक्कुट' जाति का ही कहा गया है।। १८।।

क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते।
वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते।। १९।।

शूद्रेण वैश्यायां जातः क्षत्ता। क्षत्रियेण शूद्रायां जाता उग्रा। तेन तस्यां जातः श्वपाक इत्युच्यते। वैदेहकेनाम्बष्ठयां ब्राह्मणेन वैश्याजातायां वेण इति कथ्यते।। १९।।

इसीप्रकार क्षत्ता से उग्र कन्या में उत्पन्न सन्तान 'श्वपाक' इस नाम से कही जाती है तथा वैदेह से 'अम्बष्ठ' कन्या में उत्पन्न सन्तति 'वेण' कहलाती है।। १९।।

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्।
तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत्।। २०।।

द्विजातयः सवर्णासु स्त्रीषु यान्पुत्रानुत्पादयन्ते ते चेदुपनयनाख्यव्रतहीना भवन्ति तदा तानकृतोपनयनान्व्रात्येत्यनया संज्ञया व्यपदिशेत्। "अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते" (अ० २ श्लो० ३९) इत्युक्तमपि व्रात्यलक्षणं प्रतिलोमजपुत्रवदस्याप्युपकाराक्षम-पुत्रत्वप्रदर्शनार्थमस्मिन्संकीर्णप्रकरणेऽनूदितम्।। २०।।

इसके अलावा द्विजाति ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों के लोग यदि सवर्ण स्त्रियों में सन्तति उत्पन्न करें तथा वे यज्ञोपवीत नामक संस्कार से हीन हों, तो सावित्री से भ्रष्ट हुए उन्हें 'व्रात्य' इस नाम से कहा जाना चाहिए।। २०।।

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च।। २१।।

व्रात्याद्ब्राह्मणात् "सवर्णासु" (अ० १० श्लो० २०) इत्यनुवृत्तेर्ब्राह्मण्यां पापस्वभावो भूर्जकण्टको जायते। तथा आवन्त्यवाटधानपुष्पधशैखा जायन्ते। एकस्य चैतानि देशभेदप्रसिद्धानि नामानि।। २१।।

जबकि व्रात्य ब्राह्मण से ब्राह्मण वर्ण की स्त्री में पापात्मा 'भूर्जकण्टक' जाति वाला ब्राह्मण उत्पन्न होता है, जो प्रदेश भेद से आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख इन नामों से जाना जाता है।। २१।।

झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च।। २२।।

क्षत्रियाद्व्रात्यात्सवर्णायां झल्लमल्लनिच्छिविनटकरणखसद्रविडाख्या जायन्ते। एतान्यप्येकस्यैव नामानि।। २२।।

इसीप्रकार व्रात्य क्षत्रिय वर्ण के व्यक्ति से क्षत्रिय स्त्री में उत्पन्न सन्तति प्रदेश भेद से झल्ल, मल्ल, निच्छिव, नट, करण, खस और द्रविड़ इन नामों से जानी जाती हैं।। २२।।

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च।। २३।।

वैश्यात्पुनर्व्रात्यात्सवर्णायां सुधन्वाचार्यकारुषविजन्ममैत्रसात्वताख्या जायन्ते। एकस्य चैतान्यपि नामानि।। २३।।

इसके अतिरिक्त व्रात्य वैश्य वर्ण के व्यक्ति द्वारा वैश्य कन्या में 'सुधन्वाचार्य' जाति के पुत्र उत्पन्न होते हैं, जिन्हें प्रदेश भेद से कारुष, विजन्मा, मैत्र और सात्वत नामों से भी जाना जाता है।। २३।।

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः।। २४।।

ब्राह्मणादिवर्णानामन्योन्यस्त्रीगमनेन, सगोत्रादिविवाहेन, उपनयनरूपस्वकर्मत्यागेन वर्णसंकरो नाम जायते। अतो युक्तमस्मिन्प्रकरणे व्रात्यानामभिधानम्।। २४।।

विभिन्न वर्ण के लोगों द्वारा व्यभिचार करने से, अपने वर्ण से बाहर विवाह करने से तथा अपने कर्त्तव्य कर्मों का परित्याग करने से ये वर्णसङ्कर सन्ततियाँ उत्पन्न होती हैं।। २४।।

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः।
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः।। २५।।

ये संकीर्णयोनयः प्रतिलोमैरनुलोमैश्च परस्परसंबन्धाज्जायन्ते तान्विशेषेण वक्ष्यामि।। २५।।

अब मैं आपसे इन संकीर्ण योनियों में प्रतिलोम एवं अनुलोम[1] क्रम से परस्पर सम्बन्धों द्वारा उत्पन्न होने वाली, इन सभी सन्तानों के विषय में विस्तारपूर्वक कहूँगा।। २५।।

---

१. ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति यदि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के साथ विवाह करता है तो इसे अनुलोम विवाह कहा जाएगा। इसीप्रकार यदि वैश्यादि अपने से उत्कृष्ट क्षत्रिय एवं ब्राह्मणादि की कन्या के साथ विवाह करता है तो इसे प्रतिलोम क्रम कहेंगे।

सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः।
मागधः क्षत्रजातिश्च तथाऽयोगव एव च।। २६।।

एते षडुक्तलक्षणाः सूतादय उत्तरार्थमनूद्यन्ते।। २६।।

एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु।
मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु।। २७।।

एते पूर्वोक्ताः षट् प्रतिलोमजाः स्वयोनिषु सुतोत्पत्तिं कुर्वन्ति। यथा शूद्रेण वैश्यायां जात आयोगवः, आयोगव्यामेव। मातृजातौ वैश्यायां, प्रवरासु क्षत्रियाब्राह्मणी-योनिषु, चकारादपकृष्टायामपि शूद्रजातौ, सर्वत्र सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति। सदृशत्वं च न पित्रपेक्षया किन्तु मातृजात्यादिषु चातुर्वर्ण्यस्त्रीष्वेव पितृतोऽधिकगर्हितपुत्रोत्पत्तेर्वक्ष्य-माणत्वात्, तत्सदृशान्पितृतोऽधिकगर्हितान्, स्वजातावपि जनयन्तीत्येतावदेवाप्राप्तत्वादनेन विधीयते। किन्तु जघन्यवर्णेनोत्तमवर्णस्त्रीषु जनितत्वात्क्रियादुष्टा आयोगवाद्याः प्रतिलोमजाः क्रियादुष्टाभ्यां मातापितृभ्यां तुल्याभ्यामपि जनिते आयोगवादिपुत्रे ब्रह्महन्तृ-नन्तरजनितो ब्रह्महन्तृमातापितृजनितवदधिकदुष्ट एव न्याय्यः। शुद्धब्राह्मणादिजातीयेन शुद्धब्राह्मण्यादिसजातीयायां जनितः पितृतुल्य एवोचितो नतु क्रियादुष्टोभयजनितोऽपि ।। २७।।

सूत, वैदेह तथा मनुष्यों में अधम चाण्डल एवं मागध, क्षत और अयोगव, ये छः प्रकार के वर्णसङ्कर, यदि अपने ही वर्ण की कन्या से अथवा मातृवर्ण या श्रेष्ठ वर्ण की कन्या से सन्तान उत्पन्न करते हैं (वे सभी वर्णसङ्कर ही कही जाएँगीं) ।। २६-२७।।

यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते।
आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात्।। २८।।

यथा त्रयाणां वर्णानां क्षत्रियवैश्यशूद्राणां मध्याद्द्वयोर्वर्णयोः क्षत्रियवैश्ययोर्गमने ब्राह्मणस्यानुलोम्याद्द्विज उत्पद्यते, सजातीयायां च द्विजो जायते। एवं बाह्येष्वपि क्षत्रियवैश्याभ्यां वैश्यक्षत्रियाभ्यां क्षत्रियाब्राह्मण्योर्जातिषूत्कर्षापक्रमो भवति। शूद्रजातप्रतिलोमापेक्षया द्विजाद्युत्पन्नप्रतिलोमप्राशस्त्यार्थमिदम्। मेघातिथिस्तु-द्विजत्वप्रतिपादकमेतदेषां वचनमुपनयनार्थमित्याह। तन्न। "प्रतिलोमजास्तु धर्महीनाः" इति गौतमेन संस्कारनिषेधात्।। २८।।

क्योंकि जिसप्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों की सवर्ण कन्याओं से उत्पन्न सन्तानों में, माता-पिता दोनों की आत्मा विद्यमान रहती है। उसीप्रकार

अनन्तर वर्णसङ्करों से अपने वर्णसंकर वर्ण में तथा भिन्न वर्ण की कन्याओं से उत्पन्न सन्तानों में भी, माता-पिता की आत्मा का क्रम विद्यमान रहता है।। २८।।

ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान्।
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान्।। २९।।

ते चायोगवादयः षट् परस्परजातीयासु भार्यासु सुबहूनानुलोम्येऽप्यधिकदुष्टान्सत्क्रियाबहिर्भूताञ्जनयन्ति। तद्यथा। आयोगवः क्षत्तृजायायामात्मनो हीनतरं जनयति, तथा क्षत्ताप्यायोगव्यामात्मनो हीनतरमुत्पादयति। एवमन्येष्वपि प्रतिलोमेषु द्रष्टव्यम्।। २९।।

इसीलिए अयोगव आदि छः प्रकार के वर्णसङ्कर आपस में जो एक-दूसरे की स्त्रियों से सन्तति उत्पन्न करते हैं। वे अपने माता-पिता से भी अपेक्षाकृत अधिक दूषित, निन्दनीय एवं त्याज्य होती हैं।। २९।।

यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते।
तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते।। ३०।।

यथा ब्राह्मण्यां शूद्रोऽपकृष्टं चण्डालाख्यं प्राणिनं प्रसूयते जनयत्येवं बाह्यश्चण्डालादिवर्णचतुष्टये चण्डालादिभ्योऽप्यपकृष्टं पुत्रं प्रसूयते।। ३०।।

जिसप्रकार शूद्र, ब्राह्मण कन्या में निकृष्ट (त्याज्य चाण्डाल) प्राणी को उत्पन्न करता है, उसीप्रकार वह निकृष्ट चाण्डाल, अपने से बाह्य (निकृष्ट) चार वर्णों की कन्याओं में, जिस सन्तान को पैदा करता है, वह उसीप्रकार अधम होती है।। ३०।।

एतदेव विस्तारयति—

प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः।
हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु।। ३१।।

अत्र मेधातिथिगोविन्दराजयोर्व्याख्यानं-चातुर्वर्ण्यबाह्याश्चण्डालक्षत्रायोगवाः शूद्रप्रभवास्त्रयश्चातुर्वर्ण्ये गच्छन्त आत्मनो हीनतरान् परस्परापेक्षयापकृष्टोत्कृष्टवर्णप्रभवत्वात्पञ्चदशवर्णान्संपादयन्ति। तद्यथा चण्डालः शूद्रायामात्मनो हीनतरं वैश्याक्षत्रियाब्राह्मणीजातेभ्य उत्कृष्टं जनयति, एवं वैश्यायां ततोऽप्यपसदं, क्षत्रियायां ब्राह्मणीजातादुत्कृष्टं जनयति, ततोऽपसदं क्षत्रियायां ब्राह्मणीजातादुत्कृष्टं, ततोऽपि हीनं ब्राह्मण्यां जनयति, एवं क्षत्रायोगवावपि चातुर्वर्ण्ये चतुरश्चतुरो जनयतः। इत्येते शूद्रप्रभवचण्डालक्षत्रायोगवेभ्यश्चातुर्वर्ण्यद्वादशप्रभेदा उत्पद्यन्ते। आत्मना च चण्डालक्षत्रायोगवास्त्रय इत्येवं शूद्रप्रभवाः पञ्चदश उत्पद्यन्ते। एवं वैश्यक्षत्रियब्राह्मणप्रभवाः प्रत्येकं पञ्चदश संभवन्ति। एवं षष्टिश्चातुर्वर्ण्येन सह चतुःषष्टिप्रभेदा भवन्ति।

ते तु परस्परगमनेन नानावर्णाञ्जनयन्तीति। नैतन्मनोहरम्। पूर्वश्लोके षण्णां प्रतिलोमजानां प्रकृतत्वात्तद्विस्तारकथनत्वाच्चास्य। अत्रापि श्लोके प्रतिकूलं वर्तमाना इत्युपादानात्प्रतिलोमजमात्रविषयोऽयं श्लोको नानुलोमजविषयः। तथा च वैश्य-क्षत्रियब्राह्मणप्रभवाश्च प्रत्येकं पञ्चदश संभवन्त्येवं षष्टिरिति न संगच्छते। नच संभवमात्रेणैवेयं षष्टिरुक्ता न दृष्टतया, शूद्रप्रभवायोगवक्षत्तृचण्डाला एव चातुर्वर्ण्य-संतानोपेताः पञ्चदश गर्हिता इति वाच्यम्। यतो वैश्यक्षत्रियाभ्यामपि प्रतिलोमत उत्पादितानां त्रयाणां हीनत्वात्तैरपि चातुर्वर्ण्ये जनितानां गर्हितत्वस्य संभवात् "तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते" (अ०१० श्लो०३०) इति मनुनैवानन्तरं स्फुटमुक्तत्वात्। युवाभ्यामपि तथैव व्याख्यातत्वाच्चातुर्वर्ण्येन सह चतुःषष्टिरिति सर्वथैवाप्रकृतम्। नहि संकीर्णप्रकरणे शुद्धचातुर्वर्ण्यगणनोचिता। किंच "वर्णान्पञ्चदश प्रसूयन्त" इति श्रूयमाणद्वादशजनानुक्त्वा ते चात्मना चण्डालक्षत्रायोगवास्त्रय इत्येवं शूद्रप्रभवाः पञ्चदशेति न युक्तम्। अपि चात्मना सह पञ्चदश संपादयन्तीति न संगच्छते। असंपाद्यत्वादात्मनः पञ्चदश संपद्यन्त इति च व्याख्यानेऽध्याहार एव दोषस्तस्मादेवं व्याख्यायते—

प्रतिकूलं वर्तमानाः प्रतिलोमजाः बाह्याः, द्विजप्रतिलोमजेभ्यो निकृष्टत्वात्। शूद्रप्रभवायोगवक्षत्तृचण्डालास्त्रयः। पूर्वश्लोकादनुवर्तमाने चातुर्वर्ण्ये स्वजातौ "एते षट् सदृशान्" (अ० १९ श्लो० २७) इत्यत्र सजात्युत्पन्नस्य पितृतो गर्हितत्वा-भिधानादात्मापेक्षया बाह्यान्तरान्प्रत्येकं पञ्चदश पुत्राञ्जनयन्ति। तद्यथा आयो गवश्चातु-वर्ण्यस्त्रीषु चायोगव्यामात्मनो निकृष्टान्पञ्च पुत्राञ्जनयन्ति। एवं क्षत्तृचाण्डालावपि प्रत्येकं पञ्च पुत्राञ्जनयतः। इत्थं बाह्यास्त्रयः पञ्चदश पुत्राञ्जनयन्ति। तथानुलोमजेभ्यो हीना वैश्यक्षत्रियप्रभवा मागधवैदेहसूता आत्मापेक्षया हीनान्पूर्ववच्चातुर्वर्ण्यस्त्रीषु सजातौ प्रत्येकं पञ्च पुत्राञ्जनयन्तो हीना अपि त्रयः पञ्चदशैव पुत्राञ्जनयन्ति। एवं त्रिंशदेते भवन्ति। अथवा बाह्यशब्दो हीनशब्दश्च षडेव प्रतिलोमजानाह। अत्रबाह्याश्चण्डाल-क्षत्रायोगववैदेहमागधसूताः षड्यथोत्तरमुत्कर्षान्प्रातिलोम्येन स्त्रीषु वर्तमाना बाह्यतरानापञ्चदशैव पुत्राञ्जनयन्ति। तद्यथा-चण्डालाः क्षत्रियादिषु पञ्चसु स्त्रीषु, क्षत्तायोगव्यादिषु चतसृषु, आयोगवो वैदेह्यादितिसृषु, वैदेहो मागधीसूत्योः, मागधः सूत्यां, सूतस्तु प्रतिलोमाभावात्प्रातिलोम्येन पञ्चदशैव पुत्राञ्जनयति। पुनरिति निर्देशाद्धीना सूतादयश्चण्डालान्ताः षड्यथोत्तरमपकर्षादानुलोम्येनापि प्रतिलोमोक्तरीत्या स्वापेक्षया हीनान्पञ्चदशैव पुत्राञ्जनयन्ति। एवं त्रिंशदेते भवन्ति।। ३१।।

शूद्र वर्ण के व्यक्ति द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य की स्त्री में प्रतिलोम क्रम से उत्पन्न क्रमशः चाण्डाल, क्षता और अयोगव निकृष्ट ये तीनों जातियाँ, जब शेष चार

वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) की स्त्रियों एवं अपनी हीन-सवर्ण की स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न करती हैं तो ये सभी कुल मिलाकर पन्द्रह प्रकार की निकृष्ट सन्ततियाँ होती हैं।। ३१।।

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम्।
सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे।। ३२।।

केशरचनादिः प्रसाधनस्तस्योपचारज्ञं अदासमुच्छिष्टभक्षणादिदासकर्म-रहितमङ्गसंवाहनादिदासकर्मजीवनं पाशबन्धनेन मृगादिवधाख्यवृत्त्यन्तरजीवनं सैरिन्ध्रनामानं "मुखबाहूरुपज्जानाम्" (अ० १० श्लो० ४५) इति श्लोके वक्ष्यमाणो दस्युरायोगवस्त्रीजातौ शूद्रेण वैश्यायामुत्पन्नायां जनयति, तच्चास्य मृगादिमारणं देवपित्रौषधार्थं वेदितव्यम्।। ३२।।

इसके अतिरिक्त केशादि को सजाने सँवारने में निपुण, उच्छिष्ट भोजन खाने के अतिरिक्त स्नानादि कराने रूप सेवाकार्य का ज्ञाता, जँगली जानवरों को पकड़कर अपनी आजीविका चलाने वाला, 'सैरिन्ध्र' नामक पुत्र, अयोगव नामक निकृष्ट जाति की स्त्री में 'दस्यु' नामक जाति वाला व्यक्ति उत्पन्न करता है।। ३२।।

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते।
नृन्प्रशंसत्यजस्त्रं यो घण्टताडोऽरुणोदये।। ३३।।

वैश्याद्ब्राह्मण्यां जातो वैदेहः प्रकृतायामायोगव्यां मैत्रेयाख्यं मधुरभाषिणं जनयति। यः प्रातर्घण्टामाहत्य राजप्रभृतीन्सततं वृत्त्यर्थं स्तौति।। ३३।।

इसी प्रकार वैदेह नामक निकृष्ट वर्ण का व्यक्ति अयोगव की स्त्री में 'मैत्रेय' नामक सन्तति को उत्पन्न करता है, जो प्रातःकाल निरन्तर घंटा बजा-बजाकर राजादि सम्पन्न लोगों की प्रशंसा करता है।। ३३।।

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम्।
कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः।। ३४।।

ब्राह्मणेन शूद्रायां जातो निषादः प्रागुक्तायामायोगव्यां मार्गवं दासापरनामानं नौव्यहारजीविनं जनयति। आर्यावर्तदेशवासिनः कैवर्तशब्देन यं कीर्तयन्ति।। ३४।।

इसीप्रकार ब्राह्मण द्वारा शूद्र वर्ण की स्त्री में उत्पन्न 'निषाद', पहले कही गई अयोगव स्त्री में 'मार्गव' नामक सन्तान को उत्पन्न करता है, 'दास' नाम से प्रसिद्ध यह सन्तान नौका चलाकर अपनी आजीविका चलाती है। आर्यावर्त देश के निवासी इसे 'कैवर्त' इस नाम से भी पुकारते हैं।। ३४।।

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च।
भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक् त्रयः।। ३५।।

सैरिन्ध्रमैत्रेयमार्गवा हीनजातीयास्त्रयः मृतवस्त्रपरिधानासु क्रूरासूच्छिष्टादिभक्तान्नाशनायोगवीषु पितृभेदाद्भिन्ना भवन्ति।। ३५।।

सैरिन्ध्र, मैत्रेय और मार्गव हीनजाति के ये तीनों पुरुष, मृतक के वस्त्रों को पहनने वाली, निन्दित अन्न का भक्षण करने वाली निकृष्ट अयोगव जाति की स्त्रियों में, तीन अन्य हीन जाति की सन्तानों को उत्पन्न करते हैं (जो कफन उतारकर पहनते हैं तथा गर्हित अन्न को खाते हैं)।। ३५।।

कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते।
वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ।। ३६।।

"वैदेह्यामेव जायते" (अ० १० श्लो० ३७) इत्युत्तरत्र श्रवणात्, अत्राप्याशङ्कायां सैव संबध्यते। निषादाद्वैदेह्यां जातः कारावराख्यश्चर्मच्छेदनकारी जायते। अतएव औशनसे कारावराणां चर्मच्छेदनाचरणमेव वृत्तित्वेनोक्तम्। वैदेहकादन्ध्रमेदाख्यौ ग्रामबहिर्वासिनौ। अन्तरानिर्देशाद्वैदेहकेन च वैदेह्यां जातस्य गर्हितवैदेहकस्याप्युचितत्वात्, कारावरनिषादजात्योश्चात्र श्लोके संनिधानात्, कारावरनिषादस्त्रियोरेव क्रमेण जायते।। ३६।।

निषाद से अयोगव जाति की स्त्री में उत्पन्न पशुओं के चर्म को उखाड़ने का कार्य करने वाला 'कारावर' नामक 'चर्मकार' उत्पन्न होता है तथा अयोगव स्त्री में वैदेह पुरुष से 'अन्ध्रमेद' जाति वाला पुत्र उत्पन्न होता है। ये दोनों ही ग्राम के बाहर निवास करते हैं।। ३६।।

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्।
आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते।। ३७।।

वैदेह्यां चण्डालात्पाण्डुसोपाकाख्यो वेणुव्यवहारजीवी जायते। निषादेन च वैदेह्यामेवाहिण्डिकाख्यो जायते। अस्य च बन्धनस्थानेषु बाह्यसंरक्षणादाहिण्डिका नामित्यौशनसे वृत्तिरुक्ता। समानमातापितृकत्वेऽपि कारावराहिण्डिकयोर्वृत्तिभेदसंश्रवणाद्व्यपदेशभेदः।। ३७।।

इसीप्रकार चाण्डाल से वैदेह जाति की स्त्री में बाँस के व्यापार से जीविका चलाने वाला 'पाण्डु सोपाक' जाति का पुत्र उत्पन्न होता है तथा उसी वैदेह जाति की स्त्री में 'आहिण्डक' जाति वाला पुत्र उत्पन्न होता है।। ३७।।

चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान्।
पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः।। ३८।।

शूद्रायां निषादेन जातायां पुक्कस्यां चण्डालेन जातः सोपाकाख्यः पापात्मा, सर्वदा साधुभिर्निन्दितो, मारणोचितापराधस्य मूलं वध्यस्तस्य व्यसनं राजादेशेन मारणं तेन वृत्तिर्यस्य स जायते।। ३८।।

इसीप्रकार शूद्रवर्ण की स्त्री में निषाद द्वारा उत्पन्न की गई 'पुक्कसी' कन्या में 'चाण्डाल' द्वारा 'सोपाक' जाति वाला पुत्र उत्पन्न किया जाता है। जो हमेशा सज्जनों द्वारा निन्दित, पापी एवं राजा की आज्ञा के अनुसार वध के योग्य अपराधियों को मृत्युदण्ड देने रूप 'वधिक' के कार्य से अपनी आजीविका चलाता है।। ३८।।

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम्।
श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम्।। ३९।।

निषादी चण्डालदन्त्यावसायिसंज्ञं चण्डालादिभ्योऽपि दुष्टतमं श्मशानवासिनं तद्वृतिं च जनयति।। ३९।।

इसके अतिरिक्त निषाद जाति की स्त्री, चाण्डाल जाति के पुरुष के सम्पर्क से 'अन्त्यावसायी' नामक पुत्र को उत्पन्न करती है, जो श्मशान भूमि में निवास करने वाला तथा निकृष्ट जातियों में भी सर्वाधिक निन्दित होता है।। ३९।।

संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः।।४०।।

वर्णसंकरविषये एता जातयो, यस्येयं जनयित्री अयं जनकः स एवं जातीय इत्येवं पितृमातृकथनपूर्वकं दर्शिताः। तथा गूढाः प्रकटा वा तज्जात्युचितकर्मानुष्ठानेन ज्ञातव्याः।। ४०।।

यहाँ तक मैंने आपसे भिन्न वर्ण के माता-पिता से उत्पन्न होने वाली वर्णसङ्कर जातियों का कथन किया। प्रच्छन्न अथवा प्रकट होने पर भी ये सभी जातियाँ अपने-अपने कार्यों द्वारा जानने योग्य होती हैं।। ४०।।

सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः।
शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः।। ४१।।

द्विजातिसमानजातीयासु जाताः, तथानुलोम्येनोत्पन्नाः ब्राह्मणेन क्षत्रियावैश्ययोः क्षत्रियेण वैश्यायामेवं षट् पुत्रा द्विजधर्मिण उपनेयाः। ''ताननन्तरनाम्नस्तु'' (अ०

१० श्लो० १४) इति यदुक्तं तत्तज्जातिव्यपदेशार्थं न संस्कारार्थमिति कस्यचिद्भ्रम: स्यादत एषां द्विजातिसंस्कारार्थमिदं वचनम्। ये पुनरन्ये द्विजात्युत्पन्ना अपि सूतादय: प्रतिलोमजास्ते शूद्रधर्माणो नैषामुपनयनमस्ति।। ४१।।

द्विजातियों द्वारा अनुलोम विधि से अपने वर्ण अथवा अन्य वर्ण से उत्पन्न हुई छ: प्रकार की सन्तान द्विजवर्ण की ही कहलाती हैं। अत: वे सभी उपनयन आदि संस्कार धर्मों के योग्य हैं, किन्तु प्रतिलोम विधि से शूद्रों की उत्पन्न सभी सन्तानों को शूद्र के समान, निकृष्ट वर्ण वाली कहा गया है।। ४१।।

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मत:।। ४२।।

सजातिजानन्तरजा:, तप:प्रभावेण विश्वामित्रवत्, बीजप्रभावेण ऋष्यशृङ्गादिवत्, कृतत्रेतादौ मनुष्यमध्ये जात्युत्कर्षं गच्छन्ति। अपकर्षं च वक्ष्यमाणहेतुना यान्ति।। ४२।।

किन्तु इस संसार में प्रत्येक युग में विविध वर्णों के मनुष्यों में जन्म लेकर, (विश्वामित्र के समान) अपने श्रेष्ठ कर्मों के प्रभाव से अथवा (ऋष्यशृङ्ग के समान) माता-पिता के संस्कारों के प्रभाव से व्यक्ति उत्कर्ष एवं अपकर्ष को प्राप्त करते हैं।। ४२।।

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा: क्षत्रियजातय:।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च।। ४३।।

इमा वक्ष्यमाणा: क्षत्रियजातय उपनयनादिक्रियालोपेन ब्राह्मणानां च याजनाध्यापनप्रायश्चित्ताद्यर्थदर्शनाभावेन शनै: शनैर्लोके शूद्रतां प्राप्ता:।। ४३।।

शास्त्रों के अनुकूल आचरण न करने के कारण तथा ब्राह्मणों के सान्निध्य में न रहने के कारण, आगे कही जाने वाली ये क्षत्रिय जातियाँ, धीरे-धीरे शूद्रता को प्राप्त हो गई हैं।। ४३।।

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडा: काम्बोजा यवना: शका:।
पारदा:पह्लवाश्चीना: किराता दरदा: खशा:।। ४४।।

पौण्ड्रादिदेशोद्भवा: सन्त: क्रियालोपादिना शूद्रत्वमापन्ना:।। ४४।।

पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खश, (ये सभी शूद्रत्व को प्राप्त क्षत्रिय जातियाँ हैं)।। ४४।।

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहि:।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाच: सर्वे ते दस्यव: स्मृता:।। ४५।।

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां क्रियालोपादिना या जातयो बाह्या जाता म्लेच्छभाषा-युक्ता आर्यभाषोपेता वा ते दस्यवः सर्वे स्मृताः।। ४५।।

इस संसार में (मुख, बाहू, उरु एवं पैरों से उत्पन्न हुए क्रमशः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में से जो भी अपने कर्त्तव्यों से विमुख होते हैं। भले ही वे आर्यभाषा-भाषी हों या मलेच्छ भाषाभाषी, सभी 'दस्यु' कहे गए हैं।। ४५।।

ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः।
ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः।। ४६।।

ये द्विजानामानुलोम्येनोत्पन्नाः "षडेतेऽपसदाः स्मृताः" (अ० १० श्लो० १०) इति।। तेषामपि पितृतो जघन्यत्वेनापसदशब्देन प्रागभिधानादपध्वंसजास्ते द्विजात्युप-कारकैरेव निन्दितैर्वक्ष्यमाणैः कर्मभिर्जीवेयुः।। ४६।।

'अपसद' आदि जो अनुलोम द्वारा द्विज वर्ण से उत्पन्न हुए हैं तथा जो प्रतिलोम विधि द्वारा उत्पन्न (अपध्वंस) जातियाँ कही गयी हैं। ये सभी द्विजातियों के निन्दित कर्मों को सम्पादित करके ही अपनी जीविकायापन करें।। ४६।।

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम्।
वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः।। ४७।।

सूतानामश्वदमनयोजनादि रथसारथ्यं जीवनार्थम्। अम्बष्ठानां रोगशान्त्यादि चिकित्सा, वैदेहकानामन्तःपुररक्षणम्, मागधानां स्थलपथवणिज्या।। ४७।।

जैसे कि सूतों का कार्य रथ-संचालन करना है, अम्बष्ठों का कार्य चिकित्सा करना है। इसीप्रकार वैदेहों के स्त्री-विषयक नाचना आदि कार्य और मागधों के वाणिज्यविषयक (कार्य कहे गए हैं)।। ४७।।

मत्स्यघातो निषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च।
मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ।।४८।।

निषदानामुक्तानां मत्स्यवधः, आयोगवस्य काष्ठतक्षणं, मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामा-रण्यपशुमारणम्। चुञ्चुर्मद्गूश्च वैदेहकबन्दिस्त्रियोर्ब्राह्मणेन जातौ बौधायनेनोक्तौ बोद्धव्यौ। बन्दिस्त्री च क्षत्रियेण शूद्रायां जाता सोग्रैव ग्राह्या।। ४८।।

इसीप्रकार निषादों का मत्स्याखेट, अयोगव का काष्ठ चीरना तथा मेद, अन्ध्र, चुञ्चु और मद्गू (मार्गव) इनका कार्य जंगली पशुओं का शिकार करना होता है • ।। ४८।।

क्षत्रुग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम्।
धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम्।। ४९।।

क्षत्रादीनां बिलनिवासिगोधादिवधबन्धनं, धिग्वणानां चर्मकरणं "चर्मकार्य तद्विक्रयश्च जीवनं धिग्वणानाम्" इत्यौशनसदर्शनात्। अतएव कारावरेभ्य एषां वृत्तिच्छेद:। वेणानां कांस्यमुरजादिवाद्यभाण्डवादनम्।। ४९।।

इसके अतिरिक्त क्षत्ता, उग्र और पुक्कस जाति के लोगों का कार्य बिल में रहने वाले जीवों का वध एवं बन्धन करना माना गया है। जबकि धिग्वणों को चमड़े का कार्य एवं वेणु जाति के लोगों को मृदङ्गादि बजाने का कार्य करना चाहिए।। ४९।।

चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च।
वसेयुरेते विज्ञाना वर्तयन्त: स्वकर्मभि:।। ५०।।

ग्रामादिसमीपे ख्यातवृक्षश्चैत्यद्रुम: तन्मूले श्मशानपर्वतवनसमीपेषु चामी प्रकाशका: स्वकर्मभिर्जीवन्तो वसेयु:।। ५०।।

अपने-अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित करते हुए ये सभी लोग ग्रामादि के समीप चैत्यवृक्ष के नीचे, श्मशानों में, पर्वतों पर एवं उपवनों में निवास करें ।।५०।।

चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रय:।
अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम्।। ५१।।
वासांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम्।
कार्ष्णायसमलंकार: परिव्रज्या च नित्यश:।। ५२।।

प्रतिश्रयो निवास: चण्डालश्वपाकानां तु ग्रामाद्बहिर्निवास: स्यात्। पात्ररहिता: कर्तव्या यत्र लोहादिपात्रे तैर्भुक्तं तत्संस्कृत्यापि न व्यवहर्तव्यं, धनं चैषां कुक्कुरखरं न वृषभादि, वासांसि च शववस्त्राणि, भिन्नशरावादिषु च भोजनं लौहवलयादि चालंकरणं, सर्वदा च भ्रमणशीलत्वम्।। ५१।। ५२।।

इनमें चाण्डाल एवं श्वपच इन दोनों जातियों के लोगों का निवास गाँव से बाहर होता है। इन्हें पात्रादि से वञ्चित देना चाहिए तथा इनका धन केवल कुत्ता एवं गधा ही होता है।। ५१।।

इन्हें मृत व्यक्ति के वस्त्रों को धारण करना चाहिए तथा टूटे-फूटे बर्तनों में भोजन करना चाहिए एवं लोहे के आभूषणों को पहनना चाहिए और हमेशा घूमते रहना चाहिए।। ५२।।

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन्।
व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह।। ५३।।

धर्मानुष्ठानसमये चण्डालश्वपाकैः सह दर्शनादिव्यवहारं न कुर्यात्। तेषां च ऋणदानग्रहणादिव्यवहारो विवाहश्च समानजातीयैः सहान्योन्यं स्यात्।। ५३।।

धर्म का आचरण करते हुए धर्मात्मा व्यक्ति को इनके साथ मेल-जोल नहीं रखना चाहिए। इन लोगों का आपस में ही व्यवहार होता है तथा विवाह भी अपने समान जाति वालों के साथ ही होता है।। ५३।।

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने।
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च।। ५४।।

अन्नमेषां परायत्तं कार्यं, साक्षादेभ्यो न देयं किन्तु प्रेष्यैर्भिन्नपात्रे दातव्यम्। ते च रात्रौ ग्रामनगरयोर्न पर्यटेयुः।। ५४।।

इनके भोजन भी दूसरे के अधीन होते हैं, जो हमशो टूटे-फूटे बर्तन में ही देने चाहिएँ। साथ ही इन्हें रात्रि में भी गाँव एवं नगरों में नहीं घूमना चाहिए।। ५४।।

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः।। ५५।।

दिवा ग्रामादौ क्रयविक्रयादिकार्यार्थं राजाज्ञया चिह्नाङ्किताः सन्तः पर्यटेयुः। अनाथं च शवं ग्रामान्निर्हरेयुरिति शास्त्रमर्यादा।। ५५।।

अपनी जाति के चिह्न से चिह्नित ये लोग राजा की आज्ञा के अनुसार ही दिन में कार्यवश ग्रामादि में विचरण करें तथा लावारिस शव को ग्राम से बाहर श्मशान में ले जावें, यही शास्त्रीय मर्यादा है।। ५५।।

वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया।
वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च।। ५६।।

वध्यांश्च शास्त्रानतिक्रमेण शूलारोपणादिना सर्वदा राजाज्ञया हन्युस्तद्वस्त्र-शय्यालंकारांश्च गृह्णीयुः।। ५६।।

इसके अतिरिक्त राजा की आज्ञा से जो लोग शास्त्र के निर्देशानुसार हमेशा वध योग्य लोगों का वध करें, वे ही वधयोग्य उन पुरुषों के वस्त्र, शय्या और आभूषण ग्रहण कर लें।। ५६।।

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम्।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत्।। ५७।।

वर्णत्वादपेतं मनुष्यं संकरजातं लोकतस्तथात्वेनाविज्ञातमतएवार्यसदृशं वस्तुत: पुनरनार्यं, निन्दितयोन्यनुरूपाभिश्चेष्टाभिर्वक्ष्यमाणाभिर्निश्चिनुयात्।। ५७।।

ब्राह्मणादि वर्णों से बहिष्कार किए गए, आर्यरूप में प्रतीत होते हुए, किन्तु वस्तुत: अनार्य, दूषित जाति में उत्पन्न, न जान सकने योग्य व्यक्ति की जाति को उसके अपने कार्यों द्वारा पहचान लेना चाहिए।। ५७।।

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम्।। ५८।।

निष्ठुरत्वपरुषभाषित्वहिंस्त्रत्वविहिताननुष्ठातृत्वानि संकरजातित्वं अस्मिँल्लोके प्रकटीकुर्वन्ति।। ५८।।

अशिष्ट व्यवहार, स्वभाव की निष्ठुरता, क्रूरता, धार्मिक क्रियाओं के प्रति निष्क्रियता, ये सभी लक्षण व्यक्ति को इस संसार में नीच-योनि में उत्पन्न हुआ अभिव्यक्त करते हैं।। ५८।।

यस्मात्—

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति।। ५९।।

असौ संकरजातो दुष्टयोनि: पितृसंबन्धि दुष्टस्वभावत्वं सेवते मातृसंबन्धि वोभयसंबन्धि वा। न कदाचिदसावात्मकारणं गोपयितुं शक्नोति।। ५९।।

क्योंकि व्यक्ति अपने स्वभाव को या तो पिता से प्राप्त करता है अथवा माता से या फिर दोनों से ही प्राप्त करता है। इसलिए निकृष्ट जाति में उत्पन्न व्यक्ति किसी भी प्रकार अपने स्वभाव को छिपाने में समर्थ नहीं हो सकता है।। ५९।।

कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसंकरः।
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु।। ६०।।

महाकुलप्रसूतस्यापि यस्य योनिसंकर: प्रच्छन्नो भवति स मनुष्यो जनकस्वभावं स्तोकं प्रचुरं वा सेवत एव।। ६०।।

उत्तम कुल में उत्पन्न होने पर भी जिसकी जाति प्रच्छन्नरूप से वर्णसङ्कर होती है, तो उस व्यक्ति में थोड़ी अथवा अधिक मात्रा में वैसा स्वभाव आ ही जाता है।। ६०।।

यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः।

राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति।। ६१।।

यस्मिन्राष्ट्रे एते वर्णसंकरा वर्णानां दूषका जायन्ते तद्राष्ट्रं राष्ट्रवासिजनैः सह शीघ्रमेव नाशमेति। तस्माद्राज्ञा वर्णानां संकरो निरसनीयः।। ६१।।

जिस राष्ट्र में मर्यादाओं के भङ्ग होने से ये वर्णसङ्कर अधिक उत्पन्न होते हैं। वह राष्ट्र अपने निवासियों के साथ शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।। ६१।।

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः।

स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम्।। ६२।।

गोब्राह्मणस्त्रीबालानामन्यतरस्यापि परित्राणार्थं दुष्टप्रयोजनानपेक्षः प्राणत्यागः प्रतिलोमजानां स्वर्गप्राप्तिकारणम्।। ६२।।

प्रतिलोम विधि से उत्पन्न निकृष्ट जाति के लोग, बिना किसी पुरस्कार भावना से यदि ब्राह्मण, गाय, स्त्री अथवा बालक की रक्षा के लिए अपने शरीर का परित्याग कर दें तो यह उनके लिए स्वर्गसिद्धि का कारण कहा गया है।। ६२।।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

(श्राद्धकर्मातिथेयं च दानमस्तेयमार्जवम्।

प्रजनं स्वेषु दारेषु तथा चैवानसूयता।। १।।)

एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।। ६३।।

हिंसात्यागो, यथार्थाभिधानम्, अन्यायेन परधनस्याग्रहणं, मृज्जलादिना विशुद्धिः, इन्द्रियसंयम इत्येवं धर्मं संक्षेपतश्चातुर्वर्ण्यानुष्ठेयं मनुराह। प्रकरणसामर्थ्यात्संकीर्णानामप्ययं धर्मो वेदितव्यः।। ६३।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), पवित्रता, इन्द्रियों को वश में करना।

(श्राद्धकर्म सम्पादन, अतिथिसत्कार, दान, अस्तेय, सरलता, अपनी पत्नियों में ही सन्तति उत्पन्न करना तथा असूयाभाव न रखना।। १।।)

महर्षि मनु ने ये संक्षेप में चारों वर्णों के धर्म बताए हैं।। ६३।।

इदानीं ''सर्ववर्णेषु तुल्यासु'' (मनु० १० श्लो० ५) इत्युक्तलक्षणव्यतिरेकेणापि ब्राह्मण्यादि दर्शयितुमाह—

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात्।। ६४।।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः पारशवाख्यां वर्णः प्रजायत इति सामर्थ्यात्स्त्रीरूपः स्यात्। सा यदि स्त्री ब्राह्मणेनोढा सती प्रसूयते सा दुहितरमेव जनयति। साप्यन्येन ब्राह्मणेनोढा सती दुहितरमेव जनयति। साप्येवमेव सप्तमे युगे जन्मनि स पारशवाख्यो वर्णो बीजप्राधान्याद्ब्राह्मण्यं प्राप्नोति। आसप्तमाद्युगादित्यभिधानात्सप्तमे जन्मनि ब्राह्मणः संपद्यत इत्यर्थः।। ६४।।

ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति से शूद्र वर्ण की स्त्री में 'पारशव' नामक वर्ण उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुई इन कन्याओं की यदि सात पीढ़ियाँ निरन्तर ब्राह्मण से विवाह करती हैं तो सातवीं पीढ़ी की सन्तान अकल्याणकारी पारशव जाति से कल्याणकारी ब्राह्मण जाति को प्राप्त हो जाती है।। ६४।।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।। ६५।।

एवं पूर्वश्लोकोक्तरीत्या शूद्रो ब्राह्मणतां याति ब्राह्मणश्च शूद्रतामेति। ब्राह्मणोऽत्र ब्राह्मणाच्छूद्रायामुत्पन्नः पारशवो ज्ञेयः। स यदि पुमान्केवलशूद्रोद्वाहेन तस्यां पुमांसमेव जनयति, सोऽपि केवलशूद्रोद्वाहेनापरं पुमांसमेव जनयति, सोऽप्येवं, तदा स ब्राह्मणः सप्तमं जन्म प्राप्तः केवलशूद्रतां बीजनिकर्षात्क्रमेण प्राप्नोति। एवं क्षत्रियाद्वैश्याच्च शूद्रायां जातस्योत्कर्षापकर्षौ जानीयात्। किन्तु जातेरपकर्षात् "जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा" (अ. १ श्लो० ९६) इति याज्ञवल्क्यदर्शनाच्च क्षत्रियाज्जातस्य पञ्चमे जन्मन्युत्कर्षापकर्षौ बोद्धव्यौ। वैश्याज्जातस्य ततोऽप्युत्कर्षात्। याज्ञवल्क्येनापि वा शब्देन पक्षान्तरस्य संगृहीतत्वाद्वृद्धव्याख्यानुरोधाच्च तृतीयजन्मन्युत्कर्षापकर्षौ ज्ञेयौ। अनेनैव न्यायेन ब्राह्मणेन वैश्यायां जातस्य पञ्चमे जन्मन्युत्कर्षापकर्षौ, क्षत्रियायां जातस्य तृतीये, क्षत्रियेण वैश्यायां जातस्य तृतीय एव बोद्धव्यौ।। ६५।।

इसप्रकार (विवाह करने से) शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाता है तथा ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त होता है। इसीप्रकार क्षत्रिय से उत्पन्न सन्तति को भी जानना चाहिए और वैसा ही वैश्य से उत्पन्न को भी मानना चाहिए।। ६५।।

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया।
ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत्।। ६६।।

एकः शूद्रायां यदृच्छया अनूढायामपि ब्राह्मणादुत्पन्नोऽन्यश्च ब्राह्मण्यां शूद्राज्जातः द्वयोर्मध्ये क्व चोत्पन्नस्य श्रेयस्त्वमिति चेत्संशयः स्यात्संशयबीजं च यथा बीजोत्कर्षात्। ब्राह्मणाच्छूद्रायां जातः साधुः शूद्रः, एवं क्षेत्रोत्कर्षाद्ब्राह्मण्यामपि शूद्रेण जातः किमिति साधु शूद्रो न स्यात्।। ६६।।

यदि स्वेच्छापूर्वक (अविवाहित भी) ब्राह्मण के सम्पर्क में आई शूद्र स्त्री की सन्तान तथा शूद्र के सम्पर्क में आई ब्राह्मण स्त्री की सन्तान, इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? यदि ऐसा प्रश्न उत्पन्न हो तो।। ६६।।

तत्र निर्णयमाह—

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः।। ६७।।

शूद्रायां स्त्रियां ब्राह्मणाज्जातः स्मृत्युक्तैः पाकयज्ञादिभिर्गुणैरनुष्ठीयमानैर्युक्तः प्रशस्यो भवति। शूद्रेण पुनर्ब्राह्मण्यां जातः प्रतिलोमत उत्पन्नतया शूद्रधर्मेष्वप्यनधि-कारादप्रशस्य इति निश्चयः। न्यायप्राप्तोऽप्यर्थो वचनप्रामाण्यादत्र बोध्यते।। ६७।।

अनार्या (शूद्र) स्त्री में आर्य (ब्राह्मण) द्वारा उत्पन्न हुई सन्तान निश्चय ही आर्य गुणों से सम्पन्न होगी तथा आर्या (ब्राह्मण) स्त्री में अनार्य (शूद्र) से उत्पन्न सन्तान अनार्य होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं होना चाहिए।। ६७।।

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः।
वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः।। ६८।।

पारशवचण्डालौ द्वावप्यनुपनेयाविति व्यवस्थिता शास्त्रमर्यादा। पूर्वः पारशवः शूद्राजातत्वेन जातिवैगुण्यादनुपनेयः। प्रातिलोम्येन शूद्रेण ब्राह्मण्यां जातत्वा-दित्युत्तरत्वेनानुपनेयः।। ६८।।

इस सम्बन्ध में धर्म की मर्यादा है कि वे दोनों ही उपनयन संस्कार के योग्य नहीं होंगे, क्योंकि शूद्र स्त्री से उत्पन्न होने से इनमें पहला जाति के वैगुण्य से युक्त होगा तथा दूसरा प्रतिलोम से उत्पन्न होने के कारण निकृष्ट जाति वाला होगा।। ६८।।

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा।
तथार्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति।। ६९।।

यथा शोभनबीजं शोभनक्षेत्रे जातं समृद्धं भवत्येवं द्विजातेर्द्विजातिस्त्रियां सवर्णायामानुलोम्येन च क्षत्रियावैश्ययोर्जातः सवर्णसंस्कारं क्षत्रियवैश्यसंस्कारं च सर्वं श्रौतं स्मार्तं चार्हति। नच पारशवचण्डालाविति पूर्वोक्तदार्ढ्यार्थमेतत्।। ६९।।

जिसप्रकार उत्तम बीज को उत्तम क्षेत्र में बोने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है। उसीप्रकार आर्य पुरुष से आर्य स्त्री में उत्पन्न सन्तान ही यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य होती है।। ६९।।

दर्शनान्तराण्युक्तस्थैवार्थस्य स्थैर्यार्थमाह–

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः।। ७०।।

केचित्पण्डिता बीजं स्तुवन्ति, हरिण्याद्युत्पन्नऋष्यशृङ्गादेर्ब्रह्ममुनित्वदर्शनात्। अपरे पुनः क्षेत्रं स्तुवन्ति, क्षेत्रस्वामिपुत्रत्वदर्शनात्। अन्ये पुनर्बीजक्षेत्रे उभे अपि स्तुवन्ति, सुबीजस्य सुक्षेत्रे समृद्धिदर्शनात्। एतस्मिन्मतभेदे वक्ष्यमाणेयं व्यवस्था ज्ञेया।। ७०।।

कुछ विद्वान् बीज की प्रशंसा करते हैं तो दूसरे खेत को महत्त्वपूर्ण मानते हैं, उसीप्रकार अन्य कुछ बीज और खेत दोनों का महत्त्व स्वीकार करते हैं, जबकि इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति यह है कि–।। ७०।।

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति।
अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत्।। ७१।।

ऊषरप्रदेशे बीजमुप्तं फलमददन्तराल एव विनश्यति। शोभनमपि क्षेत्रं बीजरहितं स्थण्डिलमेव केवलं स्यान्न तु सस्यमुत्पद्यते। तस्मात्प्रत्येकनिन्दया "सुबीजं चैव सुक्षेत्रम्" (अ० १० श्लो० ६९) इति प्रागुक्तमुभयप्राधान्यमेवाभिहितम्।। ७१।।

निकृष्ट खेत में बोया हुआ उत्कृष्ट बीज भी अन्दर ही नष्ट हो जाता है तथा बीज के बिना उत्तम खेत भी भूखण्ड मात्र ही बना रहता है।। ७१।।

इदानीं बीजप्राधान्यपक्षे दृष्टान्तमाह–

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते।। ७२।।

यस्माद्बीजमाहात्म्येन तिर्यग्जातिहरिण्यादिजाता अपि ऋष्यशृङ्गादयो मुनित्वं प्राप्ताः, पूजिताश्चाभिवाद्यत्वादिना, वेदज्ञानादिना प्रशस्ता वाचा संस्तुतास्तस्माद्बीजं प्रस्तूयते। एतच्च बीजप्राधान्यनिगमनं बीजयोन्योर्मध्ये बीजोत्कृष्टा जातिः प्रधान-मित्येवंपरतया बोद्धव्यम्।। ७२।।

क्योंकि बीज के प्रभाव से ही तिर्यक् योनि (मृगादि) से उत्पन्न हुए भी (ऋष्यशृङ्ग आदि) ऋषि पूजनीय एवं प्रशंसनीय हुए। इसलिए बीज की ही वस्तुतः प्रशंसा की जाती है।। ७२।।

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम्।
संप्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति।। ७३।।

शूद्रं द्विजातिकर्मकारिणं द्विजातिं च शूद्रकर्मकारिणं ब्रह्मा विचार्य "न समौ नासमौ" इत्यवोचत्। यतः शूद्रो द्विजातिकर्मापि न द्विजातिसमः, तस्यानधिकारिणो द्विजातिकर्माचरणेऽपि तत्साम्याभावात्। एवं शूद्रकर्मापि द्विजातिर्न शूद्रसमः, निषिद्ध-सेवनेन जात्युत्कर्षस्यानपायात्। नाप्यसमौ निषिद्धाचरणेनोभयोः साम्यात्। तस्माद्यद्यस्य विगर्हितं तत्तेन न कर्तव्यमिति संकरपर्यन्तवर्णधर्मोपदेशः।। ७३।।

आर्यों के कर्म करने वाले अनार्यों के तथा अनार्यों के कर्म करने वाले आर्यों के सम्बन्ध में भलीप्रकार विचार करके एक बार ब्रह्मा ने कहा कि ऐसा करने से ये दोनों न तो एक समान हो सकते हैं और न ही असमान कहे जा सकते हैं।। ७३।।

इदानीं ब्राह्मणानामापद्धर्मं प्रतिपादयिष्यन्निदमाह—

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः।
ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्माणि यथाक्रमम्।। ७४।।

ये ब्राह्मणा ब्रह्मप्राप्तिकारणब्रह्मध्याननिष्ठाः स्वकर्मानुष्ठाननिरताश्च ते षट् कर्माणि वक्ष्माणान्यध्यापनादीनि क्रमेण सम्यगनुतिष्ठेयुः।। ७४।।

क्योंकि जो ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण अपने कर्मों में अवस्थित हैं। वे सभी क्रमशः इन षट्कर्मों द्वारा भलीप्रकार अपनी आजीविका-यापन करें।। ७४।।

तानि कर्माण्याह—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः।। ७५।।

अध्यापनाध्ययने साङ्गस्य वेदस्य, तथा यजनयाजने, दानप्रतिग्रहौ चेत्येतानि षट् कर्माणि ब्राह्मणस्य वेदितव्यानि।। ७५।।

वेदों का अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान देना, दान ग्रहण करना, ये छः कर्म ब्राह्मणों के समझने चाहिएँ।। ७५।।

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः।। ७६।।

अस्य ब्राह्मणस्यैषामध्यापनादीनां षण्णां कर्मणां मध्याद्याजनमध्यापनं विशुद्धप्रतिग्रहः ''द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत्प्रशस्तेभ्यो द्विजः'' इति वचनिर्देशाद्विजातेः प्रतिग्रह इत्येतानि त्रीणि कर्माणि जीवनार्थानि ज्ञेयानि।। ७६।।

इन छः कर्मों में से तीन कर्म इस ब्राह्मण की जीविका के लिए निर्धारित किए गए हैं–यज्ञ कराना, (वेदों को) पढ़ाना तथा विशुद्ध कर्म करने वाले लोगों से दान ग्रहण करना।। ७६।।

त्रयो धर्मानिवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति।

अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः।। ७७।।

ब्राह्मणापेक्षया क्षत्रियस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहाख्यानि वृत्त्यर्थानि त्रीणि कर्माणि निवर्तन्ते। अध्ययनयागदानानि तु तस्यापि भवन्ति।। ७७।।

क्षत्रिय के सम्बन्ध में, पढ़ाना, यज्ञ कराना तथा तीसरा दान ग्रहण करना, ब्राह्मणों के ये तीनों कर्म छूट जाते हैं।। ७७।।

वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः।

न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः।। ७८।।

यथा क्षत्रियस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहा निवर्तन्ते तथा वैश्यस्यापीति शास्त्रव्यवथा। यस्मान्मनुः प्रजापतिस्तौ क्षत्रियवैश्यौ प्रति तानि वृत्त्यर्थानि कर्माणि कर्तव्यत्वेन नोक्तवान्। एवं वैश्यस्याप्यध्ययनयागदानानि भवन्ति।। ७८।।

उसीप्रकार ये तीनों कर्म (अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह) वैश्य के सम्बन्ध में भी छूट जाते हैं, ऐसी व्यवस्था है, क्योंकि प्रजापति मनु ने इन दोनों वर्णों के लिए उन धर्मों का (कर्मों का) उपदेश नहीं किया है।। ७८।।

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः।

आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः।। ७९।।

शस्त्रं खड्गादि अस्त्रं बाणादि एतद्धारणं प्रजारक्षणाय क्षत्रियस्य च वृत्त्यर्थम्। वाणिज्यपशुरक्षणकृषिकर्माणि वैश्यस्य जीवनार्थानि। धर्मार्थाः पुनरनयोर्दानाध्ययनयागा भवन्ति।। ७९।।

इसके अतिरिक्त आजीविका के लिए, क्षत्रिय को शस्त्रास्त्र धारण करना तथा वैश्य को व्यापार, पशुपालन एवं कृषिकार्य करना, ये कर्म बताए गए हैं। जबकि दान देना, अध्ययन करना एवं यज्ञादि कराना तो इन दोनों के अनिवार्य सामान्यधर्म ही हैं।। ७९।।

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम्।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु।। ८०।।

वेदाभ्यासो वेदाध्यापनं रक्षावार्ताभ्यां वृत्यर्थाभ्यां सहोपदेशात्तद्ब्राह्मणस्य, प्रजारक्षणं क्षत्रियस्य, वाणिज्यं पाशुपाल्यं वैश्यस्य, एतान्येतेषांवृत्त्यर्थकर्मसु श्रेष्ठानि।। ८०।।

इन सभी अपने-अपने कार्यों में ब्राह्मण का विशिष्टकर्म वेदों का अध्ययन करना है तथा क्षत्रिय का विशिष्ट कार्य रक्षा करना है एवं वैश्य का केवल व्यापार करना ही विशेष कार्य है।। ८०।।

अधुना आपद्धर्ममाह—

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः।। ८१।।

यथोक्तेनाध्यापनादिस्वकर्मणा ब्राह्मणो नित्यकर्मानुष्ठानकुटुम्बसंवर्धन-पूर्वकमजीवन्, क्षत्रियकर्मणा ग्रामनगररक्षणादिना जीवेत्। यस्मात्क्षत्रियधर्मोऽस्य संनिकृष्टा वृत्तिः।। ८१।।

पूर्व में कहे गए अध्यापनादि अपने निर्धारित कार्यो द्वारा यदि ब्राह्मण को आजीविका प्राप्त न हो तो उसे क्षत्रियकर्म (रक्षा कार्य) द्वारा अपना जीवन यापन करना चाहिए, क्योंकि वही वर्ण इसके सर्वाधिक निकट है।। ८१।।

उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत्।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम्।। ८२।।

ब्राह्मण उभाभ्यां स्ववृत्तिक्षत्रियवृत्तिभ्यामजीवन्केन प्रकारेण वर्तेतेति यदि संशयः स्यात्तदा कृषिपशुरक्षणे आश्रित्य वैश्यस्य वृत्तिमनुतिष्ठेत्। कृषिगोरक्षग्रहणं वाणिज्यदर्शनार्थम्। तथाच विक्रेयाणि वक्ष्यति। स्वयंकृतं चेदं कृष्यादि ब्राह्मणापद्वृत्तिः। अस्वयंकृतस्य "ऋतामृताभ्यां जीवेत" (अ० ४ श्लो० ४) इत्यनापद्येव विहित-त्वात्।। ८२।।

और यदि इन दोनों उपायों से भी उसकी आजीविका सम्भव न हो तो उसे क्या करना चाहिए, ऐसी जिज्ञासा होने पर, 'वह कृषि तथा पशुपालन का आश्रय लेकर ही वैश्य की अजीविका से जीवन धारण करे' ऐसी व्यवस्था है।। ८२।।

संप्रति कृष्यादेर्बलाबलमाह—

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा।
हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत्।। ८३।।

ब्राह्मण: क्षत्रियोऽपि वा वैश्यवृत्त्यापि जीवन्भूमिष्ठजन्तुहिंसाबहुलां बलीवर्दादिपराधीनां कृषिं यत्नतस्त्यजेत्। अत: पशुपालनाद्यभावे कृषि: कार्येति द्रष्टव्यम्। क्षत्रियोऽपि वा इत्युपादानात्क्षत्रियस्याप्यात्मीयवृत्त्यभावे वैश्यवृत्तिरस्तीत्यभिगम्यते।। ८३।।

वैश्य की आजीविका द्वारा जीवनयापन करता हुआ ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वर्ण का व्यक्ति हिंसायुक्त एवं पराधीन कृषिकार्य का प्रयत्नपूर्वक परित्याग करे।। ८३।।

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्ति: सद्विगर्हिता।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम्।। ८४।।

साध्विदं जीवनमिति कृषिं केचिन्मन्यन्ते, सा पुनर्जीविका साधुभिर्निन्दिता, यस्माद्धलकुद्दालादिलोहप्रान्तं काष्ठं भूमिं भूमिष्ठजन्तूंश्च हन्ति।। ८४।।

कुछ लोग 'कृषिकार्य श्रेष्ठ है' ऐसा मानते हैं, किन्तु सज्जनों द्वारा इस आजीविका की निन्दा की गयी है, क्योंकि इस कार्य में लोहे के मुख वाला हल पृथ्वी को एवं उसमें शयन करने वाले जीवों को विनष्ट कर डालता है।। ८४।।

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम्।
विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम्।। ८५।।

ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य चात्मीयवृत्तेरसंभवे, धर्मं प्रति यथोक्तनिष्णातत्त्वं त्यजतो वैश्येन यद्विक्रेतव्यं द्रव्यजातं तद्वक्ष्यमाणवर्जनीयवर्जितं धनवृद्धिकरं विक्रेयम्।। ८५।।

इसलिए अपनी आजीविका के अभाव में अपनी शास्त्रोक्त धर्मनिष्ठा का परित्याग करते हुए, ब्राह्मण अथवा क्षत्रियवर्ण का व्यक्ति निषिद्ध वस्तुओं को छोड़कर, धन की वृद्धि करने वाली, बेचने योग्य वस्तुओं का विक्रय करते हुए वैश्य वर्ण के व्यापार को करे।। ८५।।

तानि वर्जनीयान्याह—

सर्वान् रसानपोहेत कृतान्नं च तिलै: सह।
अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषा:।। ८६।।

सर्वानचोद्यमानानधर्मान् यथा सिद्धार्थतिलपाषाणलवणपशुमनुष्यान् न विक्रीणीत रसत्वेनैव लवणस्य निषेधसिद्धौ विशेषेण निषेधो दोषगौरवज्ञापनार्थ:। तच्च प्रायश्चित्तगौरवार्थमेवमन्यस्यापि पृथङ्निषेधो व्याख्येय:।। ८६।।

वैश्य वर्ण द्वारा निर्धारित व्यापार को करते समय उन्हें सभी छ: रसों, तिल

सहित पकाया हुआ अन्न, पत्थर, नमक एवं मनुष्य का उपकार करने वाले पालतू पशुओं के व्यापार का परित्याग कर देना चाहिए।। ८६।।

सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च।
अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः।। ८७।।

सर्वं तन्तुनिर्मितं वस्त्रं कुसुम्भादिरक्तं वर्जयेत्। शणक्षुमातन्तुमयान्याविकलोम-भवानि च यद्यलोहितान्यपि भवेयुस्तथापि न विक्रीणीत। तथा फलमूलागुडूच्यादीनि वर्जयेत्।। ८७।।

इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के रङ्गीन वस्त्र, सन, रेशम और भेड़ की ऊन से बने हुए वस्त्र यदि वे बिना रंगे हुए भी हों, उनको तथा कन्दमूल, फल एवं औषधि आदि को भी (विक्रय कार्य में छोड़ देना चाहिये)।। ८७।।

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः।
क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान्।। ८८।।

जललोहविषमांससोमक्षीरदधिघृततैलगुडदर्भान् तथा गन्धवन्ति सर्वाणि कर्पूरादीनि, क्षौद्रं माक्षिकं, मधु मधूच्छिष्टं "सभ्रामरमधूच्छिष्टम्" इति याज्ञवल्क्येन पठितं वर्जयेत्।। ८८।।

साथ ही उन्हें जल, शस्त्र, विष, माँस, सोमरस, सभी सुगन्धित पदार्थ, दूध, शहद, दही, घी, तेल, गुड़ एवं कुशों के (विक्रय का भी परित्याग करना चाहिए)।। ८८।।

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च।
मद्यं नीलिं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा।। ८९।।
(त्रपुसीसं तथा लोहं तैजसानि च सर्वशः।
बालांश्चर्म तथास्थीनि सस्नायूनि विवर्जयेत्।। २।।

आरण्यान्सर्वान्पशून्हस्त्यादीन्, दंष्ट्रिणः सिंहादीन्, तथा पक्षिजलजन्तून्, मद्यादीन्, एकशफांश्चाश्वादीन् न विक्रीणीत।। ८९।।

इसके अलावा वे सभी प्रकार के जंगली पशु, हाथी आदि एवं दाढ़ वाले पशु शेरादि, पक्षियों, नील, लाख तथा एक खुर वाले गधे, घोड़े आदि के विक्रय का भी परित्याग कर देवें।। ८९।।

(इसके अतिरिक्त उन्हें रांगा, सीसा, लोहा आदि सभी तैजस् पदार्थों, बाल, चर्म, स्नायु सहित हड्डियों को बेचने का भी परित्याग कर देना चाहिए।। २।।)

कामममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः।
विक्रीणीत तिलाञ्छूद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान्।। ९०।।

कर्षकः स्वयमेव कर्षणेन तिलानुत्पाद्य, द्रव्यान्तरेण मिश्रानुत्पत्यनन्तरमेव नतु लाभार्थं कालान्तरं प्रतीक्ष्य, धर्मनिमित्तमिच्छतो विक्रीणीत, निषिद्धस्य तिलविक्रयस्य धर्मार्थमयं प्रतिप्रसवः।। ९०।।

खेती में किसान लोग स्वयं ही पर्याप्त मात्रा में अन्य वस्तुओं के साथ तिलों का उत्पादन करके, पवित्र धार्मिककार्य हवनादि के लिए इन्हें शीघ्र ही विक्रय कर देवें।। ९०।।

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः।
कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति।। ९१।।

भोजनाभ्यङ्गदानव्यतिरिक्तं यदन्यन्निषिद्धं विक्रयादि तिलानां कुरुते, तेन पितृभिः सह कृमित्वं प्राप्तः कुक्कुरपुरीषे मज्जति।। ९१।।

भोजन, प्रसाधन एवं दान के अलावा यदि व्यक्ति तिलों से अन्य कार्य करता है तो वह कुत्ते की विष्ठा में कीड़ा बनकर अपने पितरों सहित डूबता है।। ९१।।

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्।। ९२।।

मांसलाक्षालवणविक्रयैर्ब्राह्मणस्तत्क्षणादेव पततीति दोषगौरवव्याख्यानार्थमतेत्, पञ्चानामेव महापातकिनां पातित्यहेतूनां वक्ष्यमाणत्वात्। क्षीरविक्रयात्त्र्यहेण शूद्रतां प्राप्नोति। एतदपि दोषगौरवात्प्रायश्चित्तगौरवख्यापनार्थम्।। ९२।।

माँस, लाख और नमक का विक्रय करने से ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति शीघ्र ही पतित हो जाता है। जबकि दूध का विक्रय करने से तो वह तीन दिन में ही शूद्र हो जाता है।। ९२।।

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः।
ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति।। ९३।।

ब्राह्मण उक्तेभ्यो मांसादिभ्योऽन्येषां प्रतिषिद्धानां पण्यानामिच्छातो नतु प्रमादाद्-द्रव्यान्तरसंश्लिष्टानां सप्तरात्रविक्रयणेन वैश्यत्वं गच्छति।। ९३।।

इसके अलावा मांसादि उपर्युक्त निषिद्ध वस्तुओं का इच्छानुसार विक्रय करने वाला ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति, इस संसार में वस्तुतः सात रात्रियों में ही वैश्यभाव को प्राप्त हो जाता है।। ९३।।

रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः।
कृतान्नं चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः।। ९४।।

रसा गुडादयो रसैर्घृतादिभिः परिवर्तनीयाः। लवणं पुना रसान्तरेण न परिवर्तनीयं, सिद्धान्नं चामान्नेन परिवर्तनीयं, तिला धान्येन धान्यप्रस्थेनेत्येवं तत्समाः परिवर्तनीयाः ।।९४।।

लोगों को रसनिर्मित पदार्थों गुडादि को, रस द्वारा निर्मित पदार्थों घी आदि के साथ ही बदलने चाहिएँ तथा नमक को अन्य रसादि के साथ नहीं बदलना चाहिए। इसीप्रकार पके हुए अन्न को कच्चे अन्न से तथा तिलों को उसीप्रकार के अन्य धान्य से बदला जा सकता है।। ९४।।

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः।
न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित्।। ९५।।

क्षत्रियः आपदं प्राप्तः एतेनेत्यभिधाय सर्वेण इत्यभिधानाद्ब्राह्मणगोचरतया निषिद्धेनापि रसादिविक्रयणेन वैश्यवज्जीवेन्न पुनः कदाचिद्ब्राह्मणजीविकामाश्रयेत्। न केवलं क्षत्रियः क्षत्रियवदन्योऽपि।। ९५।।

आपत्ति को प्राप्त हुआ क्षत्रियवर्ण का व्यक्ति, इन सभी निषिद्ध वस्तुओं के विक्रय से भी जीविका यापन कर सकता है, किन्तु किसी भी स्थिति में वह अपने से श्रेष्ठ ब्राह्मण की वृत्ति को स्वीकार नहीं कर सकता है।। ९५।।

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः।
तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत्।। ९६।।

यो निकृष्टजातिः सन्, लोभादुत्कृष्टजातिविहितकर्मभिर्जीवेत्तं राजा गृहीतसर्वस्वं कृत्वा तदानीमेव देशान्निःसारयेत्।। ९६।।

निकृष्ट जाति का जो व्यक्ति लोभवश उत्कृष्ट जाति की आजीविका को स्वीकार करके जीवनयापन करता है तो राजा को उसे पूर्णतया निर्धन बनाकर शीघ्र ही अपने राज्य से निकाल देना चाहिए।। ९६।।

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः।। ९७।।

विगुणमपि स्वकर्म कर्तुं न्याय्यं, न परकीयं संपूर्णमपि। यस्माज्जात्यन्तरविहितकर्मणा जीवन् तत्क्षणादेव स्वजातितः पततीति दोषो वर्जनार्थः।। ९७।।

क्योंकि निकृष्ट होते हुए भी अपना धर्म श्रेष्ठ होता है, जबकि भलीप्रकार किया गया भी दूसरे का धर्म अच्छा नहीं होता है। इसलिए दूसरे के धर्म से जीवन धारण करता हुए व्यक्ति शीघ्र ही अपनी जाति से पतित हो जाता है।। ९७।।

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्तयेत्।
अनाचरन्नकार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान्।। ९८।।

वैश्यः स्ववृत्त्या जीवितुमशक्नुवन् शूद्रवृत्त्यापि द्विजातिशुश्रूषयोच्छिष्ट-भोजनादीन्यकुर्वन् वर्तेत निस्तीर्णापत्क्रमशः शूद्रवृत्तितो निवर्तेत।। ९८।।

अपने धर्म से आजीविका यापन न करता हुआ वैश्य, निषिद्धकार्यों का परित्याग करते हुए शूद्र की वृत्ति द्वारा भी जीवनयापन कर सकता है, किन्तु सामर्थ्यसम्पन्न होने पर उसे शूद्र-वृत्ति (सेवाकार्य) को छोड़ देना चाहिए।। ९८।।

अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम्।
पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः।। ९९।।

शूद्रः द्विजातिशुश्रूषां कर्तुमक्षमः क्षुदवसन्नपुत्रकलत्रः सूपकारा- दिकर्मभिर्जीवेत् ।।९९।।

यदि शूद्र वर्ण का व्यक्ति द्विजवर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा करने में किसीकारण समर्थ न हो तो अपने पुत्र व पत्नी आदि की उदरपूर्ति के लिए उसे कारीगरी (कारुककर्म) द्वारा जीविकायापन करना चाहिए।। ९९।।

यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः।
तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च।। १००।।

पूर्वोक्तकारुककर्मविशेषाभिधानार्थमिदम्। यैः कर्मभिः कृतैर्द्विजातयः परिचर्यन्ते तानि च कर्माणि तक्षणादीनि शिल्पानि च चित्रलिखितादीनि नानाप्रकाराणि कुर्यात्।। १००।।

वे कारुककर्म विविधप्रकार के शिल्पकर्मों के अन्तर्गत ही आते हैं, जिन कर्मों का आचरण करने से वस्तुतः द्विजाति लोग ही सेवा किए जाते हैं।। १००।।

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः।
अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत्।। १०१।।

ब्राह्मणो वृत्त्यभावपीडितोऽवसादं गच्छन् क्षत्रियवैश्यवृत्तिमनातिष्ठन् "वरं स्वधर्मो विगुणः" (अ० १० श्लो० ९७) इत्युक्तत्वात्स्ववृत्तावेव वर्तमान इमां वक्ष्यमाणां वृत्ति-मनुतिष्ठेत्। अतश्च विगुणप्रतिग्रहादिस्ववृत्त्यसंभवे परवृत्त्याश्रयणं ज्ञेयम्।। १०१।।

आजीविका के अभाव में अपने धर्म में स्थित हुआ ब्राह्मण, दु:खी होते हुए भी यदि वैश्य की वृत्ति स्वीकार नहीं करता है, तो वह इस धर्म का आचरण करे।। १०१।।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः।
पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते।। १०२।।

ब्राह्मण आपदं प्राप्तः सर्वेभ्योऽपि निन्दिततमेभ्यः क्रमेण प्रतिग्रहं कुर्यात् अत्रार्थान्तरन्यासो नामालंकारः। यस्मात्पवित्रं गङ्गादि रथ्योदकादिना दुष्यतीत्येतच्छास्त्रस्थित्या नोपपद्यते।। १०२।।

धर्मशास्त्र की दृष्टि से यह बात सिद्ध नहीं होती है कि अपवित्र वस्तु के मेल से पवित्र वस्तु दूषित हो जाती है। इसलिए आपत्तिग्रस्त ब्राह्मण सभी वर्णों के निषिद्ध लोगों से भी दान स्वीकार कर लेवे।। १०२।।

यस्मात्—

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात्।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते।। १०३।।

ब्राह्मणानामापदि गर्हिताध्यापनयाजनप्रतिग्रहैरधर्मो न भवति। यस्मात्स्वभावतः पवित्रत्वेनाग्न्युदकतुल्यास्ते।। १०३।।

इसीलिए आपत्तिकाल में ब्राह्मण को निन्दित व्यक्ति को भी पढ़ाने, यज्ञ कराने अथवा दान ग्रहण करने से दोष नहीं होता है, क्योंकि वे ब्राह्मण स्वभाव से ही अग्नि एवं जल के समान पवित्र होते हैं।। १०३।।

जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः।
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते।। १०४।।

यः प्राणात्ययं प्राप्तः प्रतिलोमजादन्नमश्नाति सोऽन्तरिक्षमिव कर्दमेन पापेन न संबध्यते।। १०४।।

प्राणों के संकट में पड़ने पर जो ब्राह्मण इधर-उधर से (अपवित्र) भोजन भी ग्रहण करता है, वह कीचड़ से आकाश के समान उस पाप से लिप्त नहीं होता है।। १०४।।

अत्र परकृतिरूपार्थवादमाह—

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः।
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन्।। १०५।।

ऋषिरजीगर्ताख्यो बुभुक्षितः सन्, पुत्रं शुनःशेपनामानं स्वयं विक्रीतवान् यज्ञे गोशतलाभाय यज्ञयूपे बद्धा विशसिता भूत्वा हन्तुं प्रचक्रमे। न च क्षुत्प्रतीकारार्थं तथा कुर्वन्पापेन लिप्तः। एतच्च बह्वृचब्राह्मणे शुनःशेपाख्यानेषु व्यक्तमुक्तम्।। १०५।।

क्योंकि प्राचीनकाल में भूख से पीड़ित हुए अजीगर्त नामक ऋषि अपने पुत्र को ही मारने को उद्यत हो गए थे, किन्तु वे भूख के प्रतीकार हेतु ऐसे उपाय का आचरण करते हुए पाप से लिप्त नहीं हुए।। १०५।।

श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान्।। १०६।।

वामदेवाख्य ऋषिर्धर्माधर्मज्ञः क्षुधार्तः प्राणत्राणार्थं श्वमांसं खादितुमिच्छन्दोषेण न लिप्तवान्।। १०६।।

इसीप्रकार धर्म एवं अधर्म को भलीप्रकार जानने में समर्थ भूख से व्याकुल हुए महर्षि वामदेव अपने प्राणों की रक्षा के लिए, कुत्ते के माँस को खाने की इच्छा करते हुए भी पाप से लिप्त नहीं हुए।। १०६।।

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः।। १०७।।

भरद्वाजाख्यो मुनिः महातपस्वी पुत्रसहितो निर्जने वनेऽरण्ये उषित्वा क्षुत्पीडितो वृधुनाम्नस्तक्ष्णो बह्वीर्गाः प्रतिगृहीतवान्।१०७।।

इसके अतिरिक्त भूख से पीड़ित हुए, महातपस्वी भरद्वाज ऋषि ने निर्जन वन में, वृधु नामक बढ़ई की अनेक गायों को दानस्वरूप ग्रहण किया, किन्तु फिर भी वे पतित नहीं हुए।। १०७।।

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम्।
चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः।। १०८।।

ऋषिर्विश्वामित्रो धर्माधर्मज्ञः क्षुत्पीडितश्चण्डालहस्ताद्गृहीत्वा कुक्कुरजघनमांसं भक्षितुमध्यवसितवान्।। १०८।।

इसीप्रकार धर्म एवं अधर्म के विशिष्ट ज्ञाता, विश्वामित्र नामक ऋषि, भूख से व्याकुल होकर, कुत्ते की जाँघ का माँस चाण्डाल के हाथ से लेकर, खाने के लिए प्रयत्नशील हो गये, (किन्तु उन्हें इससे पाप नहीं लगा)।। १०८।।

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः।। १०९।।

गर्हितानामप्यध्यापनयाजनप्रतिग्रहाणां मध्याद्ब्राह्मणस्यासत्प्रतिग्रहो निकृष्टः परलोके नरकहेतुः। ततश्चापदि प्रथमं निन्दिताध्यापनयाजनयोः प्रवर्तितव्यं तदसंभवे त्वसत्प्रतिग्रहः इत्येवंपरमेतत्।। १०९।।

इसके अलावा दान ग्रहण करने अथवा यज्ञ कराने से एवं उसीप्रकार अध्यापन करने (इन तीनों में) से, ब्राह्मण का पतित व्यक्ति से दान लेना अत्यधिक निन्दित होता है जो मृत्यु के उपरान्त भी अत्यन्त कष्ट देने वाला है।। १०९।।

अत्र हेतुमाह—

याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम्।
प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः।। ११०।।

याजनाध्यापने आपद्यनापदि च उपनयनसंस्कृतात्मनां द्विजातीनामेव क्रियेते। प्रतिग्रहः पुनर्निकृष्टजातेः शूद्रादपि क्रियते तस्मादसौ ताभ्यां गर्हितः।। ११०।।

क्योंकि यज्ञ कराना तथा वेदों का अध्यापन ये दोनों हमेशा उपनयन संस्कार द्वारा पवित्र लोगों के ही किए जाते हैं, जबकि दान तो वे नीच शूद्र से भी ले लेते हैं (इसीलिए उसे निन्दित कहा गया है)।। ११०।।

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम्।
प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च।। १११।।

एनोग्रहणादसत्प्रतिग्रहयाजनाध्यापनैर्यदुपपन्नं पापं तत्प्रायश्चित्तप्रकरणे वक्ष्यमाणक्रमेण जपहोमैर्नश्यति। असत्प्रतिग्रहजनितं पुनः प्रतिगृहीतद्रव्यत्यागेन 'मासं गोष्ठे पयः पीत्वा' इत्येवमादिवक्ष्यमाणतपसापगच्छति।। १११।।

निन्दित व्यक्ति को पढ़ाने एवं यज्ञ कराने से किया हुआ पाप, जप तथा हवन करने से नष्ट हो जाता है, जबकि पतित व्यक्ति से लिए हुए दान से उत्पन्न हुए पाप की निवृत्ति तो त्याग और तपस्या से ही होती है।। १११।।

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः।
प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते।। ११२।।

ब्राह्मणः स्ववृत्त्याऽजीवन्यतस्ततोऽपि शिलोञ्छं गृह्णीयान्न तु तत्संभवेऽसत्प्रतिग्रहं कुर्यात्। यस्मादसत्प्रतिग्रहाच्छिलः प्रशस्तः। मञ्जर्यात्मकानेकधान्योन्नयनं शिलस्ततोऽप्युञ्छः श्रेष्ठः। एकैकधान्यादिगुडकोच्चयनमुञ्छः।। ११२।।

इसलिए आजीविका के अभाव में ब्राह्मण को इधर-उधर से अन्न की बालियाँ

चुनना भी स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि पतित से दान ग्रहण करने की अपेक्षा बालियाँ बीनना भी श्रेयष्कर माना गया है। इतना ही नहीं उस बालियाँ बीनने की अपेक्षा खेत में पड़े एक-एक अन्न-कण को चुनने की भी विद्वानों ने प्रशंसा की है।।११२।।

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धने वा पृथिवीपतिः।
याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति।। ११३।।

स्नातकैर्ब्राह्मणैर्धनाभावाद्धर्मार्थं कुटुम्बावसादं गच्छद्भिः सुवर्णरजतव्यतिरिक्तं धान्यवस्त्रादि कुप्यं धनं यागाद्युपयुक्तं हिरण्याद्यप्यापत्प्रकरणात्क्षत्रियोऽप्युच्छास्त्रवर्ती याचितव्यः स्यात्। यश्च दातुं नेच्छति कृपणत्वेनावधारितः स त्याज्यो न याचनीय इत्यर्थः। मेधातिथिगोविन्दराजौ तु "त्यागमर्हतीति तस्य देशे न वस्तव्यम्" इति व्याचक्षाते।। ११३।।

इसके अतिरिक्त आजीविका के लिए अत्यन्त दुःखी हुए स्नातक ब्राह्मणों को अपने राजा से अन्न एवं वस्त्रादि की याचना करनी चाहिए, किन्तु कृपणता आदि के कारण दान न देता हुआ राजा परित्याग करने योग्य होता है।। ११३।।

अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च।
हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत्।। ११४।।

अकृतमनुप्तसस्यं क्षेत्रं तत्कृतादुप्तसस्यात्प्रतिग्रहे दोषरहितं तथा गोछागमेष-हिरण्यधान्यसिद्धान्नानां मध्यात्पूर्वं पूर्वमदुष्टम्। ततश्चैषां पूर्वपूर्वासंभवे परः परो ज्ञेयः ।। ११४।।

बिना जुता खेत अथवा जुता हुआ खेत, गाय, बकरी, भेड़, सोना, धान्य और अन्न, इनमें से क्रमशः पूर्व-पूर्व वस्तु का दान ग्रहण करना दोषरहित होता है।। ११४।।

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च।। ११५।।

दायाद्याः सप्त धनागमाः यथाधनाधिकारं धर्मादनपेताः तत्र दायोऽन्वयागतधनं, लाभो निध्यादेः मैत्र्यादिलब्धस्य च, क्रयः प्रसिद्धः, एते त्रयश्चतुर्णामपि वर्णानां धर्म्याः। जयधनं विजयत्वेन क्षत्रियस्य, धर्म्यः प्रयोगो वृद्ध्यादिधनस्य, कर्मयोगश्च कृषिवाणिज्ये, एतौ प्रयोगौ वैश्यस्य धर्म्यौ, सत्प्रतिग्रहो ब्राह्मणस्य धर्म्यः। एवं चैतेषां धर्मत्ववचनादेतदभावेऽन्येष्वनापद्विहितेषु वृत्तिकर्मसु प्रवर्तितव्यम्। तद्भावे चापद्विहितेषु प्रकृतेष्वित्येतदर्थमेतदिहोच्यते।। ११५।।

इसके अलावा वंशपरम्परा से प्राप्त धन, व्यापारादि से प्राप्त लाभ, क्रय करने से प्राप्त वस्तु (रूप धन), युद्ध में जीता हुआ धन, ब्याजादि से मिला हुआ धन एवं परिश्रम से प्राप्त होने वाला धन और उत्तम दान, ये सात ही वस्तुतः धन प्राप्ति के धर्मसम्मत उपाय माने गए हैं।। ११५।।

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः।। ११६।।

आपत्प्रकरणाज्जीवनहेतव इति निर्देशादेषां मध्ये यया वृत्त्या यस्यानापदि न जीवनं तया तस्यापद्यभ्यनुज्ञायते। यथा ब्राह्मणस्य भृतिसेवादि। एवं शिल्पादावपि ज्ञेयम्। विद्या वेदविद्याव्यतिरिक्ता वैद्यतर्कविषापनयनादिविद्या सर्वेषामापदि जीवनार्थं न दुष्यति। शिल्पं गन्धयुक्त्यादिकरणं, भृतिः प्रैष्यभावेन वेतनग्रहणं, सेवा पराज्ञासंपादनं, गोरक्ष्यं पशुपाल्यं, विपणिर्वणिज्या, कृषिः स्वयं कृता, वृत्तिः संतोषस्तस्मिन्स-त्यल्पकेनापि जीव्यते, भैक्ष्यं भिक्षासमूहः, कुसीदं वृद्ध्या धनप्रयोगः स्वयं कृतोऽपीत्येभिर्दशभिरापदि जीवनीयम्।। ११६।।

इसके अतिरिक्त विद्या, शिल्प, नौकरी, सेवाकार्य, गायों की रक्षा (गोपालन) व्यापार, कृषि, धैर्य, भिक्षा और ब्याज, ये दस व्यक्ति के जीवनयापन के उपाय होते हैं।। ११६।।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत्।
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम्।। ११७।।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्ध्यादिधनमापद्यपि न प्रयुञ्जीत किंतु निकृष्टकर्मणा धर्मार्थमल्पिकया वृद्ध्या प्रयुञ्जीत।। ११७।।

यद्यपि ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय को कभी भी आजीविका हेतु ब्याज का लेन-देन नहीं करना चाहिए, किन्तु धार्मिककार्यों के लिए आवश्यकता होने पर वे निकृष्ट व्यक्ति को भी थोड़ा धन उधार दे सकते हैं।। ११७।।

इदानीं राज्ञामापद्धर्ममाह—

चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि।
प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते।। ११८।।

राज्ञो धान्यादीनामष्टम इत्याद्युक्तं स आपदि धन्यादेश्चतुर्थमपि भागं करार्थं गृह्णन्परया शक्त्या प्रजा रक्षन्नधिककरग्रहणपापेन न संबध्यते।। ११८।।

आपत्काल में आय का चतुर्थ भाग ग्रहण करता हुआ भी क्षत्रिय (राजा) अपनी सामर्थ्य से कहीं अधिक प्रजा की रक्षा करता हुआ, उससे प्राप्त होने वाले पाप से विमुक्त हो जाता है।। ११८।।

कस्मात्पुनरापद्यपि राज्ञोऽपि रक्षणमुच्यते यस्मात्—

स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः।
शस्त्रेण वैश्यान् रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम्।। ११९।।

राज्ञः शत्रुविजयः स्वधर्मो विजयफलं युद्धमित्यर्थः। प्रजारक्षणप्रयुक्तस्य यदि कुतश्चिद्भयं स्यात्तदा स युद्धपराङ्मुखो न भवेत्। एवं च शस्त्रेण वैश्यान्दस्युभ्यो रक्षित्वा तेभ्यो धर्मादनपेतमाप्तपुरुषैर्बलिमाहारयेत्।। ११९।।

उस राजा का अपना धर्म, युद्ध में विजय प्राप्त करना है। अत: उसे कभी भी युद्ध से पराङ्मुख नहीं होना चाहिए। अत: शस्त्र द्वारा वैश्यों की रक्षा करके वह धर्मसम्मत बलि (टैक्स) प्राप्त कर लेवे।। ११९।।

कोऽसौ बलिस्तमाह—

धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम्।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा।। १२०।।

धान्ये विंश उपचये वैश्यानामष्टमं भागं शुल्कमाहारयेत्। धान्यानां द्वादशोऽपि भाग उक्तः। आपद्ययमष्टम उच्यते। अत्यन्तापदि प्रागुक्तश्चतुर्थो वेदितव्यस्तत्रापि विंशं ग्राह्यम्। तथा हिरण्यादीनां कार्षापणान्तानां विंशतितमं भागं शुल्कं गृह्णीयात्तत्रापि ''पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः'' (अ० ७ श्लो० १३०) इत्यनापदि पञ्चाशद्भाग उक्तः। आपद्ययं विंश उच्यते। तथा शूद्राः, कारवः सूपकारादयः, शिल्पिनः तक्षादयः, कर्मणैवोपकुर्वन्ति नतु तेभ्य आपद्यपि करो ग्राह्यः।। १२०।।

वैश्यों के धान्य में से आठवें भाग को, स्वर्ण आदि में से बीसवें भाग को राजा टैक्स (बलि) रूप में प्राप्त कर ले। जबकि शूद्र, कारीगर एवं शिल्पियों से उसे केवल (बिना वेतन दिए माह में एक दिन) अपने कार्य ही करा लेने चाहिएँ।। १२०।।

शूद्रस्तु　　वृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत्।। १२१।।

शूद्रो ब्राह्मणशुश्रूषयाऽऽजीवन्यदि वृत्तिमाकाङ्क्षेत्तदा क्षत्रियं परिचर्य तदभावे धनिनं वैश्यं परिचर्य जीवितुमिच्छेत्। द्विजातिशुश्रूषणासामर्थ्ये तु प्रागुक्तानि कर्माणि कुर्यात्।। १२१।।

इसके अतिरिक्त आजीविका की आकांक्षा करता हुआ शूद्र, क्षत्रिय की सेवा

करे अथवा शूद्र वर्ण का व्यक्ति धनी वैश्य की सेवा करके भी अपनी आजीविका कमा सकता है।। १२१।।

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः।
जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता।। १२२।।

स्वर्गप्राप्त्यर्थं स्वर्गस्ववृत्तिलिप्सार्थं वा ब्राह्मणानेव शूद्रः परिचरेत्। तस्माज्जातो ब्राह्मणाश्रितोऽयमिति शब्दो यस्य। शाकपार्थिवादित्वात्समासः। साऽस्य शूद्रस्य कृतकृत्यता तद्व्यपदेशतयासौ कृतकृत्यो भवति।। १२२।।

शूद्र व्यक्ति स्वर्ग की कामना से या वृत्ति की इच्छा से अथवा दोनों को ही प्राप्त करने के लिए, ब्राह्मणों की सेवा करे, क्योंकि ब्राह्मणमात्र की सेवा के लिए ही उत्पन्न हुए इस शूद्र की, ब्राह्मणसेवा ही वस्तुतः जीवन की सार्थकता है।। १२२।।

यत एवमतः—

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम्।। १२३।।

ब्राह्मणपरिचर्यैव शूद्रस्य कर्मान्तरेभ्यः प्रकृष्टं कर्म शास्त्रेऽभिधीयते। यस्मादेतद्व्यतिरिक्तं यदसौ कर्म कुरुते तदस्य निष्फलं भवतीति पूर्वस्तुत्यर्थं न त्वन्यनिवृत्तये। पाकयज्ञादीनामपि तस्य विहितत्वात्।। १२३।।

क्योंकि ब्राह्मण की सेवा ही वस्तुतः शूद्र का विशिष्ट-कर्म कहा गया है। इसलिए ब्राह्मणसेवा के अतिरिक्त वह जो भी कार्य करता है, वह इसका वस्तुतः निष्फल ही होता है।। १२३।।

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः।
शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्।।१२४।।

तस्य परिचारकशूद्रस्य परिचर्यासामर्थ्यं कर्मोत्साहं पुत्रदारादिभर्तव्यपरिमाणं चावेक्ष्य तैर्ब्राह्मणैः स्वगृहादनुरूपा जीविका कल्पनीया।। १२४।।

उन ब्राह्मणों को भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार, उस शूद्र की कार्यक्षमता, दक्षता एवं पारिवारिक स्थिति की समीक्षा करके ही उनकी वृत्ति (वेतनादि) की परिकल्पना (निश्चय) करनी चाहिए।। १२४।।

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः।। १२५।।

तस्मै प्रकृताश्रितशूद्राय भुक्तावशिष्टान्नं ब्राह्मणैर्देयम्। एवं च "न शूद्राय मतिं

दद्यान्नोच्छिष्टम्'' (अ० ४ श्लो० ८०) इत्यनाश्रितशूद्रविषयमवतिष्ठते। तथा जीर्णवस्त्रासारधान्यजीर्णशय्यापरिच्छदा अस्मै देया:।। १२५।।

अपनी सेवा-कार्य में लगे हुए शूद्र के लिए ब्राह्मण लोगों को समय-समय पर जूठा अन्न, फटे पुराने वस्त्र, धान्य की फटकन (सफाई करने पर अवशिष्ट अन्न) तथा पुरानी वस्तुएँ देते रहना चाहिए।। १२५।।

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्।। १२६।।

लशुनादिभक्षणेन शूद्रे न किंचित्पातकं भवति नतु ब्रह्मवधादावपि। ''अहिंसा सत्यं'' (याज्ञ० अ० १ श्लो० १२२) इत्यादेश्चातुर्वर्ण्यसाधारणत्वेन विहितत्वात्। न चाप्युपनयनादिसंस्कारमर्हति, नास्याग्निहोत्रादिधर्मेऽधिकारोऽस्ति, अविहितत्वात्। न च शूद्रविहितत्वात्पाकयज्ञादिधर्मादस्य निषेध: एवं चास्य सर्वस्य सिद्धार्थत्वादयं श्लोक उत्तरार्थोऽनुवाद:।।१२६।।

जूठन आदि खाने से शूद्र को कुछ पाप नहीं लगता है, क्योंकि वह यज्ञोपवीत संस्कारादि के योग्य नहीं होता है। इसलिए न ही इसका धर्म में अधिकार है, न ही इसके लिए धर्म से प्रतिषेध किया गया है।। १२६।।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञा: सतां वृत्तमनुष्ठिता:।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च।। १२७।।

ये पुन: शूद्रा: स्वधर्मवेदिनो धर्मप्राप्तिकामास्त्रैवर्णिकानामाचारमनिषिद्धमाश्रितास्ते ''नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत्'' (अ० १ श्लो० १२१) इति याज्ञवल्क्य-वचनान्नमस्कारमन्त्रेण मन्त्रान्तररहितं पञ्चयज्ञादि धर्मान्कुर्वाणा न प्रत्यवयन्ति, ख्यातिं च लोके लभन्ते।। १२७।।

जो शूद्र धर्म के प्रति अभिलाषा रखते हैं, धर्म को जानने वाले हैं तथा सज्जन पुरुषों के आचरण का पालन करते हैं। मन्त्रों से वर्जित होते हुए भी वे दोषों को प्राप्त नहीं करते हैं तथा सर्वत्र प्रशंसा पाते हैं।। १२७।।

यथायथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयक:।
तथातथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दित:।। १२८।।

परगुणानिन्दक: शूद्रो यथायथा द्विजात्याचारमनिषिद्धमनुतिष्ठति तथा तथा जनैरनिन्दित इह लोके उत्कृष्ट: स्मृत: स्वर्गादिलोकं च प्राप्नोति।। १२८।।

इसके अतिरिक्त दूसरों के गुणों की निन्दा न करने वाला शूद्र व्यक्ति जैसे-जैसे श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त होता है, वैसे-वैसे प्रशंसा का पात्र होकर वह इहलोक एवं परलोक दोनों में सुखों को प्राप्त करता है।। १२८।।

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते।। १२९।।

धनार्जनसमर्थेनापि शूद्रेण पोष्यवर्गसंवर्धनपञ्चयज्ञाद्युचितादधिकबहुधनसंचयो न कर्तव्यः। यस्माच्छूद्रो धनं प्राप्य शास्त्रानभिज्ञत्वेन धनमदाच्छुश्रूषायाश्चाकरणाद्ब्राह्मणा-नेव पीडयतीत्युक्तस्यानुवादः।। १२९।।

सामर्थ्यसम्पन्न होते हुए भी शूद्र व्यक्ति को कभी भी धन का सञ्चय नहीं करना चाहिए, क्योंकि धन को प्राप्त करके शूद्र व्यक्ति ब्राह्मणों को ही कष्ट पहुँचाता है।।१२९।।

एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः।
यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम्।। १३०।।

अमी चतुर्णां वर्णानामापद्यनुष्ठेया धर्मा उक्ताः। यान्सम्यगाचरन्तो विहितानुष्ठानान्निषिद्धानाचरणाच्च निष्पापतया ब्रह्मज्ञानलाभेन परमां गतिं मोक्षलक्षणां लभन्ते।। १३०।।

यहाँ तक मैंने चारों वर्णों के इन आपत्कालीन धर्मों का विस्तारपूर्वक कथन किया। जिनका सम्यक्रूप से पालन करने पर सभी वर्णों के लोग परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।। १३०।।

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।। १३१।।

अयं चतुर्णां वर्णानामाचारः समग्रः कथितः। अत ऊर्ध्वं प्रायश्चित्तानुष्ठानं शुभमभिधास्यामि।। १३१।।

इसप्रकार मैंने यहाँ तक यह चारों वर्णों की सम्पूर्ण धार्मिकविधि का पूर्णरूप से व्याख्यान किया। इसके पश्चात् मैं (भृगु) आपसे प्रायश्चित्त की शुभफल प्रदान करने वाली विधियों का विस्तार से कथन करूँगा। (आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिए)।। १३१।।

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः।। १०।।

इति श्रीकुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यां मनुवृत्तौ
दशमोऽध्यायः।। १०।।

।। इसप्रकार मानव धर्मशास्त्र में महर्षिभृगु द्वारा कही गई संहिता के अन्तर्गत
दशम अध्याय पूर्ण हुआ।।

।। इसप्रकार डॉ० राकेश शास्त्री द्वारा सम्पादित मनुस्मृति के दशम अध्याय का
हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।

अथ एकादशोऽध्यायः

सांतानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम्।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः।। १।।
नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान्।
निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः।। २।।

ननु ''अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्'' (अ० १० श्लो० १३१) इति प्रायश्चित्तस्य वक्तव्यतया प्रतिज्ञातत्वात्सांतानिकादिभ्यो देयमित्यादेः कः प्रस्ताव उच्यते। ''दानेनाकार्यकारिणः'' (अ० ५ श्लो० १०७) इति प्रागुक्तत्वात् ''दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन्'' (अ० ११ श्लो० १३९) इत्यादेश्च वक्ष्यमाणत्वात्प्रकृष्टप्रायश्चित्तात्मकदानपात्रोपन्यासः प्रकृतोपयुक्त एव। वर्णाश्रमधर्मादिव्यतिरिक्तप्रायश्चित्तादिनैमित्तिकधर्मकथनार्थत्वाच्चाध्यायस्यान्यस्यापि नैमित्तिकधर्मस्यात्रोपन्यासो युक्तः। संतानप्रयोजनत्वाद्विवाहस्य सांतानिको विवाहार्थी, यक्ष्यमाणोऽवश्यकर्तव्यज्योतिष्टोमादि यागं चिकीर्षुः, अध्वग पान्थः, सर्ववेदसः कृतसर्वस्वदक्षिणविश्वजिद्यागः, विद्यागुरोर्ग्रासाच्छादनाद्यर्थः प्रयोजनं यस्य स गुर्वर्थः, एवं पितृमात्रर्थावपि, स्वाध्यायार्थी स्वाध्यायाध्ययनकालीनाच्छादनाद्यर्थी, ब्रह्मचारी, उपतापी रोगी, एतान्नव ब्राह्मणान्धर्मभिक्षाशीलान्स्नातकाञ्जानीयात्। एतेभ्यो निर्धनेभ्यो गोहिरण्यादि दीयत इति दानं विद्याविशेषानुरूपेण दद्यात्।। १।। २।।

सन्तानप्राप्ति की कामना से विवाह करने का इच्छुक, यज्ञ करने की इच्छा करने वाले, श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले, सर्वस्व दान दिये जाने वाले यज्ञ का अनुष्ठाता, गुरु एवं माता-पिता के लिए धन की कामना वाले, स्वाध्याय करने का इच्छुक, रोगी, इन नौ प्रकार के स्नातकों एवं ब्राह्मणों को धर्म का भिक्षुक जानना चाहिए। अतः निर्धन इन सभी को इनकी विद्या के वैशिष्ट्य के अनुसार दान देना चाहिए।। १-२।।

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम्।
इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते।। ३।।

एतेभ्यो नवभ्यो ब्राह्मणश्रेष्ठेभ्योऽन्तर्वेदि सदक्षिणमन्नं दातव्यम्। एतद्व्यतिरिक्तेभ्यः पुनः सिद्धान्नं बहिर्वेदि देयत्वेनोपदिश्यते। धनदाने त्वनियमः।। ३।।

केवल इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को ही वेदी के भीतर दक्षिणा सहित अन्न प्रदान करना चाहिए। जबकि दूसरे ब्राह्मणों को वेदी के बाहर पकाया हुआ अन्न देना चाहिए। ऐसा कहा जाता है।। ३।।

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत्।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम्।। ४।।

राजा पुनः सर्वरत्नानि मणिमुक्तादीनि यागोपयोग्यानि च दक्षिणार्थं धनं विद्यानुरूपेण वेदविदो ब्राह्मणान्स्वीकारयेत्।। ४।।

इसके अतिरिक्त राजा को, वेद-विद्या में निपुण ब्राह्मणों को ही यज्ञ करने के लिए, सभी प्रकार के रत्न एवं दक्षिणा के लिए धन, उनकी योग्यता एवं अपेक्षा के अनुसार ही प्रदान करना चाहिए।। ४।।

कृतदारोऽपरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति।
रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः।। ५।।

यः सभार्यः संतत्यर्थादिनिमित्तमन्तरेणापरान्दारान् भिक्षित्वा करोति तस्य रतिमात्रं फलं, धनदातुः पुनस्तदुत्पन्नान्यपत्यानि भवन्तीति निन्दातिशयः। नैवंविधेन धनं याचित्वान्यो विवाहः कर्तव्यो नाप्येवंविधाय नियमतो धनं देयमिति।। ५।।

जो पहले से विवाहित व्यक्ति धन लेकर अन्य स्त्रियों से विवाह करता है, उसे केवल रतिमात्र का ही फल प्राप्त होता है, क्योंकि सन्तान तो धन प्रदान करने वाले की ही होती है।। ५।।

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते।। ६।।

धनानि गोभूहिरण्यादीनि शक्त्यनतिक्रमेण ब्राह्मणेषु वेदज्ञेषु विविक्तेषु पुत्रकलत्राद्यवसक्तेषु प्रतिपादयेत्तद्वशाच्चा स्वर्गप्राप्तिर्भवतीति।। ६।।

अपने धनों को, पुत्र-कलत्रादि के भरणपोषण में लगे हुए, वेदविद् ब्राह्मणों को यथाशक्ति दान देने पर व्यक्ति मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग को प्राप्त करता है।। ६।।

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये।
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति।। ७।।

यस्यावश्यपोष्यभरणार्थं वर्षत्रयपर्याप्तं तदधिकं वा भक्तादि स्यात्स काम्यसोमयागं कर्तुमर्हति। नित्यस्य पुनर्यथाकथंचिदवश्यकर्तव्यत्वान्नायं निषेध:। अत एव "समान्ते सौमिकैर्मखै: (अ० ४ श्लो० २६) इति नित्यविषयत्व-मुक्तवान्।।७।।

जिस व्यक्ति के पास तीन वर्षों अथवा उससे भी अधिक समय के लिए, भृत्यवर्ग एवं परिवार के भरण-पोषण हेतु पर्याप्त सामग्री विद्यमान हो, वह व्यक्ति सोमयाग करने के योग्य होता है।।७।।

अत: स्वल्पीयसि द्रव्ये य: सोमं पिबति द्विज:।

स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम्।। ८।।

त्रैवार्षिकधनादल्पधने सति य: सोमयागं करोति तस्य प्रथमसोमयागो नित्योऽपि न संपन्नो भवति। सुतरां द्वितीययाग: काम्य:।। ८।।

इसलिए जो द्विज अत्यल्प धन होने पर भी सोमयाग करता है। पूर्व में किए गए सोमयाग वाला होने पर भी वह उस यज्ञ के फल को प्राप्त नहीं करता है।। ८।।

शक्त: परजने दाता स्वजने दु:खजीविनि।

मध्वापातो विषास्वाद: स धर्मप्रतिरूपक:।। ९।।

यो बहुधनत्वाद्दानशक्त: सन्ना वश्यभरणीये पितृमात्रादिज्ञातिजने दौर्गत्याद्दु:खोपेते सति यशोऽर्थमन्येभ्यो ददाति स तस्य दानविशेषो धर्मप्रतिरूपको नतु धर्म एव। मध्वापातो मधुरोपक्रम: प्रथमं यशस्करत्वात्। विषास्वादश्चान्ते, नरकफलत्वात्तस्मादेतन्न कार्यम्।। ९।।

अपने परिवारजनों द्वारा कष्टपूर्वक जीवन व्यतीत करने पर भी जो समर्थ व्यक्ति दूसरों को (यशादि की कामना से) दान देता है। प्रारम्भ में मधु एवं अन्त में विष का आस्वादन करने वाला वह, धर्म के प्रतिकूल (प्रतिरूपक) आचरण करने वाला होता है।। ९।।

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।

तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च।। १०।।

(वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या शिशु: सुत:।

अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत्।। १।।)

पुत्रदाराद्यवश्यभर्तव्यपीडनेन यत्पारलौकिकधर्मबुध्या दानादि करोति तस्य

दातुर्जीवतो मृतस्य च तद्दानं दुःखफलं भवतीति पूर्वं कीर्त्यादिदृष्टार्थदानप्रतिषेधः। अयं त्वदृष्टार्थदानप्रतिषेधः।। १०।।

इसके अतिरिक्त पालन करने योग्य पुत्र-कलत्रादि को पीड़ा देकर जो व्यक्ति पारलौकिक कर्म यज्ञदानादि को निष्पन्न करता है। जीवित रहते हुए एवं मरे हुए का भी वह दानरूप कर्म दुःखरूप फल वाला ही होता है।। १०।।

(क्योंकि मनु ने कहा है कि व्यक्ति को अपने वृद्ध माता-पिता, सतीसाध्वी पत्नी एवं छोटे-छोटे पुत्रों का भरण-पोषण सैकड़ों अनुचित कार्यों को सम्पादित करके भी करना चाहिए।। १।।)

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः।
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि।। ११।।
यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः।
कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये।। १२।।

क्षत्रियादेर्यजमानस्य विशेषतो ब्राह्मणस्य यदि यज्ञ इतराङ्गसंपत्तौ सत्यामेकेनाङ्गेनासंपूर्णः स्यात्तदा यो वैश्यो बहुपश्वादिधनः पाकयज्ञादिरहितोऽसोमयाजी तस्य गृहात्तदङ्गोचितं द्रव्यं बलेन चौर्येण वा हरेत्। एतच्च धर्मप्रधाने सति राजनि कार्यम्। स हि शास्त्रार्थमनुतिष्ठन्तं न निगृह्णाति।। ११।। १२।।

धार्मिक राजा के होते हुए भी यज्ञ करने वाले, विशेषरूप से ब्राह्मण का यज्ञ यदि किसी एक अङ्ग विशेष से रुक जाए तो उस राज्य में जो वैश्य अधिक पशुओं से सम्पन्न होते हुए भी यज्ञ से हीन एवं सोमपान न करने वाला हो, उसके परिवार से यज्ञ की सिद्धि हेतु राजा आवश्यक धन ग्रहण कर लेवे।। ११-१२।।

आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः।
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः।। १३।।

यज्ञस्य द्वित्र्यङ्गवैकल्ये सति तानि त्रीणि चाङ्गानि द्वे वाङ्गे वैश्यादलाभे सति निर्विशङ्कं शूद्रस्य गृहाद्बलेन चौर्येण वा हरेत्। यस्माच्छूद्रस्य क्वचिदपि यज्ञसंबन्धो नास्ति। ''न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत'' (अ० ११ श्लो० २४) इति वक्ष्यमाणप्रतिषेधः शूद्राद्याचनस्य नतु बलग्रहणादेः।। १३।।

इसीप्रकार तीन अङ्गों अथवा दो अङ्गों को पूरा करने योग्य धन, अपनी इच्छानुसार शूद्र के घर से भी ग्रहण कर ले, क्योंकि शूद्र का यज्ञों से कोई सम्बन्ध ही नहीं होता है।। १३।।

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन्।। १४।।

योऽनाहिताग्निर्गोशतपरिमाणधन आहिताग्निर्वाऽसोमयाजी गोसहस्रपरिमितधनः द्वयोरपि गृहाभ्यां प्रकृतमङ्गद्वयं त्रयं वा शीघ्रं संपादयितुं ब्राह्मणेन द्वाभ्यामाहरणीयं ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यामपि ब्राह्मण आहरेत्। क्षत्रियस्य तु अदस्युक्रियावद्ब्राह्मणस्वहरणं निषेधयिष्यति।। १४।।

इसके अतिरिक्त सौ गायों का स्वामी होते हुए भी जो व्यक्ति अग्निहोत्र नहीं करता है तथा एक हजार गायों वाला होते हुए भी यज्ञ नहीं करता है, इसप्रकार के उन दोनों के ही परिवारों से बिना किसी सोच-विचार किए, अपूर्ण यज्ञ को पूर्ण कराने हेतु अपेक्षित धन का आहरण कर लेना चाहिए।। १४।।

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः।
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते।। १५।।

प्रतिग्रहादिना आदानं धनग्रहणं नित्यं यस्यासावादाननित्यो ब्राह्मणस्तस्मादिष्टा-पूर्तदानरहिताद्यज्ञाङ्गद्वयत्रयार्थायां याचनायां कृतायामददतो बलेन चौर्येण वा हरेत्। तथा कृतेऽपहर्तुः ख्यातिः प्रकाशते धर्मश्च वृद्धिमेति।। १५।।

इतना ही नहीं हमेशा दान ग्रहण करने वाले, देने योग्य धन का दान न देते हुए व्यक्ति से अपूर्ण यज्ञ को सम्पादित कराने के लिए बलपूर्वक धन ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर इस देने वाले का जहाँ एक ओर यश फैलता है, वहीं दूसरी ओर धर्म की वृद्धि भी होती है।। १५।।

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता।
अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः।। १६।।

सायंप्रातर्भोजनोपदेशात्त्रिरात्रोपवासे वृत्ते चतुर्थेऽहनि प्रातः सप्तमे भक्ते दानादि-धर्मरहितादेकदिनपर्याप्तमर्थं चौर्यादिना हर्तव्यम्।। १६।।

उसीप्रकार छः समय तक भोजन न कर पाने वाले व्यक्ति को सातवें समय में निकृष्टकर्म करने वाले व्यक्ति से भी, एक दिन के निर्वहन योग्य धन का (चुराकर या बलपूर्वक) हरण कर लेना चाहिए।। १६।।

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते।
आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति।। १७।।

धान्यादिमर्दनस्थानात्क्षेत्राद्वा गृहाद्वा यतो वान्यस्मात्प्रदेशाद्धान्यं हीनकर्मसंबन्धि लभ्यते ततो हर्तव्यं, यदि वासौ धनस्वामी पृच्छति किंनिमित्तं कृतमिति पृच्छते निमित्तं चौर्यादि वक्तव्यम्।। १७।।

वह धन, खेत, खलिहान अथवा घर जहाँ से भी प्राप्त हो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। उस धन के बारे में निकृष्टकर्म करने वाले व्यक्ति द्वारा पूछे जाने पर उसे केवल कह भर देना चाहिए (कि उसके यहाँ से मैंने छः समय के बराबर भोजन को ग्रहण किया है।)।। १७।।

ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन।
दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन्हर्तुमर्हति।। १८।।

उक्तेष्वपि निमित्तेषु क्षत्रियेण ब्राह्मणस्य धनं ततोऽपकृष्टत्वान्न हर्तव्यं, समानन्याः यतया तु वैश्यशूद्राभ्यामुत्कृष्टजातितो न हर्तव्यम्। प्रतिषिद्धकृद्विहिताननुष्ठायिनोपुन-र्ब्राह्मणक्षत्रिययोरत्यन्तापदि क्षत्रियो हर्तुमर्हति।। १८।।

किन्तु क्षत्रिय को कभी भी ब्राह्मण का धन नहीं छीनना चाहिए, जबकि आपत्तिकाल में क्षत्रिय, दस्यु एवं निष्क्रिय ब्राह्मण का धन अपने प्राणों की सुरक्षा के लिए हरण करने में समर्थ है।। १८।।

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति।
स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ।। १९।।

यो हीनकर्मादिभ्य उत्कृष्टेभ्योऽभिहितेष्वपि निमित्तेषूक्तानुरूपं यज्ञाङ्गादि साधनं कृत्वा साधुभ्य उत्कृष्टेभ्य ऋत्विगादिभ्यो धनं ददाति स यस्यापहरति तद्दुरितं नाशयति यस्मै तद्ददाति तद्दौर्गत्याभिघातादित्येवं द्वावप्यात्मानमुडुपं कृत्वा दुःखान्मोचयति।। १९।।

जो व्यक्ति दुर्जनों से धन छीनकर सज्जनों को प्रदान करता है। ऐसा करके वह वस्तुतः स्वयं को नाव बनाकर उन दोनों का ही भलीप्रकार उद्धार करता है।। १९।।

यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते।। २०।।

यज्ञशीलानां यद्धनं तद्यागादौ विनियोगाद्देवस्वं विद्वांसो मन्यन्ते। यागादिशून्यानां तु यद्द्रव्यं तद्धर्मविनियोगाभावादासुरस्वमुच्यते। अतस्तदप्यपहृत्य यागसंपादनात्तद्देवस्वं कर्तव्यम्।। २०।।

जो धन यज्ञों का अनुष्ठान करने वालों का होता है, उसे विद्वान् लोग वस्तुतः देवताओं का धन मानते हैं, किन्तु इसके विपरीत यज्ञ न करने वालों का धन तो राक्षसों का धन ही कहा जाता है।। २०।।

न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः।
क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा।। २१।।

तस्मिन्नुक्तनिमित्ते चौर्यबलात्कारं कुर्वाणे धर्मप्रधानो राजा दण्डं न कुर्यात्। यस्माद्राज्ञो मूढत्वाद्ब्राह्मणः क्षुधावसादं प्राप्नोति।। २१।।

धार्मिक प्रवृत्ति वाले राजा को (धन को चुराकर) यज्ञ करने वाले उस व्यक्ति के प्रति कभी भी दण्ड को धारण नहीं करना चाहिए, क्योंकि क्षत्रिय की मूर्खता के कारण ही ब्राह्मण भूख से सन्तप्त होता है।। २१।।

ततश्च-

तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः।
श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत्।। २२।।

तस्य ब्राह्मणस्यावश्यभरणीयपुत्रादिवर्गं ज्ञात्वा श्रुताचारोचिततदनुरूपां वृत्तिं स्वगृहाद्राजा कल्पयेत्।। २२।।

इसलिए राजा को, उस ब्राह्मण के ज्ञान, शील एवं उसके ऊपर निर्भर रहने वाले परिवार जनों की संख्या आदि की भलीप्रकार जानकारी प्राप्त करके, उसे अपने परिवार के तुल्य मानकर धार्मिक रीति से, उसकी वृत्ति (जीविका) सुनिश्चित करनी चाहिए।। २२।।

कल्पयित्वास्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः।
राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात्।। २३।।

अस्य ब्राह्मणस्य जीविकां विधाय शत्रुचौरादेः सर्वतो रक्षयेत्। यस्माद्ब्राह्मणाद्रक्षितात्तस्य धर्मषड्भागं प्राप्नोति।। २३।।

इतना ही नहीं इस ब्राह्मण की आजीविका का निर्धारण करने के पश्चात् राजा को इसकी सबप्रकार से रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि रक्षा किए उससे राजा धर्म का छठा भाग प्राप्त करता है।। २३।।

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित्।
यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते।। २४।।

यज्ञसिद्धये धनं ब्राह्मणः कदाचिन्न शूद्राद्याचेत। यस्माच्छूद्राद्याचित्वा यज्ञं कुर्वाणो मृतश्चण्डालो भवति। अतो याचननिषेधाच्छूद्रादयाचितोपस्थितं यज्ञार्थमप्यविरुद्धम्।। २४।।

ब्राह्मण को कभी भी यज्ञ-हेतु शूद्र से धन नहीं माँगना चाहिए, क्योंकि शूद्र से धन माँगकर यज्ञ करने वाला वह यजमान, मृत्यु के उपरान्त चाण्डाल के रूप में उत्पन्न होता है।। २४।।

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः।। २५।।

यज्ञसिद्ध्यर्थं धनं याचित्वा यो यज्ञे सर्वं न विनियुङ्क्ते स शतं वर्षाणि भासत्वं काकत्वं वा प्राप्नोति।। २५।।

यज्ञ के लिए धन की याचना करके जो ब्राह्मण वह सम्पूर्ण धन यज्ञहेतु प्रदान नहीं करता है, वह सौ वर्षों तक गिद्ध अथवा कौए की योनि को प्राप्त होता है।। २५।।

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति।। २६।।

प्रतिमादिदेवतार्थमुत्सृष्टं धनं देवस्वं, ब्राह्मणस्वं च यो लोभादपहरति स पापस्वभावो जन्मान्तरे गृध्रोच्छिष्टेन जीवति।। २६।।

लोभवश जो व्यक्ति देवता अथवा ब्राह्मण के धन का हरण करता है, वह पापी व्यक्ति परलोक में गिद्ध की जूठन को खाकर जीवित रहता है।। २६।।

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये।
क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे।। २७।।

समाप्ते वर्षे द्वितीयवर्षस्य प्रवृत्तिरब्दपर्ययं चैत्रशुक्लादिवर्षप्रवृत्तिस्तत्र वर्षान्तरे वैश्वानरीमिष्टिं विहितसोमयागासंभवे तदकरणदोषनिर्हरणार्थं सर्वदा शूद्रादितो धनग्रहणेन उक्तरूपामिष्टिं कुर्यात्।। २७।।

वर्ष के परिवर्तित होने पर शास्त्रों में बताए गए पशुयाग एवं सोमयाग को न कर पाने की स्थिति में उस दोष की निवृत्ति हेतु व्यक्ति को हमेशा (प्रति वर्ष) वैश्वानर यज्ञ का यजन (शूद्रादि से धन ग्रहण करके भी) करना चाहिए।। २७।।

आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुते नापदि द्विजः।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम्।। २८।।

आपद्विहितेन विधिना योऽनापदि धर्मानुष्ठानं द्विजः कुरुते तस्य तत्परलोके निष्फलं भवतीति मन्वादिभिर्विचारितम्।। २८।।

जो द्विज सामान्य स्थिति में भी आपत्तिकाल के समान ही धर्म का आचरण करता है। उसे उस धर्म का फल परलोक में भी प्राप्त नहीं होता है, ऐसा (मनु आदि विद्वानों का) विचार है।। २८।।

विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः।। २९।।

विश्वेदेवाख्यैर्देवैः साध्यैश्च तथा महर्षिभिर्ब्राह्मणैर्मरणाद्भीतैरापत्सु मुख्यस्य विधेः सोमादेर्वैश्वानर्यादिः प्रतिनिधिरनुष्ठितोऽसौ मुख्यासंभवे कार्यो न तु मुख्यसंभवे।। २९।।

मृत्यु से भयभीत हुए विश्वेदेवों, साध्यों, महर्षियों और ब्राह्मणों ने आपत्तिकाल में पालन करने योग्य जिन आपद्धर्मों का प्रणयन किया है, वे वास्तव में विधि के प्रतिनिधि स्वरूप ही हैं।। २९।।

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते।
न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम्।। ३०।।

यो मुख्यानुष्ठानसंपन्नः सन्नापद्विहितेन प्रतिनिधिनानुष्ठानं करोति तस्य दुर्बुद्धेः पारलौकिकमभ्युदयरूपं प्रत्यवायपरिहारार्थं फलं च न भवति। "आपत्कल्पेन यो धर्मम्" (अ० ११ श्लो० २८) इत्यनेनोक्तमप्येतच्छास्त्रादरार्थं पुनरुच्यते।। ३०।।

सामान्यस्थिति में मुख्यकर्म को करने में समर्थ होते हुए भी जो व्यक्ति आपत्कालिक विधि द्वारा यज्ञादिकों का अनुष्ठान करता है, उस दुर्मति को पारलौकिक फलों की प्राप्ति नहीं होती है।। ३०।।

न ब्राह्मणोऽवेदयेत किंचिद्राजनि धर्मवित्।
स्ववीर्येणैव ताञ्छिष्यान्मानवानपकारिणः।। ३१।।

धर्मज्ञो ब्राह्मणः किंचिदप्यपकृतं न राज्ञः कथयेत्। अपि तु स्वशक्त्यैव वक्ष्यमाणाभिचारादिनाऽपकारिणो मनुष्यान्निगृह्णीयात्। ततश्च स्वकीयधर्मविरोधादपकृष्टापराधकरणे सत्यभिचारादि न दोषायेत्येवंपरमेतत्। न त्वभिचारो विधीयते राजनिवेदनं वा निषिध्यते।। ३१।।

धर्मज्ञ ब्राह्मण को अपनी हानि आदि के सम्बन्ध में राजा से कुछ भी निवेदन

नहीं करना चाहिए, अपितु अपकार करने वाले उन लोगों को अपनी मन्त्रादि की सामर्थ्य द्वारा ही दण्डित करना चाहिए।। ३१।।

स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम्।
तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः।। ३२।।

यस्मात्स्वसामर्थ्याद्राजसामर्थ्याच्च पराधीनराजसामर्थ्यापिक्षया स्वसामर्थ्यमेव स्वाधीनत्वाद्बलीयः। तस्मात्स्वेन वीर्येणैव शत्रून्ब्राह्मणो निगृह्णीयात्।। ३२।।

क्योंकि अपने पराक्रम एवं राजा के पराक्रम इन दोनों में अपनी शक्ति अर्थात् सामर्थ्य ही अपेक्षाकृत अधिक बलवान् होती है। इसलिए द्विज को अपने पराक्रम द्वारा ही शत्रुओं को नियन्त्रित करना चाहिए।। ३२।।

तत्किं स्ववीर्यमित्याह–

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः।। ३३।।
(तदस्त्रं सर्ववर्णानामनिवार्यं च शक्तितः।
तपोवीर्यप्रभावेण अवध्यानपि बाधते।। २।।)

अथर्ववेदस्य आङ्गिरसीर्दुष्टाभिचारश्रुतीरविचारयन्कुर्यात्। तदर्थमभिचार-मनुतिष्ठेदित्यर्थः। यस्मादभिचारमन्त्रोच्चारणात्मिका ब्राह्मणस्य वागेव शस्त्रकार्य-करणाच्छस्त्रं तेन ब्राह्मणः शत्रून्हन्यान्नतु शत्रुनियमाय राजा वाच्यः।। ३३।।

इसलिए इस विषय में बिना कोई विचार करता हुआ द्विज अथर्ववेद में अङ्गिरा ऋषि की श्रुतियों का संशयरहित होकर प्रयोग करे, क्योंकि ब्राह्मण की वाणी ही उसका शस्त्र है। अतः उससे ही उसे अपने शत्रुओं का वध करना चाहिए।। ३३।।

(अतः शक्ति की अपेक्षा सभी वर्णों के लिए अस्त्ररूप मन्त्रशक्ति अनिवार्य है, क्योंकि तपस्या के पराक्रम के प्रभाव से व्यक्ति अवध्यों को भी नियन्त्रित कर लेता है।। २।।)

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः।
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः।। ३४।।
(तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमांगतिम्।। ३।।)

क्षत्रियः स्वपौरुषेण शत्रुतः परिभवलक्षणामात्मन आपदं निस्तरेत्। वैश्यशूद्रौ पुनः प्रतिकर्त्रे धनदानेन। ब्राह्मणस्त्वभिचारात्मकैर्जपहोमैः।। ३४।।

अपनी आपत्ति को क्षत्रियवर्ण का व्यक्ति भुजाओं की सामर्थ्य से, वैश्य एवं शूद्र ये दोनों धन द्वारा तथा द्विजों में श्रेष्ठ ब्राह्मण जप एवं हवन द्वारा पार करे।। ३४।।

(इसलिए मन्त्रशक्ति का यथाशक्ति प्रयोग करता हुआ व्यक्ति परमगति को प्राप्त करता है।। ३।।)

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।
तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत्।। ३५।।

विहितकर्मणामनुष्ठाता, पुत्रशिष्यादीनां शास्ता, प्रायश्चित्तादिधर्माणां वक्ता, सर्वभूतमैत्रीप्रधानो ब्राह्मण उच्यते। तस्मै निगृह्यतामयमित्येवमनिष्टं न ब्रूयान्नापि साक्रोशां वाचं वाग्दण्डधिग्रूपां तस्योच्चारयेत्।। ३५।।

ब्राह्मण को, वेदविहित कर्म करने वाला, पुत्रशिष्यादि को निर्देशित करने वाला एवं उपदेश प्रदान करने वाला एवं सबका मित्र कहा जाता है। इसलिए उसके प्रति कभी भी अप्रिय नहीं बोलना चाहिए और न ही कठोर वाणी का प्रयोग करना चाहिए।। ३५।।

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा।। ३६।।

कन्याऽनूढा ऊढापि तरुणी, तथा अल्पाध्यायिमूर्खव्याध्यादिपीडितानुपनीताः श्रौतान्सायंप्रातर्होमान्न कुर्युः। "हावयेत्" इति प्रसक्तावयं कन्यादीनां प्रतिषेधः।। ३६।।

कन्या, युवती, अल्पविद्या वाला व्यक्ति, मूर्ख, रोगी एवं जिसने यज्ञोपवीत धारण किया हुआ न हो, ये सभी अग्निहोत्र में आहुति देने योग्य (होता) नहीं होते हैं।। ३६।।

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत्।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः।। ३७।।

एते कन्यादयो होमं कुर्वाणा नरकं गच्छन्ति। यस्य तदग्निहोत्रं प्रतिनिधिरूपेण कुर्वन्ति सोऽपि नरकं गच्छति तस्माच्छ्रौतकर्मप्रवीणः समस्तवेदाध्यायी होता कार्यः।। ३७।।

यज्ञ करते हुए ये सभी तथा जिसके यहाँ अग्निहोत्र का आयोजन किया गया हो वह 'यजमान' निश्चय ही नरकगामी होते हैं। इसलिए यज्ञकर्म में निपुण एवं सम्पूर्ण वेदविद्या में पारङ्गत व्यक्ति को ही 'होता' बनाना चाहिए।। ३७।।

प्राजापत्यमदत्त्वाश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम्।
अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति।। ३८।।

आधाने प्राजापत्यमश्वं प्रजापतिदेवताकं धनसंपत्तौ सत्यां ब्राह्मणो दक्षिणामदत्त्वा कृतेऽप्याधानेऽनाहिताग्निर्भवत्याधानफलं न लभते। तस्मादाधानेऽश्वं दक्षिणां दद्यात् ।।३८।।

वैभवसम्पन्न होने पर भी जो ब्राह्मण, अश्वमेध यज्ञ में प्रजापति देवता के लिए दक्षिणा के रूप में अश्व प्रदान नहीं करता है। यज्ञ के फल से वंचित होकर वह अनाहिताग्नि हो जाता है। ।। ३८।।

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कथंचन।। ३९।।

श्रद्धावान्वशी जितेन्द्रियो यज्ञव्यतिरिक्तानि तीर्थयात्रादीनि कर्माणि पुण्यानि कुर्वीत ननु शास्त्रोक्तदक्षिणातोऽल्पदक्षिणैर्यजेत। परोपकारार्थत्वाद्दक्षिणायाः स्वल्पेनाप्यृत्विगादिदोषनिषेधार्थमिदं वचनम्।। ३९।।

श्रद्धा को धारण करने वाला एवं इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति भले ही दूसरे पुण्य कार्यों को कर लेवे, किन्तु अल्पदक्षिण वाले यज्ञों द्वारा कभी भी इस संसार में यजनकार्य नहीं करे।। ३९।।

इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून्।
हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत्।। ४०।।
(अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः।। ४।।)

चक्षुरादीनीन्द्रियाणि, जीवतः ख्यातिरूपं यशः, स्वर्गायुषी, मृतस्य ख्यातिरूपां कीर्तिं, अपत्यानि, पशूंश्चाल्पदक्षिणो यज्ञो नाशयति। तस्मादल्पदक्षिणादानेन यागं न कुर्यात्।। ४०।।

थोड़ी दक्षिणा वाला यज्ञ, इन्द्रियों, यश, स्वर्ग, आयु, कीर्ति, सन्तान एवं पशुओं को नष्ट कर डालता है। इसलिए कभी भी अल्पदक्षिणा से यज्ञ का अनुष्ठान नहीं करना चाहिए।। ४०।।

(अन्नहीन होने पर राष्ट्र, मन्त्रहीन होने से ऋत्विक् तथा दक्षिणा से हीन होने पर यजमान विनष्ट हो जाता है। इसलिए अल्प दक्षिणा यज्ञ के समान कोई शत्रु नहीं होता है।।४।।)

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः।
चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत्।। ४१।।

अग्निहोत्री ब्राह्मण इच्छातोऽग्निषु सायंप्रातर्होमानकृत्वा मासं चान्द्रायणं चरेत्। यस्माद्वीरः पुत्रस्तस्य हत्या हननं तत्तुल्यमेतत्। तथाच श्रुतिः-"वीरहा वा एष देवानां भवति योऽग्निमुद्वासयते" अन्ये तु मासमपविध्येति समर्थयन्ति।। ४१।।

अग्निहोत्र करने वाला ब्राह्मण यदि स्वेच्छानुसार अग्नियों का परित्याग कर दे तो प्रायश्चित्त स्वरूप उसे मासपर्यन्त चान्द्रायण व्रत का आचरण करना चाहिए, क्योंकि अग्निहोत्र कर्मों का परित्याग पुत्रहत्या के समान माना गया है।। ४१।।

ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते।
ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः।। ४२।।

ये शूद्रादधिगम्यार्थं प्राप्य सामान्याभिधानेन याचनेन वार्थं स्वीकृत्य "वृषलाग्न्युपसेविनाम्" (अ० ११ श्लो० ४२) इति वक्ष्यमाणलिङ्गादाधान-पूर्वकमग्निहोत्रमनुतिष्ठन्ति ते शूद्राणामेव याजका नतु तेषां तत्फलं भवत्यतस्ते वेदवादिषु निन्दिताः।। ४२।।

जो ब्राह्मण शूद्र से धन लेकर उसके लिए यज्ञादि का अनुष्ठान कराते हैं, वे वस्तुतः शूद्रों के ऋत्विक् कहलाते हैं तथा ब्रह्मवादियों में निन्दित होते हैं।। ४२।।

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम्।
पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि संतरेत्।। ४३।।

तेषां शूद्रधनाहिताग्निपरिचारिणां मूर्खाणां मूर्ध्नि पादं दत्त्वा शूद्रस्तेन दानेन सततं परलोके दुःखेभ्यो निस्तरति नतु यजमानानां फलं भवति।। ४३।।

शूद्र के यज्ञों में अग्नि का सेवन करने वाले, उन अज्ञानी ब्राह्मणों को यज्ञ की दक्षिणा देने वाला शूद्र तो उनके मस्तक को पैर द्वारा आक्रान्त करके, हमेशा दुःखों से पार उतर जाता है (किन्तु वे सभी ब्राह्मण पाप के भागी होते हैं।)।। ४३।।

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः।। ४४।।

नित्यं यद्विहितं संध्योपासनादि, नैमित्तिकं च शवस्पर्शादौ स्नानादि, तदकुर्वन् तथा प्रतिषिद्धं हिंसाद्यनुतिष्ठन्नविहितनिषिद्धेष्वत्यन्तासक्तिं कुर्वन्नरो मनुष्यजातिमात्रं प्रायश्चित्तमर्हति। ननु "इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः" (अ० ४ श्लो० १६) इति निषेधान्निन्दितपदेनैव प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेष्वित्यपि संगृहीतमतः पृथङ् न

वक्तव्यम्। उच्यते। अस्य स्नातकव्रतेषु पाठात्तत्र ''व्रतानीमानि धारयेत्'' (अ० ४ श्लो० १३) इत्युपक्रमान्नायं प्रतिषेधः किन्तु व्रतविधिः। तर्हि ''अकुर्वन्विहितं कर्म'' इत्यनेनैव प्राप्तत्वात्पृथङ् न वक्तव्यमिति चेन्न। स्नातकेतरविषयत्वेनास्य सविषयत्वात्।। ४४।।

इसके अतिरिक्त वेदविहित कर्मों को न करता हुआ एवं निन्दितकर्मों में भली प्रकार लिप्त होता हुआ तथा इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हुआ व्यक्ति, वस्तुतः प्रायश्चित्त के योग्य होता है।। ४४।।

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात्।। ४५।।

अबुद्धिकृते पापे प्रायश्चित्तं भवतीत्याहुः पण्डिताः। एके पुनराचार्याः कामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं भवतीत्याहुः। एतच्च पृथक्कृत्याभिधानं प्रायश्चित्तगौरवार्थं श्रुतिनिदर्शनादिति। ''इन्द्रो यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागेत्यावदत्स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मात्तमुपहव्यं प्रायच्छत्'' इति। अस्यार्थः। इन्द्रो यतीन् बुद्धिपूर्वकं श्वभ्यो दत्तवान्, स प्रायश्चित्तार्थं प्रजापतिसमीपमगमत्, तस्मै प्रजापतिरुपहव्याख्यं कर्म प्रायश्चितं दत्तवान्। अतः कामकारकृतेऽप्यस्ति प्रायश्चित्तम्।। ४५।।

प्रायः सभी आचार्यों ने अज्ञानवश पाप करने पर प्रायश्चित्त का विधान किया है, किन्तु एक अन्य आचार्य ने जानबूझकर किए गए पाप में भी श्रुति का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए प्रायश्चित्त का कथन किया है।। ४५।।

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चितैः पृथग्विधैः।। ४६।।

अनिच्छातः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति नश्यति। वेदाभ्यासेनेति कामकृत-विषयप्रायश्चित्तापेक्षया लघुप्रायश्चित्तोपलक्षणार्थम्। प्रायश्चित्तान्तराणामपि विधानाद्रागद्वेषा-दिव्यामूढतया पुनरनिच्छातः कृतं नानाप्रकारैः प्रायश्चित्तैर्विद्याधनतपोभिः शुध्यतीति गुरुप्रायश्चित्तपरम् अतः पूर्वोक्तस्यैवायं व्याकारः। यद्यप्यधिकारनिरूपणं प्रकृतं प्रायश्चित्त त्वनन्तरं वक्ष्यति तथाप्यज्ञानाल्लघुप्रायश्चित्ताधिकारी ज्ञानाद्गुरुप्रायश्चित्तेऽधिक्रियत इत्यधिकारिनिरूपणमेवेदम्।। ४६।।

इसलिए अज्ञानवश किया गया पाप, वेदों का अध्ययन करने से नष्ट हो जाता है, जबकि मोहवश, जानबूझ कर किया गया पाप, अनेकप्रकार की अलग-अलग विधियों वाले प्रायश्चित्तों द्वारा दूर किया जाता है।। ४६।।

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा।
न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः।। ४७।।
(प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।। ५।।)

दैवात्प्रमादादन्यशरीरकृतेन पूर्वजन्मार्जितदुष्कृतेन क्षयरोगादिभिः सूचितेन प्रायश्चित्तीयतां प्राप्याकृते प्रायश्चित्ते साधुभिः सह याजनादिना संसर्गं न गच्छेत्।। ४७।।

दैवयोग से अथवा पूर्वजन्म में किए हुए (पाप) कर्मों के कारण प्रायश्चित्त की योग्यता को प्राप्त करके भी, प्रायश्चित्त न करने पर द्विज, सज्जन लोगों के संसर्ग को प्राप्त नहीं करे।। ४७।।

(प्रायश्चित्त शब्द में 'प्रायः' शब्द वस्तुतः तप के लिए कहा गया है तथा 'चित्त' शब्द 'निश्चय' के लिए कहा जाता है। इसलिए तप का निश्चय ही संयुक्त होकर 'प्रायश्चित्त' माना गया है।। ५।।)

इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम्।। ४८।।

इह जन्मनि निषिद्धाचरणैः केचित्पूर्वजन्मकृतैर्दुष्टस्वभावा मनुष्या कौनख्यादिकं रूपविपर्ययं प्राप्नुवन्ति।। ४८।।

दुष्टात्मा कुछ लोग इस जन्म के दुराचरणों के कारण तथा कुछ अन्य लोग पूर्वजन्मों में किए गए दुष्टाचरणों से, रूप की कुरूपता (कुष्ठरोगादि) को प्राप्त करते हैं।। ४८।।

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम्।
ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः।। ४९।।
पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम्।
धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरैक्यं तु मिश्रकः।। ५०।।
अन्नहर्ताऽऽमयावित्वं मौक्यं वागपहारकः।
वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पङ्गुतामश्वहारकः।। ५१।।
एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः।
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा।। ५२।।

(दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्।
हिंसया व्याधिभूयस्त्वमरोगित्वमहिंसया।। ६।।)

ब्राह्मणसुवर्णचौरः कुत्सितनखत्वं प्राप्नोति। निषिद्धसुरापः श्यावदन्ततां, ब्रह्महा क्षयरोगित्वं, गुरुभार्यागामी विकोशमेहनत्वम्, पिशुनो विद्यमानदोषाभिधायी दुर्गन्धिनासत्वं, अविद्यमानदोषाभिधायको दुर्गन्धिमुखत्वं, धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वं, धान्यादेरपद्रव्येण मिश्रणकर्ताऽतिरिक्ताङ्गत्वं, अन्नचौरो मन्दानलत्वं, अननुज्ञाताध्यायी मूकत्वं, वस्त्रचौरः श्वेतकुष्ठत्वं, अश्वचौरः खञ्जत्वम्। एवं बुद्धिवाक्चक्षुःश्रोत्रविकला विकृतरूपाः साधुविगर्हिताश्च प्राजन्मार्जितोपभुक्तदुष्कृतशेषेणोत्पद्यन्ते। ''दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापकस्तथा। हिंसारुचिः सदा रोगी वाताङ्गः पारदारिकः ।।४९-५२।।

क्योंकि स्वर्ण की चोरी करने वाला व्यक्ति विकृत नाखूनों वाला, मदिरापान करने वाला काले दाँतों से युक्त तथा ब्राह्मण की हत्या करने वाला क्षयरोगी एवं गुरुपत्नी से शारीरिक सम्पर्क रखने वाला चर्मरोगी होता है। इसीप्रकार चुगलखोर व्यक्ति दुर्गन्धपूर्ण नासिका से युक्त, असत्य दोषों का कथन करने वाला दुर्गन्धित मुख से युक्त, अन्न को चुराने वाला अङ्गहीनता से युक्त तथा अन्न में मिलावट करने वाला अधिक अंगत्व को प्राप्त होता है।। इसके अतिरिक्त पके हुए अन्न को चुराने वाला मन्दाग्नि रोग से ग्रस्त, वाणी को चुराने वाला गूँगेपन को तथा वस्त्र को चुराने वाला श्वेत कोढ़ को एवं घोड़े की चोरी करने वाला पंगुता को प्राप्त करता है। इसप्रकार अपने-अपने पूर्वजन्मों के कर्मों की विशेषता के कारण, सज्जनों द्वारा निन्दा किए गए, मूर्ख, गूंगे, अन्धे, बहरे तथा विकारयुक्त आकार वाले उत्पन्न होते हैं।। ४७-५२।।

(इसीप्रकार दीपक की चोरी करने वाला अन्धा होता है तथा उसे बुझाने वाला काना होता है तथा जीवों की हिंसा से अनेक व्याधियों से युक्त एवं अहिंसा का आचरण करने से व्यक्ति निरोगी होता है।। ६।।)

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये।
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः।।५३।।

यस्मादनिष्कृतमनाशितमेनो यैस्तेऽनिष्कृतैनसोऽकृतप्रायश्चित्ताः परलोकोपभुक्त-दुष्कृतशेषेण निन्द्यैर्लक्षणैः कुनखित्वादिभिर्युक्ता जायन्ते। तस्माद्विशुद्धये पापनिर्हरणार्थं प्रायश्चित्तं सदा कर्तव्यम्। एवं ''भिन्ने जुहोति'' इतिवन्न नैमित्तिकंमात्रं प्रायश्चित्तं किंत्वनिष्कृतैनस इत्युपादानात्तथा विशुद्धये चरितव्यमित्युपदेशात्पापक्षयार्थिन

एवाधिकार:। तथाहि-प्रायश्चित्तं हि चरितव्यमिति विधावधिकारापेक्षायां फलमात्रे निर्देशादिति रात्रिसत्रन्यायेन श्रूयमाणमेव विशुद्धय इति फलमधिकारिविशेषणं युक्तम्। इममेवार्थं स्फुटयति याज्ञवल्क्य:-''विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नर: पतनमृच्छति।। तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चितं विशुद्धये।।'' (अ० ३ श्लो० २१९-२२०) पतनमृच्छति पापं प्राप्नोतीत्यर्थ:। विशुद्धये पापविनाशाय। ''बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात्। संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान्।।'' (अ० १२ श्लो० ५४) इत्यादिना महापातक्यादीनां नरकादिप्राप्तिं वक्ष्यति। न तन्नैमित्तिकमात्रत्वं प्रायश्चित्तानां संगच्छते। तस्माद्ब्रह्मवधादिजनितपापक्षयार्थिन एव प्रायश्चित्तविधावधिकार इति ज्ञेयम्।। ५३।।

इसलिए अपने कर्मों की विशुद्धि के लिए व्यक्ति को हमेशा प्रायश्चित्त का आचरण करना चाहिए, क्योंकि अपने पापों का प्रायश्चित्त न करने वाले लोग ही वस्तुत: निन्दित लक्षणों से युक्त उत्पन्न होते हैं।।५३।।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागम:।
महान्ति पातकान्याहु: संसर्गश्चापि तै: सह।। ५४।।

ब्राह्मणप्राणवियोगफलको व्यापारो ब्रह्महत्या स च साक्षादन्यं वा नियुज्य तथा गोहिरण्यग्रहणादिनिमित्तकार्यकस्यापि तदुद्देशेन ब्राह्मणमरणे ब्रह्महत्या। नन्वेवमिषुकारस्यापीषूत्पादनद्वारेण तथा वध्यस्यापि हन्तृगतमन्यूत्पादनद्वारा ब्रह्महत्या स्यात्। उच्यते। शास्त्रतो यस्य ब्राह्मणहन्तृत्वं प्रतीयते स एव ब्रह्महन्ता। अत एव शातातप:-''गोभूहिरण्यग्रहणो स्त्रीसंबन्धकृतेऽपि वा। यमुद्दिष्य त्यजेत्प्राणां-स्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्।।'' एवं चान्यान्यपि शास्त्रीयाण्येव ब्रह्मवधनिमित्तानि ज्ञेयानि। तथा '' रागाद्द्वेषात्प्रमादाद्वा स्वत: परत एव वा। ब्राह्मणं घातयेद्यस्तु तमाहु-र्ब्रह्मघातकम्।।'' इति प्रयोजकस्यापि हन्तृत्वं शास्त्रीयम्। तथा निषिद्धसुरापानं, ब्राह्मणसुवर्णहरणं, गुरुभार्यागमनं, गुरुश्च पिता निषेकादीनि कर्माणीत्यादिना तस्य गुरुत्वेन विधानात्। तैश्च सह संसर्ग: संवत्सरेण पततीत्येतानि महापातकान्याहु:। महापातकसंज्ञा चेयं वक्ष्यमाणस्योपपातकादिसंज्ञालाघवार्थम्।। ५४।।

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरु पत्नी के साथ प्रसङ्ग तथा ऐसे लोगों की सङ्गति ये महापातक कहे गए हैं।।५४।।

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्ध: समानि ब्रह्महत्यया।। ५५।।

जात्युत्कर्षनिमित्तमुत्कर्षभाषणं तथा ब्राह्मणोऽहमिति अब्राह्मणो ब्रवीति, राजनि

वा स्तेनादीनां परेषां मरणफलकं दोषाभिधानं, गुरोश्चानृतामिशंसनम्। तथाच गौतमः- "गुरोरनृताभिशंसनम्" इति। महापातकसमानीत्येतानि ब्रह्महत्यासमानीति।।५५।।

इसके अतिरिक्त अपनी जाति आदि का उत्कर्ष प्रदर्शित करने के लिए असत्य भाषण करना, राजा के समीप पहुँचकर दूसरों की चुगली करना तथा गुरु के झूठे दोष का कथन करना, ये सभी ब्रह्महत्या के समान माने गए हैं।।५५।।

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट्।। ५६।।

ब्रह्मणोऽधीतवेदस्यानभ्यासेन विस्मरणम्, असच्छास्त्राश्रयणेन वेदकुत्सनम्, साक्ष्ये मृषाभिधानम्, मित्रस्याब्राह्मणस्य वधः, निषिद्धस्य लशुनादेर्भक्षणम्, अनाद्यस्य पुरीषादेरदनम्। मेधातिथिस्तु-न भोक्ष्यत इति संकल्प्य यद्भुज्यते तदनाद्यमित्याचष्टे। एतानि सुरापानसमानि।। ५६।।

अध्ययन किए गए वेद का विस्मरण करना, वेदों की निन्दा करना, झूठी गवाही देना, मित्र की हत्या करना, निन्दित एवं अभक्ष्य अन्न का भक्षण करना, ये छः सुरापान के समान होते हैं।। ५६।।

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च।
भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्।। ५७।।

ब्राह्मणसुवर्णव्यतिरिक्तनिक्षेपस्य हरणं तथा मनुष्यतुरगरूप्यभूमिहीरकमणीनां हरणं सुवर्णस्तेयतुल्यम्।। ५७।।

इसके अलावा धरोहर, मनुष्य, अश्व, चाँदी, भूमि, हीरा एवं मणि का अपहरण करना, स्वर्ण की चोरी के समान कहा गया है।। ५७।।

रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः।। ५८।।

सोदर्यभगिनीकुमारीचण्डालीसखिपुत्रभर्यासु यो रेतःसेकस्तं गुरुभार्यागमन-समानमाहुः। एतेषां भेदेन समीकरणं यद्येन समीकृतं तस्य तेन प्रायश्चित्तार्थम्। यत्कौटसाक्ष्यसुहृद्वधयोः सुरापानसमीकृतयोर्ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तं वक्ष्यति तद्विकल्पार्थम्, यत्पुनर्गुरोरलीकनिर्बन्धस्य ब्रह्महत्यासमीकृतस्य पुनरुपरिष्टाद्ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तनिर्देशः तत्समीकृतानां न्यूनप्रायश्चित्तं भवतीति ज्ञापनार्थम्। तथा च लोके राजसमः सचिव इत्युक्ते सचिवस्य न्यूनतैव गम्यते। अत्रौपदेशिकप्रायश्चितेभ्य आतिदेशिकप्रायश्चित्तानां तन्न्यूनं प्रायश्चित्तं समीकृतानां च।। ५८।।

अपनी सगी बहन, कुमारी, चाण्डालिनी में तथा मित्र एवं पुत्र की स्त्रियों में अपने वीर्य का सेचन, गुरुपत्नी के गमन के समान माना गया है।।५८।।

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च।। ५९।।
परिवित्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम्।। ६०।।
कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम्।
तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः।। ६१।।
व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च।
भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः।। ६२।।
सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम्।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च।। ६३।।
इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम्।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा।। ६४।।
अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया।। ६५।।
धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम्।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम्।। ६६।।

गोहननं, जातिकर्मदुष्टानां याजनं, परपत्नीगमनं, आत्मविक्रयः, मातृपितृगुरूणा च शुश्रूषाद्यकरणं, सर्वदा ब्रह्मयज्ञत्यागः न वेदविस्मरणं "ब्रह्मोज्झता (अ० ११ श्लो० ५६) इत्यनेनोक्तत्वात्। अग्नेश्च स्मार्तस्य त्यागः, श्रौतानां "अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्" (अ० ११ श्लो० ४१) इत्युक्तत्वात्, सुतस्य च संस्कारभरणाद्यकरणं, कनीयसा आदौ विवाहे कृते ज्येष्ठस्य परिवित्तित्वं भवति। "दाराग्निहोत्रसंयोगः" (अ० ३ श्लो० १७१) इत्यादिना प्रागुक्तं कनिष्ठस्य परिवेत्तृत्वं तयोश्च कन्याया दानं तयोरेव विवाहहोमादियागेष्वार्त्विज्यं, कन्याया मैथुनवर्जमङ्गुलिप्रक्षेपादिना दूषणं, रेतःसेकपर्यन्तमैथुनेषु तु "रेतःसेकःस्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च" (अ० ११ श्लो० ५८) इत्युक्तत्वात्प्रतिषिद्धं, वृद्धिजीवनं, ब्रह्मचारिणो मैथुनं, तडागोद्यानभार्यापत्यानां विक्रयः, यथाकालमनुपनयनं व्रात्यता तथा चोक्तम्-"अत ऊर्ध्वं

त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः'' (अ० २ श्लो० ३९) इति। बान्धवानां पितृव्यादीनामननुवृत्तिः, प्रतिनियतवेतनग्रहणपूर्वकमध्यापनं, प्रतिनियतवेतनप्रदान-पूर्वकमध्ययनं च अविक्रय्यादीनां तिलादीनां विक्रयः, सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानेषु राजाज्ञयाऽधिकारः, महतां प्रवाहप्रतिबन्धहेतूनां सेतुबन्धादीनां प्रवर्तनं, औषधीनां जातिमात्रादीनां हिंसनम्'' एतच्च ज्ञानपूर्वकाभ्यासक्रियायां प्रायश्चित्त गौरवात्। यत्तु ''कृष्टजानामौषधीनां'' (अ० ११ श्लो० १४४) इत्यादिना वक्ष्यति तत्सकृद्धिंसायां प्रायश्चित्तलाघवात्। भार्यादिस्त्रीणां वेश्यात्वं कृत्वा तदुपजीवनं, श्येनादियज्ञेनानपराद्धस्य मारणं, मन्त्रौषधिना वशीकरणं, पाकादिदृष्टप्रयोजनार्थमात्रमेव वृक्षच्छेदनं, अनातुरस्य देवपित्राद्युद्देशमन्तरेण पाकाद्यनुष्ठानं, निन्दितान्नस्य लशुनादेः सकृदनिच्छया भक्षणम्, इच्छापूर्वकाभ्यासभक्षणे पुनः ''गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः'' (अ० ११ श्लो० ५६) इत्युक्तत्वात्। सत्यधिकारेऽग्न्यनाधानं, सुवर्णादन्यस्य सारद्रव्यस्यापहरणं, ऋणानां च ऋणैस्त्रिभिर्ऋणवान्नरो जायते तदनपकरणं, श्रुतिस्मृतिविरुद्धशास्त्रशिक्षणं, नृत्यगीत-वादित्रोपसेवनं, धान्यताम्रलोहादेः पशूनां च चौर्यं, द्विजातीनां पीतमद्यायाः स्त्रिया गमनं, स्त्रीशूद्रवैश्यक्षत्रियहननं, अदृष्टार्थकर्माभावबुद्धिः। एतत्प्रत्येकमुपपातकम् ''बान्धव-त्यागः'' (अ०११ श्लो० ६२) इत्यनेनैव मात्रादीनां त्यागप्राप्तौ पृथग्वचनं निन्दार्थम्। पितृव्यादिबान्धवत्यागेनावश्यमेव प्रायश्चित्तं भवति, किन्तु मात्रादित्यागप्रायश्चित्तान्न्यून-मपि भवति।। ५९-६६।।

गोहत्या, अनधिकृत जाति अथवा कर्म से दुष्ट लोगों को यज्ञ कराना, परस्त्री-संसर्ग, स्वयं का विक्रय करना, माता-पिता, गुरु, यज्ञ, पुत्र एवं स्वाध्याय का परित्याग, बड़े भाई का विवाह हुए बिना छोटे भाई द्वारा विवाह करना, पिता द्वारा बड़े व छोटे भाई दोनों को एक साथ कन्यादान करना एवं पुरोहित द्वारा उन दोनों का ही यज्ञ कराना। पुत्री को दूषित करना, ब्याज का लेन-देन करना, व्रत को नष्ट करना, तालाब, बाग, स्त्रियों एवं सन्तान का विक्रय करना, समय के अनुसार यज्ञोपवीत संस्कारादि न करना, बन्धु-बान्धवों का परित्याग करना, शुल्क लेकर अध्यापन करना, इसीप्रकार शुल्क देकर पढ़ना, पढ़ाना तथा न बेचने योग्य वस्तुओं का विक्रय करना। स्वर्णादि सभी प्रकार के उत्खनन कार्यों पर अधिकार करना, महायन्त्रों को परिचालित करना, औषधियों को विनष्ट करना, स्त्री द्वारा व्यभिचार कराकर जीविका-यापन करना, मारण-वशीकरण आदि मन्त्रों का प्रयोग करना, ईंधन के लिए हरे वृक्षों को काटना, केवल अपने लिए पाकादि क्रिया सम्पन्न करना तथा निन्दित अन्न का भक्षण करना, अग्निहोत्र का परित्याग, चोरी करना, ऋणों को न लौटाना, धर्मविरुद्ध दूषित शास्त्रों का अध्ययन करना, नृत्य, गीत, वाद्य व्यवसायों का सेवन करना।

धान्य, ताँबा आदि धातुओं एवं पशुओं की चोरी करना, मद्यपान करने वाली स्त्री का सेवन करना, स्त्री, शूद्र, वैश्य एवं क्षत्रिय का वध करना एवं नास्तिकता, ये सभी उपपातक कहे गए हैं।। ५९-६६।।

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः।
जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम्।। ६७।।

ब्राह्मणस्य दण्डहस्तादिना पीडाक्रिया, यदतिशयदुर्गन्धितयाघ्रेयं लशुनपुरीषादि तस्य मद्यस्य चाघ्राणं कुटिलत्वं वक्रता, पुंसि च मुखादौ मैथुनमित्येतत्प्रत्येकं जातिभ्रंशकरं स्मृतम्।। ६७।।

ब्राह्मण को दण्ड या हाथादि से पीटना, अत्यधिक दुर्गन्धित पदार्थों लशुन मदिरादि को सूँघना, कुटिल आचरण एवं पुरुष के साथ मैथुन करना, ये सभी बातें व्यक्ति को जाति से भ्रष्ट करने वाली मानी गयी हैं।। ६७।।

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा।
संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च।। ६८।।

गर्दभतुरगोष्ट्रमृगहस्तिच्छागमेषमत्स्यसर्पमहिषाणां प्रत्येकं वधः संकरीकरणं ज्ञेयम्।। ६८।।

गधा, ऊँट, घोड़ा, हिरण, हाथी, भेड़, मछली, साँप तथा भैंस के वध को वर्णसङ्कर करने वाला मानना चाहिए।। ६८।।

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम्।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्।। ६९।।

अप्रतिग्राह्यधनेभ्यः प्रतिग्रहो वाणिज्यं शूद्रस्य परिचर्या अनृताभिधान- मित्येतत्प्रत्येकमपात्रीकरणं ज्ञेयम्।। ६९।।

निन्दित लोगों से दानरूप में धन स्वीकार करना, वैश्य न होकर भी व्यापार करना, शूद्र की सेवा करना, असत्य सम्भाषण करना, इन्हें अपात्रता करने वाला समझना चाहिए।। ६९।।

कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम्।
फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम्।। ७०।।

कृमयः क्षुद्रजन्तवस्तेभ्य ईषत्स्थूलाः कीटास्तेषां वधः, पक्षिणां च। मद्यानुग यद्भोज्यमपि शाकाद्येकत्र पिटकादौ कृत्वा मद्येन सहानीतं तस्य भोजनम्।

मेधातिथिस्तु-मद्यानुगतं मद्यसंस्पृष्टमाह तत्र, तत्र प्रायश्चित्तगौरवात्। फलकाष्ठपुष्पाणां च चौर्यमल्पेऽपच्येऽप्यत्यन्तवैक्लव्यम्। एतत्सर्वं प्रत्येकं मलिनीकरणम्।। ७०।।

इसके अतिरिक्त छोटे-बड़े कीट, पतङ्गे एवं पक्षियों की हत्या करना, मद्य एवं माँस का सेवन करना, फल, ईंधन एवं पुष्पों की चोरी करना तथा धैर्य न रखना ये सभी मनुष्य को मलिन करने वाले हैं।। ७०।।

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक्।
यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ्निबोधत।। ७१।।

एतानि ब्रह्महत्यादीनि सर्वाणि पापानि भेदेन यथोक्तानि यैर्यैर्व्रतैः प्रायश्चित्त-रूपैर्नाश्यन्ते तानि यथावत् शृणुत।। ७१।।

इसप्रकार मैंने आपसे अलग-अलग इन सभी पापों का यथोचित कथन किया। अब मैं जिन-जिन व्रतों से ये पाप दूर किये जा सकते हैं, उनका कथन करता हूँ, आप उचित प्रकार से उन्हें समझिए।। ७१।।

ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत्।
भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम्।। ७२।।

यो ब्राह्मणं हतवान्स वने कुटीं कृत्वा हतस्य शिरःकपालं तदभावेऽन्यस्यापि चिह्नं कृत्वारण्ये भैक्षभुगात्मनः पापनिर्हरणाय द्वादश वर्षाणि वसेद्व्रतं कुर्यात्। अत्रापि कृतवापनो निवसेदिति वक्ष्यति। मुन्यन्तरोक्ता अपि विशेषा ग्राह्याः। तथाच यमः-" सप्तागाराण्यपूर्वाणि यान्यसंकल्पितानि च। संविशेत्तानि शनकैर्विधूमे भुक्तवज्जने।। भ्रूणघ्ने देहि मे भिक्षामेनो विख्याप्य संचरेत्। एककालं चरेद्भैक्ष्यं तदलब्ध्वोदकं पिबेत्।।" अयं च द्वादशवार्षिकविधिर्ब्राह्मणस्याज्ञानकृतब्राह्मणवधे "इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम्" (अ० ११ श्लो० ८९) इति वक्ष्यमाण-त्वात्। क्षत्रियवैश्यशूद्राणां तु क्रमेणैतद्द्वादशवार्षिकं द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणं च द्रष्टव्यम्। यथोक्तं भविष्यपुराणे-"द्विगुणाः क्षत्रियाणां तु वैश्यानां त्रिगुणाः स्मृताः। चतुर्गुणास्तु शूद्राणां पर्षदुक्ता महात्मनाम्।। पर्षदुक्तव्रतं प्रोक्तं शुद्धये पापकर्मणाम्।।" यावद्भिर्ब्राह्मणैर्ब्राह्मणानां सभा, ततो द्विगुणैः क्षत्रियाणां द्रष्टव्यव्यवहारदर्शनाद्यर्थासभा भवेत्, त्रिगुणैर्वैश्यैर्वैश्यानां, चितुर्भिः शूद्रैः शूद्राणामिति संभवाच्च क्षत्रियादीनां त्रयाणां व्रतमपि द्विगुणत्रिगुणचतुर्गुणमित्यर्थः। एतानि च मनूक्तब्रह्मवधप्रायश्चित्तवचनानि गुणवत्कृतनिर्गुणब्राह्मणहननविषयत्वेन भविष्यपुराणे व्याख्यातानि। "हन्ता चेद्गुणवान्वीर अकामान्निर्गुणो हतः।। कर्तव्यानि मनूक्तानि कृत्वा वै आश्वमेधिकम्।। ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत्। गच्छेदवभृथं वापि अकामान्निर्गुणे हते।।

जातिशक्तिगुणापेक्षं सकृद्बुद्धिकृतं तथा। अनुबन्धादि विज्ञाय प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्।।'' इति विश्वामित्रवचनात्प्रायश्चित्ताधिक्यमूहनीयम्। कामकृते तु ब्राह्मणवधे द्विगुणं ब्रह्मवधप्रायश्चित्तं चतुर्विंशतिवर्षम्। तदाहाङ्गिरा:-''अकामत: कृते पापे प्रायश्चित्तं न कामत:। स्यात्त्वकामकृते यत्तु द्विगुणं बुद्धिपूर्वके''।। ७२।।

ब्राह्मण की हत्या करने वाला, अपनी शुद्धि के लिए, मस्तक पर प्रेतचिह्न का निर्माण करके, भिक्षाटन करता हुआ, वन में कुटी का निर्माण करके बारह वर्ष पर्यन्त निवास करे।। ७२।।

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मन:।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिरा:।। ७३।।

धनु:शराद्यायुधधारिणां ब्रह्मवधपापक्षयार्थमयं लक्ष्यभूत इत्येवं जानतां स्वेच्छया बाणलक्ष्यभूतो वावतिष्ठेत। यावन्मृतो मृतकल्पो वा विशुध्येत्। तदाह याज्ञवल्य:— ''संग्रामे वा हतो लक्ष्यभूत: शुद्धिमवाप्नुयात्। मृतकल्प: प्रहारार्तो जीवन्नपि विशुद्ध्यति।।'' (अ० ३ श्लो०२४८) अग्नौ प्रदीप्ते वाधोमुखस्त्रीन्वारान्शरीरं प्रक्षिपेत्। ''तथा प्रास्येत यथा म्रियेत'' इत्यापस्तम्बवचनादेवं प्रक्षिपेत्। एतत्प्रायश्चित्तद्वयमनन्तरे वक्ष्यमाणं च ''यजेत वाश्वमेधेन'' (अ० ११ श्लो० ७४) इत्येवं प्रायश्चित्तत्रयमिदं कामत: क्षत्रियस्य ब्राह्मणवधविषयम्। मनुश्लोकमेव लिखित्वा व्याख्यानं भविष्यपुराणे-''लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मन:। प्रास्येदात्मान-मग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शरा:।। यजेत वाश्वमेधेन क्षत्रियो विप्रघातक:। प्रायश्चित्तत्रयं ह्येतत्क्षत्रियस्य प्रकीर्तितम्।। क्षत्रियो निर्गुणो धीरं ब्राह्मणं वेदपारगम्। निहत्य कामतो वीर लक्ष्य: शस्त्रभृतो भवेत्।। चतुर्वेदविदं धीरं ब्राह्मणं चाग्निहोत्रिणम्। निहत्य कामादात्मानं क्षिपेदग्नाववाक्शिरा:।। निर्गुणं ब्राह्मणं हत्वा कामतो गुणवान्गुह। यष्ट्वा वा आश्वमेधेन क्षत्रियो यो महीपति:''।। ७३।।

अथवा स्वेच्छा से विद्वानों के समक्ष शस्त्रधारण करने वाले लोगों का लक्ष्य बने या फिर नीचे को सिर करके प्रज्ज्वलित अग्नि में स्वयं को तीन बार गिराए।। ७३।।

यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा।
अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा।। ७४।।

'' यजेत वाश्वमेधेन'' इत्यनन्तरं व्याख्यातम्। स्वर्जिता यागविशेषेण गोसवेन अभिजिता विश्वजिता वा त्रिवृताग्निष्टुता वा याजयेत्। एतानि चाज्ञानतो ब्रह्मवधे प्रायश्चित्तानि त्रैवर्णिकस्य विकल्पितानि। तदुक्तं भविष्यपुराणे—''स्वर्जितादेश्च यद्वीर कर्मणां पृतनापते। अनुष्ठानं द्विजातीनां वधे ह्यमतिपूर्वके''।। ७४।।

अथवा अश्वमेध, स्वर्जित, गोसव, अभिजित्, विश्वजित्, त्रिवृत, अग्निष्टोम, इन यज्ञों में से किसी एक का यजन करे।। ७४।।

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत्।
ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्नियतेन्द्रियः।। ७५।।

वेदानां मध्यादेकं वेदं जपन्स्वल्पाहारः संयतेन्द्रियो ब्रह्महत्यापापनिर्हरणाय योजनानां शतं गच्छेत्। एतदप्यज्ञानकृते जातिमात्रब्राह्मणवधे त्रैवर्णिकस्य प्रायश्चित्तम्। तथा च भविष्यपुराणे अयमेव श्लोकः पठितो व्याख्यातश्च—''जातिमात्रं यदा विप्रं हन्यादमतिपूर्वकम्। वेदविच्चाग्निहोत्री च तदा तस्य भवेदिदम्''।। ७५।।

अथवा ब्रह्महत्या के पाप को दूर करने के लिए अत्यल्प भोजन करते हुए, इन्द्रियों को वश में करके, किसी भी एक वेद का जप करते हुए, सौ योजन पर्यन्त पैदल प्रस्थान करे।। ७५।।

सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत्।
धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम्।। ७६।।

सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय दद्यात्। यावद्धनं जीवनाय समर्थं। गृहं वा गृहोपयोगिधनधान्यादियुतम् अतः सर्वस्वं वा गृहं वा सपरिच्छदं दद्यात्। जीवनायालमिति वचनाज्जीवनपर्याप्तं सर्वस्वं गृहं वा दद्यान्न ततोऽल्पम्। एतच्चाज्ञानतो जातिमात्रब्राह्मणवधे ब्राह्मणस्य प्रायश्चित्तम्। तथा च भविष्यपुराणम्—''जातिमात्रं यदा हन्याद्ब्राह्मणं ब्राह्मणो गुह। वेदाभ्यासविहीनो वै धनवानग्निवर्जितः। प्रायश्चित्तं तदा कुर्यादिदं पापविशुद्धये। धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम्''।। ७६।।

अथवा किसी वेदज्ञ ब्राह्मण को अपना सर्वस्व दान कर दे या फिर उसके जीवन के लिए पर्याप्त धन प्रदान करे अथवा सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री सहित घर ही दान में दे दे।। ७६।।

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम्।
जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम्।। ७७।।

नीवारादिहविष्यान्नभोजी विख्यातप्रस्रवणादारभ्यापश्चिमोदधेः स्रोतः प्रतिसरस्वतीं यायात्। एतच्च जातिमात्रब्राह्मणवधे ज्ञानपूर्वके। तथा भविष्यपुराणे-''जातिमात्रे हते विप्रे देवेन्द्र मतिपूर्वकम्। हन्ता यदा वेदहीनो धनेन च भवेद्धतः।। तदैत्कल्पयेत्तस्य प्रायश्चितं निबोध मे। हविष्यभुक्चरेद्वापि प्रतिस्रोतः सरस्वतीम्।। अथवा परिमिताहारस्त्रीन्वारान्वेदसंहिताम्।।'' संहिताग्रहणात्पदक्रमव्युदासः। अत्रापि

भविष्यपुराणीयो विशेष:—"जातिमात्रं तु यो हन्याद्विप्रं त्वमतिपूर्वकम्। ब्राह्मणोऽत्यन्तगुणवांस्तेनेदं परिकल्पयेत्।। जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम्। ऋचो यजूंषि सामानि त्रैविद्याख्यं सुरोत्तम"।। ७७।।

अथवा नीवारादि हविष्य पदार्थों का भक्षण करता हुआ, समुद्र से लेकर उद्गम स्थल पर्यन्त सरस्वती नदी के किनारे-किनारे यात्रा करे अथवा अत्यल्प भोजन करता हुआ वेद की संहिता का ही तीन बार जप करे।। ७७।।

इदानीम् " समाप्ते द्वादशे वर्षे" (अ० ११ श्लो०) इत्युपदेशाद्द्वादशवार्षिकस्य विशेषमाह—

कृतवापनो निवसेद्ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा।
आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रत:।। ७८।।

लूनकेशनखश्मश्रुर्गोब्राह्मणहिते रतो गोब्राह्मणोपकारान्कुर्वन्ग्रामसमीपे गोष्ठपुण्यदेशवृक्षमूलान्यतमे निवसेत्। वने कुटीं कृत्वेत्यस्य विकल्पार्थमिदम्।। ७८।।

अथवा सिर मुँडवाकर गाँव के समीप, अथवा गोशाला में, आश्रम में या वृक्ष के मूल में निवास करते हुए, गो-ब्राह्मण के हित में निरत रहे।। ७८।।

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्य: प्राणान्परित्यजेत्।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च।। ७९।।

प्रक्रान्ते द्वादशवार्षिकेऽन्तराग्न्युदकहिंसकाद्याक्रान्तब्राह्मणस्य गोर्वा परित्राणार्थं प्राणान्परित्यजन्ब्रह्महत्याया मुच्यते। गोब्राह्मणं वा तत: परित्रायामृतोऽप्यसमाप्तद्वादशवर्षोऽपि मुच्यते।। ७९।।

इतना ही नहीं अपितु ब्रह्महत्या करने वाले व्यक्ति को आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण एवं गाय की रक्षा के लिए अपने प्राणों का भी परित्याग कर देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से गौ एवं ब्राह्मण की रक्षा करने वाला व्यक्ति ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।। ७९।।

त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा।
विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते।। ८०।।

स्तेनादिभिर्ब्राह्मणसर्वस्वेऽपह्रियमाणे तदानयनार्थं निर्व्याजं यथाशक्ति प्रयत्नं कुर्वंस्तत्र त्रिवारान् युद्धे प्रवर्तमानो नानीतेऽपि सर्वस्वे ब्रह्महत्यापापात्प्रमुच्यते। अथवा प्रथमवार एव विप्रसर्वस्वमपहृतं जित्वार्पयति तथापि मुच्यते। यद्वा

धनापहारकत्वेन स्वेनैव ब्राह्मणो युद्धेन मरणे प्रवर्तते तदा यद्यप्यपहृतसमधनदानेन तं जीवयति तदापि तन्निमित्ते तस्य प्राणलाभे ब्रह्महत्यापापान्मुच्यते। एतदितरप्रकारेण तु रक्षणे गोप्ता गोब्राह्मणस्य चेत्यपुनरुक्तिः।। ८०।।

अथवा ब्राह्मण के धनों की चोरादि से तीन बार रक्षा करने वाला या लूटे गए धनों को जीतकर उन्हें प्रदान करने वाला अथवा इस निमित्त प्रयास करने पर प्राणों के नष्ट हो जाने पर, व्यक्ति ब्रह्महत्या के पाप से तत्काल मुक्त हो जाता है।। ८०।।

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः।
समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति।। ८१।।

एवमुक्तप्रकारेण सर्वदा नियमोपहितः स्त्रीसंयोगादिशून्यः संयतमनाः समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यापापं नाशयति। एवम् "ब्राह्मणार्थे" (अ० ११ श्लो० ७९) इत्यादि सर्वं प्रक्रान्तद्वादशवार्षिकस्य बोद्धव्यम्।। ८१।।

इसप्रकार हमेशा एकाग्रचित्त होकर, दृढ़व्रत धारण करने वाला, ब्रह्मचारी रहते हुए, बारह वर्षों के पूर्ण होने पर ब्रह्महत्या के पाप से विमुक्त हो जाता है।। ८१।।

शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे।
स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते।। ८२।।

अश्वमेधे ब्राह्मणानामृत्विजां क्षत्रियस्य यजमानस्य समागमेषु ब्रह्महत्यापापं शिष्ट्वा निवेद्यावभृथस्नातो ब्रह्महत्यापापान्मुच्यते, द्वादशवार्षिकस्योपसंहृतत्वात्। स्वतन्त्रमेवेदं प्रायश्चित्तम्। तथाच भवि""पुराणे-"यदा तु गुणवान्विप्रो हत्वा विप्रं तु निर्गुणम्। अकामतस्तदा गच्छेत्स्..नं चैवाश्वमेधिकम्।।" गोविन्दराजस्तु-अश्वमेधविवर्जितसकलप्रायश्चित्तशेषतोऽस्य प्रक्रान्तद्वादशवार्षिकप्रायश्चित्तस्यान्तरावभृथस्नाने तेनैव शुद्धिरित्याह तदयुक्तम्, भविष्यपुराणवचनविरोधात्।। ८२।।

अथवा अश्वमेध यज्ञ में राजाओं के एकत्र होने पर, स्वयं के पाप को ब्राह्मणों से कहकर, इसी अवसर पर अवभृत स्नान करके व्यक्ति ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाता है।। ८२।।

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति।। ८३।।

यस्माद्ब्राह्मणो धर्मस्य कारणं ब्राह्मणेन धर्मोपदेशे कृते धर्मानुष्ठानाद्राजा तस्याग्रं प्रान्तं मन्वादिभिरुच्यते, ताभ्यां ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां समूलाग्रधर्मतरुनिष्पत्तेः। तस्मात्तेषां समागमेऽश्वमेधे पापं निवेद्यावभृथस्नातः शुध्यतीत्यस्यैव विशेषः।। ८३।।

क्योंकि ब्राह्मण, धर्म का मूल है तथा क्षत्रिय उसका अग्रभाग कहा जाता है। इसीकारण उनके समागम के अवसर पर अपने पाप का विशेषरूप से कथन करके व्यक्ति शुद्धि को प्राप्त होता है।। ८३।।

ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि दैवतम्।
प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम्।। ८४।।

ब्राह्मण उत्पत्तिमात्रेणैव किं पुनः श्रुतादिभिर्देवानामपि पूज्यः सुतरां मनुष्याणां लोकस्य च प्रत्यक्षवत्प्रमाणम्, तदुपदेशस्य प्रामाण्यात्। यस्मात्तत्र वेद एव कारणं वेदमूलकत्वादुपदेशस्य।। ८४।।

इतना ही नहीं ब्राह्मण तो उत्पत्ति से ही देवताओं का भी पूजनीय है तथा सम्पूर्ण संसार का प्रमाण है, क्योंकि इस विषय में वेद ही वस्तुतः कारणस्वरूप है।। ८४।।

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसुनिष्कृतिम्।
सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक्।। ८५।।

तेषां विदुषां ब्राह्मणानां मध्ये वेदज्ञास्त्रयोऽपि किमुताधिकाः यत्पापनिर्हरणाय प्रायश्चित्तं ब्रूयुस्तत्पापिनां विशुद्धये भवति। यस्माद्विदुषां वाक्पावयित्री ततश्च प्रकाश-प्रायश्चित्तार्थं विदुषामपि परिषदवश्यं कार्या। रहस्यप्रायश्चित्ते पुनरेतन्नास्ति, रहस्यत्व-विरोधात्।। ८५।।

इस अवसर पर तीन वेदज्ञ ब्राह्मण, उन सभी राजादि के समक्ष, ब्रह्महत्या के पाप की विमुक्ति के लिए जिस भी प्रायश्चित्त का कथन करें। वही वाणी वस्तुतः उन्हें पाप मुक्त कर सकती है, क्योंकि विद्वानों की वाणी निःसंदेह पवित्र होती है।। ८५।।

अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः।
ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया।। ८६।।

अस्मात्प्रायश्चित्तगणादन्यतमं प्रायश्चित्तं ब्राह्मणादिः संयतमना आश्रित्य प्रशस्तार्थतया ब्रह्महत्याकृतं पापमपनुदति। एतच्च ब्रह्मवधादिप्रायश्चित्तविधानं सकृत्पापकरणविषयं, पापावृत्तौ त्वावर्तनीयम्। "एनसि गुरुणि गुरूणि लघुनि लघूनि" इति गोतमस्मरणात्। "पूर्णे चानस्यनस्थ्नान्तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत्" (अ० ११ श्लो० १४०) इति, बहुमारणे प्रायश्चित्तबहुत्वस्य वक्ष्यमाणत्वाच्च। "विधेः प्राथमिकादस्माद्द्वितीये द्विगुणं स्मृतम्। तृतीये त्रिगणं प्रोक्तम्" इति गोतमस्मरणात्। गृहदाहादिना युगपदनेकब्राह्मणहननेन तु भविष्यपुराणीयो विशेषः—"ब्राह्मणो ब्राह्मणं

वीर ब्राह्मणौ वा बहूनुह। निहत्य युगपद्वीर एकं प्राणान्तिकं चरेत्।। कामतस्तु यदा हन्याद्ब्राह्मणान् सुरसत्तम। तदात्मानं दहेदग्नौ विधिना येन तच्छृणु।।" एतच्चाज्ञानविषयं सर्वमेवैतत्। तथा "अकामतो यदा हन्याद्ब्राह्मणान्ब्राह्मणो गुह। चरेद्वने तथा घोरे यावत्प्राणपरिक्षयम्।।" एतच्चाज्ञानवधे प्रकृतत्वाद्युगपन्मारणविषयम्। क्रममारणे तु "विधेः प्राथमिकादस्मात्" इत्यावृत्तिविधायकं वेदवचनम्।। ८६।।

इसलिए प्रायश्चित्त के उपर्युक्त उपायों में से किसी एक का आश्रय लेकर, सावधान चित्त होकर ब्राह्मण स्वयं के चिन्तन द्वारा ब्रह्महत्या से होने वाले पाप को नष्ट कर सकता है।। ८६।।

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत्।
राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम्।। ८७।।
(जन्मप्रभृतिसंस्कारै संस्कृता मन्त्रवाचया।
गर्भिणी त्वथवा स्यात्तामात्रेयीं च विदुर्बुधाः।। ७।।)

प्रकृतत्वाद्ब्राह्मणगर्भविषयं स्त्रीपुंनपुंसकत्वेनाविज्ञातं क्षत्रियं वैश्यं च यागप्रवृत्तं हत्वा आत्रेयीं च स्त्रियं ब्राह्मणीम् "तथात्रेयीं च ब्राह्मणीम्" इति यमस्मरणात्। हत्वा ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तं कुर्यात्। आत्रेयी च रजस्वला ऋतुस्नातोच्यते। "रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीम्" इति वसिष्ठस्मरणात्। एवं चानात्रेयीब्राह्मणीवधे त्रैवार्षिकमुपपातकम्। यथोक्तम्—"स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधः" इति। यत्तूत्तरश्लोके "कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम्" (अ० ११ श्लो० ८८) इति तदाहिताग्निब्राह्मणस्य ब्राह्मणी-भार्याविषयम्। तथा चाङ्गिराः-"आहिताग्नेर्ब्राह्मणस्य हत्वा पत्नीमनिन्दिताम्। ब्रह्महत्या-व्रतं कुर्यादात्रेयीघ्नस्तथैव च"।। ८७।।

इसके अतिरिक्त गर्भ में स्थित शिशु को, यज्ञ करते हुए क्षत्रिय अथवा वैश्य को एवं गर्भिणी स्त्री को, अज्ञानतावश मारने पर भी, मनुष्य को इसी व्रत का आचरण करना चाहिए।। ८७।।

(जन्म से लेकर किए जाने वाले संस्कारों द्वारा, मन्त्रों से संस्कार की गयी अथवा गर्भिणी स्त्री को विद्वानों ने 'आत्रेयी' संज्ञा प्रदान की है।। ७।।)

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा।
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम्।। ८८।।

हिरण्यभूम्यादियुक्तसाक्ष्येऽनृतमुक्त्वा, गुरोश्च मिथ्याभिशापमुत्पाद्य, निक्षेपं च ब्राह्मणसुवर्णादन्यद्रजतादि द्रव्यं क्षत्रियादेः सुवर्णमपि चापहृत्य, स्त्रीवधं च यथाव्याख्यातं कृत्वा मित्रं चाब्राह्मणं हत्वा ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तं कुर्यात्।। ८८।।

इतना ही नहीं साक्षी के अवसर पर निश्चयपूर्वक असत्य भाषण करके, उसीप्रकार गुरु को मिथ्या दूषित करके एवं धरोहर का अपहरण करके तथा स्त्री और मित्रों का वध करके भी (व्यक्ति को ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्तों को करना चाहिए)।।८८।।

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम्।
कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते।। ८९।।

एतत्तु प्रायश्चित्तं विशेषोपदेशमन्तरेणाकामतो ब्राह्मणवधेऽभिहितम्। कामतस्तु ब्राह्मणवधे नेयं निष्कृतिर्नैतत्प्रायश्चित्तं किंत्वतो द्विगुणादिकरणात्मकमिति प्रायश्चित्त-गौरवार्थं नतु प्रायश्चित्ताभावार्थम्। "कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः" (अ० ११ श्लो० ४६) इति पूर्वोक्तविरोधात्।। ८९।।

यह प्रायश्चित्त रूप विशुद्धि ब्राह्मण को अज्ञानवश मारने में ही कही गई है। जानबूझकर ब्राह्मण को मारने पर तो शास्त्रों में किसी भी प्रायश्चित्त का विधान नहीं किया गया है।। ८९।।

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः।। ९०।।

सुराशब्दः पैष्टीमात्रे मुख्यो नतु गौडीमाध्वीपैष्टीषु त्रितयानुगतैकरूपाभावात्प्रत्येकं च शक्तिकल्पने शक्तित्रयकल्पनागौरवप्रसङ्गात्। गौड्यादिमदिरासु गुणवृत्त्यापि सुराशब्दप्रयोगोपपत्तेः। अत एव भविष्यपुराणे-"सुरा च पैष्टी मुख्योक्ता न तस्यास्त्वितरे समे। पैष्ट्याः पापेन चैतासां प्रायश्चित्तं निबोधत।। यमेनोक्तं महाबाहो समासव्यासयोगतः। एतासामिति निर्धारणे षष्ठी। एतासां गौडीमाध्वीपैष्टीनां प्रकृतानां मध्ये पैष्टीपाने मनूक्तं प्रायश्चित्तं सुरां पीत्वा द्विजो मोहादिति निबोधतेत्यर्थः। मुख्यां सुरां पैष्टीं रागादिव्यामूढतया द्विजो ब्राह्मणादिश्च पीत्वाग्निवर्णां सुरां पिबेत्तया सुरया शरीरे निर्दग्धे सति द्विजस्तस्मात्पापान्मुच्यते। एतच्च गुरुत्वात्कामकारकृतसुरापानविषयम्। तथाच बृहस्पतिः-"सुरापाने कामकृते ज्वलन्तीं तां विनिःक्षिपेत्। मुखे तया स निर्दग्धो मृतः शुद्धिमवाप्नुयात्"।। ९०।।

अज्ञानवश सुरापान करने पर द्विज वर्ण के व्यक्ति को, अग्नि के समान वर्ण वाली खौलती हुई मदिरा को पीना चाहिए। उसके द्वारा शरीर के दग्ध होने पर ही वह सुरापान के पाप से मुक्त होता है।। ९०।।

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा।
पयो घृतं वाऽऽमरणाद्गोशकृद्रसमेव वा।। ९१।।

गोमूत्रजलगोक्षीरगव्यघृतगोमयरसानामन्यतममग्निस्पर्शं कृत्वा यावन्मरणं पिबेत्।।९१।।

अथवा अग्नि के समान वर्ण वाले, गोमूत्र, जल, दूध, घी अथवा गाय के गोबर के रस को मरणपर्यन्त पीना चाहिए।।९१।।

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि।
सुरापानापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी।।९२।।

अथवा गोरोमादिकृतवासा जटावान् सुराभाजनचिह्नः सूक्ष्मतण्डुलावयवानाकृष्टतैलं तिलं वा रात्रावेकवारं संवत्सरपर्यन्तं सुरापानपापनाशनार्थं भक्षयेत्। इदमबुद्धिपूर्वकममुख्यसुरापाने द्रष्टव्यं नतु गुणान्तरवैकल्पिकं लघुत्वात्।।९२।।

अथवा सुरापान के दोष की निवृत्ति के लिए व्यक्ति वर्षपर्यन्त, चावल के कण अथवा तिलों की खली का भक्षण करे तथा रात्रि में मलिनवस्त्रों को धारण करे। सुरापान चिह्न एवं जटाओं को धारण किए हुए उसको दिन में केवल एकबार भक्षण करना चाहिए।।९२।।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्।।९३।।

यस्मात्तण्डुलपिष्टसाध्यत्वात्सुराऽन्नमलं मलशब्देन च पापमुच्यते। तस्मा द्ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः पैष्टीं सुरां न पिबेयुरित्यनेन प्रतिषेधे सत्येतदतिक्रमे "सुरां पीत्वा" (अ० ११ श्लो० ९०) इति प्रायश्चित्तम्। अन्नमलानुवादाच्च पैष्टीनिषेध एव स्फुटस्त्रैवर्णिकस्य मनुनैवोक्तः।।९३।।

मदिरा वस्तुतः अन्नों का मल कही जाती है तथा मल को ही पाप कहा गया है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को सुरापान नहीं करना चाहिए।।९३।।

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः।।९४।।

या गुडेन कृता सा गौडी, एवं पिष्टेन कृता पैष्टी, मधुकवृक्षो मधुस्तत्पुष्पैः कृता सा माध्वी, एवं त्रिप्रकारा सुरा जायते। मुख्यसुरासाम्यनिबोधनमितरसुरापेक्षया ब्राह्मणस्य गौडीमाध्वीपाने प्रायश्चित्तगौरवार्थम्। यथा वैका पैष्टी मुख्या सुरा पूर्ववाक्यानिषिद्धत्वाद्त्रैवर्णिकस्यापेक्षया तथा पूर्वा गौडी माध्वी च द्विजोत्तमैर्न पातव्या।।९४।।

मदिरा तीन प्रकार की समझनी चाहिए–गुड़ से बनायी गयी, चूर्ण से बनायी गयी तथा मुहुए से बनी हुई। इन सभी में जिसप्रकार की एक है, उसीप्रकार की अन्य सभी मदिरा होती हैं। इसलिए द्विजश्रेष्ठों को मदिरा नहीं पीनी चाहिए।। ९४।।

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः।। ९५।।

मद्यमत्र निषिद्धपैष्टीगौडीमाध्वीव्यतिरिक्तं नवविधं बोद्धव्यम्। तान्याह पुलस्त्यः–'पानसद्राक्षमाध्वीकं खार्जूरं तालमैक्षवम्। माध्वीकं टाङ्कमार्द्वीकमैरेयं नालिकेरजम्।। सामान्यानि द्विजातीनां मद्यान्येकादशैव च। द्वादशं तु सुरामद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम्।।'' मांसं च प्रतिषिद्धम्। सुरा च त्रिप्रकारा प्रोक्ता। असूयत इत्यासवो मद्यानामवस्थाविशेषः। सद्यःकृतसंसाधनोऽसंजातमद्यस्वभावः यमधिकृत्येदं पुलस्त्योक्तप्रायश्चित्तम्। ''द्राक्षेक्षुटङ्कखर्जूरपनसादेश्च यो रसः। सद्योजातं च पीत्वा तु त्र्यहाच्छुध्येद्द्विजोत्तमः।'' एवं मद्यादि चतुष्टयं यक्षरक्षःपिशाचसंबन्ध्यन्नं ततस्तद्ब्राह्मणेन देवानां हविर्भक्षयता नाशितव्यम्। निषिद्धायाः सुरायाः इहोपादानं यक्षरक्षःपिशाचान्नतया निन्दार्थम्। अत्र केचित् ''देवानामश्नता हविः'' इति पुंलिङ्गनिर्देशाद्ब्राह्मणस्य पुंस एव मद्यप्रतिषेधो न स्त्रिया इत्याहुस्तदसत्। ''पतिलोकं न सा याति ब्राह्मणी या सुरां पिबेत्। इहैव सा शुनी गृध्री सूकरी चोपजायते।।'' (अ० ३ श्लो० २५६) इति याज्ञवल्क्यादिस्मृतिविरोधात्।। ९५।।

इसके अतिरिक्त मद्य, माँस और मदिरा का आसव ये सभी मादक पदार्थ यक्ष, राक्षस एवं पिशाचों के भक्षण योग्य होते हैं। अतः देवों की हवि का भक्षण करने वाले, ब्राह्मण को इन हेयपदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।। ९५।।

अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत्।
अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः।। ९६।।

ब्राह्मणो मद्यपानमदमूढबुद्धिः सन्नशुचौ वा पतेत्, वेदवाक्यं वोच्चारयेत्, ब्रह्महत्याद्यकार्यं वा कुर्यादतस्तेन मद्यपानं न कार्यमिति पूर्वस्यैवानुवादः।। ९६।।

इतना ही नहीं मदिरा के मद से मोहित हुआ ब्राह्मण उन्मत्त होकर किसी अपवित्र स्थान में गिर सकता है अथवा वेद-वाक्यों का अशुद्ध उच्चारण कर सकता है या फिर अन्य किसी ब्रह्महत्या आदि अनुचित कार्य को भी कर सकता है, अतः ब्राह्मण को मदिरा का सेवन नहीं करना चाहिए।। ९६।।

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत्।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति।। ९७।।

यस्य ब्राह्मणस्य कायगतं ब्रह्म वेदः संस्काररूपेणावस्थितः एकदेहत्वात् जीवात्मा एकवारमपि मद्येनाप्लाव्यते तथा चैकवारमपि यो ब्राह्मणो मद्यं पिबति तस्य ब्राह्मण्यं व्यपैति शूद्रतां समाप्नोति। तस्मान्मद्यं सर्वथैव न पातव्यम्।। ९७।।

इसके अतिरिक्त जिस ब्राह्मण के शरीर में स्थित जीवात्मा एक बार भी मदिरा से आप्लावित हो जाता है। उसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है तथा वह व्यक्ति शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है।। ९७।।

एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम्।। ९८।।

इदं सुरापानजनितपापस्य नानाप्रकरं प्रायश्चित्तमभिहितम्। अतः परं ब्राह्मणसुवर्णहरणपापस्य निष्कृतिं वक्ष्यामि।। ९८।।

यहाँ तक मैंने आपसे सुरापान करने की अनेक प्रकार की इस निष्कृति का कथन किया। इसके पश्चात् मैं स्वर्ण की चोरी के प्रायश्चित्त का कथन करूँगा। (आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिए)।। ९८।।

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति।। ९९।।

''अपहृत्य सुवर्णं तु ब्राह्मणस्य यतः स्वयम्'' इति शाता- तपस्मरणाद्ब्राह्मण-सुवर्णचौरो ब्राह्मणो राजानं गत्वा ब्राह्मणसुवर्णापहारं स्वीयं कर्म कथयन्मम निग्रहं करोत्विति ब्रूयात्। ब्राह्मणग्रहणं मनुष्यमात्रप्रदर्शनार्थम्। ''प्रायश्चित्तीयते नरः'' (अ० ११ श्लो० ४४) इति प्रकृतत्वात्क्षत्रियादीनां च प्रायश्चित्तान्तरानभिधानात्।। ९९।।

स्वर्ण की चोरी करने वाला ब्राह्मण तो स्वयं राजा के पास जाकर, अपने कर्म को कहता हुआ, 'आप मुझे दण्ड प्रदान कीजिए' इसप्रकार कहे।। ९९।।

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्।
वधेन शुध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु।। १००।।

''स्कन्धेनादाय मुसलम्'' इत्यादेरुक्तत्वात्तेनार्पितं मुसलादिकं गृहीत्वा स्तेयकारिणं मनुष्यमेकवारं राजा स्वयं हन्यात्। स च स्तेनो वधेन मुसलाभिघातेन ''हतो मुक्तोऽपि वा शुचिः'' (अ० ३ श्लो० २५७) इति याज्ञवल्क्यस्मरणान्मृतो

वा मृतकल्पो वा जीवंस्तस्मात्पापान्मुच्यते। ब्राह्मणः पुनस्तपसैव वेत्येवकारदर्शनात्। तथाच-"न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्ववस्थितम्" इति तपसैव शुध्यति। अत एव मन्वर्थव्याख्यानपरे भविष्यपुराणे-"यदेतद्वचनं वीर ब्राह्मणस्तपसैव वा। तत्रैव कारणाद्विद्वन् ब्राह्मणस्य सुराधिप।। तपसैवेत्यनेनेह प्रतिषेधो वधस्य तु। वाशब्दश्च क्षत्रियादीनामपि तपोविकल्पार्थः। ब्राह्मणस्य तु तप एवेति नियमो नतु ब्राह्मणस्यैव तपः। अत एव भविष्यपुराणे-"इतरेषामपि विभो तपो न प्रतिषिध्यते" इति।। १००।।

इसपर राजा 'मुसल' को पकड़कर, स्वयं उस चोर ब्राह्मण पर एक बार प्रहार करे। यद्यपि ब्राह्मण से भिन्न चोर, वध द्वारा शुद्ध होता है, जबकि ब्राह्मण तो तप से ही (शुद्ध होता है)।। १००।।

तदेव तप आह—

तपसापनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम्।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम्।। १०१।।

तपसा स्वर्णस्तेयोत्पन्नं पापं द्विजो निर्हर्तुमिच्छन्नरण्यग्रहणात्प्राथम्याच्च ब्रह्महणि यद्व्रतमुक्तं तत्कुर्यात्। एतच्च द्वादशवार्षिकं क्लेशगौरवात्क्षत्रियादीनां मरणेन विकल्पितत्वाच्च ब्राह्मणसंबन्धिनः सुवर्णापहरणे "पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश" (अ० ८ श्लो० १३४) इति सुवर्णपरिमाणं द्रष्टव्यं न ततो न्यूनस्य। परिमाणापेक्षायां मनूक्तपरिमाणस्य ग्रहीतुं न्याय्यत्वात्। यत्त्वधिकपरिमाणं भविष्यपुराणे श्रूयते तत्तथानुबन्धविशिष्टापहारे तथाविधप्रायश्चित्तविषयमेव। तथा भविष्यपुराणे-"क्षत्रियाद्यास्त्रयो वर्णा निर्गुणा ह्यघतत्पराः। गुणाढ्यस्य तु विप्रस्य पञ्च निष्कान्हरन्ति चेत्।। निष्कानेकादश तथा दग्ध्वात्मानं तु पावके। शुद्ध्येयुर्मरणाद्वीर चरेद्ब्रह्मात्मशुद्धये"।। १०१।।

इसलिए तप द्वारा स्वर्ण की चोरी से उत्पन्न हुए दोष को दूर करने की आकांक्षा करता हुआ द्विज, चीर वस्त्रों को धारण करके जंगल में ब्रह्महत्या के व्रत द्वारा प्रायश्चित्त का आचरण करे।। १०१।।

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः।
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत्।। १०२।।

ब्राह्मणसुवर्णस्तेयजनितपापमेभिर्व्रतैर्द्विजो निर्हरेत्। व्रततपसोर्द्वयोरुक्तत्वादेतैरिति बहुवचनं संबन्धापेक्षया मनूक्तमपि प्रायश्चित्तं कल्पनीयमिति ज्ञापनार्थम्। गुरुस्त्रीगमन-निमित्तं पुनः पापमेभिर्वक्ष्यमाणैः प्रायश्चित्तैर्निर्हरेत्।। १०२।।

अतः चोरी के कारण किए गए पाप को द्विज, पूर्व में कहे गए इन प्रायश्चित्त व्रतों द्वारा दूर करे। जबकि गुरुपत्नी के साथ संसर्ग से होने वाले पाप को तो वह इन कहे जाने वाले प्रायश्चित्त व्रतों द्वारा दूर करे।। १०२।।

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये।
सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्ध्यति।। १०३।।

"निषेकादीनि कर्माणि" (अ० २ श्लो० १४२) इत्युक्तत्वाद्गुरुः पिता, तल्पं भार्या, गुरुतल्पं गुरुभार्या तद्गामी गुरुभार्यागमनपापं विख्याप्य लोहमये तप्तशयने स्वप्यात्। लोहमयीं स्त्रीप्रतिकृतिं कृत्वा ज्वलन्तीमालिङ्गय मृत्युना स विशुद्धो भवति।। १०३।।

गुरुपत्नी के साथ दुराचार करने वाला व्यक्ति अपने पाप का कथन करते हुए, अग्नि द्वारा तपायी हुई लोहशय्या पर शयन करे अथवा अग्नि द्वारा प्रज्वलित लोहे की बनी स्त्री की मूर्ति का भलीप्रकार आलिंगन करे, क्योंकि वह तो वस्तुतः मृत्यु से ही शुद्ध होता है।। १०३।।

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ।
नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः।। १०४।।

आत्मनैव वा लिङ्गवृषणौ छित्त्वाऽञ्जलौ कृत्वा यावच्छरीरपातमवक्रगतिः सन्दक्षिणपश्चिमां दिशं गच्छेत्। एवं चोक्तप्रायश्चित्तद्वयं गुरुत्वात्सवर्णगुरुभार्याविषयं ज्ञानतो रेतोविसर्गपर्यन्तमैथुनविषयम्।। १०४।।

अथवा स्वयं ही अपने लिङ्ग तथा वृषणों (अण्डकोष) को काटकर तथा हाथों की अञ्जलि में रखकर, कुटिल स्वभाव का परित्याग करके, मृत्युपर्यन्त नैर्ऋत्य दिशा में प्रस्थान करे।। १०४।।

खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः।। १०५।।

खट्वाङ्गभृद्वस्त्रखण्डाच्छन्नोऽच्छिन्नकेशनखलोमश्मश्रुधारी संयतमना निर्जने वने वर्षमेकं प्राजापत्यव्रतं चरेत्। एवं च वक्ष्यमाणप्रायश्चित्तलघुत्वात्स्वभार्यादिभ्रमेणा-ज्ञानविषयं बोद्धव्यम्।। १०५।।

अथवा मस्तक पर खट्वाङ्ग (योनि चिह्न) धारण करके, जीर्ण वस्त्र पहनकर, दाढ़ी, मूँछ आदि को बढ़ाकर, एक वर्षपर्यन्त निर्जन वन में, एकाग्रचित्त होकर, कठोरतापूर्वक प्राजापत्य व्रत का आचरण करे।। १०५।।

चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये।। १०६।।

यद्वा गुरुभार्यागमनपापनिर्हरणाय संयतेन्द्रियः फलमूलादिना हविष्येण नीवारादिकृतयवाग्वा वा त्रीन्मासांश्चान्द्रायणान्याचरेत्। एतच्च पूर्वोक्तादपि लघुत्वाद-साध्वीमसावर्णा वा गुरुभार्यां गच्छतो द्रष्टव्यम्।। १०६।।

अथवा गुरुपत्नी संसर्ग के पाप को दूर करने हेतु नियतेन्द्रिय होकर तीन माह पर्यन्त हविष्यान्न अथवा नीवारादि की लप्सी (यवागू) द्वारा चान्द्रायण व्रत का अभ्यास करे।। १०६।।

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम्।
उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः।। १०७।।

एभिरुक्तव्रतैर्ब्रह्महत्यादिमहापातककारिणः पापं निर्हरेयुः। गोवधाद्युप-पातककारिणः पुनर्वक्ष्यमाणप्रकारेणानेकरूपव्रतैः पापानि निर्हरेयुः।। १०७।।

पूर्व में कहे गए इन व्रतों द्वारा महापातकी अपने पाप को दूर करें, जबकि गोवधादि उपपातक करने वाले तो आगे कहे जाने वाले अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त व्रतों द्वारा ही अपने पापों को दूर करें।। १०७।।

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः।। १०८।।
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम्।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः।। १०९।।
दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत्।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत्।। ११०।।
तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्।
आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः।। १११।।
आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत्।। ११२।।
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः।। ११३।।

आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले।
भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम्।। ११४।।
अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति।
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति।। ११५।।

"अनेन विधिना यस्तु" इति यावत्कुलम्। उपपातकयुक्तो गोघाती शिथिलयवागूरूपेण प्रथममासं यवान्पिबेत्। सशिखं मुण्डितशिरा लूनश्मश्रुस्तेन हतगोचर्मणाच्छादितदेहो मासत्रयमेव गोष्ठे वसेत्। गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं संयतेन्द्रियः कृत्रिमलवणवर्जितं हविष्यमन्नमेकाहं भुक्त्वा द्वितीयेऽह्निसायं द्वितीयतृतीयमासावश्नीयात्। मासत्रयमेव दिवा प्रातस्ता गा अनुगच्छेत्। तासां च गवां खुरप्रहारादूर्ध्वमुत्थितं रजस्तिष्ठन्नास्वादयेत्। कण्डूयनादिना ताः परिचर्य प्रणम्य च रात्रौ भित्त्यादिकमननुवेष्ट्योपविष्ट आसीत। तथा शुचिर्विगतक्रोध उत्थितासु गोषु पश्चादुत्तिष्ठेत्। वने च परिभ्रमन्तीषु पश्चात्ततः परिभ्रमेत्। उपविष्टासु गोषूपविशेत्। व्याधितां चौरव्याघ्रादिभयहेतुभिराक्रान्तां पतितां कर्दमलग्नः वा यथाशक्ति मोचयेत्। तथा उष्ण आदित्ये तपति मेघे च वर्षति शीते चोपस्थिते मारुते चात्यर्थं वाति गोर्यथाशक्ति रक्षामकृत्वाऽऽत्मनस्त्राणं न कुर्यात्। तथात्मनोऽन्येषां वा गेहे क्षेत्रे खलेषु सस्यादिभक्षणं कुर्वन्ती वत्सं च क्षीरं पिबन्तं न कथयेत्। अनेनोक्तविधानेन यो गोघ्नो गाः परिचरति स गोवधजनितपापं त्रिभिर्मासैरपनुदति।। १०८-११५।।

गाय की हत्या करने वाला उपपातक से संयुक्त व्यक्ति एक माह पर्यन्त जौ द्वारा बनायी गयी लप्सी का पान करे तथा मारी गई गाय की खाल को धारण करे, दाढ़ी, मूँछ, केश आदि मुँडवाकर गौशाला में निवास करे। तथा केवल रात्रि के प्रथम प्रहर में क्षार एवं नमक से रहित थोड़ा सा भोजन करे और इन्द्रियों को वश में करके दो माह पर्यन्त गोमूत्र से स्नान करे। इसके अतिरिक्त दिन में तो उन गायों का अनुगमन करे तथा गायों के खुरों के प्रहार से ऊपर उड़ती हुई धूल का एक स्थान पर खड़े होकर पान करे। गायों की अनेकप्रकार से सेवा करके, उन्हें नमस्कार करके रात्रि में वीरासन में बैठकर विश्राम करे। इतना ही नहीं नियम में तत्पर व क्रोध का परित्याग करने वाला वह उपपातकी, गायों के खड़ा होने पर उनके अनुकरण स्वरूप खड़ा हो जाए तथा चलती हुई गायों के पीछे-पीछे चले एवं उनके बैठने पर बैठ जाए। इसके अलावा गाय का वध करने वाले उपपातक व्यक्ति को रोगग्रस्त, चोर, व्याघ्रादि के डर से डरी हुई, गिरी हुई अथवा कीचड़ में फँसी हुई गाय को सभी प्रकार के उपायों द्वारा मुक्त कराना चाहिए। गर्मी, सर्दी, बरसात अथवा वायु के अत्यधिक तीव्र गति

से चलने पर अपनी शक्ति के अनुसार यदि गायों की रक्षा न कर सके तो स्वयं की रक्षा भी नहीं करे। इसके अतिरिक्त स्वयं के अथवा अन्यों के खेत में या खलिहान में अन्नादि का भक्षण करती हुई को तथा गाय का दूध पीते हुए बछड़े को किसी अन्य व्यक्ति से न कहे। गाय की हत्या करने वाला जो व्यक्ति, इस विधि द्वारा गाय का अनुगमन करता है वह तीन माह में गोहत्या के पाप से पूर्णतया विमुक्त हो जाता है ।।१०८-११५।।

वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत्।। ११६।।

वृषभ एकादशो यासां ताः सम्यगनुष्ठितप्रायश्चित्तो दद्यात्। अविद्यमाने तावति धने सर्वस्वं वेदज्ञेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्।। ११६।।

उपर्युक्त विधि से भलीप्रकार व्रत करने वाला उपपातकी, अन्त में एक बैल और दस गाय दान में देवे तथा इतना धन न होने की स्थिति में वेदज्ञ ब्राह्मणों के लिए अपना सर्वस्व ही अर्पित कर दे।। ११६।।

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः।
अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा।। ११७।।

अपरे तूपपातकिनो वक्ष्यमाणावकीर्णिवर्जिताः पापनिर्हरणार्थमेतदेव गोवध-प्रायश्चित्तं चान्द्रायणं वा लघुत्वात्कुर्युः। चान्द्रायणं तु लघुन्युपपातके जातिशक्तिगुणाद्य-पेक्ष्यं वा योजनीयम्।। ११७।।

अवकीर्णी नामक पातक को छोड़कर, उपपातकी द्विज अपनी शुद्धि हेतु इसी व्रतरूप प्रायश्चित्त को करें अथवा केवल चान्द्रायण व्रत को कर लेवें।। ११७।।

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि।। ११८।।

अवकीर्णी वक्ष्यमाणः काणेन गर्दभेन रात्रौ चतुष्पथे पाकयज्ञेन तन्त्रेण निर्ऋत्याख्यां देवतां यजेत्।। ११८।।

किन्तु अवकीर्णी नामक पातक पुरुष तो अपने पाप की निवृत्ति के लिए काने गधे द्वारा चौराहे पर जाकर, पाकयज्ञ के विधान से नैर्ऋति नामक देवता का रात्रि में पूजन करे।। ११८।।

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा।
वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाऽऽहुतीः।। ११९।।

ततो निर्ऋत्यै गर्दभवपादिहोमान्यथावच्चतुष्पथे कृत्वा तदन्ते ''संमासिञ्चन्तु मरुतः'' इत्येतया ऋचा मारुतेन्द्रबृहस्पत्यग्नीनां घृतेनाऽऽहुतीर्जुहुयात्।। ११९।।

अग्नि में विधिपूर्वक आहुतियों का हवन करके, तत्पश्चात् 'समासिञ्चतु मारुत' इत्यादि ऋग्वेद के मन्त्र द्वारा, मरुत, इन्द्र, बृहस्पति एवं अग्नि के लिए घी द्वारा आहुतियाँ प्रदान करे।। ११९।।

अप्रसिद्धत्वादवकीर्णवतो लक्षणमाह—

कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः।
अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः।। १२०।।

इच्छातो द्विजः ''अवकीर्णी भवेद्गत्वा ब्रह्मचारी च योषितम्'' इति वचनात्स्त्री-योनौ शुक्रोत्सर्गं ब्रह्मचर्यस्यातिक्रममवकीर्णरूपं सर्वज्ञा वेदविदः प्राहुः।। १२०।।

व्रत में स्थित द्विजाति के व्यक्ति द्वारा इच्छापूर्वक वीर्यसेचन को, धर्म के मर्म को जानने वाले विद्वानों ने व्रत का उल्लंघन कहा है।। १२०।।

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च।
चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः।। १२१।।

व्रतचारिणो वेदाध्ययननियमानुष्ठानजं तेजः तदवकीर्णिनः सतो मरुदिन्द्रबृहस्पति-पावकाश्चतुरः संक्रामत्यतस्तेभ्य आज्याहुतीर्जुहुयादित्याज्याहुतेरयमनुवादः।। १२१।।

क्योंकि व्रत का आचरण करने वाले अवकीर्णी पातकी का ब्रह्मतेज, मारुत, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि इन चारों को प्राप्त होता है।। १२१।।

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम्।
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन्।। १२२।।

एतस्मिन्नवकीर्णाख्ये पाप उत्पन्ने पूर्वोक्तं गर्दभयागादि कृत्वा ''गर्दभचर्म परिधाय'' इति हारीतस्मरणात्स गर्दभसंबन्धिचर्मप्रावृतोऽवकीर्ण्यहमिति स्वकर्मख्यापनं कुर्वन्सप्त गृहाणि भैक्षं चरेत्।। १२२।।

इसलिए इस व्रत के अन्तर्गत वीर्यसेचन सम्बन्धी पाप के होने पर उसे गधे की खाल को ओढ़कर, अपने पाप का संकीर्तन करते हुए, सात घरों से भिक्षावृत्ति का आचरण करना चाहिए।। १२२।।

तेभ्यो लब्धेन भैक्षण वर्तयन्नेककालिकम्।
उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्ध्यति।। १२३।।

तेभ्य: सप्तगृहेभ्यो लब्धेन भैक्षेणैककालमाहारं कुर्वन्सायंप्रातर्मध्यन्दिनेषु च स्नानमाचरन्सोऽवकीर्णी संवत्सरेणैव विशुध्यति।। १२३।।

किन्तु उन सात घरों से प्राप्त हुए भिक्षा के भोजन से केवल एक समय ही भोजन करता हुआ, त्रिकालिक स्नान करते हुए वह अवकीर्णी एक वर्ष की अवधि में पाप से पूर्णतया शुद्ध होता है।। १२३।।

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया।। १२४।।

''ब्राह्मणस्य रुज: कृत्वा'' (अ० ११ श्लो० ६७) इत्यादि जातिभ्रंशकर्मोक्तं तन्मध्यादन्यतमं कर्मविशेषमिच्छात: कृत्वा वक्ष्यमाणं सांतपनं सप्ताहसाध्यं कुर्यात्। अनिच्छात: पुन: कृत्वा प्राजापत्यं वक्ष्यमाणं चरेत्।। १२४।।

इच्छापूर्वक जाति से भ्रष्ट करने वाले किसी एक पापकर्म को करके व्यक्ति को पाप की मुक्ति हेतु सांतपन नामक व्रत का आचरण करना चाहिए, जबकि अनजाने में ऐसा कार्य होने पर अत्यन्त कठिन प्राजापत्य व्रत का आचरण करना चाहिए।। १२४।।

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम्।
मलिनीकरणीयेषु तप्त: स्याद्यावकैस्त्र्यहम्।। १२५।।

''खराश्वोष्ट्र'' (अ० ११ श्लो० ६८) इत्यादिना संकरीकरणान्युक्तानि। ''निन्दितेभ्यो धनादानम्'' (अ० ११ श्लो० ६९) इत्यादिना चापत्रीकरणान्युक्तानि। तेषां मध्यादन्यतमिच्छात: कृत्वा चान्द्रायणं मासं शुद्धये कुर्यात्। ''कृमिकीटवयोहत्या'' (अ० ११ श्लो० ७०) इत्यादिना मलिनीकरणान्युक्तानि। तन्मध्यादेकमिच्छात: कृत्वा त्रिरात्रं यवागूं क्वथितामश्नीयात्।। १२५।।

संकरीकरण एवं अपात्रीकरण[१] पापकर्मों के करने पर, एक मास पर्यन्त आचरण किया गया 'चान्द्रायण व्रत' पाप से शुद्धि करने वाला है। जबकि मलिनीकरण कर्मों के करने पर प्रायश्चित्त हेतु व्यक्ति को, तीन दिन पर्यन्त गर्म किए गए यवागू (जौ का द्रव) का पान करना चाहिए।। १२५।।

तुरीयो ब्रह्महत्याया: क्षत्रियस्य वधे स्मृत:।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडश:।। १२६।।

---

१. गधा, घोड़ा एवं ऊँट की हत्या करना 'सङ्करकर्म' कहे गए हैं, जबकि निन्दित लोगों से धन का ग्रहण 'अपात्रीकरण' माना गया है।

ब्रह्महत्यातुरीयो भागः त्रैवार्षिकरूपः द्वादशवार्षिकस्य चतुर्थो भागः। एतच्च प्रायश्चितं "स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधः" (अ० ११ श्लो० ६६) इत्युपपातकत्वेनोपदिष्टं त्रैवार्षिकत्वापेक्षया गुरुत्वाद्वृत्तस्थक्षत्रियस्य कामतो वधे द्रष्टव्यम्। वैश्ये साध्वाचारे कामतो हतेऽष्टमो भागः सार्धवार्षिकं व्रतम्। शूद्रे वृत्तस्थेकामतो हते नवमासिकं द्रष्टव्यम्।। १२६।।

अनजाने में क्षत्रिय का वध होने पर, ब्रह्महत्या का चतुर्थ भाग, सदाचारी वैश्य का वध होने पर आठवाँ भाग कहा गया है। जबकि शूद्र का वध होने पर सोलहवाँ भाग समझना चाहिए।। १२६।।

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः।। १२७।।

अबुद्धिपूर्वकं पुनः क्षत्रियं निहत्य वृषभेणैकेनाधिकं सहस्रं यासां गवां ता आत्मशुद्ध्यर्थं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्।। १२७।।

अज्ञानवश क्षत्रिय का वध होने पर भलीप्रकार व्रत करता हुआ द्विजश्रेष्ठ, एक बैल तथा एक हजार गायों को दान में देवे।। १२७।।

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम्।
वसन्दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः।। १२८।।

यद्वा संयतो जटावान्ग्रामाद्विप्रकृष्टवृक्षमूले कृतनिवासो ब्रह्महणि यदुक्तम् "ब्रह्महाद्वादश समाः" (अ० ११ श्लो० ७२) इत्यादि तद्वर्षत्रयं कुर्यात्। ननु "तुरीयो ब्रह्महत्यायाः" (अ० ११ श्लो० १२६) इत्यनेन पुनरुक्तिर्वाच्या। "जटी दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः" इति वचनाद्व्यतिरिक्तशवशिरोध्वजधारणादि सकलधर्मनिवृत्त्यर्थत्वादस्य ग्रन्थस्य। अकामाधिकाराच्चेदमकामतः। अत एवाङ्गलाघ-वाद्युचितम्।। १२८।।

अथवा गाँव से दूर प्रदेश में वृक्ष के नीचे निवास बनाकर रहते हुए, जटा धारण करके, इन्द्रियों को वश में करके, तीन वर्ष पर्यन्त ब्रह्महत्या के व्रत का आचरण करे।। १२८।।

एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम्।। १२९।।

एतदेव द्वादशवार्षिकव्रतमकामतः साध्वाचारं वैश्यं निहत्य वर्षमेकं ब्राह्मणादिः कुर्यादेकाधिकं वा गोशतं दद्यात्।। १२९।।

जबकि श्रेष्ठ आचरण वाले वैश्य का अनजाने में वध करके द्विजोत्तम, इसी प्रायश्चित्तरूप व्रत का एक वर्ष पर्यन्त आचरण करे तथा एक सौ एक गाय दान में दे।। १२९।।

एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहा चरेत्।
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः।। १३०।।

एतदप्यकामत इदमेव व्रतं शूद्रहा षण्मासं चरेत्। वृषभ एकादशो यासां गवां ता शुक्लवर्णा ब्राह्मणाय दद्यात्।। १३०।।

जबकि शूद्र की हत्या करने वाला यही व्रत सम्पूर्ण रूप से छः माह पर्यन्त करे अथवा एक बैल एवं दस श्वेत गाय ब्राह्मण को दान देवे।। १३०।।

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत्।। १३१।।

बिडालनकुलचाषभेककुक्कुरगोधापेचककाकानामेकैकं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं स्त्रीशूद्रवध इत्युपपातकप्रायश्चित्तं गोवधव्रतं चान्द्रायणं चरेत्, नतु "शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः" (अ० ११ श्लो० १२६) इत्यादि प्रायश्चित्तं पापस्य लघुत्वात्। चान्द्रायण-मप्येतत्कामतोऽभ्यासादिविषये द्रष्टव्यम्।। १३१।।

इसके अतिरिक्त बिलाव, नेवला, चाष (नीलकण्ठ), मेंढक, कुत्ता, गोधा, कौआ, इनमें से किसी एक को अनजाने में मारकर ब्राह्मण, शूद्र की हत्या के प्रायश्चित्त का आचरण करे।। १३१।।

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाध्वनो व्रजेत्।
उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत्।। १३२।।

अबुद्धिपूर्वकं मार्जारादीनां वधे त्रिरात्रं क्षीरं पिबेत्। अथ मन्दानलत्वादिना न समर्थस्त्रिरात्रम् प्रति योजनमध्वनो व्रजेत्। अत्राशक्तस्त्रिरात्रं नद्यां स्नायात्। तत्राप्यक्षम स्त्रिरात्रम् "अपो हि ष्ठा" इत्यादिसूक्तं जपेत्। यथोत्तरं लघुत्वात्पूर्वपूर्वासंभवे उत्तरोत्तरपरिग्रहो नतु वैकल्पिकः।। १३२।।

अथवा तीन रात्रिपर्यन्त केवल जल पिये या प्रायश्चित्त स्वरूप एक योजनभर मार्ग पर पैदल चले अथवा नदी में स्नान करे या फिर अपोहिष्ठा इत्यादि सूक्त का जप करे।। १३२।।

अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः।
पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम्।। १३३।।

सर्पं हत्वा ब्राह्मणाय तीक्ष्णाग्रं लोहदण्डं दद्यात्। नपुंसकं हत्वा पलालभारं सीसकं च माषकं ब्राह्मणाय दद्यात्।। १३३।।

अनजाने में सर्प को मारकर ब्राह्मण को, लोहदण्ड दान में देना चाहिए। जबकि नपुंसक के मारने पर एक पलालभर धान्य (लगभग ९ किलो) तथा एक मासा भर सीसा ब्राह्मण को दान देना चाहिए।। १३३।।

घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ।
शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम्।। १३४।।

सूकरे हते घृतपूर्णं घटं ब्राह्मणाय दद्यात्। तित्तिरिसंज्ञिनि पक्षिणि हते चतुराढकपरिमाणं तिलं दद्यात्। शुके हते द्विवर्षं वत्सम्। क्रौञ्चाख्यं पक्षिणं हत्वा त्रिवर्षं वत्सं ब्राह्मणाय दद्यात्।। १३४।।

जबकि सुअर के मारने पर घी से भरा हुआ घड़ा, तितर के मारने पर द्रोणभर तिल, तोते के मारने पर दो वर्ष का बछड़ा, क्रौंच पक्षी को मारकर तीन वर्ष का बछड़ा ब्राह्मण को दान में देना चाहिए।। १३४।।

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम्।। १३५।।

हंसबलाकामयूरवानरश्येनभासाख्यपक्षिणामन्यतमं हत्वा ब्राह्मणाय गां दद्यात्।। १३५।।

इसके अतिरिक्त हंस, बलाका, बगुला, मोर, बन्दर, बाज और मुर्गे को अनजाने में मारने पर, ब्राह्मण को गाय दान में देकर, उसके पावों का स्पर्श करे।। १३५।।

वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम्।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम्।। १३६।।

अश्वं हत्वा वस्त्रं दद्यात्। हस्तिनं हत्वा पञ्च नीलान्वृषभान्दद्यात् प्रत्येकं छागमेषौ हत्वा वृषभं दद्यात्। गर्दभं हत्वैकवर्षं वत्सं दद्यात्।। १३६।।

इसीप्रकार अनजाने में घोड़े को मारकर वस्त्र, हाथी को मारकर पाँच नीले बैल, एवं बैल, भेड़, बकरी तथा गधे को मारकर व्यक्ति एक वर्ष का बछड़ा ब्राह्मण को दान में प्रदान करे।। १३६।।

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्।। १३७।।

आममांसभक्षिणो मृगान्व्याघ्रादीन्हत्वा बहुक्षीरां धेनुं दद्यात्। आममांसाभक्षकान्हरिणादीन्हत्वा प्रौढवत्सिकां दद्यात्। उष्ट्रं हत्वा सुवर्णकृष्णलं रक्तिकां दद्यात्।। १३७।।

इसके अलावा कच्चे माँस का भक्षण करने वाले, व्याघ्रादि जङ्गली जानवरों को मारने पर दुधारु गाय दान में देवे तथा कच्चे माँस का भक्षण न करने वाले मृगादि को मारकर गाभिन गाय का दान करे। जबकि ऊँट को मारने पर तो एक रत्ती सोना ही ब्राह्मण को दान देवे।। १३७।।

जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये।
चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः।। १३८।।
(वर्णानामानुपूर्व्येण त्रयाणामविशेषतः।
अमत्या च प्रमाप्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत्।। ८।।)

ब्राह्मणादिवर्णस्त्रियो लोभादुत्कृष्टापकृष्टपुरुषव्यभिचारिणीर्हत्वा ब्राह्मणादिक्रमेण चर्मपुटधनुश्छागमेषान्शुद्ध्यर्थं दद्यात्।। १३८।।

इसीप्रकार चारों वर्णों की चरित्रहीन स्त्रियों की अनजाने में हत्या करने पर क्रमशः चर्मनिर्मित सन्दूक, धनुष एवं बकरी, भेड़ को अपनी शुद्धि के लिए अलग-अलग दान देना चाहिए।। १३८।।

(ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य क्रमशः इन तीनों वर्णों की स्त्रियों की हत्या अनजाने में होने पर व्यक्ति को शूद्रहत्या के व्रत का आचरण करना चाहिए।। ८।।)

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन्।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये।। १३९।।

अभ्रिप्रभृतीनामभावाद्दानेन सर्वपापनिर्हरणं कर्तुमसमर्थो ब्राह्मणादिः प्रत्येकं वधे कृच्छ्रं प्राथम्यात्प्राजापत्यं द्विजः पापनिर्हरणार्थं चरेत्। सर्पादयश्च "अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात् (अ० ११ श्लो० १३३) इत्येवमारभ्यैतत्पर्यन्ता गृह्यन्ते।। १३९।।

इसके अतिरिक्त सर्पादि के वध के प्रायश्चित्तस्वरूप, दान करने में असमर्थ द्विज को, पाप से छुटकारा प्राप्त करने के लिए, एक-एक करके कृच्छ्रव्रत का आचरण करना चाहिए।। १३९।।

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे।
पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत्।। १४०।।

अनस्थिसाहचर्यादस्थिमतां प्राणिनां कृकलासादीनां सहस्रस्य वधे शूद्रवध-प्रायश्चित्तमौपदेशिकं कुर्यात्, अस्थिरहितानां च मत्कुणादीनां शकटपरिमितानां वधे तदेव प्रायश्चितं कुर्यात्।। १४०।।

एक हजार की संख्या में हड्डीयुक्त प्राणियों को मारने पर तथा अस्थिरहित जीवों को जो व्यक्ति गाड़ी भर कर हत्या करता है। उसे भी शूद्रहत्या के प्रायश्चित्त का पालन करना चाहिए।। १४०।।

किंचिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति।। १४१।।

अस्थिमतां क्षुद्रजन्तूनां कृकलासादीनां प्रत्येकं वधे किंचिदेव दद्यात्। अस्थिमतां वधे "पणो देयः सुवर्णस्य" इति सुमन्तुस्मरणात्किंचिदेवेति पणो बोद्धव्यः। अनस्थिमतां तु यूकामत्कुणादीनां प्रत्येकं वधे प्राणायामेन शुद्धो भवति। प्राणायामश्च "सव्याहृतिकां सप्रणवां सावित्रीं शिरसा सह। त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते।।" इति वसिष्ठप्रोक्तलक्षणो ग्राह्यः।। १४१।।

इसके साथ ही अस्थियुक्त जीवों के वध के विषय में ब्राह्मण को थोड़ा बहुत अवश्य दान प्रदान करे। जबकि अस्थिरहित जीवों की हिंसा में व्यक्ति प्राणायाम से ही शुद्ध हो जाता है।। १४१।।

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्।
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्।। १४२।।

फलदानामाम्रादीनां वृक्षाणां, गुल्मानां कुब्जकादीनां, वल्लीनां गुडूच्यादीनां, लतानां वृक्षशाखासक्तानां, पुष्पितानां च विरुधां कूष्माण्डादीनां प्रत्येकं छेदने पापप्रमोचनार्थं सावित्र्यादि ऋक्शतं जपनीयम्। "इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामव-पातनम्" (अ० ११ श्लो० ६४) इत्यादेरुपपातकमध्ये पठितस्य गुरुप्रायश्चित्ताभिधानात्। इदं फलवद्वृक्षादिच्छेदने लघुप्रायश्चित्तं सकृदबुद्धिपूर्वकविषयं वेदितव्यम्।। १४२।।

फल प्रदान करने वाले वृक्षों, गुल्म, लता एवं वल्लरी आदि को एवं पुष्पित लताओं को काटने पर व्यक्ति को प्रायश्चित्तस्वरूप गायत्री मन्त्र का सौ बार जप करना चाहिए।। १४२।।

अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम्।। १४३।।

अन्नादिषु जातानां, गुडादिरसजातानां चोदुम्बरादिफलसंभवानां, मधूकादि-पुष्पोद्भवानां च सर्वप्राणिनां वधे घृतप्राशनं पापशोधनम्।। १४३।।

इसके अतिरिक्त धान्यादि अन्न, गुड़ादि रस, पुष्प एवं फलों में उत्पन्न होने वाले, सभी प्रकार के प्राणियों का वध करने पर, घी का प्राशन करने पर ही व्यक्ति की शुद्धि हो जाती है।। १४३।।

कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने।
वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः।। १४४।।

कर्षणपूर्वकजातानामोषधीनां षष्टिकादीनां, वने च स्वयमुत्पन्नानां नीवारादीनां निःप्रयोजनच्छेदने क्षीराहारः। एष्वेकमहो गोरनुगमनं कुर्यात्।। १४४।।

इसीप्रकार खेत को जोतने से उत्पन्न तथा वन में स्वयं उत्पन्न हुई, औषधियों के निष्प्रयोजन काटने पर, व्यक्ति पयोव्रत का पालन करते हुए एक दिन तक गाय का अनुगमन करे।। १४४।।

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम्।
ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे।। १४५।।

एभिरुक्तप्रायश्चित्तैर्हिंसाजनितपापं ज्ञानाज्ञानकृतं निर्हरणीयम्। इदानीमभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तं वक्ष्यमाणं शृणुत।। १४५।।

अतः यहाँ तक जाने-अनजाने की गयी हिंसा से उत्पन्न सम्पूर्ण पाप का तथा इन पूर्व में कहे गए उपाय व्रतादिकों से उन्हें दूर करने की सम्भावित विधि का मैंने कथन किया। अब आप लोग न खाने योग्य वस्तु को खाने के सम्बन्ध में प्रायश्चित्त के विषय में मुझसे सुनिए।। १४५।।

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः।। १४६।।

महापातकप्रकरणव्यवधानेनास्यात्रानान्नेदं मुख्यपैष्टीसुराविषयं वचनं किन्तु तदितरविषयम्। तत्र यथा चैका तथा सर्वा। गौडीमाध्व्योर्मुख्यसुरासाम्यबोधन-मितरमद्यापेक्षया ब्राह्मणस्य प्रायश्चित्तगौरवार्थमित्युक्तम्। तेनाबुद्धिपूर्वकं गौडीं माध्वी च पीत्वा गौतमोक्तं तप्तकृच्छ्रं कृत्वा पुनःसंस्कारेणैव शुध्यति। तथाच गोतमः- "अमत्या मद्यपाने पयोघृतमुदकं वायुं प्रत्यहं तप्तकृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः।" इत्थमेव व्याख्यातं भविष्यपुराणे—"अकामतः कृते पाने गौडीमाध्व्योर्नराधिप। तप्तकृच्छ्रविधानं स्याद्गोतमेन यथोदितम्"। बुद्धिपूर्वकं तु पैष्टीतरमद्यपाने

"प्राणान्तिकमनिर्देश्यम्" इति शास्त्रमर्यादा। तथा गौडीमाध्व्योर्ज्ञानात्पाने मरणनिषेधादितरमद्यापेक्षया गुरुत्वाच्च मानवमेव "कणान्वा भक्षयेदब्दम्" (अ० ११ श्लो० ९२) इति प्रायश्चित्तमुक्तम्। अत एव गौडीमाध्व्योः कामतः पानानुवृत्तौ भविष्यपुराणे— "यद्वास्मिन्नेव विषये मानवीयं प्रकल्पयेत्। कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि। सुरापापापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी" इति । पैष्टीगौडीमाध्वीव्यतिरिक्तपुलस्त्योक्तपानसादिनवविधमद्यस्य प्रत्येकं पाने लघुत्वात्संस्कारमात्रमेव केवलमन्यद्वा लघुत्वात्प्रायश्चित्तं ब्राह्मणस्य युक्तम्। बुद्धिपूर्वं पानसादिमद्यपाने तु "मतिपूर्वं सुरापाने कृते वै ज्ञानतो गुह। कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ भवतः पुनःसंस्कार एव हि।।" इति भविष्यपुराणीयमन्यद्द्विविधं मुन्यन्तरोक्तम्।। १४६।।

अज्ञानवश मदिरापान करके यज्ञोपवीतादि संस्कार पुनः करने से ही वह शुद्ध हो जाता है, किन्तु जानबूझकर पीने पर तो बिना कहे मरण को ही प्रायश्चित्त मानना चाहिए, यही शास्त्रमर्यादा है।। १४६।।

अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा।
पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङ्खपुष्पीश्रितं पयः।। १४७।।

पैष्टीसुराभाण्डे तदितरमद्यभाण्डेऽवस्थिसा अपः सुरारसगन्धवर्जिताः पीत्वा शङ्खपुष्पाख्यौषधिप्रक्षेपेण पक्वं क्षीरं न तूदकम् "शङ्खपुष्पीविपक्वेन त्र्यहं क्षीरेण वर्तयेत्" इति बौधायनस्मरणात्पञ्चरात्रं पिबेत्। सुरामद्ययोः सर्वत्रैव गुरुलघुप्रायश्चित्ताभिधानादिहापि ज्ञानाज्ञानादिप्रकारभेदेन विषयसमीकरणं समाधेयम्। वाचनिकमेव प्रायश्चित्तं साध्यमिति मेधातिथिराह।। १४७।।

मदिरा के बर्तन में रखे हुए तथा मद्य के पात्र में स्थित जल को अज्ञानवश पीकर व्यक्ति को, शङ्खपुष्पी नामक औषधि से पके हुए दूध को, पाँच रात्रियों तक पीना चाहिए।। १४७।।

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम्।। १४८।।

सुरां स्पृष्ट्वा दत्त्वा च स्वस्तिवाचनपूर्वकं च प्रतिगृह्य शूद्रोच्छिष्टाश्च अपः पीत्वा प्रतिगृह्याभ्युपादानाद्ब्राह्मणो दर्भक्वथितमुदकं त्र्यहं पिबेत्।। १४८।।

इसके अतिरिक्त मदिरा का स्पर्श करके, किसी को देकर एवं विधिपूर्वक स्वीकार करके तथा शूद्र द्वारा जूठे किए गए जल को पीकर, व्यक्ति को प्रायश्चित्त स्वरूप तीन दिन तक कुशाओं के साथ पके हुए जल को पीना चाहिए।। १४८।।

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः।
प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुध्यति।। १४९।।

ब्राह्मणः पुनः कृतसोमयागः सुरापस्य मुखसंबन्धिनं गन्धं घ्रात्वा जलमध्ये प्राणायामत्रयं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धो भवति।। १४९।।

सोमपान (सोमयागी) करने वाला ब्राह्मण, सुरापान करने वाले व्यक्ति के मुख की गंध को सूँघकर, अपने प्राणों को जल में तीन बार रोककर (प्राणायाम करके) तथा बाद में घी का प्राशन करके विशुद्ध होता है।। १४९।।

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः।। १५०।।

विड्वराहादीनां वक्ष्यमाणत्वादबुद्धिपूर्वकं मुनष्यसंबन्धि मूत्रं पुरीषं वां प्राश्य मद्यसुरासंस्पृष्टं च भक्तादिरसं वा प्राश्य द्विजातयस्त्रयो वर्णाः पुनरुपनयनमर्हन्ति।। १५०।।

(ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) इन तीनों वर्णों के द्विजाति यदि अज्ञानवश, विष्ठा, मूत्र एवं मदिरा से स्पर्श किए हुए पदार्थों का भक्षण कर लें तो ये सभी पुनः संस्कार (यज्ञोपवीत) कराने योग्य होते हैं।। १५०।।

वपनं मेखला दण्डो भैक्षचर्या व्रतानि च।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि।। १५१।।

शिरोमुण्डनं मेखलाधारणं दण्डधारणं भैक्षाणि व्रतानि च मधुमांसस्त्रीवर्जनयुतानि प्रायश्चित्तानि पुनरुपनयने द्विजातीनां न भवन्ति।। १५१।।

(किन्तु इस विषय में ध्यातव्य है कि) तीनों द्विजातियों के पुनः संस्काररूप कार्य में मुण्डन, मेखला और दण्डधारण, भिक्षा का आचरण एवं ब्रह्मचर्य व्रतादि नहीं कराये जाते हैं।। १५१।।

अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च।
जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत्।। १५२।।

अभोज्यान्नानाम् ''नाश्रोत्रियकृते यज्ञे'' (अ० ४ श्लो० २०५) इत्याद्युक्तानामन्नं भुक्त्वा जलमिश्रितसक्तुरूपेण यवागूरूपेण वा यवान्पानयोग्यान्कृत्वा सप्तरात्रं पिबेत्। अमुष्मिन्नेव विषये ''मत्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रम्'' इति चतुर्थाध्याये (श्लो० २२२) प्रायश्चित्तमुक्तं तेन सह वैकल्पिकम्। विकल्पश्च कर्तृशक्त्यपेक्षः। तथा द्विजातिस्त्रीणामुच्छिष्टं शूद्रोच्छिष्टं वा भुक्त्वैतदेव कुर्यात्। तथा ''क्रव्यादसूकरोष्ट्राणाम्'' (अ०

११ श्लो० १५६) इत्यादिना यद्विशेषप्रायश्चित्तं तन्निषिद्धमांसं भुक्त्वेदमेव कुर्यात् ॥ १५२॥

निकृष्ट लोगों के (अभोज्य) अन्न, स्त्री तथा शूद्र की जूठन और अभक्ष्य माँस का भक्षण करके, मनुष्य को प्रायश्चित्त स्वरूप सात रात्रि पर्यन्त केवल जौ का पानी ही पीना चाहिए।। १५२।।

शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वाऽमेध्यान्यपि द्विजः।
तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः।। १५३।।

यानि स्वभावतो मधुरादिरसानि कालयोगेनोदकपरिमाणादिनाम्लभावं व्रजन्ति तानि शुक्तानि, कषायान्विभीतकादीन्, क्वथितान्यप्रतिषिद्धान्यपि पीत्वा यावन्न जीर्णानि भवन्ति तावदशुचिः पुरुषो भवति।। १५३।।

पवित्र एवं मधुर होते हुए भी जो पदार्थ खट्टे हो गए हों उन्हें तथा कसैले पदार्थों को पीकर द्विज तब तक अपवित्र रहता है, जब तक वह पदार्थ पचता नहीं है।। १५३।।

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्।। १५४।।

ग्राम्यसूकरखरोष्ट्रशृगालवानरकाकानां मूत्रं पुरीषं वा द्विजातिर्भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्याच्छोधनम्। यत्तु "छत्राकं विड्वराहं च" (अ० ५ श्लो० १९) इत्यनेन विड्वराहग्रामकुक्कुटयोर्बुद्धिपूर्वकभक्षणे पञ्चमाध्याये प्रायश्चित्तमुक्तं तदभ्यासविषये व्याख्यातम्। इदं त्वनभ्यासविषये तप्तकृच्छ्रमित्यविरोधः।। १५४।।

इसके अतिरिक्त द्विज वर्ण का व्यक्ति, पालतू सुअर, गधे, ऊँट, बन्दर, कौए के मूत्र एवं विष्ठा आदि का भूलवश भक्षण कर लेता है तो प्रायश्चित्त स्वरूप उसे चान्द्रायणव्रत का आचरण करना चाहिए।। १५४।।

शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च।
अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत्।। १५५।।

वाय्वादिना शोषितानि मांसानि भुक्त्वा भूम्यादिप्रभवाणि छत्राकाणि भुक्त्वा "भूमिजं वा वृक्षजं वा छत्राकं भक्षयन्ति ये। ब्रह्मघ्नांस्तान्विजानीयात्" इति यमेन वृक्षजस्यापि निषेधात्। हरिणमांसं वा रासभमांसमिति भक्ष्याभक्ष्यतया यन्न ज्ञातं तथा हिंसास्थानं सूना ततो यदानीतं तद्भुक्त्वा चान्द्रायणमेव कुर्यात्।। १५५।।

इसीप्रकार सूखे माँस, भूमि से उत्पन्न छत्रयुक्त पदार्थ खुम्बी आदि तथा अज्ञात

कसाई के द्वारा दिए गए माँस को खाकर भी द्विज को इस चान्द्रायणव्रत का ही आचरण करना चाहिए।। १५५।।

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे।
नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्।। १५६।।

आममांसभक्षिणां ग्राम्यसूकरोष्ट्रग्राम्यकुक्कुटानां तथा मानुषकाकगर्दभानां प्रत्येकं बुद्धिपूर्वकं मांसभक्षणे वक्ष्यमाणं तप्तकृच्छ्रं प्रायश्चित्तम्। ग्राम्यसूकरकुक्कुटयोर्बुद्धिपूर्वकभक्षणे पञ्चमाध्याये पातित्यमुक्तं तदभ्यासविषये व्याख्यातं इदं तु नाभ्यासविषये तप्तकृच्छ्रमित्यविरोध:।। १५६।।

साथ ही कच्चे मांस का भक्षण करने वाले प्राणी, पालतू सुअर, ऊँट, ग्राम्य-मुर्गे, मनुष्य, कौए और गधे का माँस भक्षण करने पर, द्विज वर्ण के व्यक्ति के लिए प्रायश्चित्त हेतु तप्तकृच्छ्र व्रत का विधान किया गया है।। १५६।।

मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको द्विज:।
स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत्।। १५७।।

यो ब्रह्मचारी ब्राह्मणो मासिकश्राद्धसंबन्ध्यन्नमश्नाति। एतच्च सपिण्डीकरणात्पूर्वमेकोद्दिष्टश्राद्धार्थोपलक्षणम्। स त्रिरात्रमुपवसेत्। त्रिरात्रमध्ये एकस्मिन्नहनि जलमावसेत्।। १५७।।

इसके अलावा द्विज वर्ण का ब्रह्मचारी जो मासिक श्राद्ध के अन्न का भक्षण करता है, उसे तीन दिवसपर्यन्त उपवास करना चाहिए तथा एक दिन जल में रहे।। १५७।।

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथंचन।
स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत्।। १५८।।

यो ब्रह्मचारी माक्षिकं मांसं वा अनिच्छात: आपदि वाद्यात्स प्राजापत्यं कृत्वा प्रारब्धब्रह्मचर्यव्रतशेषं समापयेत्।। १५८।।

इसीप्रकार जो ब्रह्मचारी किसी भी परिस्थिति में शहद, माँस का भक्षण करे तो उसे प्राजापत्य नामक कृच्छ्र को करके ही अवशिष्ट ब्रह्मचर्य व्रत का समापन करना चाहिए।। १५८।।

बिडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च।
केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम्।। १५९।।

बिडालकाकमूषककुक्कुरनकुलानामुच्छिष्टं केशकीटरूपसंसर्गदुष्टं वा कृतमृत्क्षेप-विशुद्धिकं ज्ञात्वा भुक्त्वा ब्रह्मसुवर्चलां क्वथितमुदकं पिबेत्।। १५९।।

इसके अतिरिक्त बिलाव, कौआ, चूहा, कुत्ता, नेवला, इनके द्वारा जूठे किए हुए पदार्थ को, केश, कीट आदि द्वारा दूषित किए हुए अन्न को खाकर, द्विज को प्रायश्चित्त हेतु 'ब्रह्मसुवर्चला' नामक औषधि का पान करना चाहिए।। १५९।।

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता।
अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशु शोधनैः।। १६०।।

आत्मनः शुद्धिकामेन प्रतिषिद्धमन्नं नादनीयम्। प्रमादात्तु भुक्तं वमितव्यम्। तदसंभवे प्रायश्चित्तैः क्षिप्रं शोधनीयम्। वमनपक्षे तु लघुप्रायश्चित्तं भवत्येव। ज्ञानतः पुनः पूर्वोक्तं प्रायश्चित्तम्।। १६०।।

इतना ही नहीं अपनी शुद्धि की कामना करने वाले व्यक्ति को कभी भी निषिद्ध अन्न का भक्षण नहीं करना चाहिए। अज्ञानपूर्वक खाए हुए अन्न का तो वमन कर देना चाहिए अथवा प्रायश्चित्तादि से शीघ्र ही स्वयं को शुद्ध करना चाहिए।। १६०।।

एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः।
स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः।। १६१।।

अभक्ष्यभक्षणे यानि प्रायश्चित्तानि तेषामेतन्नानाप्रकारविधानमुक्तम्। स्तेयपापहारिणां विधानमधुना श्रूयताम्।। १६१।।

इसप्रकार मैंने अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण के व्रतों की विविध प्रकार की इस विधि का आपसे कथन किया। अब आप चोरी के दोषों को दूर करने वाले व्रतों की विधि को मुझसे सुनिए।। १६१।।

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुध्यति।। १६२।।

ब्राह्मणो ब्राह्मणगृहाद्धान्यभक्ताद्यन्नरूपाणि धनचौर्याणीच्छातः कृत्वा न त्वात्मीयभ्रान्त्या नीत्वा संवत्सरं प्राजापत्यव्रताचरणेन शुद्ध्यति। एतच्च देशकालद्रव्य-परिमाणस्वामिगुणाद्यपेक्षया महत्त्वादि बोद्धव्यम्। एवमुत्तरत्रापि।। १६२।।

अपनी जाति के व्यक्ति के घर से, धान्य, अन्न तथा धन की चोरी इच्छापूर्वक करने पर, ब्राह्मणवर्ण का मनुष्य, एक वर्षपर्यन्त 'प्राजापत्य' व्रत का कष्टपूर्वक आचरण करके ही परिशुद्ध होता है।। १६२।।

मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च।
कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम्।। १६३।।

पुरुषस्त्रीक्षेत्रगृहाणामन्यतमहरणे कूपजलस्य वापीजलस्य वा समस्तस्य वा हरणे चान्द्रायणं प्रायश्चितं मन्वादिभिः स्मृतम्।। १६३।।

इसीप्रकार मनुष्यों, स्त्रियों, खेत एवं घर में से किसी एक का हरण करने पर तथा कूप, वापी के जल को चुराने पर, व्यक्ति की शुद्धि चान्द्रायण व्रत का आचरण करने पर ही कही गयी है।। १६३।।

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये।। १६४।।

द्रव्याणामल्पार्घाणामल्पप्रयोजनानां चानुक्तप्रायश्चित्तविशेषाणां त्रपुसीसकादीनां परगृहाच्चौर्यं कृत्वा तदपहृतं द्रव्यं स्वामिने दत्त्वा सांतपनं कृच्छ्रं प्रायश्चित्तं वक्ष्यमाणं चात्मशुद्धये कुर्यात्। स्वामिनेऽपहृतं द्रव्यं निर्यात्येति सर्वस्तेयप्रायश्चित्तशेषः।। १६४।।

इसके अतिरिक्त थोड़े मूल्य वाली वस्तुओं की चोरी, किसी अन्य व्यक्ति के घर से करके व्यक्ति, सर्वप्रथम उसे लौटाकर आत्मशुद्धि हेतु 'सांतपन' नामक प्रायश्चित्त का आचरण करे।। १६४।।

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम्।। १६५।।

भक्ष्यस्य मोदकादेः, भोज्यस्य पायसादेः, यानस्य शकटादेः, शय्यायाः, आसनस्य च, पुष्पमूलफलानां च प्रत्येकमपहरणे पञ्चगव्यपानं विशोधनम्।। १६५।।

खाने-पीने योग्य पदार्थों, वाहन, शय्या, आसन, फल, मूल एवं पुष्पों को चुराने पर पञ्चगव्य (दूध, दही, घी, शहद एवं गोमूत्र) ही व्यक्ति की शुद्धि करने वाला होता है।। १६५।।

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम्।। १६६।।

तृणकाष्ठवृक्षाणां शुष्कान्नस्य च तण्डुलादेर्वस्त्रचर्ममांसानां मध्ये एकस्याप्यपहरणे त्रिरात्रमुपवासं चरेत्।। १६६।।

इसीप्रकार तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड़, वस्त्र, चर्म और माँस इनमें से किसी एक के चुराने पर, तीन रात्रि पर्यन्त भोजन न करने पर व्यक्ति का प्रायश्चित्त होता है।। १६६।।

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च।
अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता।। १६७।।

मणिमुक्ताविद्रुमताम्ररूप्यलोहकांस्योपलानां च प्रत्येकमपहरणे द्वादशाहं तण्डुलकणभक्षणं कुर्यात्। सर्वत्र चात्र सकृदभ्यासदेशकालद्रव्यस्वामिगुणादौ, शक्त्यपेक्षयोत्कृष्टापकृष्टद्रव्यापहारिविषयसमीकरणं समाधेयम्।। १६७।।

मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, कांसा और पत्थर की चोरी करने पर बारह दिनों तक चावल के कणों का भक्षण ही प्रायश्चित्त कहा गया है।। १६७।।

कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः।। १६८।।

कार्पासकृमिकोशजोर्णानां वस्त्राणां द्विशफैकशफस्य गोरश्वादेः पक्षिणां शुकादीनां गन्धानां च चन्दनप्रभृतीनां रज्जवाश्च प्रत्येकं हरणे त्र्यहं क्षीराहारः स्यात्। अत्रापि पूर्ववद्विषयसमीकरणपरिहारः स्वामिनश्चोत्कृष्टापकृष्टद्रव्यसमर्पणादपि वचनादेकरूप-प्रायश्चित्ताविरोधः।। १६८।।

सूत, रेशम एवं ऊन से निर्मित वस्त्र, दो खुरों वाले गायादि, एक खुर वाले घोड़ादि, पक्षी, गन्ध, औषधि और रस्सी की चोरी करने पर तीन दिनों तक केवल जल पीना ही प्रायश्चित्त है।। १६८।।

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः।
अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत्।। १६९।।

एतैरुक्तैः प्रायश्चित्तैः स्तेयजनितपापं द्विजातिरपानुदेत्। अगम्यागमननिमित्तं पुनरेभिर्वक्ष्यमाणैर्व्रतैर्निर्हरेत्।। १६९।।

इसप्रकार द्विज वर्ण के व्यक्ति को, चोरी द्वारा उत्पन्न हुए पाप को ऊपर बताए गए इन उपायों द्वारा दूर करना चाहिए। इसके अतिरिक्त निषिद्ध स्त्री के साथ गमन करने से उत्पन्न हुए पाप को व्यक्ति, आगे बताए जाने वाले इन व्रतों द्वारा दूर करे।। १६९।।

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च।। १७०।।

स्वयोनिषु सोदर्यभगिनीषु तथा मित्रभार्यासु, पुत्रपत्नीषु, कुमारीषु, चाण्डालीषु, प्रत्येकं रेतः सिक्त्वा गुरुदारगमनप्रायश्चित्तं कुर्यात्। अत्रापि ज्ञानाभ्यासाद्यनुबन्धापेक्षया

मरणान्तिकम्। अत एव "रेत: सिक्त्वा कुमारीषु चाण्डालीष्वन्त्यजासु च। सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते" इति यमेन मरणान्तिकमुपदिष्टम-ज्ञानात्तद्व्रतम्।। १७०।।

सगी बहन, मित्र, पुत्र की स्त्री, अविवाहित कन्या तथा चाण्डाली में अपने वीर्य का सेचन करने के पश्चात् व्यक्ति प्रायश्चित्तस्वरूप 'गुरुतल्प' नामक व्रत का आचरण करे।। १७०।।

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च।
मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत्।। १७१।।

पितृष्वसुर्मातृष्वसुश्च दुहितरं भगिनीं मातुश्च सोदर्यभ्रातुर्दुहितरं सोदर्यभगिनीमिव निषिद्धगमनां गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात् सकृदज्ञानव्यभिचरितविषयमल्पत्वात्।। १७१।।

माता-पिता की बहन और पुत्री, बहन की पुत्री तथा माता और भाई की पुत्री के साथ गमन करके भी व्यक्ति पाप का भागी होता है। अत: उसे प्रायश्चित्त हेतु चान्द्रायणव्रत का आचरण करना चाहिए।। १७१।।

एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान्।
ज्ञातित्वेनानुपेयास्ता: पतति ह्युपयन्नधः।। १७२।।

तिस्र एता: पैतृष्वसेय्याद्या भार्यार्थे प्राज्ञो नोद्वहेत्। ज्ञातित्वेन बान्धवत्वेन ता नोपेतव्या:। यस्मादेता उपयन्नुपागच्छन्नरकं याति। "असपिण्डा च या मातु:" (अ० ३ श्लो० ५) इत्यनेन निषेधसिद्धौ दाक्षिणात्याचारदर्शननिषेधदार्ढ्यार्थं पुनर्वचनम्।। १७२।।

पूर्व में कही गयी इन तीनों प्रकार की कन्याओं को, बुद्धिमान्, व्यक्ति को कभी भी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये सभी अपनी सम्बन्धी होने से विवाह के योग्य नहीं होती हैं। फिर भी उनसे विवाह करता हुआ व्यक्ति नरक का गामी होता है।। १७२।।

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु।
रेत: सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्।। १७३।।

अमानुषीषु वडवाद्यासु न गवि। "गोष्ववकीर्णी संवत्सरं प्राजापत्यं चरेत्" इति शङ्खलिखितादिभिर्गुरुप्रायश्चित्ताभिधानात्। तथा रजस्वलायां योनितश्चान्यत्र स्त्रियां, जले रेत:सेकं कृत्वा पुरुष: सातपनं कृच्छ्रं कुर्यात्।। १७३।।

इसके अतिरिक्त अमानवी (घोड़ी, कुत्तादि) में, रजस्वला स्त्री में, योनि से भिन्न स्थलों पर, जल में अपने वीर्य का सेचन करके, व्यक्ति को प्रायश्चित्त के रूप में 'सांतपन कृच्छ्र' नामक व्रत का आचरण करना चाहिए।। १७३।।

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत्।। १७४।।

यत्र देशे क्वापि पुरुषे मैथुनं सेवित्वा स्त्रियां, गोयाने, शकटादौ, जले, दिवाकाले मैथुनं च सेवित्वा सवस्त्रश्च स्नायात्।। १७४।।

पुरुष में, ब्राह्मण स्त्री में, बैल की सवारी में, जल में, दिन में मैथुन का सेवन करके व्यक्ति को (प्रायश्चित्त स्वरूप) वस्त्रों सहित स्नान करना चाहिए।। १७४।।

चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति।। १७५।।

चण्डालस्यान्त्यजानां च म्लेच्छशरीरादीनामज्ञानतो ब्राह्मणः स्त्रियो गत्वा तेषां चान्नं भुक्त्वा तेभ्यः प्रतिगृह्य पतति। पतितस्य प्रायश्चित्तं कुर्यात्। एतच्च गुरुत्वाच्चाभ्यासतो भोजनप्रतिग्रहविषयम्। ज्ञानात्तु तेषां गमनं कृत्वा समानतां गच्छति। एतच्च प्रायश्चित्तगौरवार्थम्।। १७५।।

इसके अलावा ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति, अनजाने में चाण्डाल एवं अंत्यजों की स्त्रियों के साथ मैथुन करके, भोजन करके तथा उनसे दान स्वीकार करके पतित हो जाता है, जबकि जानबूझकर ऐसा करने पर तो वह उनकी समानता को ही प्राप्त हो जाता है।। १७५।।

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम्।। १७६।।

विशेषेण प्रदुष्टाम् इच्छया व्यभिचारिणीमित्यर्थः। भर्ता निरुन्ध्यात्पत्नीं कार्येभ्यो निवर्त्य निगडबद्धामिवैकगृहे धारयेत्। यच्चपुरुषस्य सजातीयपरदारगमने प्रायश्चित्तं तदेवैनां कारयेत्। ततश्च "स्त्रीणामर्धं प्रदातव्यम्" इति यद्वसिष्ठादिभिरुक्तं तदनिच्छया व्यभिचारे च कर्तव्यम्।। १७६।।

अत्यधिक व्यभिचार करने वाली स्त्री को, उसका पति एक घर में ही पूर्णतया नियन्त्रित करे तथा व्यक्ति द्वारा परस्त्रीगमन में (प्रायश्चित्त स्वरूप) जिस व्रत का आचरण कहा गया है, वही व्रत इससे भी कराना चाहिए।। १७६।।

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम्।। १७७।।
(ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रियः शूद्रेऽपसंगताः।
अप्रजाता विशुध्येयुः प्रायश्चित्तेन नेतराः।। ९।।)

सा स्त्री सजातीयगमने सकृद्दुष्टा कृतप्रायश्चित्ता यदि पुनः सजातीयेनाभ्यर्थिता सती तद्गमनं कुर्यात्तदास्याः प्रायश्चित्तं प्राजापत्यं कृच्छ्रचान्द्रायणं च मन्वादिभिः स्मृतम्।। १७७।।

किन्तु यदि समान जाति वाले पुरुष के गमन से दूषित हुई वही स्त्री फिर से दूषित हो जाती है तो फिर इसकी शुद्धि के लिए तो 'कृच्छ्र चान्द्रायण' व्रत ही कहा गया है।। १७७।।

[ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण की स्त्रियाँ यदि शूद्र वर्ण के व्यक्ति की कुसङ्गति में पड़ गयी हों तो वे सन्तानोत्पत्ति के अभाव में ही प्रायश्चित्त व्रत द्वारा शुद्धि- योग्य होती हैं, दूसरी नहीं।। ९।।]

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः।
तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति।। १७८।।

वृषल्यत्र चण्डाली प्रायश्चित्तगौरवात्। चण्डालीगमने यदेकरात्रेण ब्राह्मणः पापमर्जयति तद्भैक्षाशी नित्यं सावित्र्यादिकं जपंस्त्रिभिर्वर्षैरपनुदति। तथा चापस्तम्बः- ''यदेकरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्ण ब्राह्मणः सेवमानः। चतुर्थकाल उदक आत्मजापी भैक्षचारी त्रिभिर्वर्षैस्तद्व्यपोहति पापम्।।'' मेधातिथिस्तु इत्थमेव व्याख्यातवान्। गोविन्दराजस्त्वक्रमपरिणीतशूद्रागमनप्रायश्चित्तमिदमाह।। १७८।।

चाण्डाली स्त्री का सेवन करने से द्विज वर्ण का व्यक्ति जो पाप एक रात्रि में करता है, हमेशा जप करता हुआ, भिक्षा माँगकर खाता हुआ उस पाप को वह तीन वर्षों में दूर कर पाता है।। १७८।।

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः।
पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः।। १७९।।

इयं हिंसाभक्ष्यभक्षणस्तेयागम्यागमनकारिणां चतुर्णामपि पापकृतां विशुद्धिरुक्ता। इदानीं साक्षात्पापकृद्भिः सह संसर्गिणामिमा वक्ष्यमाणाः संशुद्धीः शृणुत।। १७९।।

इसप्रकार मैंने आपसे, पाप-कर्म करने वालों की चारों प्रकार की इस प्रायश्चित्त

विषयक विधि का कथन किया। इसके पश्चात् पापकर्म करने वालों (पतितों) के साथ रहने वालों की इस 'प्रायश्चित्त-विधि' को सुनिए।। १७९।।

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात्।। १८०।।

पतितेन सह संसर्गमाचरन् एकयानगमनैकासनोपवेशनैपङ्क्तिभोजनरूपान्संसर्गानाचरन्संवत्सरेण पतति। नतु याजनाध्यापनाद्यौनात्संवत्सरेण पतति किन्तु सद्य एवेत्यर्थः। अध्यापनमत्रोपनयनपूर्वकं सावित्रीश्रावणम्। याजनादीनां च सद्यःपातित्यमाह देवलः- ''याजनं योनिसंबन्धं स्वाध्यायं सह भोजनम्। कृत्वा सद्यः पतन्त्येते पतितेन न संशयः।।'' विष्णुः- ''आ संवत्सरात्पतति पतितेन सहाचरन्। सहयानासनाभ्यासाद्यौनात्तु सद्य एव हि।।'' बौधायनः- ''संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्। याजनाध्यापनाद्यौनात्सद्यो न शयनासनात्'' इति। गोविन्दराजस्तु याजनादीनां त्रयाणां संवत्सरेण पातित्यहेतुत्वं सहासनादीनां लघुत्वान्न संवत्सरेण किन्तु तस्मादूर्ध्वमपीति व्याचष्टे। अस्मदीयमनुव्याख्यामुनिव्याख्यानुसारिणी। नैनां गोविन्दराजस्य कल्पनामनुरुन्ध्महे।। १८०।।

पतित व्यक्ति के साथ सवारी, आसन एवं भोजन का आचरण करता हुआ व्यक्ति वर्ष भर में पतित हो जाता है, जबकि उसके साथ यज्ञ करने, अध्यापनकार्य करने एवं विवाह सम्बन्ध रखने से तो वह तत्काल पतित हो जाता है।। १८०।।

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये।। १८१।।

पतितशब्दोऽयं पापकारिवचनः सकलपापिनामविशेषपाठात्। एषां पतितानां मध्ये यो येन पापकारिणा सह पूर्वोक्तं संसर्गं करोति स तस्यैव व्रतरूपं प्रायश्चित्तं कुर्यान्नतु मरणान्तिकमित्यभिहितं तदपि व्रतं संसर्गिणा क्रियमाणम् ''ब्रह्महा द्वादशसमाः'' (अ० ११ श्लो० ७२) इत्यादिकं पादहीनं कर्तव्यम्। तथाच व्यासः-''यो येन संसृजेद्वर्षं सोऽपि तत्समतामियात्। पादन्यूनं चरेत्सोऽपि तस्य तस्य व्रतं द्विजः''।। १८१।।

अतः पूर्व में बताए गए इन पतितों में से, व्यक्ति जिस पतित की सङ्गति करे, उस संसर्ग से उत्पन्न पाप की शुद्धि हेतु वह उसी प्रायश्चित्त व्रत का आचरण करे (जो उस पाप के लिए कहा गया है)।। १८१।।

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ।। १८२।।

महापातकिनो जीवत एव प्रेतस्योदकक्रिया वक्ष्यमाणरीत्या सपिण्डैः समानोदकैश्च ग्रामाद्बहिर्गत्वा ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधाने रिक्तायां नवम्यां तिथौ दिनान्ते कर्तव्या।। १८२।।

(महापातकी व्यक्ति जीवित रहते हुए भी मृततुल्य होता है अतः) उसके सपिण्ड बन्धुओं द्वारा, नवमी आदि निन्दित तिथि में, दिन में सन्ध्या के समय, उसके सगे-सम्बन्धी, ऋत्विक् एवं गुरुजनों की उपस्थिति में, गाँव के बाहर उसकी केवल उदक-क्रिया ही सम्पादित करनी चाहिए।। १८२।।

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा।
अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह।। १८३।।

सपिण्डसमानोदकप्रयुक्ता दासी उदकपूर्णं घटं प्रेतवदिति दक्षिणाभिमुखीभूय पादेन क्षिपेत् यथा स निरुदको भवति। तदनु ते सपिण्डाः समानोदकैः सहाहोरात्रमशौचमाचरेयुः।। १८३।।

जिसके अन्तर्गत जल से भरे हुए घड़े को दासी, पैर द्वारा प्रेत के समान फैंक देवें तथा बन्धुओं सहित सपिण्ड, एक दिन और रात के अशौच का आचरण करे।। १८३।।

निवर्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी।। १८४।।

तस्मात्पतितात्सपिण्डादीनां संभाषणमेकासनोपवेशनं च तस्मै ऋक्थप्रदानं सांवत्सरिकादौ निमन्त्रणादिरूपो लोकव्यवहार एतानि निवर्तेरन्।। १८४।।

इसके अतिरिक्त उस पतित के साथ सम्भाषण, एक आसन पर बैठना तथा उसे दायभाग प्रदान करना एवं अन्य प्रकार के लौकिक व्यवहारादि सभी निवृत्त हो जाते हैं।। १८४।।

ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठावाप्यं च यद्धनम्।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः।। १८५।।

ज्येष्ठस्य यत्प्रत्युत्थानादिकं कार्यं तत्तस्य न कार्यम्। ज्येष्ठलभ्यं च तस्य विंशत्युद्धारादिकं धनं न देयम्। यद्यपि ऋक्थप्रदानप्रतिषेधादेवाप्युद्धारप्रतिषेधः

सिद्धस्तथापि यवीयसस्तत्प्राप्त्यर्थमनूद्यते। तस्यैव ज्येष्ठस्य संबन्धि धनं सोद्धारांशं तदनुजो गुणाधिको लभते।। १८५।।

इतना ही नहीं अपितु इसकी ज्येष्ठता तथा बड़े होने के परिणामस्वरूप इसे मिलने वाला जो भी धन है, वह सब भी निवृत्त हो जाता है एवं इसके ज्येष्ठ भाग (बीसवें भाग का उद्धार) को जो गुणों में अपेक्षाकृत बढ़कर हो, वह छोटा भाई प्राप्त कर लेता है।। १८५।।

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम्।
तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये।। १८६।।

कृते पुनः पतितेन प्रायश्चित्ते सपिण्डसमानोदकास्तेनैव कृतप्रायश्चित्तेन सह पवित्रे जलाधारे स्नात्वा जलपूर्णं नवं घटं प्रक्षिपेयुः। इह नवघटग्रहणाद्दासीघटमित्यत्र कृतोपयोगिघटः प्रतीयते।। १८६।।

किन्तु उस पतित द्वारा प्रायश्चित्त का आचरण करने पर, उस पतित के साथ ही किसी पवित्र जलाशय में स्नान करके, सपिण्ड बन्धु नये जलों से ऊपर तक भरे हुए उस घड़े को उसी जलाशय में विसर्जित कर देवें।। १८६।।

स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम्।
सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत्।। १८७।।

स कृतप्रायश्चित्तः तं पूर्वोक्तघटं जलमध्ये क्षिप्त्वा ततः स्वकीयभवनं प्रविश्य यथापूर्वं सर्वाणि ज्ञातिकर्माणि कुर्यात्।। १८७।।

इसप्रकार प्रायश्चित्त करने वाला वह, उस घड़े को जलों में विसर्जित करके तथा अपने घर में प्रवेश करके, सभी प्रकार के जातिविषयक कार्यों को, पहले के समान ही सम्पादित करे।। १८७।।

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि।
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके।। १८८।।

स्त्रीष्वपि पतितास्वेवमेव पतितस्योदकं कार्यमित्यादिविधिं भर्त्रादिसपिण्ड-समानोदकवर्गः कुर्यात्। ग्रासाच्छादनानि पुनराभ्यो देयानि। गृहसमीपे चासां वासार्थं कुटीर्दद्युः।। १८८।।

इसके अलावा पतित हुई स्त्रियों में भी प्रायश्चित्तस्वरूप इसी विधि का आचरण करना चाहिए। इन स्त्रियों के लिए वस्त्र, अन्न-पानादि की व्यवस्था करनी चाहिए

तथा ये स्त्रियाँ प्रायश्चित्तकाल में घर के पास ही कुटी आदि का निर्माण करके निवास करें।। १८८।।

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किंचित्सहाचरेत्।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित्।। १८९।।

पापकारिभिरकृतप्रायश्चित्तैः सह दानप्रतिग्रहादिकमर्थं किंचिन्नानुतिष्ठेत्। कृतप्रायश्चित्तान्नैव कदाचिदपि पूर्वकृतपापत्वेन निन्देत्किंतु पूर्ववद्व्यवहरेत्।। १८९।।

प्रायश्चित्त का आचरण न करने वाले पापी लोगों के साथ मनुष्यों को किसी भी प्रकार के व्यवहार का आचरण नहीं करना चाहिए और विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करने वाले लोगों की कभी भी किसी प्रकार की निन्दा नहीं करनी चाहिए।। १८९।।

अस्यापवादमाह-

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः।
शरणागतहन्तृंश्च स्त्रीहन्तृंश्च न संवसेत्।। १९०।।

बालं यो हतवान्, कृतोपकारमपकाराचरणेन यो विनाशितवान्, प्राणरक्षार्थमागतं यो हतवान्, स्त्रियं च यो व्यापादितवानेतान्यथावत्कृतप्रायश्चित्तानपि संसर्गितया न परिवसेत्।। १९०।।

किन्तु प्रायश्चित्त द्वारा विशुद्ध होने पर भी, बालक की हत्या करने वाले, कृतघ्न, शरणागत का वध करने वाले तथा स्त्री को मारने वाले व्यक्तियों की सङ्गति मनुष्य को कभी नहीं करनी चाहिए।। १९०।।

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत्।। १९१।।

येषां ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् आनुकल्पिककाल उपनयनं यथाशास्त्रं न कृतवान् तान्प्राजापत्यत्रयं कारयित्वा यथाशास्त्रमुपनयेत्। यत्तु याज्ञवल्क्यादिभिर्व्रात्यस्तोमादिप्रायश्चित्तमुक्तं तेन सहास्य गुरुलाघवमनुसंधाय जातिशक्त्याद्यपेक्षो विकल्पो मन्तव्यः।। १९१।।

द्विज वर्ण के जिन लोगों की सावित्री शास्त्रोक्तविधि द्वारा सम्पादित न की गयी हो तो इसप्रकार के उन पतितों को तीन कृच्छ्रव्रतों का आचरण कराकर विधिपूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिए।। १९१।।

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः।
ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत्।। १९२।।

ये प्रतिषिद्धशूद्रसेविनो द्विजास्ते चोपनीता अप्यनधीतवेदाः प्रायश्चित्तं कर्तुमिच्छन्ति तेषामप्येतत्प्राजापत्यादित्रयमुपदिशेत्।। १९२।।

किन्तु निषिद्धकर्मों का आचरण करने वाले, वेदों के अध्ययन से विरक्त द्विज वर्ण के जो लोग प्रायश्चित्त व्रतों का आचरण करना चाहते हैं, उन्हें भी प्राजापत्यादि इन्हीं व्रतों के आचरण का आदेश देना चाहिए।। १९२।।

यद्गर्हितेनार्चयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम्।
तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति जप्येन तपसैव च।। १९३।।

गर्हितेन कर्मणा निषिद्धदुःप्रतिग्रहादिना ब्राह्मणा यद्धनमर्जयन्ति तस्य धनस्य त्यागेन जपतपोभ्यां वक्ष्यमाणाभ्यां शुध्यन्ति। धनत्यागेन च प्रायश्चित्तविधानाद्बहुमूल्ये च करितुरगादावल्पमूल्ये च लोहादौ परिगृहीते तुल्यप्रायश्चित्ताभिधानमुपपन्नम्। एवमविक्रय्यविक्रयादावपि।। १९३।।

जिस धन को ब्राह्मण लोग निन्दितकर्म द्वारा अर्जित करते हैं। वे लोग उस धन का त्याग करने से, गायत्री आदि के जप द्वारा तथा तपस्या से शुद्ध होते हैं।। १९३।।

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्।। १९४।।

त्रीणि सावित्रीसहस्राणि जपित्वा गोष्ठे वा मासं क्षीराहारोऽसत्प्रतिग्रहजनितात्पापान्मुक्तो भवति। शूद्रप्रतिग्रहादावप्येतदेव प्रायश्चित्तम्। द्रव्यदोषेण च दातृदोषेणापि प्रतिग्रहस्य गर्हितत्वाविशेषादिति।। १९४।।

एकाग्रचित्त होकर गायत्री मन्त्र का तीन हज़ार बार जप करके, गोशाला में मासपर्यन्त केवल दुग्धपान करके, ब्राह्मण निन्दित वस्तु के प्रतिग्रह (दान) के पाप से विमुक्त हो जाता है।। १९४।।

उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम्।
प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम्।। १९५।।

केवलक्षीराहारेण इतरभोजनव्यावृत्त्या कृशदेहं गोष्ठात्प्रत्यागतं प्रणतं नम्रीभूतं किमस्माभिः सह साम्यमिच्छसि पुनरसत्प्रतिग्रहं न करिष्यसीत्येवं धर्मं ब्राह्मणाः परिपृच्छेयुः।। १९५।।

इसप्रकार मास भर तक किए गए उपवास से दुर्बल हुए, गोशाला से पुनः घर पर आए हुए विनम्र हुए उससे, बन्धु-बान्धवों को इसप्रकार प्रश्न पूछना चाहिए कि-हे सौम्य! क्या तुम हमारी बराबरी में आने के इच्छुक हो?।। १९५।।

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम्।
गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम्।। १९६।।

सत्यमेतत्पुनरसत्प्रतिग्रहं न करिष्यामीत्येवं ब्राह्मणेषूक्त्वा घासं गवां दद्यात्। तस्मिन्यवसं भक्ष्यमाणे देशे गोभिः पवित्रीकृतत्वात्तीर्थीभूते ब्राह्मणास्तस्य संव्यवहारे स्वीकारं कुर्युः।। १९६।।

तत्पश्चात् निन्दित दान को स्वीकार करने वाला वह ब्राह्मण, सभी उपस्थित ब्राह्मणों के समक्ष सत्यप्रतिज्ञा करके (कि-'अब मैं निन्दित प्रतिग्रह को स्वीकार नहीं करूँगा), गायों को घास डाले तथा गायों द्वारा पवित्र किए गए तीर्थ स्वरूप स्थल पर उसके सभी बन्धु, उस ब्राह्मण को स्वीकार करें।। १९६।।

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति।। १९७।।

व्रात्यानाम् 'अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते'' (अ० २ श्लो ३९) इत्युक्तानां व्रात्यस्तोमादियाजनं कृत्वा पितुगुर्वादिव्यतिरिक्तानां च निषिद्धौर्ध्वदेहिकदाह श्राद्धादि कृत्वाऽभिचारं च श्येनादिकम्। अभिचारोऽनभिचारणीयस्य। अहीनं यागविशेषः। ''अहीनयजनमशुचिकरम्'' इति श्रुतेः। त्रिरात्रादि तस्य यजनं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति।। १९७।।

इसके अतिरिक्त व्रात्यों के यहाँ यज्ञ करना, पिता आदि को छोड़कर दूसरों के क्रियाकर्म सम्पादित करना, मारण, उच्चाटनादि अभिचार क्रियाएँ करना तथा अहीन यज्ञ के यजन आदि को करने वाला व्यक्ति तीन कृच्छ्रों द्वारा शुद्धि को प्राप्त होता है।। १९७।।

शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः।
संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति।। १९८।।

शरणागतं परित्राणार्थमुपगतं शक्तः सन्नुपेक्षते द्विजातिरनध्याप्यं च वेदमध्याप्य तज्जनितं पापं संवत्सरं यवाहारोऽपनुदति।। १९८।।

इसीप्रकार शरणागत का परित्याग करके तथा अयोग्य को वेद का अध्यापन

करके ब्राह्मण, एक वर्ष पर्यन्त जौ के सत्तू का आहार करता हुआ, उस पाप से मुक्त हो जाता है।। १९८।।

श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च।
नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति।। १९९।।
(शुनाऽऽघ्रातावलीढस्य दन्तैर्विदलितस्य च।
अद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोपचूलनम्।। १०।।)

कुक्कुरसृगालगर्दभनराश्ववराहाद्यैर्ग्राम्यैश्चाममांसादैर्मार्जारादिभिर्दष्टः प्राणायामेन शुध्यति।। १९९।।

इसके अलावा गाँव में रहने वाले कुत्ते, शृगाल, गधे, कच्चे माँस का भक्षण करने वाले मार्जारादि, मनुष्य, घोड़ा, ऊँट और सूअर द्वारा दष्ट व्यक्ति प्राणायाम करने मात्र से शुद्ध हो जाता है।। १९९।।

(कुत्ते द्वारा सूँघी गयी, दाँतों द्वारा चबाई गयी अथवा विदीर्ण की गई वस्तु जल से धोने एवं अग्नि द्वारा गरम करने से पवित्र कही गयी है।। १०।।)

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा।
होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्त्यानां विशोधनम्।। २००।।

अपाङ्क्त्याः "ये स्तेन पतिताः क्लीबाः" (अ० ३ श्लो० १५०) इत्यादिनोक्तास्तेषां विशेषतोऽनुपदिष्टप्रायश्चित्तानां मासं त्र्यहमभुक्त्वा तृतीयेऽह्नि सायं भोजनं वेदसंहिताजपो "देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि" इत्यादिभिरष्टभिर्मन्त्रैर्होमः प्रत्येकं कार्यः। एतत्समुद्दिष्टं पापशोधनम्।। २००।।

मासपर्यन्त केवल छठे काल में भोजन अथवा वेदसंहिता का जप तथा हमेशा सम्पूर्ण होम करना, पंक्ति से बहिष्कृत लोगों का प्रायश्चित्त होता है।। २००।।

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः।
स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुध्यति।। २०१।।

उष्ट्रैर्युक्तं यानं शकटादि एवं खरयानमपि तत्कामत आरुह्य अव्यवधान उष्ट्रखराभ्यां याने प्राणायामबहुत्वं नग्नश्च कामतः स्नानं कृत्वा प्राणायामेन शुद्धो भवति।। २०१।।

इसके अतिरिक्त यदि ब्राह्मण अपनी इच्छापूर्वक ऊँट या गधे की सवारी पर आरोहण करके, नग्न होकर स्नान करता है तो वह केवल प्राणायाम करने से ही शुद्ध हो जाता है।। २०१।।

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं संनिवेश्य च।
सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति।। २०२।।

असंनिहितजलो जलमध्ये वा वेगार्तो मूत्रं पुरीषं वा कृत्वा सवासाः बहिर्ग्रामान्नद्यादौ स्नात्वा गां च स्पृष्ट्वा विशुद्धो भवति।। २०२।।

जबकि जलों के बिना या जलों के बीच में आवेगादी के कारण मल-मूत्र का परित्याग करके रोगी व्यक्ति, गाँव से बाहर नदी आदि में वस्त्रसहित स्नान करके तथा गाय का स्पर्श करके शुद्ध होता है।। २०२।।

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्।। २०३।।

वेदविहितानां कर्मणामग्निहोत्रादीनामनुपदिष्टप्रायश्चित्तविशेषाणां च परिलोपे स्नातकव्रतानां चतुर्थाध्यायोक्तानामतिक्रमे सत्येकाहोपवासं प्रायश्चित्तं कुर्यात्।। २०३।।

वेद में बताए गए नित्य कर्मों का अतिक्रमण होने पर तथा स्नातक व्रत का उल्लंघन होने पर, एक दिवसपर्यन्त निराहार रहना ही प्रायश्चित्त होता है।। २०३।।

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः।
स्नात्वाऽनश्नन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत्।। २०४।।

हुं तूष्णीं स्थीयतामित्याक्षेपं ब्राह्मणस्य कृत्वा त्वंकारं च विद्याद्यधिकस्योक्त्वा-ऽभिवादनकालादारभ्याहःशेषं यावत्स्नात्वा भोजननिवृत्तः पादोपग्रहणेनापगतकोपं कुर्यात्।। २०४।।

ब्राह्मण के प्रति हुँकार करके, अपने से बड़ों के प्रति 'तू' का उच्चारण करके, व्यक्ति को प्रायश्चित्त स्वरूप स्नान करके, दिन के शेषभाग में निराहार रहकर तथा बारम्बार नमस्कार करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिए।। २०४।।

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वाऽऽबध्य वाससा।
विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्।। २०५।।

प्राकृतं ब्राह्मणं तृणेनापि ताडयित्वा कण्ठे वाऽऽबध्य वाससा वा वाक्कलहेन जित्वा प्रणिपातेन प्रसादयेत्।। २०५।।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मण को तिनके से भी ताड़ित करके अथवा कण्ठ में वस्त्र को बाँधकर या विवाद में ब्राह्मण को जीतकर, उसके चरणों में गिरकर प्रणाम करके उसे प्रसन्न करना चाहिए।। २०५।।

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च।
जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते।। २०६।।

ब्राह्मणस्य हननेच्छया दण्डमुद्यम्य वर्षशतं नरकं प्राप्नोति। दण्डादिना पुनः प्रहृत्य वर्षसहस्रं नरकं प्राप्नोति।। २०६।।

जबकि ब्राह्मण को मारने की इच्छा से दण्ड उठाने मात्र से सौ वर्ष पर्यन्त तथा उसकी हत्या करके व्यक्ति एक हजार वर्ष तक नरक को प्राप्त करता है।। २०६।।

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले।
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत्।। २०७।।

प्रहतस्य ब्राह्मणस्य रुधिरं यावत्संख्याकान् रजःकणान्भूमौ पिण्डीकरोति तावत्संख्याकानि वर्षसहस्राणि तच्छोणितोत्पादको नरके वसेत्।। २०७।।

इतना ही नहीं अपितु पृथ्वीतल पर गिरा हुआ ब्राह्मण का रक्त जितने रजकणों को भिगोता है, ऐसा करने वाला व्यक्ति उतने ही हजार वर्ष पर्यन्त नरक में निवास करता है।। २०७।।

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्।। २०८।।

ब्राह्मणस्य हननेच्छया दण्डाद्युद्यमने कृच्छ्रं कुर्यात्। दण्डादिप्रहारे दत्तेऽतिकृच्छ्रं वक्ष्यमाणं चरेत्। रुधिरमुत्पाद्य कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत।। २०८।।

ब्राह्मण के प्रति मारने की इच्छा से दण्ड उठाने मात्र से प्रायश्चित्त स्वरूप कृच्छ्र व्रत का, उसे दण्ड मारने पर अतिकृच्छ्र व्रत का आचरण करे। जबकि उसके शरीर से रक्त निकालकर व्यक्ति प्रायश्चित्त के रूप में कृच्छ्र एवं अतिकृच्छ्र दोनों प्रकार के व्रतों का अनुष्ठान करे।। २०८।।

अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये।
शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्।। २०९।।

अनुक्तप्रायश्चित्तानां यथा प्रतिलोमवधादिकृतानां निर्हरणार्थं कर्तुः शरीरधनानि सामर्थ्यमवेक्ष्य पापं च ज्ञात्वा ज्ञानाज्ञानसकृदावृत्त्यनुबन्धादिरूपेण प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्।। २०९।।

इसके अतिरिक्त जिन पापों के प्रायश्चित्त का कथन नहीं किया गया है, ऐसे पापों को दूर करने के लिए, पाप करने वाले की शारीरिक क्षमता एवं पाप के प्रकार को भलीप्रकार देखकर ही प्रायश्चित्त का निर्धारण करना चाहिए।। २०९।।

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान्।। २१०।।

यैर्हेतुभिर्मनुष्यः पापान्यपनुदति तान्पापनाशहेतून्देवर्षिपितृभिरनुष्ठितान् युष्माकं वक्ष्यामि।। २१०।।

अब मैं आपसे देव, ऋषि एवं पितृगण द्वारा किए गए उन उपायों को कहूँगा, जिनसे मनुष्य अपने समस्त पापों को पूर्णरूप से नष्ट कर देता है।। २१०।।

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः।। २११।।

प्रजापत्याख्यं कृच्छ्रमाचरन् द्विजातिराद्यं दिनत्रयं प्रातर्भुञ्जीत। प्रातःशब्दोऽयं भोजनानामौचित्यप्राप्तदिवाकालपरः। अत एव वसिष्ठः-"त्र्यहं दिवा भुङ्क्ते नक्त-मत्ति च त्र्यहं त्र्यहं अयाचितव्रतं त्र्यहं न भुङ्क्ते" इति च कृच्छ्रः। आपस्त-म्बोऽप्याह-"त्र्यहं नक्ताशी दिवाशी च ततस्त्र्यहम्। त्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहं नाश्नाति किंचन।।" इति कृच्छ्रद्वादशरात्रस्य विधिः। अपरं च दिनत्रयं सायंसंध्यायामतीतायां भुञ्जीत। अन्यद्दिनत्रयमयाचितं तावदन्नं भुञ्जीत। शेषं च दिनत्रयं न किंचिदश्नीयात्। अत्र ग्राससंख्यापरिमाणापेक्षायां पराशरः—"सायं द्वात्रिंशतिर्ग्रासाः प्रातः षड्विंशतिस्तथा। अयाचिते चतुर्विंशत्परं चानशनं स्मृतम्। कुक्कुटाण्डप्रमाणं च यावांश्च प्रविशेन्मुखम्। एतं ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं ग्रासशोधनम्। हविष्यं चान्नमश्नीयाद्यथा रात्रौ तथा दिवा। त्रींस्त्रीण्यहानि शास्त्रीयान्ग्रासान्संख्याकृतान्यथा।। अयाचितं तथैवाद्यादुपवासस्त्र्यहं भवेत्"।। २११।।

इस क्रम में प्राजापत्य व्रत का आचरण करता हुआ द्विज, तीन दिवस पर्यन्त सुबह, तीन दिन तक सायं तथा तीन दिन तक बिना माँगे ही भोजन करे, जबकि तीन दिनों तक उसे कुछ भी नहीं खाना चाहिए।। २११।।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम्।। २१२।।

गोमूत्राद्येकीकृत्य एकैकस्मिन्नहनि भक्षयेन्नान्यत्किंचिदद्यात्। अपरदिने चोपवास इत्येतत्सांतपनं कृच्छ्रं स्मृतम्। यदा तु गोमूत्रादिषट् प्रत्येकं षट् दिनान्युपभुज्य सप्तमे दिने चोपवासस्तदा महासांतपनं भवति। तथा च याज्ञवल्क्यः-"कुशोदकं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृदघृतम्। जग्ध्वापरेऽह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं चरन्।। पृथक् सांतपन-द्रव्यैःषडहः सोपवासिकः। सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनं स्मृतम्।।" इति।। २१२।।

इसके अतिरिक्त गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी एवं कुशों का जल, इन्हें पहले दिन ग्रहण करके, एक रात्रि पर्यन्त उपवास करे। यह सांतपन कृच्छ्र नामक व्रत कहा गया है।। २१२।।

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः।। २१३।।

अतिकृच्छ्रं द्विजातिरनुतिष्ठन्प्रातःसायमयाचितादिरूपेणैकैकं ग्रासं त्र्यहाणि त्रीणि त्रीणि पूर्ववत् अन्यच्च त्र्यहं न किंचिद्भुञ्जीत।। २१३।।

इसीप्रकार अतिकृच्छ्र व्रत का आचरण करता हुआ द्विज, पूर्व में कहे गए तीनों दिनों में क्रमशः तीन समय के भोजन में, केवल एक-एक ग्रास का ही भक्षण करे तथा अन्तिम तीन दिनों में उसे उपवास ही करना चाहिए।। २१३।।

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः।। २१४।।
(अपां पिबेच्च त्रिपलं पलमेकं च सर्पिषः।
पयः पिबेत्तु त्रिपलं त्रिमात्रं चोक्तमानतः।। ११।।)

तप्तकृच्छ्रं चरन्द्विजातिः त्र्यहमुष्णोदकं त्र्यहमुष्णक्षीरं त्र्यहमुष्णघृतं त्र्यहमुष्णवायुमेकवारं स्नानं कुर्वन्संयमवान्पिबेत्। अत्र पराशरोक्तो विशेषः- "षट्पलं तु पिबेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिबेत्। पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते"।। २१४।।

इसके अलावा तप्तकृच्छ्र व्रत का आचरण करता हुआ ब्राह्मण, सावधानचित्त होकर, प्रतिदिन स्नान करके, प्रत्येक तीन दिन के क्रम से गरम जल, गरम दूध, गर्म घी एवं गर्म वायु का दिन में केवल एक बार सेवन करे।। २१४।।

(पूर्व में कहे गए प्रमाण के अनुसार प्रत्येक तीन दिन के क्रम में क्रमशः तीन पलों तक केवल जल पीये तथा एक पल पर्यन्त केवल घी का पान करे तथा तीन पलों तक केवल दुग्धपान करे।। ११।।)

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः।। २१५।।

विगतानवधानस्य संयतेन्द्रियस्य द्वादशाहमभोजनमेव पराकाख्यः कृच्छ्रः सकृदावृत्तितारतम्येन गुरुलघुसमफलपापापनोदनः।। २१५।।

इसके अतिरिक्त पूर्णतया सावधान चित्त वाले, जितेन्द्रिय व्यक्ति का बारह

दिवस पर्यन्त भोजन न करना, 'पराक' नामक 'कृच्छ्र व्रत', सभी प्रकार के पापों को विनष्ट करने वाला है।। २१५।।

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृत्।। २१६।।

सायंप्रातर्मध्याह्नेषु स्नानं कुर्वाणः पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासानशित्वा ततः कृष्णप्रतिपत्क्रमेणैकैकं ग्रासं ह्रासयेत्तथा चतुर्दश्यामेको ग्रासः संपद्यते। ततोऽमावास्यायामुपोष्य शुक्लप्रतिपत्प्रभृतिभिरेकैकं ग्रासं वृद्धिं नयेत्। एवं पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासाः संपद्यन्ते। एतत्पिपीलिकामध्याख्यं चान्द्रायणं स्मृतम्।। २१६।।

दिन में तीन बार स्नान करते हुए, कृष्णपक्ष में क्रमशः एक-एक ग्रास को कम करे तथा शुक्लपक्ष में क्रमशः एक-एक ग्रास में वृद्धि करे। यह 'चान्द्रायणव्रत' कहा गया है।। २१६।।

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे।
शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम्।। २१७।।

एतमेव पिण्डह्रासवृद्धित्रिषवणस्नानात्मकं विधानं यवमध्याख्ये चान्द्रायणे शुक्लपक्षमादितः कृत्वा संयतेन्द्रियश्चान्द्रायणमनुतिष्ठन्नाचरेत्। ततश्च शुक्लप्रतिपदमारभ्य एकैकं पिण्डं वर्धयेत्। यथा पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासाः संपद्यन्ते। ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्य एकैकं पिण्डं ह्रासयेत्। यथाऽमावास्यायामुपवासो भवति।। २१७।।

जबकि शुक्लपक्ष के प्रारम्भ से चान्द्रायण व्रत का आचरण करता हुआ व्यक्ति 'यवमध्यम चान्द्रायण व्रत' में भी पूर्व में कही गयी इसी विधि का आचरण करे।। २१७।।

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन्।। २१८।।

यतिचान्द्रायणमनुतिष्ठन् शुक्लपक्षात्कृष्णपक्षाद्वारभ्य मासमेकं संयतेन्द्रियः प्रत्यहमष्टावष्टौ ग्रासान्मध्यंदिने भुञ्जीत। मध्यंदिन इति गृहस्थब्रह्मचारिणोः सायंभोजननिवृत्त्यर्थम्।। २१८।।

चान्द्रायण व्रत का आचरण करता हुआ नियम में स्थित एवं जितेन्द्रिय मनुष्य हविष्यान्न का भोक्ता होकर, मध्याह्नकाल में केवल आठ-आठ ग्रासों का भक्षण करे (क्योंकि शास्त्रों में यति एवं ब्रह्मचारी के लिए रात्रिभोजन का निषेध किया गया है।)।। २१८।।

चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम्।। २१९।।

प्रातश्चतुरो ग्रासानश्नीयात्। अस्तमिते च सूर्ये चतुरो ग्रासान्भुञ्जीत। एतच्छिशुचान्द्रायणं मुनिभिः स्मृतम्।। २१९।।

इसके अतिरिक्त एकाग्रचित्त हुआ ब्राह्मण, केवल चार ग्रासों का प्रातःकाल तथा चार ग्रासों का सूर्य के अस्त होने पर भक्षण करे। यह शिशु चान्द्रायणव्रत कहा गया है।। २१९।।

यथाकथंचित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः।
मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम्।। २२०।।

नीवारादिहविष्यसंबन्धिनां ग्रासानां द्वे शते चत्वारिंशदधिके कदाचिद्दश कदाचित्पञ्च कदाचित्षोडश कदाचिदुपवास इत्येवमाद्यनियमेन यथाकथंचित्पिण्डान्मासेन संयतवान्भुञ्जानश्चन्द्रसलोकतां याति। एवं पापक्षयार्थमभ्युदयार्थं चेदमुक्तम्। अत एव याज्ञवल्क्यः-"धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम्। कृच्छ्रकृच्छ्रर्मकामस्तु महतीं श्रियमाप्नुयात्।।" अ०३श्लो० ३२६-२७) अतः प्राजापत्यादिकृच्छ्रमप्यभ्युदयफलमिति याज्ञवल्क्येनोक्तम्।। २२०।।

एकाग्रचित्त व्यक्ति हविष्य के ग्रासों की अस्सी की संख्या को तीन बार करके (दो सौ चालीस में बाँट कर), जिसप्रकार उचित समझे उसप्रकार मासपर्यन्त खाता हुआ, चन्द्रलोक के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है।। २२०।।

एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम्।
सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः।। २२१।।

एतच्चान्द्रायणाख्यं व्रतं रुद्रादित्यवसुमरुतश्च महर्षिभिः सह सर्वपापनाशाय गुरुलघुपापापेक्षया सकृदावृत्तिप्रकारेण कृतवन्तः।। २२१।।

रुद्र, आदित्य, वसु एवं महर्षियों सहित मरुद्गणों ने, सभी प्रकार के पापों की निवृत्ति के लिए इस व्रत का आचरण किया है।। २२१।।

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम्।
अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत्।। २२२।।

महाव्याहृतिभिर्भूर्भुवःस्वरेताभिः "आज्यं हविरनादेशे जुहोतिषु विधीयते" इति परिशिष्टवचनादाज्येन प्रत्यहं होमं कुर्यात्। अहिंसासत्याक्रोधाकौटिल्यानि चानुतिष्ठेत्। यद्यप्येतानि पुरुषार्थतया विहितानि तथापि व्रताङ्गतयायमुपदेशः।। २२२।।

प्रायश्चित्त व्रत का आचरण करते हुए व्यक्ति को प्रतिदिन भू: भुव: स्व: इन महाव्याहतियों के साथ स्वयं ही होम करना चाहिए तथा अहिंसा, सत्य, अक्रोध एवं सरलता का आचरण भी करना चाहिए।। २२२।।

त्रिरहस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत्।
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित्।। २२३।।

अहनि रात्रावादिमध्यावसानेषु स्नानार्थं सचैलो नद्यादिजलं प्रविशेत्। एतच्च पिपीलिकामध्ययवमध्यचान्द्रायणेतरचान्द्रायणविषयम्। तयो: "उपस्पृशंस्त्रिषवणम्" (अ० ६ श्लो० २४) इत्युक्तत्वात्। स्त्रीशूद्रपतितैश्च सह यावद्व्रतं कदाचित्संभाषणं न कुर्यात्।। २२३.।।

इसके अलावा एक दिन में तीन बार एवं एक रात्रि में तीन बार वस्त्रों सहित जल में प्रवेश करे तथा कभी भी स्त्री, शूद्र और पतितों के साथ संभाषण न करे।। २२३।।

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽध: शयीत वा।
ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चक:।। २२४।।

अहनि रात्रौ च उत्थित आसीन: स्यान्न तु शयीत। असामर्थ्ये तु स्थण्डिले शयीत न खट्वादौ। ब्रह्मचारी स्त्रीसंयोगरहितव्रत:। व्रती मौञ्जीदण्डादियुक्त: "पालाशं धारयेद्दण्डं शुचिमौञ्जीं च मेखलाम्" इति यमस्मरणात्। गुरुदेवब्राह्मणानां च पूजको भवेत्।। २२४।।

चान्द्रायण व्रत का आचरण करने वाला व्यक्ति एक ही स्थान एवं आसन पर उठे-बैठे अथवा असमर्थ होने की स्थिति में भूमि पर शयन करे। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले उस व्रती को, गुरु, देवता एवं ब्राह्मण की पूजा करने वाला होना चाहिए।। २२४।।

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तित:।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृत:।। २२५।।

सावित्रीं च सदा जपेत्। पवित्राणि चाघमर्षणादीनि यथाशक्ति जपेत्। एतच्च यथा चान्द्रायणे तथा प्राजापत्यादिकृच्छ्रेष्वपि यत्नवान्प्रायश्चित्तार्थमनुतिष्ठेत्।। २२५।।

इतना ही नहीं प्रायश्चित्त के लिए सभी प्रकार के व्रतों में, अत्यन्त आदरपूर्वक पूर्व में कहे गए प्रकार से (अघमर्षणादि) पवित्र स्तोत्रों का एवं गायत्री मन्त्र का अपनी सामर्थ्य के अनुसार हमेशा जप करना चाहिए।। २२५।।

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत्।। २२६।।

लोकविदितपापा द्विजातय एभिरुक्तप्रायश्चित्तैर्वक्ष्यमाणपरिषदा शोधनीयाः। अप्रकाशितपापांस्तु मानवान्मन्त्रैर्होमैश्च परिषदेव शोधयेत्। यद्यपि परिषदि निवेदने रहस्यत्वस्य नाशस्तथाप्यमुकपापे कृते केनापि लोकाविदिते किं प्रायश्चित्तं स्यादिति सामान्यप्रश्ने न विरोधः।। २२६।।

जिनका पाप अभिव्यक्त हो गया है, ऐसे द्विजवर्णों के लोग इन व्रतों द्वारा पवित्र करने योग्य हैं, किन्तु जिनका पाप प्रदर्शित नहीं हुआ है, ऐसे द्विजातियों को भी इन्हीं मन्त्रों एवं होमादि के द्वारा अपनी शुद्धि करनी चाहिए।। २२६।।

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि।। २२७।।

पापकारी नरो लोकेषु निजपापकथनेन धिङ्मामतिपापकारिणमिति पश्चात्तापेन शुध्यति। तपसा चोग्ररूपेण सावित्रीजपादिना च पापान्मुच्यते। तपस्यशक्तो दाने न च पापान्मुक्तो भवति। ख्यापनं चेदं प्रकाशप्रायश्चित्ताङ्गभूतं न रहस्यप्रायश्चित्ताङ्गं रहस्यत्वहानिप्रसङ्गात्। अनुतापश्च प्रकाशरहस्याङ्गमेव। दानेनेति प्राजापत्यव्रत एकधेनुविधानात्। धेनुश्च पञ्चपुराणीया त्रिपुराणीया वेति। एतेन ब्रह्महत्यानिमित्तके द्वादशवार्षिकव्रते मासि सार्धद्वयप्राजापत्यात् वत्सरे त्रिंशद्धेनवो भवन्ति। द्वादशभिर्वर्षैः षष्ट्यधिकशतत्रयं धेनवो भवन्तीति।। २२७।।

अपने पाप का कथन करने, पश्चात्ताप करने, तप एवं वेदाध्ययनादि से (व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है) ठीक वैसे ही तपादि में असमर्थ होने पर आपत्तिकाल की स्थिति में दान देने पर भी पापी अपने पाप से छूट जाता है।। २२७।।

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते।। २२८।।

यथा यथा स्वयं पापं कृत्वा नरो भाषते लोके ख्यापयति तथा तथा तेन पापेन सर्प इव जीर्णत्वचा मुच्यत इति ख्यापनविधेरनुवादः।। २२८।।

क्योंकि अधर्म का आचरण करके मनुष्य, स्वयं ही जैसे-जैसे अपने पाप का कथन करता है, वैसे-वैसे सर्प की केंचुली के समान वह उस पाप से मुक्त हो जाता है।। २२८।।

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते।। २२९।।

तस्य पापकारिणो मनो यथा यथा दुष्कृतं कर्म निन्दति तथा तथा शरीरं जीवात्मा तेनाधर्मेण मुक्तो भवति अयमनुतापानुवाद इति।। २२९।।

इसके अतिरिक्त जैसे-जैसे उस पाप करने वाले का मन अपने बुरे कर्म की निन्दा करता है, वैसे-वैसे उसका वह शरीर उस अधर्म से छूट जाता है।। २२९।।

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः।। २३०।।

पापं कृत्वा पश्चात्संतप्य तस्मात्पापान्मुच्यत इत्युक्तमपि नैवं कुर्यां पुनरित्येवमनदितम्। यदा तु पश्चात्तापो नैवं पुनः करिष्यामीत्येवं निवृत्तिरूपसंकल्पफलकः स्यात्तदा सुतरां तस्मात्पापात्पूतो भवतीति। एतच्च निवृत्तिसंकल्पस्य प्रकाशाप्रकाशप्रायश्चित्ताङ्गविधानार्थम्।। २३०।।

वस्तुतः पाप को करने के पश्चात् उसके लिए पश्चात्ताप करके व्यक्ति उस पाप से छूट जाता है तथा 'फिर ऐसा नहीं करूँगा', इसप्रकार के निश्चय से वह पापी निश्चय ही पवित्र हो जाता है।। २३०।।

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम्।
मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत्।। २३१।।

एवं शुभाशुभानां कर्मणां परलोक इष्टानिष्टफलं मनसा विचार्य मनोवाक्कायैः शुभमेव सर्वं कर्म कुर्यात् इष्टफलत्वात्। नाशुभं नरकादिदुःखहेतुत्वात्।। २३१।।

मरने के पश्चात् व्यक्ति के कर्म-फल का उदय होता है, ऐसा अपने मन में भलीप्रकार विचार करके ही, मनुष्य को हमेशा अपने मन, वचन एवं कर्म से शुभ-कार्य ही करने चाहिएँ।। २३१।।

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम्।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत्।। २३२।।

प्रमादादिच्छातो वा निषिद्धं कर्म कृत्वा तस्मात्पापान्मुक्तिमिच्छन्पुनस्तन्न कुर्यात्। एतच्च पुनः करणे प्रायश्चित्तगौरवार्थम्। अत एव देवलः-''विधेः प्राथमिकादस्माद्द्वितीये द्विगुणं भवेत्'' इति।। २३२।।

अज्ञानवश अथवा जानबूझकर एक बार निन्दनीय कार्य करके, उसके पाप से

विमुक्ति की कामना करते हुए व्यक्ति को दूसरी बार वैसा निन्दित कार्य नहीं करना चाहिए।। २३२।।

यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम्।
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत्।। २३३।।

अस्य पापकारिणो यस्मिन्प्रायश्चित्ताख्ये कर्मण्यनुष्ठिते न चित्तस्य संतोषः स्यात्तस्मिंस्तदेव प्रायश्चित्तं तावदावर्त्तयेद्यावन्मनसः संतोषः प्रसादः स्यात्।। २३३।।

जिस कार्य के करने पर पाप-कर्म करने वाले इस व्यक्ति के मन में तुच्छता की अनुभूति होवे, उसके प्रायश्चित्त कर्म में वह तब तक तप करता रहे, जब तक उसके मन को पर्याप्त संतोष न हो जाए।। २३३।।

तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः।। २३४।।

यदेतत्सर्वं देवानां मनुष्याणां च सुखं तस्य तपः कारणम्। तपसैव च तस्य स्थितिः। तपोऽन्तः प्रतिनियतविधिरेव देवादिसुखस्य तपसा जननादादिष्टं वेदार्थैरुक्तम्। उक्तप्राजापत्यादिप्रायश्चित्तात्मकं तपः। प्रसङ्गेन चेदं वक्ष्यमाणं च सर्वतपो माहात्म्य-कथनम्।। २३४।।

क्योंकि इस सम्पूर्ण संसार का मूल आधार ही तप है। वेदज्ञ विद्वानों ने तप को ही इस संसार का मध्य एवं अन्त भी कहा है, देवताओं एवं मनुष्यों का सुख भी तप के कारण ही है।। २३४।।

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्।। २३५।।

ब्राह्मणस्य ब्रह्मयचर्यात्मकवेदान्तावबोधनं तपः, राजन्यस्य रक्षणं तपः, वैश्यस्य कृषिवाणिज्यपाशुपाल्यादिकं तपः, शूद्रस्य ब्राह्मणपरिचर्या तप इति वर्ण-विशेषेणोत्कर्षबोधनार्थम्।। २३५।।

ब्राह्मण का तप, ज्ञान है, प्रजा का रक्षण क्षत्रिय का तप है। जबकि कृषि का व्यापार करना वैश्य तप है एवं शूद्र का तप अन्य वर्णों की सेवा करना है।। २३५।।

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम्।। २३६।।

ऋषयो वाङ्मनःकायनियमोपेताः फलमूलवायुभक्षास्तपसैव जङ्गमस्थावरसहितं

पृथिव्यन्तरिक्षस्वर्गात्मकं लोकत्रयमेकदेशस्थाः सन्तो निष्पापान्तःकरणाः प्रकर्षेण पश्यन्ति।। २३६।।

फल, मूल एवं वायु का भक्षण करते हुए, इन्द्रियों को वश में करने वाले ऋषि लोग तप के द्वारा ही सम्पूर्ण चराचर स्वरूप वाले, तीनों लोकों के दर्शन करने में समर्थ होते हैं।। २३६।।

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः।
तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम्।। २३७।।

औषधानि व्याध्युपशमनहेतुकानि। अगदो गदाभावः नैरुज्यमिति यावत्। विद्या ब्रह्मधर्मचर्यात्मकवेदार्थज्ञानं वेदसंबन्धिनी च नानारूपा स्वर्गादाववस्थितिरित्येतानि तपसैव प्राप्यन्ते यस्मात्तप एषां प्राप्तिनिमित्तम्।। २३७।।

सभीप्रकार की औषधियाँ, निरोगिता, विद्याप्राप्ति, देवताओं की अनेक प्रकार की स्थिति, ये सभी तप द्वारा ही सिद्ध होते हैं, क्योंकि उन सबका एकमात्र साधन तप ही है।। २३७।।

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।। २३८।।

यद्दुःखेन तीर्यते ग्रहदोषसूचितापदादि, यद्दुःखेन प्राप्यते क्षत्रियादिना यथा विश्वामित्रेण तेनैव शरीरेण ब्राह्मण्यादि, यद्दुःखेन गम्यते मेरुपृष्ठादि, यद्दुःखेन क्रियते गोः प्रचुरदानादि, तत्सर्वं तपसा साधितुं शक्यते। यस्मादतिदुष्करकार्यकरणं सर्वं तपसा साध्यते तपो दुर्लङ्घनशक्ति।। २३८।।

इस संसार में जो भी कठिनता से प्राप्त करने योग्य दुर्लभ पदार्थ हैं, दुर्गम स्थान हैं तथा दुष्कर वस्तुएँ हैं, वे सभी तप के द्वारा ही साध्य हैं। इसलिए व्यक्ति को कभी भी तप का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।। २३८।।

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः।। २३९।।

ब्रह्महत्यादिमहापातककारिणोऽन्ये उपपातकाद्यकार्यकारिणस्तपसैव उक्तरूपेणानुष्ठितेन तस्मात्पापान्मुच्यन्ते। उक्तस्यापि पुनर्वचनं प्रायश्चित्त-स्तुत्यर्थम्।। २३९।।

इसीकारण महान् पाप का आचरण करने वाले तथा अवशिष्ट उपपातकादि

अनुचित कार्यों को करने वाले भी, भलीप्रकार किए गए तप से ही, अपने-अपने पापों से विमुक्त हो जाते हैं।। २३९।।

कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात्।। २४०।।

कीटसर्पशलभपशुपक्षिणः स्थावराणि च वृक्षगुल्मादीनि भूतानि तपोमाहात्म्येन स्वर्गं यान्ति। इतिहासादौ कपोतोपाख्यानादिषु पक्षिणोऽप्यग्निप्रवेशादिकं तपस्तपन्तीति श्रूयते। कीटानां यज्जातिसहजं दुःखं तत्समं तपस्तेन च क्षीणकल्मषा अविकारिणो जन्मान्तरकृतेन सुकृतेन दिवं यान्ति।। २४०।।

इतना ही नहीं अपितु कीट, सर्प, पतंगादि तुच्छप्राणी तथा पशु, पक्षी एवं स्थावरादि सभी प्रकार के प्राणी भी तप के बल से स्वर्ग को प्राप्त कर लेते हैं।। २४०।।

यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः।। २४१।।

यत्किंचित्पापं मनोवाग्देहैर्मानवाः कुर्वन्ति तत्सर्वं पापं निर्दहन्ति तपसैव तपोधना इति। तप एव धनमिव रक्षणीयं येषां ते तपोधनाः।। २४१।।

इसके अतिरिक्त इस संसार में लोग मन, वाणी और शरीर से जो कुछ भी पाप करते हैं। उस सम्पूर्ण पाप को भी तपस्वी लोग अपनी तपस्या द्वारा ही शीघ्र नष्ट कर देते हैं।। २४१।।

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः।
इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च।। २४२।।

प्रायश्चित्ततपसा क्षीणपापस्य ब्राह्मणस्य यागे हवींषि देवाः प्रतिगृह्णन्ति। अभिलषितार्थांश्च प्रयच्छन्ति।। २४२।।

तप से पूर्णतया शुद्ध हुए ब्राह्मण के यज्ञ में ही देवता लोग, हवि को स्वीकार करते हैं एवं कामनाओं को पूर्ण करते हैं।। २४२।।

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे।। २४३।।

हिरणयगर्भः सकललोकोत्पत्तिस्थितिप्रलयप्रभुः तपःकरणपूर्वकमेवेमं ग्रन्थमकरोत्। तथैव ऋषयो वसिष्ठादयस्तपसैव मन्त्रब्राह्मणात्मकान्वेदान्प्राप्तवन्तः ।। २४३।।

सर्वसमर्थ ब्रह्मा ने इस शास्त्र की संरचना भी तप के द्वारा ही की। उसीप्रकार वेदों को भी ऋषियों ने तप से ही प्राप्त किया।। २४३।।

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते।
सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम्।। २४४।।
(ब्रह्मचर्यं जपो होमः काले शुद्धाल्पभोजनम्।
अरागद्वेषलोभाश्च तप उक्तं स्वयंभुवा।। १२।।)

सर्वस्यास्य जन्तोर्यद्दुर्लभं जन्म तपसः प्रकाशादित्येवं देवाः प्रपश्यन्तः "तपोमूलमिदं सर्वम्" (अ० ११ श्लो० २३४)इत्यादि तपोमाहात्म्यं प्रवदन्ति।। २४४।।

इस सम्पूर्ण संसार के प्राणियों का उत्तम एवं पवित्र जन्म, तप के प्रभाव से ही देखते हुए देवता लोग भी इसप्रकार इस तप के माहात्म्य का कथन करते हैं।। २४४।।

(स्वयंभू ब्रह्मा ने ब्रह्मचर्य, जप, होम, समय पर शुद्ध एवं स्वल्प भोजन करना, राग-द्वेष एवं लोभ न करना ही तप कहा है।। १२।।)

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि।। २४५।।

यथाशक्ति प्रत्यहं वेदाध्ययनं पञ्चमहायज्ञानुष्ठानमपराधसहिष्णुत्वमित्येतानि महापातकजनितान्यपि पापानि शीघ्रं नाशयन्ति किमुतान्यानि।। २४५।।

यथाशक्ति प्रतिदिन वेदाभ्यास करना, पञ्चमहायज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं को सम्पादित करना एवं क्षमा का आचरण करना, ये सभी महापातक से उत्पन्न हुए पापों को भी शीघ्र नष्ट कर डालते हैं।। २४५।।

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात्।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित्।। २४६।।

यथाग्निः काष्ठान्यासन्नानि क्षणेनैव तेजसा निःशेषं करोति तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं वेदार्थज्ञो ब्राह्मणो नाशयति। इत्येतत्परमार्थज्ञानस्यैतत्पापक्षयोत्कर्षज्ञापनार्थमेतत्।। २४६।।

जिसप्रकार अग्नि, प्राप्त हुई लकड़ी को अपने तेज द्वारा क्षणभर में पूर्णरूप से जला डालता है। उसीप्रकार वेदज्ञ व्यक्ति अपने ज्ञानरूपी अग्नि से सभी पापों को नष्ट कर डालता है।। २४६।।

इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि।
अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत।। २४७।।

इत्येतद्ब्रह्महत्यादीनां पापानां प्रकाशानां प्रायश्चित्तं यथाविध्यभिहितम्। अत ऊर्ध्वमप्रकाशानां पापानां प्रायश्चित्तं शृणुत। अयं श्लोको गोविन्दराजेनालिखितः। मेधातिथिना तु लिखित एव।। २४७।।

इसप्रकार यहाँ तक मैंने आपसे प्रकट हुए पापों का यह प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहा। इसके पश्चात् आप लोग मुझसे गुप्त पापों के प्रायश्चित्त के विषय में सुनिए।। २४७।।

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः।। २४८।।

सव्याहृतिसप्रणवाः सावित्रीशिरोयुक्ताः पूरककुम्भकरेचकादिविधिना प्रत्यहं षोडश प्राणायामाः कृता मासाद्ब्रह्मघ्नमपि निष्पापं कुर्वन्ति। अपिशब्दादातिदेशिक-ब्रह्महत्याप्रायश्चित्ताधिकृतमपि। एतच्च प्रायश्चित्तं द्विजातीनामेव न स्त्रीशूद्रादेर्मन्त्रान-धिकारात्।। २४८।।

प्रतिदिन सात व्याहृति एवं ओंकारसहित गायत्री मन्त्र के साथ किए गए सात प्राणायाम, भ्रूणहत्या से होने वाले पाप को भी, मास भर में पवित्र कर देते हैं।। २४८।।

कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम्।
माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुध्यति।। २४९।।

कौत्सेन ऋषिणा दृष्टम् ''अपनः शोशुचदघम्'' इत्येतत्सूक्तं वसिष्ठेन ऋषिणा दृष्टं च ''प्रतिस्तोमेभिरुषसं वसिष्ठाः'' इत्येवं ऋचं, माहित्रम् ''महित्रीणामवोस्तु'' इत्येतत्सूक्तं, शूद्धवत्यः ''एतोन्विन्द्रं स्तवाम शुद्धम्'' इत्येतास्तिस्र ऋचः, प्रकृतं मासमहरहः षोडशकृत्वोऽपि जपित्वा सुरापोऽपि विशुध्यति। अपिशब्दादातिदेशिक-सुरापानप्रायश्चित्ताधिकृतोऽपि।। २४९।।

इसके अतिरिक्त कौत्स ऋषि द्वारा दृष्ट 'अपनः शोशुचदघं' (ऋ० १/९७/१) इत्यादि मन्त्र, वसिष्ठ ऋषि द्वारा देखी गयी 'प्रतिस्तोम' (ऋ० ६/२/१८) इत्यादि ऋचा एवं 'महित्रीणामवोस्तु' (ऋ० ६/६/४३) इत्यादि माहित्रसूक्त को तथा शुद्धवती 'एतोन्विन्द्रं' (ऋ० ५/३/२७) इत्यादि तीन ऋचाओं को (एक माह तक प्रतिदिन जपकर) मदिरापान करने वाला भी शुद्ध हो जाता है।। २४९।।

सकृज्जप्त्वास्य वामीयं शिवसंकल्पमेव च।
अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्भवति निर्मल:।। २५०।।

ब्राह्मण: सुवर्णमपहृत्य "अस्य वामस्य पलितस्य" इत्येतत्सूक्तं प्रकृतत्वान्मास-मेकं प्रत्यहमेकवारं जपित्वा, शिवसंकल्पं च "यज्जाग्रतो दूरम्" इत्येतद्वाजसनेयके यत्पठितं तज्जपित्वा सुवर्णमपहृत्य क्षिप्रमेव निष्पापो भवति।। २५०।।

जबकि 'अस्य वामस्य' (ऋ० २/३/२४) इत्यादि सूक्त को तथा शिवसंकल्प-सूक्त 'यज्जग्रतो दूरं' (यजु० ३४/१/२५१) को (एक माह पर्यन्त) एक बार जपकर, स्वर्ण की चोरी करने वाला ब्राह्मण भी, क्षण भर में पवित्र हो जाता है।। २५०।।

हविष्पान्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च।
जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पग:।। २५१।।

"हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि" इत्येकोनविंशतिऋचः " नतमंहो न दुरितम्" इत्यष्टौ, "इति वा इति मे मन:," "शिवसंकल्प" इति च सूक्तं, '"सहस्त्रशीर्षा पुरुष:" इत्येतच्च षोडशर्चं सूक्तं मासमेकं प्रत्यहमभ्यस्येति श्रावणात्प्रकृतत्वात् षोडशाभ्यासाज्जपित्वा गुरुदारगस्तस्मात्पापान्मुच्यते।। २५१।।

इसीप्रकार गुरुपत्नी से गमन करने वाला 'हविष्यांतमजरं' (ऋ० ९/४/१०) इत्यादि हविष्यंतीय ऋचा को तथा 'नतमंह' (ऋ० २/६/२९) इन आठ ऋचाओं को तथा पुरुषसूक्त का (मासपर्यन्त केवल एक बार) जप करके, गुरुपत्नी गमन के पाप से भी छूट जाता है।। २५१।।

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम्।
अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किंचेदमितीति वा।। २५२।।

स्थूलानां पापानां महापातकानां सूक्ष्माणां चोपपातकादीनां निर्हरणं कर्तुमिच्छन् "अव ते हेळो वरुण नमोभि" इत्येतामृचं," यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जने" इत्येतां च ऋचं, "इति वा इति मे मन:" इत्येतत्सूक्तं संवत्सरमेकवारं प्रत्यहं जपेत्।। २५२।।

इसके अतिरिक्त छोटे-बड़े पापों का विनाश चाहते हुए व्यक्ति को 'अवते हेळो वरुण नमोमि: (ऋ० १/२/१५) इत्यादि ऋचा का अथवा 'यत्किञ्चेदं' इत्यादि मन्त्र का वर्षपर्यन्त जप करना चाहिए।। २५२।।

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम्।
जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात्।। २५३।।

स्वरूपतो महापातकिधनत्वादिना वाऽप्रतिग्राह्यं प्रतिगृह्य चान्नं स्वभाव-कालप्रतिग्रहसंसर्गदुष्टं भुक्त्वा ''तरत्समन्दी धावति'' इत्येता ऋचश्चतस्रो जपित्वा त्र्यहं तस्मात्पापान्मनुष्यः पूतो भवति।। २५३।।

इसीप्रकार ग्रहण न करने योग्य दान को स्वीकार करके तथा निन्दित अन्न का भक्षण करके व्यक्ति 'तरत्समंदीय' (ऋ० ७/१/१५) इत्यादि ऋचा को, दिन में तीन बार जपते हुए पवित्र होता है।। २५३।।

सौमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुध्यति।
स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामिति च तृचम्।। २५४।।

''सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यम्'' इति चतस्रः। ''अर्यमणं वरुणं मित्रं च'' इति ऋक्त्रयं नद्यां च स्नानं कृत्वा मासमेकं प्रत्येकमभ्यस्य बहुपापो विशुध्यति। बहुष्वपि पापेषु तन्त्रेणैकं प्रायश्चित्तं कार्यमिति ज्ञापकमिदम्।। २५४।।

इसके अलावा अत्यधिक पाप का आचरण करने वाला व्यक्ति, 'सोमारुद्राधारये' (ऋ० ५/१/१८) इत्यादि ऋचा को तथा 'अर्यमणं वरुणं मित्रमेषा' (ऋ० ३/४/२६) इत्यादि दो ऋचाओं को, मासपर्यन्त जपकर, प्रवाहमान नदी में स्नान का आचरण करने से शुद्ध होता है।। २५४।।

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत्।
अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक्।। २५५।।

एनस्वीत्यविशेषात्सर्वेष्वेव पापेषु ''इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निम्'' इत्येताः सप्त ऋचः षण्मासं जपेत्। अप्रशस्तं मूत्रपुरीषोत्सर्गादिकं जले कृत्वा मासं भैक्षभोजी भवेत्।। २५५।।

इसीप्रकार 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि' (ऋ० १/७/२४) इत्यादि सात ऋचाओं का पापी पुरुष छः माह पर्यन्त जप करे तो वह पाप से छूटता है तथा जलों में मलमूत्र का त्याग करके, मासभर तक भिक्षा माँगकर भोजन करे तो वह इस पाप से मुक्त होता है।। २५५।।

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः।
सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम्।। २५६।।

''देवकृतस्य'' इत्यादिभिः शाकलहोममन्त्रैः संवत्सरं घृतहोमं कृत्वा ''नम इन्द्रश्च'' इत्येतां वा ऋचं संवत्सरं जपित्वा महापातकमपि पापं द्विजातिरपहन्ति।। २५६।।

'देवकृतस्य' (यजु० ८/१३) इत्यादि शाकलहोम विषयक मन्त्रों से वर्षभर घी का होम करके अथवा 'नम इन्द्रेण' (ऋ० २/६/२२) इत्यादि ऋचा का जप करके द्विज बड़े-से-बड़े पाप को भी नष्ट कर देता है।। २५६।।

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः।
अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्षाहारो विशुध्यति।। २५७।।

ब्रह्महत्यादिमहापातकयुक्तो भिक्षालब्धाहारो वर्षमेकं संयतेन्द्रियो गवामनुगमनं कुर्वन् ''यः पावमानीरध्येति'' इत्यादि ऋचोऽन्वहमभ्यासेन जपित्वा तस्मात्पापाद्विशुद्धो भवति।। २५७।।

इसके अतिरिक्त ब्रह्महत्यादि महापातक से युक्त हुआ व्यक्ति, भिक्षा द्वारा भोजनवृत्ति सम्पादित करता हुआ, एकाग्रचित्त होकर, वर्षपर्यन्त यदि गायों का अनुगमन करे तथा 'यः पावमानी' (ऋ० ७/२/१८) इत्यादि ऋचाओं का जप करे तो वह ऐसा करने से पूर्णतया पाप मुक्त हो जाता है।। २५७।।

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम्।
मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः।। २५८।।

त्रिभिः पराकैः पूतो मन्त्रब्राह्मणात्मिकां वेदसंहितामरण्ये वारत्रयमभ्यस्य वा प्रयती बाह्याभ्यन्तरशौचयुक्तः सर्वैर्महापातकैर्मुच्यते।। २५८।।

इसीप्रकार तीन 'पराक' नामक प्रायश्चित्त व्रतों से शुद्ध हुआ द्विज, जंगल में यत्नपूर्वक, वेदसंहिता का (दिन में) तीन बार अभ्यास करके, सभी प्रकार के पापों से विमुक्त हो जाता है।। २५८।।

त्र्यहं तूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः।
मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम्।। २५९।।

त्रिरात्रमुपवसन्संयतः प्रत्यहं प्रातर्मध्याह्नसायंकालेषु स्नानं कुर्वन् त्रिषवणस्नान-काल एव जले निमज्ज्य ''ऋतं च सत्यं च'' इति सूक्तमघमर्षणं त्रिरावृत्तं जपित्वा सर्वैः पापैर्मुच्यते। तत्र गुरुलघुपापापेक्षया पुरुषशक्त्याद्यपेक्षया चावर्तनीयम्।। २५९।।

इसके अलावा पूर्णतया संयतेन्द्रिय होकर, तीन दिवसपर्यन्त, प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल जल से तीन बार स्नान करता हुआ व्यक्ति, तीन बार अघमर्षण मन्त्र को जपकर यदि उपवास करता है तो वह सभीप्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।। २५९।।

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम्।। २६०।।

यथाऽश्वमेधयागः सर्वयागश्रेष्ठः सर्वपापक्षयहेतुस्तथाघमर्षणसूक्तमपि सर्वपापक्षयहेतुरित्यघमर्षणसूक्तोत्कर्षः।। २६०।।

जिसप्रकार यज्ञों का राजा अश्वमेध यज्ञ सभीप्रकार के पापों को दूर करने वाला है। ठीक उसीप्रकार 'अघमर्षण' नामक सूक्त भी सभी पापों का नाशक है।। २६०।।

हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः।
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किंचन।। २६१।।

भूरादिलोकत्रयमपि हत्वा महापातक्यादीनामप्यन्नमश्नन् ऋग्वेदं धारयन्विप्रादिर्न किंचित्पापं प्राप्नोति।। २६१।।

इसके अतिरिक्त इन तीनों लोकों को मारकर भी, यहाँ वहाँ भोजन करता हुआ ब्राह्मण, ऋग्वेद को धारण करते हुए (उसका अभ्यास करता हुआ), लेशमात्र भी पाप को प्राप्त नहीं होता है।। २६१।।

ऋग्वेदं रहस्यप्रायश्चित्तार्थमुक्तं ततश्च रहस्यपापे कृते ऋक्संहितां मन्त्रब्राह्मणात्मिकामभ्यसेत्तदाह—

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते।। २६२।।

ऋक्संहिता मन्त्रब्राह्मणात्मिकां नतु मन्त्रमात्रात्मिकां अनन्तरम् ''वेदे त्रिवृत्ति'' इति प्रत्यवमर्शात्। यजुषां वा मन्त्रब्राह्मणानां संहितां साम्नां वा ब्राह्मणोपनिषत्सं-हितां वारत्रयमभ्यस्य सर्वपापैः प्रमुक्तो भवति।। २६२।।

इसीप्रकार ऋग्वेद संहिता अथवा यजुर्वेद संहिता या फिर रहस्यों के साथ सामवेद संहिता का, एकाग्रचित्त होकर, दिन में तीन बार अभ्यास करके व्यक्ति सभी प्रकार के पापों से छूट जाता है।। २६२।।

यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति।
तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति।। २६३।।

ऋगाद्यात्मना त्रिरावर्तत इति त्रिवृत्। यथा महाह्रदं प्रविश्य लोष्टं विशीर्यते तथा सर्वं दुश्चरितं त्रिवृति वेदे विनश्यति।। २६३।।

जिसप्रकार महासरोवर में फैंका गया मिट्टी का ढेला, उसे प्राप्त करके विनष्ट हो जाता है। ठीक उसीप्रकार त्रिवृत वेद में सभी प्रकार के पाप भी नष्ट हो जाते हैं।। २६३।।

त्रिवृत्त्वेमेवाह—

ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च।
एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित्।। २६४।।

ऋच ऋङ्मन्त्राः, यजूंषि यजुर्मन्त्राः, सामानि बृहद्रथन्तरादीनि नानाप्रकाराण्यन्यानि एषां त्रयाणां पृथक् पृथक् मन्त्रब्राह्मणानि एष त्रिवृद्वेदो ज्ञातव्यः। य एनं वेद स वेदविद्भवति।। २६४।।

ऋग्वेद के मन्त्र, यजुर्वेद के मन्त्र तथा अनेक प्रकार के सामवेद के मन्त्र और दूसरे मन्त्र एवं ब्राह्मण, इन सभी को 'त्रिवृत वेद' समझना चाहिए तथा जो ब्राह्मण इस (त्रिवृत वेद) को जानता है, वही वस्तुतः वेदवित् कहलाता है।। २६४।।

आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित्।। २६५।।
(एष वोऽभिहितः कृत्स्नः प्रायश्चित्तस्य निर्णयः।
निश्रेयसं धर्मविधिं विप्रस्येमं निबोधत।। १३।।
पृथक् ब्राह्मणकल्पाभ्यां स हि वेदस्त्रिवृत्स्मृतः।। १४।।)

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामेकादशोऽध्यायः।। ११।।

सर्ववेदानामाद्यं यद्ब्रह्म वेदसारम् अकारोकारमकारात्मकत्वेन त्र्यक्षरं यत्र त्रयो वेदाः स्थिताः सोऽन्यस्त्रिवृद्वेदः प्रणवाख्यो गुह्यो गोपनीयः वेदमन्त्रश्रेष्ठत्वात्, परमार्थाभिधायकत्वात्परमार्थकत्वेन धारणजपाभ्यां मोक्षहेतुत्वाच्च। यस्तं स्वरूपतोऽर्थतश्च जानाति स वेदवित्।। २६५।। क्षे० श्लो० ।। १४।।

जो तीन अक्षरों वाला, सभी वेदों का आदिस्वरूप 'ब्रह्म' है। जिसमें तीनों वेद प्रतिष्ठित हैं। इसके अतिरिक्त 'ओ३म्' स्वरूप वाला अन्य जो त्रिवृत्त वेद गुप्त है तथा जो व्यक्ति इस गोपनीय वेद को जानता है, वही वस्तुतः वेदवित् है।। २६५।।

(यहाँ तक मैंने आपसे यह सभीप्रकार के प्रायश्चित्त विषयक निर्णयों का कथन किया। आप सब इसे ब्राह्मण के लिए कल्याण प्रदान करने वाली धार्मिकविधि समझिए।। १३।।

साथ ही वह 'त्रिवृत वेद' एवं 'ब्राह्मण' ये दोनों ही अलग-अलग वस्तुतः साक्षात् ब्रह्म के समान ही माने गए हैं।।१४।।)

प्रायश्चित्ते बहुमुनिमतालोचनाद्यन्मयोक्तं
सद्व्याख्यानं खलु मुनिगिरां तद्भजध्वं गुणज्ञाः।
नैतन्मेधातिथिरभिदधे नापि गोविन्दराजो
व्याख्यातारो न जगुरपरेऽप्यन्यतो दुर्लभं वः।। १।।

इति श्रीकुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यां मनुवृत्तावेकादशोऽध्यायः।।११।।

।।इसप्रकार मानवधर्मशास्त्र में महर्षि भृगु द्वारा कही गयी संहिता के अन्तर्गत एकादश अध्याय पूर्ण हुआ।।

।।इसप्रकार डॉ० राकेश शास्त्री द्वारा सम्पादित मनुस्मृति के एकादश अध्याय का हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ।
कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तत्त्वतः पराम्॥ १॥

हे पापरहित, ब्राह्मणदिवर्णचतुष्टयस्य सान्तरप्रभवस्यायं धर्मस्त्वयोक्तः। इदानीं कर्मणां शुभाशुभफलप्राप्तिं परां जन्मान्तरप्रभवां परमार्थरूपामस्माकं ब्रूहीति महर्षयो भृगुमवोचन्॥ १॥

हे पापरहित! चारों वर्णों का यह सम्पूर्ण धर्म आपने हमसे कहा। अब आप जन्मान्तर में प्राप्त होने वाले कर्मों की शुभ-अशुभ फलविषयक निवृत्ति का तात्त्विक रूप से हमसे कथन कीजिए॥ १॥

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः।
अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम्॥ २॥

स धर्मप्रधानो मनोरपत्यात्मा भृगुरस्य सर्वस्य कर्मसंबन्धस्य फलनिश्चयं शृणुतेति तान्महर्षीनब्रवीत्॥ २॥

तब मनु के पुत्र वे धर्मात्मा भृगु, उन महर्षियों से इसप्रकार बोले कि-आप लोग इस सम्पूर्ण कर्मयोग-विषयक निर्णय को मुझसे सुनिए॥ २॥

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम्।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः॥ ३॥

मनोवाग्देहहेतुकं कर्म विहितनिषिद्धरूपं सुखदुःखफलकं तज्जन्या एव मनुष्य-तिर्यगादिभावेनोत्कृष्टमध्यमाधमापेक्षया मनुष्याणां गतयो जन्मान्तरप्राप्तयो भवन्ति। कर्मशब्दश्चात्र न कायचेष्टायामेव किन्तु ममेदं स्वमिति संकल्परूपयोगादिध्याना-चरणादावपि क्रियामात्रे वर्तते॥ ३॥

मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाला कर्म, शुभ एवं अशुभ फल प्रदान करने वाला है। मनुष्यों की उत्तम, मध्यम और अधम गतियाँ उनके कर्मों से ही उत्पन्न हुई हैं॥ ३॥

तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः।
दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम्।। ४।।

तस्य देहिसंबन्धिनः कर्मण उत्कृष्टमध्यमाधमतया त्रिप्रकारस्यापि मनोवाक्काया-श्रितस्य वक्ष्यमाणदशलक्षणोपेतस्य मन एव प्रवर्तकं जानीयात्। मनसा हि संकल्पित-मुच्यते क्रियते च। तथा तैत्तिरीयोपनिषदि ''तस्माद्यत्पुरुषो मनसाभिगच्छति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति'' इति।। ४।।

मन, वाणी एवं शरीररूप अधिष्ठान वाले, उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन प्रकार की गतियों से युक्त, दस लक्षणों से सम्पन्न होते हुए भी, उस जीवात्मा को अच्छे-बुरे कार्यों में प्रवृत्त करने वाला मन को ही मानना चाहिए।। ४।।

तानि दशलक्षणानि कर्माणि दर्शयितुमाह—

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्।। ५।।

कथं परधनमन्यायेन गृह्णामीत्येवं चिन्तनम्, मनसा ब्रह्मवधादि निषिद्धाकाङ्क्षा, नास्ति परलोकः देह एवात्मेत्येतद्‌ग्रहश्चेत्येवं त्रिप्रकारमशुभफलं मानसं कर्म। एतत्त्रय-विपरीतबुद्धिश्च त्रिविधं शुभफलं मानसं कर्म। ''शुभाशुभफलं कर्म'' इत्युभयस्यैव प्रक्रान्तत्वात्।। ५।।

दूसरों के धनों को अन्यायपूर्वक लेने की भावना, अपने मन में दूसरों का अनिष्ट करने का चिन्तन करना एवं परलोक न होने आदि का असत्य आग्रह, ये तीन प्रकार के मानसिक कर्म कहे गए हैं।।५।।

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्।। ६।।

अप्रियाभिधानम्, असत्यभाषणं, परोक्षे परदूषणकथनं, सत्यस्यापि राजदेशपौरवार्तादेर्निष्प्रयोजनं वर्णनम्, इत्येवं चतुःप्रकारमशुभफलं वाचिकं कर्म भवेत्। एतद्विपरीतं प्रियसत्यपरगुणाभिधानं श्रुतिपुराणादौ च राजादिचरितकथनं शुभफलम्।। ६।।

कठोर वचन बोलना, असत्य सम्भाषण करना, सब प्रकार से दूसरों की चुगली करना एवं असम्बद्ध प्रलाप करना, ये चार प्रकार के वाणी विषयक कर्म हैं।। ६।।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्।। ७।।

अन्यायेन परस्वग्रहणमशास्त्रीयहिंसा परदारगमनमित्येवं त्रिप्रकारमशुभफलं शारीरं कर्म। एतद्विपरीतं त्रयं शुभफलम्।। ७।।

दूसरों को दिए बिना ही उनसे (अन्यायपूर्वक) धन लेना, शास्त्रोक्त विधि से भिन्न हिंसा करना तथा परस्त्री का सेवन करना, ये तीन प्रकार के शारीरिक कर्म कहे गए हैं।।७।।

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्।।८।।
(त्रिविधं च शरीरेण वाचा चैव चतुर्विधम्।
मनसा त्रिविधं कर्म दशाधर्मपथांस्त्यजेत्।। १।।)

मनसा यत्सुकृतं दुष्कृतं वा कर्म कृतं तत्फलं सुखदुःखमिह जन्मनि जन्मान्तरे वा मनसैवायमुपभुङ्क्ते। एवं वाचा कृतं शुभाशुभं वाग्द्वारेण मधुरगद्गदभाषित्वादिना, शारीरं शुभाशुभं शरीरद्वारेण स्रक्चन्दनादिप्रियोपभोगव्याधितत्वादिनानुभवति। तस्मात्प्रयत्नेन शारीरमानसवाचिकानि धर्मरहितानि च वर्जयेन्न कुर्याच्च।। ८।।

इसलिए यह प्राणी मन द्वारा किए गए शुभ-अशुभ कर्म को मन से तथा वाणी द्वारा किए हुए कार्य को वाणी से एवं शरीर द्वारा किए गए कर्म को शरीर द्वारा ही भोगता है।। ८।।

(अतः व्यक्ति को तीन प्रकार के शरीर-विषयक कर्मों, चार प्रकार के वाणी-सम्बन्धी कर्मों एवं तीन प्रकार के मन-विषयक कर्मों के कुल दस प्रकार के सभी कर्मों में, धर्मपथ का पालन करते हुए अधर्म-पथ का परित्याग करना चाहिए।। १।।)

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्।। ९।।
(शुभैः प्रयोगैर्देवत्वं व्यामिश्रैर्मानुषो भवेत्।
अशुभैः केवलैश्चैव तिर्यग्योनिषु जायते।। २।।
वाग्दण्डो हन्ति विज्ञानं मनोदण्डः परां गतिम्।
कर्मदण्डस्तु लोकांस्त्रीन्हन्यादपरिरक्षितः।। ३।।

वाग्दण्डोऽथ भवेन्मौनं मनोदण्डस्त्वनाशनम्।
शारीरस्य हि दण्डस्य प्राणायामो विधीयते।। ४।।
त्रिदण्डं धारयेद्योगी शारीरं न तु वैणवम्।
वाचिकं कायिकं चैव मानसं च यथाविधि।।५।।)

यद्यपि पापिष्ठानां शारीरवाचिकमानसिकान्येव त्रीणि पापानि संभवन्ति तथापि स यदि प्रायशोऽधर्ममेव सेवते, धर्ममल्पमिति बाहुल्याभिप्रायेणेति व्याख्यातम्। बाहुल्येन शरीरकर्मजपापैर्युक्तः स्थावरत्वं मानुषः प्राप्नोति। बाहुल्येन वाक्कृतैः पक्षित्वं मृगत्वं वा। बाहुल्येन मनसा कृतैश्चाण्डालादित्वं प्राप्नोति।। ९।।

इस संसार में व्यक्ति, शरीर से उत्पन्न कर्मदोषों द्वारा स्थावरभाव को, वाणी से उत्पन्न कर्म-दोषों द्वारा, पक्षी एवं मृगभाव को तथा मन से उत्पन्न दोषों से चाण्डालत्वादि को प्राप्त होता है।। ९।।

(शुभ कर्मों का आचरण करने से 'देवत्व' तथा शुभ-अशुभ दोनों मिश्रित रूप से करने पर 'मनुष्यत्व' को प्राप्त होता है। जबकि केवल अशुभ कर्मों को करने से जीव तिर्यक् योनि में उत्पन्न होता है।। २।।

वाणी द्वारा दिया गया दण्ड असुरक्षित व्यक्ति के ज्ञान-विज्ञान को, मन द्वारा दिया गया दण्ड इसकी पारलौकिक गति को तथा कर्म (शरीर) द्वारा दिया गया दण्ड मनुष्य की लौकिक वस्तु एवं स्त्री आदि को नष्ट कर देता है।। ३।।

इसलिए वाग्दण्ड देने में समर्थ व्यक्ति को मौन धारण करना चाहिए मनो-दण्डी को शान्तिप्रिय तथा शरीर द्वारा दण्ड देने वाले व्यक्ति द्वारा प्राणायाम का आचरण करके स्वयं को नियन्त्रित करना चाहिए।। ४।।

योगी को विधिपूर्वक वाचिक, कायिक और मानसिक इन तीनों प्रकार के दण्ड को धारण करना चाहिए, किन्तु बाँस की छड़ी आदि से सम्बन्धित शारीरिक दण्ड को धारण नहीं करना चाहिए।। ५।।)

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते।। १०।।

दमनं दण्डः यस्य वाङ्मनःकायानां दण्डा निषिद्धाभिधानात्संकल्पप्रतिषिद्ध-व्यापारत्यागेन बुद्धाववस्थिताः स त्रिदण्डीत्युच्यते। नतु दण्डत्रयधारणमात्रेणेत्या-भ्यन्तरदण्डत्रयप्रशंसा।। १०।।

वाणी का दण्ड, मन का दण्ड तथा उसीप्रकार ही शरीर का दण्ड, ये तीनों प्रकार के दण्ड जिसकी बुद्धि में विद्यमान हैं; वह व्यक्ति 'त्रिदण्डी' ऐसा कहा जाता है।। १०।।

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति।। ११।।

एवं निषिद्धवागादीनां सर्वभूतगोचरतया दमनं कृत्वैतद्दमनार्थमेव कामक्रोधौ तु नियम्य ततो मोक्षावाप्तिलक्षणां सिद्धिं मनुष्यो लभते।। ११।।

काम एवं क्रोध पर पूर्णतया नियन्त्रण करके, इन तीनों प्रकार के दण्डों को सभी प्राणियों में, उनके कल्याण हेतु प्रयोग करके ही मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है।। ११।।

कोऽसौ सिद्धिमाप्नोतीत्यत आह—

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते।
यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः।। १२।।

अस्य लोकसिद्धस्यात्मोपकारकत्वादात्मनः शरीराख्यस्य यः कर्मसु प्रवर्तयिता तं क्षेत्रज्ञं पण्डिता वदन्ति। यः पुनरेष व्यापारान्करोति शरीराख्यः सः पृथिव्यादि-भूतारब्धत्वाद्भूतात्मैवेति पण्डितैरुच्यते।। १२।।

जो व्यक्ति इस आत्मा को (आध्यात्मिक) कर्मों में प्रवृत्त करता है, विद्वान् लोग उसे 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं, किन्तु जो सांसारिक कर्मों को करता है, उसे विद्वानों द्वारा भूतात्मा कहा जाता है।। १२।।

जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु।। १३।।

जीवशब्दोऽयं महत्परः, येनेति करणविभक्तिनिर्देशात्। उत्तरश्लोके च ''तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च'' इति तच्छब्देन प्रत्यवमर्शाच्छरीरक्षेत्रज्ञातिरिक्तोऽन्तः-शरीरमात्माख्यत्वादात्मा जीवाख्यः सर्वक्षेत्रज्ञानां सहज आत्मा। तत्प्राप्तेस्तैस्तस्य विनियोगात्। येनाहंकारेन्द्रियरूपतया परिणतेन कारणभूतेन क्षेत्रज्ञः प्रतिजन्म सुखं दुःखं चानुभवति।। १३।।

इसके अतिरिक्त सभी देहधारियों का 'जीव' संज्ञा वाला सहज अन्तरात्मा अन्य ही है, जिसके द्वारा प्राणी प्रत्येक जन्म में, सभीप्रकार के सुख एवं दुःख को जानता है।। १३।।

तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः।। १४।।
(उत्तमः पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्ययमीश्वरः।। ६।।)

तौ द्वौ महत्क्षेत्रज्ञौ पृथिव्यादिपञ्चभूतसंपृक्तौ वक्ष्यमाणं सर्वलोकवेदस्मृति-पुराणादिप्रसिद्ध्या तमिति निर्दिष्टं परमात्मानमुत्कृष्टापकृष्टसत्त्वेषु व्यवस्थितमाश्रित्य तिष्ठतः।। १४।।

पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतों से सम्पृक्त, महान् एवं क्षेत्रज्ञ ये दोनों ही छोटे-बड़े सभी प्राणियों में स्थित, उस परमात्मा का आश्रय लेकर विद्यमान रहते हैं।। १४।।

('परमात्मा' इस नाम से कहा गया उत्तम पुरुष तो अन्य ही है। अव्यय-स्वरूप एवं ऐश्वर्यसम्पन्न, तीनों लोकों में प्रवेश करके जो उन्हें धारण करता है।। ६।।)

असंख्या मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः।
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः।। १५।।

अस्य परमात्मनः शरीरादसंख्यमूर्तयो जीवाः क्षेत्रज्ञशब्देनानन्तरमुक्ता लिङ्गशरीरा-वच्छिन्ना वेदान्त उक्तप्रकारेणग्नेरिव स्फुलिङ्गा निःसरन्ति। या मूर्तय उत्कृष्टापकृष्ट-भूताग्निदेवरूपतया परिणतानि सर्वदा कर्ममु प्रेरयन्ति।। १५।।

उस परमात्मा के शरीर से असंख्य प्राणियों के शरीर हमेशा निकलते रहते हैं। जो मूर्तियाँ (शरीर) इस संसार के सभी छोटे-बड़े देहधारियों में निरन्तर विविध प्रकार की चेष्टाएँ करती रहती हैं।। १५।।

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम्।
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम्।। १६।।

पञ्चभ्य एव पृथिव्यादिभूतेभ्यो दुष्कृतकारिणां मनुष्याणां पीडानुभवप्रयोजकं जरायुजादिदेहव्यतिरिक्तं दुःखसहिष्णुशरीरं परलोके जायते।। १६।।

दुष्कृत्य करने वाले मनुष्यों का शरीर, निश्चय ही अपने पापों के फलस्वरूप यातनाओं को भोगने के लिए ही वस्तुतः मरकर पञ्चतन्मात्राओं का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है।। १६।।

तेनानुभूयता यामीः शरीरेणेह यातनाः।
तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः।। १७।।

तेन निर्गतेन शरीरेण ता यमकारिता यातना दुष्कृतिनो जीवाः सूक्ष्मानुभूतस्थूलशरीरनाशे तेष्वेवारम्भकभूतभागेषु यथास्वं प्रलीयन्ते। तत्संयोगिनो भूत्वा अवतिष्ठन्त इत्यर्थः।। १७।।

उस शरीर से यमराज द्वारा दी गयी उन यातनाओं को, इस यमलोक में भोगकर, वे पापी उन्हीं पञ्चभूतों की तन्मात्राओं में अलग-अलग रूप में प्रलीन हो जाते हैं।। १७।।

सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसङ्गजान्।
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ।। १८।।

स शरीरी भूतसूक्ष्मादिलिङ्गशरीरावच्छिन्नो निषिद्धशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यविषयोपभोगजनितयमलोकदुःखाद्यनुभूयानन्तरं भोगादपहतपाप्मा तावेव महत्परमात्मानौ महावीर्यौ द्वावाश्रयति।। १८।।

इसके अतिरिक्त वह जीव अत्यधिक दुःख प्रदान करने वाले, शब्दस्पर्शादि विषयों की सङ्गति से उत्पन्न होने वाले पापरूप दोषों को भोगकर तथा सभी पापों के नष्ट होने पर, महान् पराक्रमसम्पन्न महान् एवं क्षेत्रज उन दोनों को प्राप्त होता है ।।१८।।

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह।
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम्।। १९।।

तौ महत्परमात्मानौ अनलसौ तस्य जीवस्य धर्मं भुक्तशेषं च पापं सह विचारयतः। याभ्यां धर्माधर्माभ्यां युक्तो जीवः परलोकेहलोकयोः सुखदुःखे प्राप्नोति।। १९।।

तथा आलस्यरहित होकर वे दोनों उस जीव के धर्म एवं पाप को मिलकर साथ-साथ देखते हैं। अतः उन धर्म एवं अधर्म से सम्पृक्त हुआ जीव इस लोक में तथा मरकर परलोक में भी सुख एवं दुःख को प्राप्त करता है।। १९।।

यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः।
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते।। २०।।

स यदि जीवो मानुषदशायां बाहुल्येन धर्ममनुतिष्ठति अल्पं चाधर्मं तदा तैरेव पृथिव्यादिभूतैः स्थूलशरीररूपतया परिणतैर्युक्तः स्वर्गसुखमनुभवति।। २०।।

वह जीव यदि अपेक्षाकृत अधिकरूप में धर्म का एवं अल्परूप में अधर्म का

आचरण करता है तो पृथिवी आदि पञ्चभूतों से ही आवृत्त हुआ वह स्वर्ग में सुख को भोगता है।। २०।।

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः।। २१।।

यदि पुनः स जीवो मानुषदशायां बाहुल्येन पापमनुतिष्ठति अल्पं च पुण्यं तदा तैरेव भूतैर्मानुषदेहरूपतया परिणतैस्त्यक्तो मृतः सन्ननन्तरं पञ्चभ्य एव मात्राभ्य इत्युक्तरीत्या यातनानुभवोचितसंपातकठिनदेहो यामीः पीडा अनुभवति।। २१।।

किन्तु यदि वह जीव अपेक्षाकृत अधिकरूप में अधर्म का तथा थोड़े रूप में धर्म का सेवन करता है तो पृथिवी आदि उन पञ्चभूतों से परित्यक्त हुआ वह यमराज की यातनाओं को प्राप्त होता है।। २१।।

यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः।
तान्येव पञ्च भूतानि पुनरप्येति भागशः।। २२।।

स जीवो यमकारितास्ताः पीडास्तेन कठिनदेहेनानुभूय ततो भोगेनापहतपाप्मा तान्पञ्च जरायुजादिशरीरारम्भकान्पृथिव्यादिभूतभागानधितिष्ठति। मानुषादिशरीरं गृह्णातीत्यर्थः।। २२।।

अतः यमराज द्वारा दी हुई उन यातनाओं को भोगकर, पाप से मुक्त हुआ वह जीव, फिर से उन्हीं पञ्चभूतों को क्रमशः प्राप्त कर लेता है।। २२।।

एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः।। २३।।

अस्य जीवस्य एता धर्माधर्महेतुकाः स्वर्गनरकाद्युपभोगोचितप्रियाप्रियदेहप्राप्ती-रन्तःकरणे ज्ञात्वा धर्मानुष्ठाने मनः सदा संगतं कुर्यात्।। २३।।

इसलिए मनुष्य को इस जीव की धर्म एवं अधर्म से उत्पन्न होने वाली इन गतियों को अपने चित्त द्वारा देखकर मन को हमेशा धर्म में ही लगाना चाहिए।। २३।।

सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान्।
यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः।। २४।।

सत्त्वरजस्तमांसि त्रीणि वक्ष्यमाणगुणलक्षणानि आत्मोपकारकत्वादात्मनो महतो गुणाञ्जानीयात्। यैर्व्याप्तो महानिमान्स्थावरजङ्गमरूपान्पदार्थान्निःशेषेण व्याप्य स्थितः।। २४।।

सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों को आत्मा के गुण ही जानने चाहिएँ, जिनसे व्याप्त होकर सम्पूर्ण स्थावरजङ्गम स्वरूप भावों को प्राप्त करके महान् स्थित है।। २४।।

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम्।। २५।।

यद्यपि सर्वमेवेदं त्रिगुणं तथापि यत्र देहे येषां गुणानां मध्ये यो गुणो यदा साकल्येनाधिको भवति तदा तद्गुणलक्षणबहुलं तं देहिनं करोति।। २५।।

इन तीन गुणों में से जब भी जो गुण, मनुष्य के शरीर में सम्पूर्णरूप से अधिकता को प्राप्त होता है। तब उस जीवात्मा को वह गुण, प्रायः उसी गुण से युक्त कर देता है। २५।।

संप्रति सत्त्वादीनां लक्षणमाह—

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः।। २६।।

यथार्थावभासो ज्ञानं तत्सत्त्वस्य लक्षणम्। एतद्विपरीतमज्ञानं तत्तमोलक्षणम्। विषादाभिलाषं मानसकार्यं रजोलक्षणम्। स्वरूपं तु सत्त्वरजस्तमसां प्रीत्यप्रीति-विषादात्मकम्। तथाच पठन्ति "प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्र- वृत्तिनियमार्थाः। अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः।।" (सां० का० १२) एतच्चैषां स्वरूपमनन्तरश्लोकत्रयेण वक्ष्यति। एतेषां सत्त्वादिगुणानामेतज्ज्ञानादि सर्वप्राणिव्यापकं लक्षणम्।। २६।।

इनमें सतोगुण, ज्ञानस्वरूप, तमोगुण अज्ञानस्वरूप तथा रजोगुण रागद्वेषरूप कहे गए हैं। सभी पञ्चभूतों से निर्मित यह शरीर इन तीनों सत्त्वादि गुणों से व्याप्त होता है।। २६।।

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्।। २७।।

तस्मिन्नात्मनि यत्संवेदनं प्रीतियुक्तं प्रत्यस्तमितक्लेशं प्रकाशरूमनुभवेत्तत्सत्त्वं जानीयात्।। २७।।

उस आत्मा में जो कुछ भी आनन्द प्रदान करने वाला तत्त्व प्रतीत होता हो तो अत्यन्त शान्त एवं शुद्ध आभा के समान उसे सत्त्वगुण समझना चाहिए।। २७।।

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।
तद्रजो प्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्।। २८।।

यत्पुनः संवेदनं दुःखानुविद्धमत एव सत्त्वशुद्धात्मप्रीतेरजनकं सर्वदा च शरीरिणां विषयस्पृहोत्पादकं तत्त्वनिवारकत्वात्प्रतिपक्षं रजो जानीयात्।। २८।।

इसके अतिरक्त आत्मा को जो, अप्रसन्न करने वाला, दुःख से संयुक्ततत्त्व प्रतीत हो, तो देहधारियों का निरन्तर नाश करने वाला होने के कारण उसे सतोगुण का प्रतिपक्षी अर्थात् रजोगुण समझना चाहिए।। २८।।

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्।। २९।।

यत्पुनःसदसद्विवेकशून्यमस्फुटविषयाकारस्वभावमतर्कणीयस्वरूपमन्तः करणबहिः करणाभ्यां दुर्ज्ञातं तत्तमो जानीयात्। एषां च गुणानां स्वरूपकथनं सत्त्ववृत्त्यवस्थितौ यत्नवता भवितव्यमित्येतत्प्रयोजनकम्।। २९।।

किन्तु जो मोह से युक्त, अव्यक्त, विषयात्मक, तर्क के अयोग्य एवं जानने योग्य न हो, उसे तमोगुण जानना चाहिए।। २९।।

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः।। ३०।।

एतेषां सत्त्वादीनां त्रयाणामपि गुणानां यथाक्रममुत्तममध्यमाधमरूपो यः फलोत्पादकस्तं विशेषेण वक्ष्यामि।। ३०।।

अब मैं इन तीनों गुणों की उत्तम, मध्यम एवं अधम, जो फल की उपलब्धि है, उसे भी सम्पूर्णरूप से तुम्हें विस्तारपूर्वक कहूँगा (आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिए)।। ३०।।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम्।। ३१।।

वेदाभ्यासः, प्राजापत्याद्यनुष्ठानं, शास्त्रार्थावबोधः, मृद्वार्यादिशौचं, इन्द्रियसंयमः, दानादिधर्मानुष्ठानं, आत्मध्यानपरता एतत्सत्त्वाख्यगुणस्य कार्यम्।। ३१।।

वेदाध्यास, तप, ज्ञान, पवित्रता, इन्द्रियों को वश में करना, धार्मिकक्रियाओं को सम्पादित करना एवं आत्मचिन्तन, ये सभी सात्त्विक गुण के लक्षण हैं।। ३१।।

आरम्भरुचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम्।। ३२।।

फलार्थं कर्मानुष्ठानशीलता, अल्पेऽप्यर्थे वैक्लव्यं, निषिद्धकर्माचरणं, अजस्रं शब्दादिविषयोपभोग इत्येतद्रजोभिधानगुणस्य कार्यम्।। ३२।।

फल-प्राप्ति के लिए कार्य करने की इच्छा, अधैर्य, अनुचित कार्यों के प्रति आग्रह, निरन्तर विषयों का उपभोग करना, ये सभी रजोगुण के लक्षण हैं।। ३२।।

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्।। ३३।।

अधिकाधिकधनस्पृहा, निद्रात्मता, कातर्यं, पैशुन्यं, परलोकाभावबुद्धिः, आचारपरिलोपः, याचनशीलत्वं, संभवेऽपि धर्मादिष्वनवधानं, इत्येतत्तामसाभिधानस्य गुणस्य लक्षणम्।। ३३।।

इसके अतिरिक्त लोभ, स्वप्न, कंजूसी, क्रूरता, नास्तिकता, सदाचरण का अभाव, माँगने का स्वभाव और प्रमाद, ये सभी तमोगुण के लक्षण हैं।। ३३।।

त्रयाणापि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम्।
इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम्।। ३४।।

एषां सत्त्वादीनां त्रयाणामपि गुणानां त्रिषु कालेषु भूतभविष्यद्वर्तमानेषु विद्यमानानामिदं वक्ष्यमाणसाक्षेपिकं क्रमेण गुणलक्षणं ज्ञातव्यम्।। ३४।।

भूत, भविष्य एवं वर्तमान इन तीनों कालों में विद्यमान रहने वाले, इन तीनों गुणों सत्त्व, रजस् तथा तमोगुण का यह क्रमशः संक्षेप में गुणलक्षण जानना चाहिए।। ३४।।

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम्।। ३५।।

यत्कर्म कृत्वा, कर्वन्, करिष्यंश्च लज्जावान्भवति। कालत्रये द्वयोरन्यत्र वेति विवक्षितं तत्सर्वं तमःकार्यत्वात्तमोऽभिधानं गुणलक्षणं शास्त्रविदा बोद्धव्यम्।। ३५।।

जिस कर्म को करके अथवा करते हुए या फिर करने के पश्चात् ही व्यक्ति लज्जा का अनुभव करता है। विद्वानों के अनुसार उस सबको तमोगुण का लक्षण समझना चाहिए।। ३५।।

येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्।
न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम्।। ३६।।

इह लोके महतीं श्रियं प्राप्नोतीत्येदर्थमेव यो यत्कर्म करोति न परलोकार्थं नच तत्कर्मफलासंपत्तौ दुःखी भवति तद्रजःकार्यत्वाद्रजोगुणलक्षणं विज्ञेयम्।। ३६।।

इस संसार में जिस कर्म द्वारा व्यक्ति अत्यधिक ख्याति की इच्छा करता है तथा फल की प्राप्ति न होने पर शोक नहीं करता, उसे तो रजोगुण ही जानना चाहिए।। ३६।।

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम्।। ३७।।

यत्कर्म वेदार्थं सर्वात्मना ज्ञातुमिच्छति, यच्चकर्माचरन्कालत्रयेऽपि न लज्जति, येन येन कर्मणास्यात्मतुष्टिर्जायते, तत्सत्त्वाख्यस्य गुणस्य लक्षणं ज्ञेयम्।। ३७।।

इसके अतिरिक्त जिस कर्म से व्यक्ति सब प्रकार के ज्ञान को जानने की इच्छा करता है तथा जिससे वह लज्जित नहीं होता एवं जिस कार्य से इसकी आत्मा संतुष्ट होती है, उसे सत्त्वगुण का लक्षण समझना चाहिए।। ३७।।

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्।। ३८।।

कामप्रधानता तमसो लक्षणम्। अर्थनिष्ठता रजसः। धर्मप्रधानता सत्त्वस्य। एषां च कामादीनामुत्तरोत्तरस्य श्रेष्ठत्वम्। कामादर्थः श्रेयानर्थमूलत्वात्कामस्य। ताभ्यां च धर्मस्तन्मूलत्वात्तयोः।। ३८।।

इसलिए कामना करना तमोगुण का लक्षण है, धन की लिप्सा रजोगुण का लक्षण है तथा धर्म का आचरण सत्त्वगुण का लक्षण कहा जाता है। यही इन सबकी उत्तरोत्तर क्रमशः श्रेष्ठता समझनी चाहिए।। ३८।।

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते।
तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम्।। ३९।।

एषां सत्त्वादीनां गुणानां मध्ये येन गुणेन स्वकार्येण या गतीर्जीवः प्राप्नोति ताः सर्वस्यास्य जगतः संक्षेपतः क्रमेण वक्ष्यामि।। ३९।।

इन सत्त्वादि गुणों के बीच जिस गुण द्वारा व्यक्ति जिन-जिन गतियों को प्राप्त करता है। इस सम्पूर्ण संसार के उन सबगुणों को मैं क्रमशः आप लोगों से संक्षेप में कहूँगा, (आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिए)।। ३९।।

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः।। ४०।।

ये सत्त्ववृत्ताववस्थितास्ते देवत्वं यान्ति। ये तु रजोवृत्त्यवस्थितास्ते मनुष्यत्वम्। ये तमोवृत्तिस्थास्ते तिर्यक्त्वं चेत्येषा त्रिविधा जन्मप्राप्तिः।। ४०।।

सत्त्वगुण की वृत्ति वाले प्राणी देवत्व को, रजोगुणी वाले मनुष्यत्व को तथा तमोगुणी वृत्ति वाले जीव, तिर्यक् (पक्षी) योनि को प्राप्त करते हैं। इसप्रकार जीवों की यह तीन प्रकार की गति नित्यरूप से होती है।। ४०।।

त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः।
अधमा मध्यमाग्र्या च कर्मविद्या विशेषतः।। ४१।।

या सत्त्वादिगुणत्रयनिमित्ता त्रिविधा जन्मान्तरप्राप्तिरुक्ता सा देशकालादिभेदेन संसारहेतुभूतकर्मभेदाज्ज्ञानभेदाच्चाधममध्यमोत्तमभेदेन पुनस्त्रिविधा बोद्धव्या।। ४१।।

जीवों की यह तीन प्रकार की गति वस्तुतः अधम, मध्यम एवं उत्तम होते हुए भी कर्म, विद्या आदि के वैशिष्ट्य के कारण, पुनः तीन प्रकार की समझनी चाहिए।। ४१।।

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः।। ४२।।

स्थावरा वृक्षादयः, कृमयः सूक्ष्माः प्राणिनः, तेभ्य ईषत्स्थूलाः कीटाः, तथा मत्स्यसर्पकूर्मपशुमृगाश्चेत्येषा तमोनिमित्ता जघन्या गतिः।। ४२।।

इनमें स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीट, मत्स्यसहित कच्छप, सर्प, पशु और मृग यह गति निकृष्ट एवं तामसी समझनी चाहिए।। ४२।।

हस्तिनश्च तुरंगाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः।। ४३।।

हस्त्यश्वशूद्रम्लेच्छसिंहव्याघ्रसूकरास्तमोगुणनिमित्ता मध्यमा गतिः। गर्हिता इति म्लेच्छानां स्वरूपानुवादः।। ४३।।

इसीप्रकार हाथी, घोड़े, शूद्र, निन्दनीय म्लेच्छ, सिंह, व्याघ्र एवं सुअर तमोगुण से उत्पन्न यह गति मध्यम माननी चाहिए।। ४३।।

चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः।। ४४।।

चारणा नटादयः, सुपर्णाः पक्षिणः, छद्मना कर्मकारिणः पुरुषाः, राक्षसाः, पिशाचाश्चेत्येषा तामसीषूत्तमा गतिः।। ४४।।

इसके अतिरिक्त चारण नटादि, सुपर्ण (पक्षी), दाम्भिक पुरुष, राक्षस, तथा पिशाच यह सब तमोगुण से उत्पन्न हुई वस्तुतः उत्तम गति होती है।। ४४।।

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः।। ४५।।

झल्ला मल्लाः क्षत्रियाद्व्रात्यात्सवर्णायामुत्पन्ना दशमाध्यायोक्ता ज्ञेयाः। तत्र झल्ला यष्टिप्रहरणाः, मल्ला बाहुयोधिनः, रङ्गावतारका नटाः शस्त्रजीविद्यूतपानप्रसक्ताश्च पुरुषा अधमा राजसी गतिर्ज्ञेया।। ४५।।

इसीप्रकार झल्ल, मल्ल, नट एवं शस्त्रों द्वारा अपनी आजीविका चलाने वाले पुरुष तथा जुआ और मद्यपान में निरत लोग, ये सब वस्तुतः रजोगुण से उत्पन्न निकृष्ट गति होती है।। ४५।।

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः।। ४६।।

राजानोऽभिषिक्ता जनपदेश्वराः। तथा क्षत्रिया राजपुरोहिताश्च शास्त्रार्थकलहप्रियाश्च एषा राजसी गतिर्मध्यमा बोद्धव्या।। ४६।।

इसके अलावा राजा, क्षत्रिय एवं राजाओं के पुरोहित तथा शास्त्रार्थरूपी युद्ध में अग्रणी, ये सभी रजोगुण से उत्पन्न, मध्यम गति के अन्तर्गत आते हैं।। ४६।।

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः।। ४७।।

गन्धर्वाः, गुह्यकाः, यक्षा जातिविशेषाः पुराणादिप्रसिद्धाः ये च देवानुयायिनो विद्याधरादयः, अप्सरसश्च देवगणिकाः सर्वा इत्येषा राजसीमध्य उत्कृष्टा गतिः।। ४७।।

गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष तथा देवताओं के अनुचर, वैसे ही सभी अप्सराएँ, ये सभी रजोगुण से उत्पन्न, उत्तम गति वाले हैं।। ४७।।

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः।। ४८।।

वानप्रस्थाः, भिक्षवः, ब्राह्मणाश्च, अप्सरसो व्यतिरिक्ताः पुष्पकादिविमानचारिणः, नक्षत्राणि, दैत्याश्चेत्येषा सत्त्वनिमित्ताऽधमा गतिः।। ४८।।

तपस्वी, यति, ब्राह्मण तथा पुष्पकादि विमान में चढ़कर विचरण करने वाले देवगण, नक्षत्र एवं दैत्य, यह सब सत्त्वगुण से उत्पन्न प्रथम गति हैं।। ४८।।

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकी गतिः।। ४९।।

यागशीलाः, तथर्षयः, देवाः, वेदाभिमानिन्यश्च देवता विग्रहवत्य इतिहासप्रसिद्धाः, ज्योतींषि ध्रुवादीनि, वत्सरा इतिहासदृष्ट्या विग्रहवन्तः, पितरः सोमपादयः, साध्याश्च देवयोनिविशेषा इत्येषा सत्त्वनिमित्ता मध्यमा गतिः।। ४९।।

यज्ञ का सम्पादन करने वाले, ऋषि, देवता, वेदों के अभिमानी देवता, ध्रुवादि प्रकाशमान नक्षत्र, ऐतिहासिक दृष्टि से दीर्घजीवी लोग, पितर तथा साध्य (देवयोनि विशेष), यह सब सत्त्वगुण से उत्पन्न, दूसरी गति कही गयी है।। ४९।।

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च।
उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः।। ५०।।

चतुर्वदनः, विश्वसृजश्च मरीच्यादयः, धर्मो विग्रहवान्, महान्, अव्यक्तं च सांख्यप्रसिद्धं च तत्त्वद्वयं, तदधिष्ठातृदेवताद्वयमिह विवक्षितम्। अचेतनगुणत्रयमात्रस्योत्तमसात्त्विकगतित्वानुपपत्तेः। एतां चतुर्वदनाद्यात्मिकां सत्वनिमित्तामुत्कृष्टां गतिं पण्डिता वदन्ति।। ५०।।

ब्रह्मा, विश्व की रचना करने वाले मरीचि आदि ऋषि, देह को धारण करने वाला धर्म, महान् एवं अव्यक्त, इसे विद्वान् लोग सत्त्वगुण से उत्पन्न उत्तम गति कहते हैं।।५०।।

एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः।
त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः।।५१।।

एष मनोवाक्कायरूपत्रयभेदेन त्रिप्रकारस्य कर्मणः सत्त्वरजस्तमोभेदेन त्रिविधः पुनः प्रथममध्यमोत्तमभेदेन त्रिविधः सर्वप्राणिगतः समग्रो गतिविशेषः कार्त्स्न्येनोक्तः। सार्वभौतिक इत्यभिधानादनुक्ता अप्यत्र गतयो द्रष्टव्याः। उक्ता गतयस्तु प्रदर्शनार्थाः।।५१।।

इसप्रकार मैंने आप सबके सामने तीन प्रकार के कर्मों की सृष्टि का उपदेश किया। तीन-तीन प्रकार का यह सम्पूर्ण संसार वस्तुतः भौतिकसृष्टि के अन्तर्गत कहा गया है।।५१।।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः।। ५२।।

इन्द्रियाणां विषयेषु प्रसङ्गेन निषिद्धाचरणेन च प्रायश्चित्तादिधर्माननुष्ठानेन मूढा मनुष्यापसदाः कुत्सिता गतीः प्राप्नुवन्ति।। ५२।।

मूर्ख लोग तथा मनुष्यों में नीच व्यक्ति, इन्द्रियों के प्रसङ्ग से तथा धर्म का सेवन न करने के कारण, निन्दित योनि में जन्म प्राप्त करते हैं।। ५२।।

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा।
क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत।। ५३।।

अयं जीवो येन येन पापेन कर्मणा इह लोके कृतेन यद्यज्जन्म प्राप्नोति तत्सर्वं क्रमेण श्रृणुत।। ५३।।

इस संसार में यह जीव जिस-जिस कर्म द्वारा, जिस-जिस योनि को इस लोक में प्राप्त करता है, उस सबको आप क्रमशः मुझसे सुनिए।। ५३।।

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात्।
संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान्।। ५४।।

ब्रह्महत्यादिमहापातककारिणो बहून्वर्षसमूहान् भयंकरान्नरकान्प्राप्य तदुपभोग-क्षयाद्दुष्कृतशेषेण वक्ष्यमाणान् जन्मविशेषान्प्राप्नुवन्ति।। ५४।।

ब्रह्महत्या आदि महान् पाप का आचरण करने वाले, अनेक वर्षपर्यन्त इन घोर नरकों को प्राप्त करके, अपने पापकर्मों के क्षय के उपरान्त ही आगे कहे जाने वाली योनियों को प्राप्त करते हैं।। ५४।।

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम्।
चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति।। ५५।।

कुक्कुरसूकरगर्दभोष्ट्रगोच्छागमेषमृगपक्षिचण्डालानां पुक्कसाना च निषादेन शूद्रायां जातानां संबन्धिनीं जातिं ब्रह्महा प्राप्नोति तत्र पापशेषगौरवलाघवापेक्षया क्रमेण सर्वयोनिप्राप्तिर्बोद्धव्या। एवमुत्तरत्रापि।। ५५।।

इनमें ब्रह्महत्या करने वाला महापातकी, कुत्ता, सुअर, गधा, ऊँट, गाय, बकरी, मृग, पक्षी, चाण्डाल एवं पुक्कसों (निषाद द्वारा शूद्रा में उत्पन्न सन्तति) योनि को प्राप्त करता है।। ५५।।

कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम्।
हिंस्राणां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत्।।५६।।

कृमिकीटशलभानां पुरीषभक्षिणां पक्षिणां हिंसनशीलानां च व्याघ्रादीनां प्राणिनां जातिं सुरापो ब्राह्मणो गच्छति।। ५६।।

इसके अतिरिक्त सुरापान करने वाला ब्राह्मण, कृमि, कीट, पतङ्गे, विष्ठा को खाने वाले पक्षी एवं हिंसक प्राणियों की ही योनि को प्राप्त होता है।।५६।।

लूताहिसरटानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम्।
हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः।।५७।।

ऊर्णनाभसर्पकृकलासानां, जलचराणां च, तिरश्चां कुम्भीरादीनां, हिंसनशीलानां च योनिं सुवर्णहारी ब्राह्मणः सहस्रवारान्प्राप्नोति।। ५७।।

जबकि चोरी करने वाला ब्राह्मण, मकड़ी, सर्प, गिरगिट, जल में विचरण करने वाले जीव, तिरछा चलने वाले (केकड़े) तथा हिंसा करने वाले पिशाचों की योनि को भी हजारों बार प्राप्त करता है।।५७।।

तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि।
क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः।। ५८।।

तृणानां दूर्वादीनां, गुल्मानामप्रकाण्डादीनां, लतानां गुडूच्यादीनां, आममांसभक्षिणां गृध्रादीनां, दंष्ट्रिणां सिंहादीनां, क्रूरकर्मशालिनां वधशीलानां च व्याघ्रादीनां जातिं शतवारान्प्राप्नोति गुरुदारगामी।। ५८।।

गुरुपत्नी से गमन करने वाला व्यक्ति तृण, गुल्म, लताओं की तथा कच्चा माँस खाने वालों, बड़ी दाढ़ों वालों एवं क्रूर कर्मों का आचरण करने वालों की योनि को ही वस्तुतः सैकड़ों बार प्राप्त करता है।।५८।।

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः।
परस्परादिनः स्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः।। ५९।।

ये प्राणिवधशीलास्त आममांसाशिनो मार्जारादयो भवन्ति। अभक्ष्यभक्षिणो ये ते कृमयो जायन्ते। महापातकव्यतिरिक्ताश्चौरास्ते परस्परं मांसस्यादिनो भवन्ति। ये चाण्डालादिस्त्रीगामिनस्ते प्रेताख्याः प्राणिविशेषा जायन्ते। प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविण इति छन्दःसमानत्वात्स्मृतीनां, सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्त इति विसर्गलोपे च। यद्वा यलोपे च सवर्णदीर्घः।। ५९।।

किन्तु हिंसा करने वाले तथा कच्चे माँस का भक्षण करने वाले तथा अभक्ष्य पदार्थों को खाने वाले लोग कीड़े बनते हैं। जबकि चोरी करने वाले परस्पर माँस खाने वाले तथा चाण्डाल स्त्री का सेवन करने वाले लोग प्रेत होते हैं।। ५९।।

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम्।
अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः।। ६०।।

यावत्कालीनपतितसंयोगेन पतितो भवति तावन्तं कालं ब्रह्महादिभिश्चतुर्भिः सह संसर्गं कृत्वा परेषां च स्त्रियं गत्वा ब्राह्मणसुवर्णादन्यदपहृत्य एकैकपापकारेण ब्रह्मराक्षसो भूतविशेषो भवति।। ६०।।

जबकि पतितों की सङ्गति करके, दूसरे की स्त्री को दूषित करके तथा ब्राह्मण के धन को छीनकर व्यक्ति, ब्रह्मराक्षस होता है।। ६०।।

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु।। ६१।।

मणीन्माणिक्यादीनि, मुक्ताविद्रुमौ च नानाविधानि च रत्नानि वैदूर्यहीरकादीनि लोभेन हृत्वात्मीयभ्रमाद्विना सुवर्णकारयोनौ जायते। केचित्तु हेमकारपक्षिण-माचक्षते।। ६१।।

इसके अतिरिक्त मनुष्य लोभवश, मणि, मोती, मूँगों तथा विविध प्रकार के बहुमूल्य रत्नों को चुराकर सुनार की योनि में जन्म लेता है।। ६१।।

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम्।। ६२।।

धान्यमपहृत्य मूषिको भवति। कांस्यं हृत्वा हंसः, जलं हृत्वा प्लवाख्यः पक्षी, माक्षिकं हृत्वा दंशः, क्षीरं हृत्वा काकः, विशेषोपदिष्टगुडलवणादिव्यतिरिक्तमिक्ष्वादि रसं हृत्वा श्वा भवति। घृतं हृत्वा नकुलो भवति।। ६२।।

इसीप्रकार धान्य को चुराकर चूहा, कांस्य को चुराने से हंस, जल को चुराकर प्लव नामक पक्षी, शहद को चुराने पर मच्छर, दूध को चुराने से कौआ, रसों को चुराने पर कुत्ता तथा घी की चोरी करने पर व्यक्ति नेवला बनता है।। ६२।।

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः।
चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि।। ६३।।

मांसं हृत्वा गृध्रो भवति। वपां हृत्वा मद्गुनामा जलचरो भवति। तैलं हृत्वा तैलपायिकाख्यः पक्षी, लवणं हृत्वा चीराख्य उच्चैःस्वरः कीटः, दधि हृत्वा बलाकाख्यः पक्षी जायते।। ६३।।

इसके अलावा मांस को चुराने पर व्यक्ति गिद्ध, चर्बी को चुराने पर मद्‌गु नामक जलचर पक्षी, तेल को चुराने पर तैलपक नामक पक्षी, नमक को चुराने पर चीरीवाक् (उच्च स्वर से बोलने वाला कीट-झिंगुर) तथा दही को चुराने पर बगुला नामक पक्षी बनता है।। ६३।।

कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः।
कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम्।। ६४।।

कीटकोशनिर्मितं वस्त्रं हृत्वा तित्तिरिर्नामा पक्षी भवति। क्षौमकृतं वस्त्रं हृत्वा मण्डूकः, कार्पासमयं पटं हृत्वा क्रौञ्चाख्यः प्राणी, गां हृत्वा गोधा, गुडं हृत्वा वाग्गुदनामा शकुनिर्भवति।। ६४।।

इसीप्रकार रेशम के चुराने पर तितर, क्षौमवस्त्र (ऊनी वस्त्र) को चुराने पर मेंढक, कपासनिर्मित वस्त्र को चुराने पर क्रौञ्च नामक पक्षी, गाय को चुराने पर गोह नामक सरीसृप जाति का जीवविशेष तथा गुड़ चुराने पर 'वाग्गुद' नामक पक्षी बनता है।। ६४।।

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः।
श्वावित्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः।। ६५।।

सुगन्धिद्रव्याणि कस्तूर्यादीनि हृत्वा छुच्छुन्दरिर्भवति। वास्तूकादिपत्रशाकं हृत्वा मयूरः, सिद्धान्नमोदनसक्त्वादि नानाप्रकारकं हृत्वा श्वाविधाख्यः प्राणी, अकृतान्नं तु व्रीहियवादिकं हृत्वा शल्यकसंज्ञो जायते।। ६५।।

इसके अतिरिक्त सुगन्धित द्रव्यों को चुराने वाला छछुन्दर, पत्तों के शाक को चुराने पर मोर, अनेक प्रकार के पके हुए व्यञ्जनों को चुराने पर श्वावित् तथा कच्चे अन्न को चुराने पर 'सेही' नामक जीव विशेष बनता है।। ६५।।

बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम्।
रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः।। ६६।।

अग्निं हृत्वा बकाख्यः पक्षी जायते। गृहोपयोगि शूर्पमुसलादि हृत्वा भित्त्यादिषु मृत्तिकादिगृहकारी सपक्षः कीटो भवति। कुसुम्भादिरक्तानि वासांसि हृत्वा चकोराख्यः पक्षी जायते।। ६६।।

अग्नि को चुराने पर बगुला तथा घर के मूसलादि उपकरणों को चुराने पर गृहकारी नामक जीवविशेष, लाल वस्त्रों को चुराने पर जीव अन्य जन्म में 'चकोर' के रूप में उत्पन्न होता है।। ६६।।

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः।
स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः।। ६७।।

मृगं हस्तिनं वा हृत्वा वृकाख्यो हिंस्रः पशुर्भवति। घोटकं हृत्वा व्याघ्रो भवति। फलमूलं हृत्वा मर्कटो भवति। स्त्रियं हृत्वा भल्लूको भवति। पानार्थमुदकं हृत्वा चातकाख्यः पक्षी। यानानि शकटादीनि हृत्वा उष्ट्रो भवति। पशूनुक्तेतरान् हृत्वा छागो भवति।। ६७।।

मृग एवं हाथी को चुराने वाला भेड़िया, घोड़े को चुराने वाला व्याघ्र, फल और मूल को चुराने वाला वानर, स्त्री का अपहरण करने वाला रीछ, जल को चुराने वाला चातक, रथादि वाहनों को चुराने वाला ऊँट तथा अन्य पशुओं को चुराने वाला व्यक्ति बकरा होता है।। ६७।।

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः।
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः।। ६८।।

यत्किंचिदसारमपि परद्रव्यमिच्छातो मानुषोऽपहृत्य पुरोडाशादिकं तु हविरहुतं भुक्त्वा निश्चितं तिर्यक्त्वं प्राप्नोति।। ६८।।

इसके अलावा व्यक्ति, दूसरे के धन का अल्पाल्प (छोटे से छोटा) भाग भी बलपूर्वक चुराने पर तथा आहुति दिए बिना ही हवि का भक्षण करके भी वस्तुतः तिर्यक् योनि को प्राप्त करता है।। ६८।।

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः।। ६९।।

स्त्रियोऽप्येतेन प्रकारेणेच्छातः परस्वमपहृत्य पापं प्राप्नुवन्ति। तेन पापेनोक्तानां जन्तूनां भार्यात्वं प्रतिपद्यन्ते।। ६९।।

इसीप्रकार स्त्रियाँ भी इसी चोरी की भावना से दूसरे का धन हरण करके दोष को प्राप्त करती हैं तथा उन्हीं पापों के कारण ये भी पूर्व में कहे गए इन जीवों के ही स्त्रीभाव को प्राप्त होती हैं।। ६९।।

एवं निषिद्धाचरणफलान्यभिधायाधुना विहिताकरणफलविपाकमाह—

स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि।
पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु।। ७०।।

ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णा आपदं विना पञ्चयज्ञादिकर्मत्यागिनो वक्ष्यमाणाः कुत्सिता योनीः प्राप्य ततो जन्मान्तरे शत्रुदासत्वं प्राप्नुवन्ति।। ७०।।

अतः आपत्तिकाल न होने पर भी अपने-अपने कर्मों से च्युत होने वाले, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के लोग, उपर्युक्त पाप-योनियों को प्राप्त होकर, अपने शत्रुओं के मध्य, सेवकत्व को प्राप्त होते हैं।। ७०।।

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः।
अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः।। ७१।।

ब्राह्मणः स्वकर्मभ्रष्टश्छर्दितभुक् ज्वालामुखः प्रेतविशेषो जायते। क्षत्रियः पुनर्नष्टकर्मा पुरीषशवभोजी कटपूतनाख्यः प्रेतविशेषो भवति।। ७१।।

इसके अतिरिक्त अपने धर्म से च्युत हुआ ब्राह्मण, उल्टी (वमन) का भक्षण करने वाला, अग्नि के समान मुख वाला, प्रेत बनता है तथा क्षत्रिय वर्ण का व्यक्ति पुरीष एवं शव को खाने वाला, कटपूतन नामक प्रेत होता है।। ७१।।

मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक्।
चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः।। ७२।।

वैश्यो भ्रष्टकर्मा मैत्राक्षज्योतिकनामा पूयभक्षः प्रेतो जन्मान्तरे भवति। मित्रदेवताकत्वान्मैत्रः पायुस्तदेवाक्षं कर्मेन्द्रियं तत्र ज्योतिर्यस्य स मैत्राक्षज्योतिकः। पृषोदरादित्वाज्ज्योतिषः षकारलोपः। शूद्रः पुनर्भ्रष्टकर्मा चैलाशकाख्यः प्रेतो भवति। चेलं वस्त्रं तत्संबन्धिनीं यूकामश्नातीति चैलाशकः। गोविन्दराजस्तु चेलाशकाख्यः कीटश्चैल इत्युच्यते तद्भक्षश्च स भवतीत्याह तदयुक्तं, प्रेताख्यप्राणिविशेष-प्रकरणात्।। ७२।।

जबकि अपने धर्म से च्युत हुआ वैश्य, मवाद (घाव से निकलने वाला श्वेत पदार्थ) का भक्षण करने वाला 'मैत्राक्ष ज्योति' नामक प्रेत होता है तथा अपने धर्म से परिच्युत हुआ शूद्रवर्ण का व्यक्ति अन्य जन्म में 'चैलाशक' नामक प्रेत होता है।। ७२।।

यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः।
तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते।। ७३।।

यथा तथा शब्दादिविषयान्विषयलोलुपा नितान्तं सेवन्ते तथा तथा विषयेष्वेव तेषां प्रावीण्यं भवतीति।। ७३।।

सांसारिक विषयों के लोलुप लोग जैसे-जैसे इन विषयों का सेवन करते हैं, वैसे-वैसे उनकी उन विषयों में अत्यधिक रुचि उत्पन्न होती है।। ७३।।

ततः—

तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः।
संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु।। ७४।।

तेऽल्पधियस्तेषां निबद्धविषयोपभोगानामभ्यासतारतम्यात्तासु तासु गर्हितगर्हिततर-गर्हिततमासु तिर्यगादियोनिषु दुःखमनुभवन्ति।। ७४।।

तथा अल्पबुद्धि वाले वे पुरुष उन-उन पापकर्मों के अभ्यास से, इस संसार में उन-उन योनियों में अनेक दुःखों को प्राप्त करते हैं।। ७४।।

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्तनम्।
असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च।। ७५।।

"संप्राप्नुवन्ति" (अ० १२ श्लो० ७४) इति पूर्वश्लोकस्थमिहोत्तरत्रानुवर्तते। तामिस्रादिषु चतुर्थाध्यायोक्तेषु घोरेषु नरकेषु दुःखानुभवं प्राप्नुवन्ति। तथाऽसिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनात्मिकान्नरकान्प्राप्नुवन्ति।। ७५।।

इतना ही नहीं वे तामिस्रादि भयंकर नरकों में घोर दुःख को तथा असिपत्रवनादि नरकों में, बन्धन एवं छेदन विषयक कष्टों को प्राप्त करते हैं।। ७५।।

विविधाश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम्।
करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान्।। ७६।।

विविधपीडनं काकाद्यैर्भक्षणं तथा तप्तवालुकादीन् कुम्भीपाकादींश्च नरकान्दारुणान्प्राप्नुवन्ति।। ७६।।

इसके अतिरिक्त वे वहाँ नाना प्रकार की अत्यधिक पीड़ा को, कौए और उल्लूओं द्वारा शरीर के भक्षण को तथा गर्म की गयी बालू की गर्मी को एवं दारुण कुम्भीपाकादि अनेक नरकों को प्राप्त होते हैं।। ७६।।

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः।
शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च।। ७७।।

संभवान् तिर्यगादिजातिषु नित्यं दु:खबहुलासूत्पत्तिं प्राप्नुवन्ति। तत्र शीतातपादि-पीडनादि नानाप्रकाराणि च प्राप्नुवन्ति।। ७७।।

तथा दु:खों से भरी हुई विचित्र प्रकार की योनियों में वे नित्य जन्मों को एवं शीत तथा धूप आदि के दु:खों को और अनेक प्रकार के भयों को प्राप्त करते हैं।। ७७।।

असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम्।
बन्धनानि च काष्ठानि परप्रेष्यत्वमेव च।। ७८।।

पुन: पुनर्गर्भस्थानेषु वास: समुत्पत्तिं च योनियन्त्रादिभिर्दु:खावहामुत्पन्नाश्च शृङ्खलादिभिर्बन्धनादिपीडामनुभवन्ति। परदासत्वं च प्राप्नुवन्ति।। ७८।।

और बार-बार गर्भ में निवास को, दारुण जन्म को तथा जन्म लेने के पश्चात् कष्ट देने वाले अनेक प्रकार के बन्धनों को एवं अन्यों के दासभाव को ही प्राप्त होते हैं।। ७८।।

बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनै:।
द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम्।। ७९।।

बान्धवै: सुहृद्भि: सह वियोगान्, दुर्जनैश्च सहैकत्रावस्थानं, धनार्जनप्रयासं, धनविनाशं कष्टेन मित्रार्जनं, शत्रुप्रादुर्भावं प्राप्नुवन्ति च।। ७९।।

इतना ही नहीं वे अपने बन्धु तथा प्रियजनों के वियोगों को, दुर्जनों की सङ्गति को एवं धन के अर्जन और नाश की पीड़ा को तथा मित्र व शत्रु की प्राप्ति आदि को भी भोगते हैं।। ७९।।

जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम्।
क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम्।। ८०।।

जरां चाविद्यमानप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनं क्षुत्पिपासादिना च नानाप्रकारान् क्लेशान्मृत्युं च दुर्वारं प्राप्नुवन्ति।। ८०।।

इसीप्रकार सांसारिक विषयों में आसक्त लोग, उपचार न करने योग्य वृद्धावस्था को, अनेक प्रकार की बीमारियों से उत्पन्न होने वाली वेदना को, भूख-प्यास आदि अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए, अन्त में दुर्जेय मृत्यु को प्राप्त करते हैं।। ८०।।

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते।
तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते।। ८१।।

यथाविधेन सात्त्विकेन राजसेन तामसेन वा चेतसा यद्यत्कर्म स्नानदानयोगाद्यनुतिष्ठति तदृशेनैव शरीरेण सात्त्विकेन रजोऽधिकेन तमोऽधिकेन वा तत्तत्स्नानादिफलमुपभुङ्क्ते।। ८१।।

व्यक्ति इस संसार में जिसप्रकार की भावना से जिस-जिस कर्म का सेवन करता है, वह उसीप्रकार के शरीर द्वारा उस-उस कर्मफल को भोगता है।। ८१।।

एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः।
नैश्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत।। ८२।।

एष युष्माकं विहितप्रतिषिद्धानां कर्मणां सर्वः फलोदय उक्तः इदानीं ब्राह्मणस्य निःश्रेयसाय मोक्षाय हितं कर्मानुष्ठानमिदं शृणुत।। ८२।।

यहाँ तक मैंने आपसे, सभी कर्तव्य एवं निषिद्धकर्मों के फल के उदय का भलीप्रकार उपदेश किया। अब मैं आपसे ब्राह्मण का कल्याण करने वाले, इम कर्म को कहता हूँ, आप सब ध्यानपूर्वक इसे समझिए।। ८२।।

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम्।। ८३।।

उपनिषदादेर्वेदस्य ग्रन्थतोऽर्थतश्चावर्तनं, तपःकृच्छ्रादि, ज्ञानं ब्रह्मविषयं, इन्द्रियजयः अविहितहिंसावर्जनं, गुरुशुश्रूषेत्येतत्प्रकृष्टं मोक्षसाधनम्।। ८३।।

वेदों का अभ्यास करना, तप का आचरण, ज्ञान की प्राप्ति, इन्द्रियों को अपने वश में रखना, किसी भी प्राणी की हिंसा न करना एवं गुरु की सेवा करना, ये सभी ब्राह्मण को परमकल्याण प्रदान करने वाले कर्म हैं।। ८३।।

सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम्।
किंचिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति।। ८४।।

सर्वेषामप्येतेषां वेदाभ्यासादीनां शुभकर्मणां मध्ये किंचित्कर्मातिशयेन मोक्षसाधनं स्यादिति वितर्के ऋषीणां जिज्ञासाविशेषादुत्तरश्लोकेन निर्णयमाह।। ८४।।

यहाँ बताए गए इन सम्पूर्ण शुभकर्मों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे कर्म हैं जो व्यक्ति के लिए अपेक्षाकृत अधिक कल्याण प्रदान करने वाले कहे गए हैं।। ८४।।

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः।। ८५।।

एषां वेदाभ्यासादीनां सर्वेषामपि मध्य उपनिषदुक्तपरमार्थज्ञानं प्रकृष्टं स्मृतं

यस्मात्सर्वविद्यानां प्रधानम्। अत्रैव हेतुमाह। यतो मोक्षस्तस्मात्प्राप्यते।। ८५।।

इन वेदाभ्यासादि सम्पूर्ण ज्ञानराशि के मध्य आत्मज्ञान को सर्वाधिक उत्कृष्ट कहा गया है, क्योंकि वह सभी विद्याओं में अग्रणी है तथा उसी के द्वारा मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है।। ८५।।

षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च।
श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम्।। ८६।।

एषां पुनः षण्णां पूर्वोक्तानां वेदाभ्यासादीनां कर्मणां मध्ये वैदिकं कर्म परमात्मज्ञानमैहिकामुष्मिकश्रेयस्करतरं ज्ञातव्यम्। पूर्वश्लोके मोक्षहेतुत्वमात्मज्ञास्योक्तम्, इह तु ऐहिकामुष्मिकश्रेयोऽन्तरहेतुत्वमुच्यत इत्यपौनरुक्त्यम्। तथाहि प्रतीकोपासनानां संशयोदयं "नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य कामचारो भवति" गोविन्दराजस्तु एषां पूर्वश्लोकोक्तानां वेदाभ्यासादीनां षण्णां कर्मणां मध्यात्स्मार्त्तकर्मापेक्षया वैदिकं कर्म सर्वदेहपरलोके सातिशयं सातिशयेन कीर्तिस्वर्गनिःश्रेयःसाधनं ज्ञेयमिति व्याख्यातवान्। तदयुक्तम्। वेदाभ्यासादीनां षण्णामपि प्रत्येकं श्रुतिविहितत्वात्। तेषु मध्ये स्मार्तापेक्षया किंचिदेवं किंचिच्च नेति न संभवति। ततश्च कथं निर्धारणे षष्ठी। तस्माद्यथोक्तैव व्याख्या।। ८६।।

पूर्व में कहे गए इन सभी छः कर्मों के मध्य, इह लोक एवं परलोक दोनों में ही, वैदिककर्म को हमेशा अपेक्षाकृत अधिक कल्याण प्रदान करने वाला समझना चाहिए।। ८६।।

इदानीमैहिकामुष्मिकश्रेयः साधनत्वमेवात्मज्ञानस्य स्पष्टयति–

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः।
अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ।। ८७।।

वैदिके पुनः कर्मयोगे परमात्मोपासनारूपे सर्वाण्येतानि पूर्वश्लोकोक्तान्यैहि-कामुष्मिकश्रेयांसि तस्मिन्नुपासनाविधौ क्रमशः संभवन्ति। अथवा सर्वाण्येतानीति वेदाभ्यासादीन्येव परामृश्यन्ते। परात्मज्ञाने वेदाभ्यासादीनि "तमेतं वेदानुवचनेन विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन" इति श्रुतिविहिताङ्गत्वेनान्तर्भवन्ति।। ८७।।

क्योंकि वैदिककर्मयोग में तो इन सम्पूर्ण कर्मों का, क्रमशः उस-उस क्रियाविधि में अन्तर्भाव हो जाता है।। ८७।।

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्।। ८८।।

वैदिकं कर्मात्र ज्योतिष्टोमादि प्रतीकोपासनादि च गृह्यते। स्वर्गादिसुख-प्राप्तिकरसंसारप्रवृत्तिहेतुत्वात्प्रवृत्ताख्यं वैदिकं कर्म, तथा निःश्रेयसं मोक्षस्तदर्थं कर्म नैःश्रेयसिकं संसारनिवृत्तिहेतुत्वान्निवृत्ताख्यमित्येवं वैदिकं कर्म द्विप्रकारकं वेदितव्यम्।। ८८।।

यह वैदिककर्म प्रवृत्ति एवं निवृत्ति की दृष्टि से दो प्रकार का होता है, सुख एवं अभ्युदय प्रदान करने वाला प्रवृत्तिमूलक तथा मोक्षादि कल्याणों को प्रदान करने वाला निवृत्तिमूलक।। ८८।।

एतदेव स्पष्टयति—

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते।
निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते।। ८९।।
(अकामोपहतं नित्यं निवृत्तं च विधीयते।
कामतस्तु कृतं कर्म प्रवृत्तमुपदिश्यते।। ७।।)

इह काम्यसाधनं वृष्टिहेतुकारि यागादिरत्र स्वर्गादिफलसाधनं ज्योतिष्टोमादि यस्कामतया क्रियते तत्संसारप्रवृत्तिहेतुत्वात्प्रवृत्तमित्युच्यते। दृष्टादृष्टफलकामनारहितं पुनर्ब्रह्मज्ञानाभ्यासपूर्वकं संसारनिवृत्तिहेतुत्वान्निवृत्तमित्युच्यते।। ८९।।

इस लोक एवं परलोक में सुख की कामना से किए गए कर्म प्रवृत्तिमूलक कहे गए हैं, किन्तु बिना किसी सुखादि की कामना के ज्ञानपूर्वक किए गए कर्म निवृत्तिमूलक कहे जाते हैं।। ८९।।

(सुखादि की अभिलाषा से रहित व्यक्ति द्वारा हमेशाा निवृत्तिमूलक कर्म ही किए जाते हैं, जबकि सुखादि की कामना वाले व्यक्ति के लिए प्रवृत्तिमूलक कर्म का उपदेश दिया जाता है।। ७।।)

प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम्।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै।। ९०।।

प्रवृत्तकर्माभ्यासेन देवसमानगतित्वं तत्फलं कर्मणा प्राप्नोति। एतच्च प्रदर्शनार्थमन्यफलकेन कर्मणा प्रवृत्तेन फलान्तरमपि प्राप्नोति। निवृत्तकर्माभ्यासेन पुनः शरीरारम्भकानि पञ्च भूतान्यतिक्रामति। मोक्षं प्राप्नोतीत्यर्थः।। ९०।।

अतः प्रवृत्तिमूलक कर्मों का भलीप्रकार सेवन करके व्यक्ति देवताओं के साम्य को प्राप्त होता है, जबकि निवृत्तिमूलक कर्मों का सेवन करता हुआ पुरुष, वस्तुतः पञ्चभूतों से ही छुटकारा (मोक्ष) पा लेता है।। ९०।।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।। ९१।।

सर्वभूतेषु स्थावरजङ्गमात्मकेष्वहमेवात्मरूपेणास्मि सर्वाणि भूतानि परमात्मपरिणामसिद्धानि मय्येव परमात्मन्यासत इति सामान्येन जानन्नात्मयाजी ब्रह्मार्पणन्यायेन ज्योतिष्टोमादि कुर्वन् स्वेन राजते प्रकाशत इति स्वराट् ब्रह्म तस्य भावः स्वाराज्यं ब्रह्मत्वं लभते। मोक्षमाप्नोतीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः-" सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत"। यथा यजुर्वेदमन्त्रः-" यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते"।। ९१।।

सभी प्राणियों में आत्मा को तथा सभी प्राणियों को आत्मा में एक समान देखता हुआ, आत्मयजन करने वाला व्यक्ति, ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है।। ९१।।

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान्।। ९२।।

शास्त्रचोदितान्यप्यग्निहोत्रादीनि कर्माणि परित्यज्य ब्रह्मध्यानेन्द्रिय-जयप्रणवोपनिषदादिवेदाभ्यासेषु ब्राह्मणो यत्नं कुर्यात्। एतच्चैषां मोक्षोपायान्तरङ्गोपा-यत्वप्रदर्शनार्थं न त्वग्निहोत्रादिपरित्यागपरत्वमुक्तम्।। ९२।।

इसलिए शास्त्रोक्त कर्मों का भी परित्याग करके द्विजों में श्रेष्ठ व्यक्ति को आत्मज्ञान, इन्द्रियनिग्रह और वेदों के अभ्यास में यत्नवान् होना चाहिए।। ९२।।

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः।
प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा।। ९३।।

एतदात्मज्ञानवेदाभ्यासादि द्विजातेर्जन्मसाफल्यापादकत्वाज्जन्मनः साफल्यं विशेषेण ब्राह्मणस्य। यस्मादेतत्प्राप्य द्विजातिः कृतकृत्यो भवति न प्रकारान्तरेण।। ९३।।

विशेषरूप से ब्राह्मण के जन्म की सफलता वस्तुतः यही है, क्योंकि इसे प्राप्त करके ही वह द्विज कृतकृत्य होता है, अन्य प्रकार से नहीं।। ९३।।

इदानीं वेदादेव ब्रह्म ज्ञातव्यमिति प्रदर्शयितुं वेदप्रशंसामाह—

पितृदेवमनुष्याणां　　वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः।। ९४।।

पितृदेवमनुष्याणां हव्यकव्यान्नदानेषु वेद एव चक्षुरिव चक्षुरनश्वरं तत्प्रमाणत्वा-दसंन्निकृष्टफलकव्यदानादौ प्रमाणान्तरानवकाशात्। अशक्यं च वेदशास्त्रं कर्तुम्।

अनेनापौरुषेयतोक्ता। अप्रमेयं च मीमांसादिन्यायनिरपेक्षतयानवगम्यमानप्रमेयमेवं व्यवस्था। ततश्च मीमांसया व्याकरणाद्यङ्गैश्च सर्वब्रह्मात्मकं वेदार्थं जानीयादिति व्यवस्थितम्।। ९४।।

वेद, पितृदेवता और मनुष्यों का सनातन चक्षु हैं, वेद, अपौरुषेय एवं अप्रमेय हैं। वेदशास्त्र की वस्तुतः यही स्थिति है।। ९४।।

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।। ९५।।

या स्मृतयो वेदमूला न भवन्ति दृष्टार्थवाक्यानि चैत्यवन्दनात्स्वर्गो भवतीत्यादीनि। यानि चासत्तर्कमूलानि देवतापूर्वादिनिराकरणात्मकानि वेदविरुद्धानि चार्वाकदर्शनानि सर्वाणि परलोके निष्फलानि यस्मान्नरकफलानि तानि मन्वादिभिः स्मृतानि।। ९५।।

जो स्मृतियाँ वेद विरोधी हैं तथा जो कोई भी अन्य कुदृष्टियाँ हैं, तमोनिष्ठ होने के कारण वे सभी परलोक में भी निष्फल कही गयी हैं।। ९५।।

एतदेव स्पष्टयति—

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च।। ९६।।

यान्यतो वेदादन्यमूलानि च कानिचिच्छास्त्राणि पौरुषेयत्वादुत्पद्यन्ते एवमाशु विनश्यन्ति। तानि च इदानींतनत्वान्निष्फलानि असत्यरूपाणि च। स्मृत्यादीनां तु वेदमूलत्वादेव प्रामाण्यम्।। ९६।।

वेद से भिन्न जो कुछ भी अन्य स्मृति अथवा शास्त्रादि हैं, अर्वाचीन होने के कारण वे सभी निष्फल एवं झूठे हैं। अतः वे उत्पन्न होते एवं नष्ट होते रहते हैं।। ९६।।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति।। ९७।।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इत्यादिवेदादेव चातुर्वर्ण्यं प्रसिध्यति। ब्राह्मणीभूत-मातापितृजनितत्वमिति तदुपजीवितया स्वर्गादिलोकोऽपि वेदादेव प्रसिद्धः। एवं ब्रह्मचर्याद्याश्रमा अपि चत्वारो वेदमूलकत्वाद्वेदादेव प्रसिध्यन्ति। किं बहुना। यत्किंचिदतीतं वर्तमानं भविष्यं च तत्सर्वं "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग्" (अ० ३ श्लो० ७६) इत्यादिन्यायेन वेदादेव प्रसिध्यति।। ९७।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण, तीनों लोक, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ

वानप्रस्थ और संन्यास, ये पृथक्-पृथक् चारों आश्रम, भूत, भविष्य एवं वर्तमान, ये सभी वेद से ही सिद्ध होते हैं।। ९७।।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिर्गुणकर्मतः।। ९८।।

य इह लोके परलोके च शब्दादयो विषयाः प्रसूयन्ते प्रयुज्यन्ते एतैरिति प्रसूतयः प्रसूतयश्च गुणाश्चेति सत्वरजस्तमोरूपाः तन्निबन्धनवैदिककर्महेतुत्वाद्वेदादेव प्रसिध्यन्ति।। ९८।।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पाँचवाँ गन्ध, प्रसूतिरूप गुणकर्म के कारण वेद से ही उत्पन्न होते हैं। ९८।।

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्।। ९९।।

वेदशास्त्रं नित्यं सर्वभूतानि धारयति। तथाच "हविरग्नौ हूयते सोऽग्निरादित्यमुपसर्पति तत्सूर्यो रश्मिभिर्वर्षति तेनान्नं भवति अथेह भूतानामुत्पत्तिस्थितिश्चेति हविर्जायते" इति ब्राह्मणम्। तस्माद्वेदशास्त्रमस्य जन्तोर्वैदिककर्माधिकारिपुरुषस्य प्रकृष्टं पुरुषार्थसाधनं जानन्ति।। ९९।।

इसलिए यह सनातन वेदशास्त्र संसार के सभी प्राणियों को धारण करता है, क्योंकि यह इस जीव के उत्तम पुरुषार्थ का साधन है। इसलिए मैं इसे श्रेष्ठ मानता हूँ।। ९९।।

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति।। १००।।

सेनापत्यं, राज्यं, दण्डप्रणेतृत्वं, सर्वभूम्याधिपत्यादीन्येतत्सर्वमुक्तप्रयोजनं वेदात्मकशास्त्रज्ञ एवार्हति।। १००।।

वेदशास्त्र का ज्ञाता, सेनापति, राजा, दण्डाधिकारी, यहाँ तक कि सम्पूर्ण लोकों के आधिपत्य के योग्य भी होता है।। १००।।

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान्।
तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः।। १०१।।
(न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरुचिर्भवेत्।

अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दहते कर्म नेतरत्।। ८।।)

यथा वृद्धोऽग्निरार्द्रानपि द्रुमान्दहत्येवं ग्रन्थतोऽर्थतश्च वेदज्ञः प्रतिषिद्धाद्याचरणादि-कर्मजनितं पापमात्मनो नाशयति। एवं च न वेदः केवलं स्वर्गापवर्गादिहेतुः किं त्वहितनिवृत्तिहेतुरिति दर्शितः।। १०१।।

जिसप्रकार प्रचण्ड अग्नि गीले वृक्षों को भी जला डालती है, उसीप्रकार वेद के मर्म को जानने वाला व्यक्ति, कर्म से उत्पन्न अपने दोष को नष्ट कर देता है।। १०१।।

(किन्तु वेद के बल का आश्रय लेकर व्यक्ति को कभी भी पापकर्म में रुचि नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि वेद द्वारा अज्ञानवश और प्रमादवश किए गए दुष्कर्म ही क्षरित होते हैं, इच्छापूर्वक किए गए दूसरे कर्म नहीं।। ८।।)

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते।। १०२।।

यस्तत्त्वतो वेदं तदर्थं च कर्म ब्रह्मात्मकं जानाति स नित्यनैमित्तिक-कर्मानुगृहीतब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मचर्याद्याश्रमावस्थितोऽस्मिन्नेव लोके तिष्ठन् ब्रह्मत्वाय कल्पते।। १०२।।

जिस किसी आश्रम में निवास करता हुआ, वेदशास्त्र के अर्थ एवं तत्त्व को जानने वाला वह व्यक्ति इस लोक में ही ब्रह्मतुल्य हो जाता है।। १०२।।

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः।। १०३।।

उभयोः प्रशस्यत्वे सत्यन्यतरातिशयविवक्षायां श्रेष्ठ इतीष्ठनो विधानादीषदध्ययना अज्ञास्तेभ्यः समग्रग्रन्थाध्येतारः श्रेष्ठाः। तेभ्योऽधीतग्रन्थधारणसमर्थाः श्रेष्ठाः। तेन ग्रन्थिनः पठितविस्मृतग्रन्था बोद्धव्याः। धारिभ्योऽधीतग्रन्थार्थज्ञाः प्रकृष्टा-स्तेभ्योऽनुष्ठातारः।। १०३।।

अज्ञानियों की अपेक्षा ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले श्रेष्ठ होते हैं। ग्रन्थों का अध्ययन करने वालों से उनके अर्थ को हृदयंगम (धारिणः) करने वाले उत्तम हैं तथा ग्रन्थ को धारण करने वालों से ज्ञानी श्रेष्ठ हैं एवं ज्ञानियों की अपेक्षा वेद के अनुसार कर्म करने वाले श्रेष्ठ होते हैं।। १०३।।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।। १०४।।

तप: स्वधर्मवृत्तित्वमिति भारतदर्शनात् आश्रमविहितं कर्म आत्मज्ञानं च ब्राह्मणस्य मोक्षसाधनम्। तत्र तपसोऽवान्तरव्यापारमाह। तपसा पापमपहन्ति। ब्रह्मज्ञानेन मोक्षमाप्नोति। तथाच श्रुति:-''विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते'' विद्यातोऽन्यदविद्या कर्म मृत्युवद्दु:खसाधनत्वान्मृत्यु: पापं। श्रुत्यर्थ एवायं मनुना व्याख्यायोक्त:।। १०४।।

विद्या एवं तप ब्राह्मण के परम कल्याण का साधन होता है, क्योंकि तप द्वारा वह अपने पापों को नष्ट करता है तथा विद्या से वह मोक्ष को प्राप्त करता है।। १०४।।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता।। १०५।।

धर्मस्य तत्त्वावबोधमिच्छता प्रत्यक्षमनुमानं च धर्मसाधनभूतद्रव्यगुणजाति-तत्वज्ञानाय शास्त्रं च वेदमूलं स्मृत्यादिरूपं नानाप्रकारधर्मस्वरूपविज्ञानाय सुविदितं कर्तव्यम्। तदेव च प्रमाणत्रयं मनोरभिमतम्। उपमानार्थापत्त्यादेश्चानुमा-नान्तर्भाव:।। १०५।।

धर्म के तत्त्व को जानने के इच्छुक व्यक्ति को, प्रत्यक्ष, अनुमान तथा विविध प्रकार के आगम एवं शास्त्रों को भलीप्रकार जानना चाहिए, क्योंकि धर्म के नाना प्रकार के स्वरूपों को जानने के लिए ये तीनों ही अच्छी प्रकार जानने योग्य हैं।। १०५।।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतर:।। १०६।।

ऋषिदृष्टत्वादार्षं वेदं धर्मोपदेशं च तन्मूलस्मृत्यादिकं यस्तदविरुद्धेन मीमांसादि-न्यायेन विचारयति स धर्मं जानाति नतु मीमांसानभिज्ञ:। धर्मे करणं वेद:, मीमांसा चेतिकर्तव्यतास्थानीया। तदुक्तं भट्टवार्तिककृता-''धर्मे प्रमीयमाणे हि वेदेन करणात्मना। इतिकर्तव्यताभागं मीमांसा पूरयिष्यति''।। १०६।।

जो व्यक्ति वेद एवं धर्मोपदेश को, वेदशास्त्र का विरोध न करने वाले तर्क से समझने का प्रयास करता है। वही वस्तुत: धर्म को जानता है, दूसरा कोई नहीं।। १०६।।

नै:श्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषत:।
मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते।। १०७।।

एतन्नि:श्रेयससाधनं कर्म नि:शेषेण यथावदुदितम्। अत ऊर्ध्वमस्य मानवशास्त्रस्य रहस्यं गोपनीयमिदं वक्ष्यमाणं शृणुत।। १०७।।

मोक्ष के साधन इस सम्पूर्ण कर्म को जिसप्रकार मैंने तुमसे कहा, उसीप्रकार अब मैं आप लोगों से मनु द्वारा निर्मित इस शास्त्र के रहस्य का कथन करता हूँ (आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिए)।। १०७।।

अस्य शास्त्रस्यासमस्तधर्माभिधानमाशङ्क्यानया सामान्योक्त्या समग्रधर्मोपदेशकत्वं बोधयति-

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत्।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः।। १०८।।

सामान्यविधिप्राप्तेषु विशेषेणानुपदिष्टेषु कथं कर्तव्यं स्यादिति यदि संशयो भवेत्तदायं धर्मं वक्ष्यमाणलक्षणाः शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स तत्र निश्चितो धर्मः स्यात्।। १०८।।

जिनका इस शास्त्र में कथन नहीं किया गया है, उन धर्मों के सम्बन्ध में कैसा आचरण किया जाए, यदि व्यक्ति को इस विषय में संशय हो तो निःसंदेह जिसे शिष्टब्राह्मण धर्म कहें, शङ्कारहित होकर उसी को धर्म मान लेना चाहिए।।१०८।।

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः।। १०९।।

ब्रह्मचर्याद्युक्तधर्मेण यैरङ्गमीमांसाधर्मशास्त्रपुराणाद्युपबृंहितो वेदोऽधिगतस्ते ब्राह्मणाः श्रुतेः प्रत्यक्षीकरणे हेतवः, ये श्रुतिं पठित्वा तदर्थमुपदिशन्ति ते शिष्टा विज्ञेयाः।। १०९।।

षडङ्ग, मीमांसा, धर्मशास्त्र एवं पुराणादि द्वारा व्याख्या किया गया वेद, जिन ब्राह्मणों द्वारा भलीप्रकार धर्मपूर्वक जाना और समझा गया है। श्रुति के अर्थ को प्रत्यक्ष कराने के कारणस्वरूप वे ब्राह्मण ही शिष्ट समझने योग्य हैं।। १०९।।

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्।। ११०।।
(पुराणं मानवो धर्मो साङ्गोपाङ्गचिकित्सकः।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः।। ९।।)

यदि बहवः सन्तोऽवहिता न भवन्ति तदा दशावराख्यवराश्चेति वक्ष्यमाणलक्षणा यस्याः सा परिषत् तदभावे त्रयोऽवरा यस्याः सा वा सदाचारा यं धर्मं निश्चिनुयात्तं धर्मत्वेन स्वीकुर्यान्न विसंवदेत्।। ११०।।

अथवा दस श्रेष्ठ ब्राह्मण या सदाचार का पालन करने वाले तीन उत्कृष्ट विद्वानों की सभा, जिस धर्म की परिकल्पना करे, उस धर्म का कभी भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।। ११०।।

(पुराण, मनु द्वारा कहा गया धर्म, अङ्ग एवं उपाङ्ग सहित वेद तथा चिकित्सक, ये चारों आज्ञासिद्ध होते हैं। अत: इनका तर्कशास्त्र द्वारा कभी भी विरोध नहीं करना चाहिए।। ९।।)

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा।। १११।।

वेदत्रयसंबन्धशाखात्रयाध्येतारः श्रुतिस्मृत्यविरुद्धन्यायशास्त्रज्ञः, मीमांसात्मक-तर्कवित्,निरुक्तज्ञः, मानवादिधर्मशास्त्रवेदी, ब्रह्मचारी, गृहस्थवानप्रस्थौ इत्येषा दशावरा परिषत्स्यात्।। १११।।

ऋक्, यजु: और साम इन तीनों वेदों को जानने वाला, श्रुतियों के अनुकूल न्यायशास्त्र का विशेषज्ञ, मीमांसाशास्त्र का ज्ञाता, निरुक्त का अध्ययन करने वाला, धर्मशास्त्र का पाठक तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इन प्रथम तीन आश्रमों में रहने वाले, जिस सभा में हों, वह सभा दशावरा होती है।। १११।।

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये।। ११२।।

ऋग्यजु:सामवेदशाखानां येऽध्येतारस्तदर्थज्ञाश्च त्रयः सा धर्मसंदेहनिरासार्थं त्र्यवरा परिषद्बोद्धव्या।। ११२।।

इसीप्रकार जिस सभा में ऋग्वेद को जानने वाला, यजुर्वेद का ज्ञाता और सामवेद को समझने वाला, ये तीनों हों, धर्मसंशय के निर्णय के सम्बन्ध में उसे तीन श्रेष्ठ विद्वानों की त्र्यवरा सभा समझना चाहिए।। ११२।।

तदभावे—

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः।। ११३।।

एकोऽपि वेदार्थधर्मज्ञो यं धर्मं निश्चिनुयात् प्रकृष्टो धर्मः स बोद्धव्यो न वेदानभिज्ञानां दशभिः सहस्रैरप्युक्तः। वेदविच्छब्दोऽयं वेदार्थधर्मज्ञपरः। एतच्च श्रेष्ठोपलक्षणम्। स्मृतिपुराणमीमांसान्यायशास्त्रज्ञोऽपि गुरुपरंपरोपदेशविच्च ज्ञेयः। तथा

''केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः। युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते''। तेन बहुस्मृतिज्ञोऽपि यदि सम्यक् प्रायश्चित्तादिधर्मं जानाति तदा तेनाप्येकेन धर्म उक्तः प्रकृष्टो धर्मो ज्ञेयः। अतएव यमः- ''एको द्वौ वा त्रयो वापि यद्ब्रूयुर्धर्मपाठकाः। स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः।। ''।। ११३।।

इतना ही नहीं एक वेद का ज्ञाता ब्राह्मण भी यदि धर्म के विषय में निर्णय कर दे तो उसे परमधर्म समझना चाहिए, किन्तु दस हज़ार मूर्खों द्वारा कहा गया भी धर्म नहीं होता है।। ११३।।

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते।। ११४।।

सावित्र्यादिब्रह्मचारिव्रतरहितानां, मन्त्रवेदाध्ययनरहितानां, ब्राह्मणजातिमात्रधारिणां, बहूनामपि मिलितानां परिषत्त्वं नास्ति। धर्मनिर्णयसामर्थ्याभावात्।। ११४।।

व्रतहीन, वेदों के अध्ययन से रहित, जातिमात्र से आजीविका कमाने वाले (ब्राह्मणों) की हजारों की संख्या से युक्त भी सभा नहीं होती है।। ११४।।

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति।। ११५।।

तमोगुणबहुला मूर्खाः धर्मप्रमाणवेदार्थानभिज्ञा अतएव प्रश्नविषयधर्माविदः प्रायश्चित्तादिधर्मं यं पुरुषं प्रत्युपदिशन्ति तदीयं पापं शतगुणं भूत्वा वाचकान्बहून् भजेत्।। ११५।।

धर्म के मर्म को न समझने वाले, तमोगुणी, मूर्ख लोग जिस प्रायश्चित्त का कथन करते हैं, सौ गुना होकर वह पाप उन उपदेश देने वालों को ही प्राप्त होता है।। ११५।।

एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परम्।
अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम्।। ११६।।

एतन्निःश्रेयससाधकं प्रकृष्टं धर्मादिकं सर्वं युष्माकमभिहितम्। एतदनु-तिष्ठन्ब्राह्मणादिः परमां गतिं स्वर्गापवर्गरूपां प्राप्नोति।। ११६।।

परम कल्याणों को प्रदान करने वाला, यह सम्पूर्ण धर्म मैंने आपसे कहा। इस धर्म का आचरण करने वाला ब्राह्मण परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करता है।। ११६।।

एवं स भगवान्देवो लोकानां हितकाम्यया।
धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान्।। ११७।।

स भगवानैश्वर्यादिसंयुक्तो द्योतनाद्देवो मनुरुक्तप्रकारेणेदं सर्वं धर्मस्य परमार्थं शुश्रूषुशिष्येभ्य: अगोपनीयं लोकहितेच्छया ममेदं सर्वमुक्तवानिति भृगुर्महर्षीनाह।। ११७।।

इसप्रकार देवता स्वरूप उन भगवान् मनु ने, संसार के हित की कामना से, इस सम्पूर्ण धर्म के परम गोपनीय रहस्य को मुझसे कहा था, जिसका मैंने आपसे कथन किया।। ११७।।

एवमुपसंहृत्य महर्षीणां हितायोक्तमप्यात्मज्ञानं प्रकृष्टमोक्षोपकारकतया पृथक्कृत्याह—

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहित:।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मन:।। ११८।।

सद्भावमसद्भावं सर्वं ब्राह्मणो जानन् ब्रह्मस्वरूपमात्मन्युपस्थितं तदात्मकमनन्यमना ध्यानप्रकर्षेण साक्षात्कुर्यात्। यस्मात्सर्वमातमत्वेन पश्यन्रागद्वेषाभावादधर्मे मनो न कुरुते।। ११८।।

इसलिए सावधानचित्त वाले व्यक्ति को सत्, असत्स्वरूप सभी को अपनी ही आत्मा में भलीप्रकार देखना चाहिए, क्योंकि सभी को अन्त:करण में देखता हुआ मनुष्य अपने मन को अधर्म में नहीं करता है।। ११८।।

एतदेव स्पष्टयति—

आत्मैव देवता: सर्वा: सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम्।। ११९।।

इन्द्राद्या: सर्वदेवता: परमात्मैव सर्वात्मत्वात्परमात्मन:। सर्वं जगदात्मन्येवावस्थितं परमात्मपरिणामत्वात्। हिरवधारणार्थे। परमात्मैवैषां क्षेत्रज्ञादीनां कर्मसंबन्धं जनयति। तथाच श्रुति:-"एष ह्येव साधु कर्म कारयति यमूर्ध्वं निनीषति। एष ह्येवासाधु कर्म कारयति यमधो निनीषति" इति।। ११९।।

क्योंकि सभी देवता वस्तुत: आत्मा ही हैं। आत्मा में ही सम्पूर्ण संसार स्थित है। इतना ही नहीं अपितु इन शरीरधारियों के शुभ-अशुभ कर्मों को भी आत्मा ही उत्पन्न करता है।। ११९।।

इदानीं वक्ष्यमाणब्रह्मध्यानविशेषोपयोगितया दैहिकाकाशादिषु बाह्याकाशादीनां लयमाह—

खं संनिवेशयेत्स्वेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम्।
पक्तिदृष्ट्यो: परं तेज: स्नेहेऽपो गां च मूर्तिषु।। १२०।।

मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते विष्णुं बले हरम्।
वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम्।। १२१।।

बाह्याकाशमुदराद्यवच्छिन्नशरीराकाशेषु लीनमेकत्वेन धारयेत्। तथा चेष्टास्पर्श-कारणभूतदैहिकवायौ बाह्यवायुं, औदर्यचाक्षुषतेजसोरग्निसूर्ययोः प्रकृष्टं तेजः, दैहिकास्वप्सु बाह्या अपः बाह्याः पृथिव्यादयः शरीरपार्थिवभागेषु, मनसि चन्द्रं, श्रोत्रे दिशः, पादेन्द्रिये विष्णुं, बले हरं, वागिन्द्रियेऽग्निं, पाय्विन्द्रिये मित्रं, उपस्थेन्द्रिये प्रजापतिं लीनमेकत्वेन भावयेत्।। १२०।। १२१।।

अपने हृदयरूपी आकाश में आकाश को, शरीर की वायु में वायु को, उदर और दृष्टि के तेज में परम तेज को, स्नेह में जल को, शरीर के स्थूल अङ्गों में पृथिवी को सन्निविष्ट करना चाहिए।। १२०।।

इसीप्रकार मन में चन्द्रमा को, कानों में दिशाओं को, पैरों में विष्णु को, शक्ति में शिव को, वाणी में अग्नि को, मल का उत्सर्जन करने वाली इन्द्रियों में मित्रदेव को तथा जननेन्द्रिय में प्रजापति को संनिवेशित करना चाहिए।। १२१।।

एवमाध्यात्मिकभूतादिकं लीनमेकत्वेन भावयित्वा—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।। १२२।।

प्रशासितारं नियन्तारं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य चेतनाचेतनस्य जातेर्योऽयमग्न्यादीना-मौष्ण्यादिनियमो यश्चादित्यादीनां भ्रमणादिनियमो यच्च कर्मणां फलं प्रतिनियतमेतत्सर्वं परमात्माधीनम्। तथाच "एतस्यैवाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गि" (बृहदारण्यके ३। ८। ९) इत्याद्युपनिषदः। तथा "भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" (कठोपनि० ३।३) इति। तथा अणोरणीयांसं सर्वात्मत्वात् (नृसिंहतापिनी १।१)। तथाच श्रुतिः-"वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवेति विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।। " रुक्माभं यद्यपि "अशब्दमस्पर्शम-रूपमव्ययम्" (कठोप० ३।१५) इत्याद्युनिषदा रूपं परमात्मनो निषिद्धं तथाप्युपासना-विशेषे शुद्धसुवर्णाभम्।। अत एव "य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः" (१।६।६) इत्यादि छान्दोग्योपनिषत्। स्वप्नधीगम्यम्। दृष्टान्तोऽयं स्वप्नधीसदृशज्ञानग्राह्यम्। यथा स्वप्नधीश्चक्षुरादिबाह्येन्द्रिपरमे मनोमात्रेण जन्यत एवमात्मधीरपि। अत एव व्यासः "नैवासौ चक्षुषा ग्राह्यो न च शिष्टैरपीन्द्रियैः। मनसा तु प्रसन्नेन गृह्यते सूक्ष्मदर्शिभिः।। " एवंविधं परात्मानमनुचिन्तयेत्।। १२२।।

तथा सम्पूर्ण संसार को नियन्त्रित करने वाले, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, स्वर्ण के समान आभा वाले, स्वप्न के समान सूक्ष्मबुद्धि से जानने योग्य, उस परमपुरुष को जानना चाहिए।। १२२।।

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।। १२३।।

एवं च परमात्मानमग्नित्वेनैके याज्ञिका उपासते। तथा तमेकमग्निमित्यध्वर्यव उपासते। अन्ये पुनः स्रष्टृत्वात्स्रष्टाख्यप्रजापतिरूपतयोपासते। एके पुनरैश्वर्ययोगादिन्द्र-रूपतयोपासते। अपरे पुनः प्राणत्वेनोपासते। सर्वाणि भूरादीनीमानि भूतानि "प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहतः" इत्यादिश्रुतिदर्शनात्। अपरे पुनरपगत-प्रपञ्चात्मकं सच्चिदानन्दस्वरूपं परमात्मानमुपासते मूर्तामूर्तस्वरूपे च ब्रह्मणि सर्वा एवोपासनाः श्रुतिप्रसिद्धा भवन्ति।। १२३।।

इस परमात्मा को कुछ लोग अग्नि कहते हैं तो कुछ मनु प्रजापति। अन्य इसे इन्द्र, तो दूसरे प्राण तथा अन्य कोई इसे 'सनातन ब्रह्म' भी कहते हैं।। १२३।।

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत्।। १२४।।

एष आत्मा सर्वान्प्राणिनः पञ्चभिः पृथिव्यादिभिर्महाभूतैः शरीरारम्भकैः परिगृह्य पूर्वजन्मार्जितकर्मापेक्षयोत्पत्तिस्थितिविनाशै रथादिचक्रवदसकृदुपावर्तमानैरामो-क्षात्संसारिणः करोति।। १२४।।

यह आत्मा, पृथिवी आदि पञ्चभूतों से सभी प्राणियों को व्याप्त करके, जन्म लेना, वृद्धि को प्राप्त करना एवं विनष्ट होना, इन सभी क्रियाओं द्वारा, चक्र के समान हमेशा इस संसार में भ्रमण करता रहता है।। १२४।।

इदानीं मोक्षत्वेनोक्तसर्वधर्मश्रेष्ठतया सर्वत्र परमात्मदर्शनमनुष्ठेयत्वेनोपसंहरति—

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्।। १२५।।
(चतुर्वेदसमं पुण्यमस्य शास्त्रस्य धारणात्।
भूयो वाप्यतिरिच्येत पापनिर्यातनं महत्।। १०।।)

"सर्वभूतेषु चात्मानम्" इत्याद्युक्तप्रकारेण यः सर्वेषु भूतेष्ववस्थितमात्मानमात्मना पश्यति स ब्रह्मसाक्षात्कारात्परं श्रेष्ठं पदं स्थानं ब्रह्म प्राप्नोति। तत्रात्यन्तं लीयते, मुक्तो भवतीत्यर्थः।। १२५।।

जो व्यक्ति सभी प्राणियों में स्थित इस आत्मा को इसप्रकार आत्मा के द्वारा देखता है। सबकी समानता को प्राप्त करके वह, परमपद 'ब्रह्म' को प्राप्त करता है।। १२५।।

(मनु द्वारा कहे गए इस शास्त्र को धारण करने से व्यक्ति चारों वेदों के अध्ययन के समान पुण्य को प्राप्त करता है। पापों का विनाशक होने के कारण यह शास्त्र वस्तुतः अन्य सभी शास्त्रों से बढ़कर है।। १०।।)

इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्द्विजः।
भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम्।। १२६।।
(मनुः स्वायंभुवो देवः सर्वशास्त्रार्थपारगः।
तस्यास्यनिर्गतं धर्मं विचार्य बहुविस्तरम्।। ११।।
ये पठन्ति द्विजाः केचित्सर्वपापोपशान्तिदम्।
ते गच्छन्ति परं स्थानं ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम्।। १२।।)

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वादशोऽध्यायः।। १२।।

समाप्त्यर्थ इतिशब्दः। एतत्स्मृतिशास्त्रं भृगुणा प्रकर्षेणोक्तं द्विजातिः पठन् विहितानुष्ठाननिषिद्धवर्जनात्सदाचारवान् भवति। यथापेक्षितां च स्वर्गापवर्गादिरूपां गतिं प्राप्नुयादिति।। १२६।। क्षे० श्लो० १२।।

इसप्रकार महर्षि भृगु द्वारा कहे गए, मनु द्वारा विरचित इस शास्त्र को पढ़ता हुआ द्विज, हमेशा आचारवान् होता है तथा अपनी अभीष्ट गति (मोक्ष) को प्राप्त करता है।। १२६।।

(सभी शास्त्रों में पारङ्गत, दिव्यगुणों से सम्पन्न, स्वायंभुव मनु ने, अच्छी प्रकार विचार करके ही, अत्यधिक विस्तृत उस वेदशास्त्र से इस मानवधर्म का उद्धार किया है।। ११।।

द्विज वर्ण के जो कोई मनुष्य, सभीप्रकार के पापों को पूर्णतया शान्ति प्रदान करने वाले, इस मानवशास्त्र को पढ़ते हैं, वे ब्रह्म के शाश्वत लोक परमस्थान को प्राप्त करते हैं।। १२।।)

सारासारवचःप्रपञ्चनविधौ मेधातिथेश्चातुरी
स्तोकं वस्तु निगूढमल्पवचनाद्गोविन्दराजो जगौ।
ग्रन्थेऽस्मिन्धरणीधरस्य बहुशः स्वातन्त्र्यमेतावता
स्पष्टं मानवमर्थतत्त्वमखिलं वक्तुं कृतोऽयं श्रमः।। १।।

प्रायो मुनिभिर्विवृतं कथयत्येषा मनुस्मृतेरर्थम्।
दशभिर्ग्रन्थसहस्रैः सप्तशतैर्युता कृता वृत्तिः।। २।।
सेयं मया मानवधर्मशास्त्रे व्यधायि वृत्तिर्विदुषां हिताय।
दुर्बोधजातेर्दुरितक्षयाय भूयात्ततो मे जगतामधीशः।। ३।।

इति वारेन्द्रिनन्दनावासीयदिवाकरात्मजश्रीमत्कुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यां मनुवृत्तौ द्वादशोऽध्यायः समाप्तः।। १२।।

।। इसप्रकार मानवधर्मशास्त्र में महर्षि भृगु द्वारा कही गयी संहिता के अन्तर्गत द्वादश अध्याय पूर्ण हुआ।।

।। इसप्रकार डॉ० राकेश शास्त्री द्वारा सम्पादित मनुस्मृति के द्वादश अध्याय का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।

समाप्तं मानवं धर्मशास्त्रम्।

परिशिष्टम्।

नानाविधधर्मनिबन्धेषु मनुवचनत्वेनोपन्यस्तानामिदानीन्तन-मनुस्मृतिपुस्तकेष्वनुपलब्धानां श्लोकानां संग्रहः।

(मनुः)

दानहेमाद्रौ

इष्टे यज्ञे यद्दीयते दक्षिणादि तदैष्टिकम्।
बहिर्वेदि च यद्दानं दीयते तद्धि पौर्तिकम्।। १।।
स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये।
मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथान्वहम्।। २।।
ये व्यपेताः स्वकर्मभ्यः परपिण्डोपजीविनः।
द्विजत्वमभिकाङ्क्षन्ति तांश्च शूद्रवदाचरेत्।। ३।।
अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदो हि सः।। ४।।
पात्रभूतो हि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम्।
असत्सु विनियुञ्जीत तस्य देयं न किंचन।। ५।।
संचयं कुरुते यश्च प्रतिगृह्य समन्ततः।
धर्मार्थं नोपयुङ्क्ते यो न तं तस्करमर्चयेत्।। ६।।
न कुर्यात्कस्यचित्पीडां कर्मणा मनसा गिरा।
आचरन्नभिषेकं तु कर्माण्यप्यन्यथा चरन्।। ७।।
संध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दन्तधावने।
पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः।। ८।।

गुरूणां संनिधौ दाने योगे चैव विशेषतः।
एषु मौनं समातिष्ठन्स्वर्गं प्राप्नोति मानवः।। ९।।
विष्णुः पराशरो दक्षः संवर्तव्यासहारिताः।
शातातपो वसिष्ठश्च यमापस्तम्बगौतमाः।। १०।।
देवलः शङ्खलिखितौ भरद्वाजोशनोऽत्रयः।
शौनको याज्ञवल्क्यश्च दशाष्टौ स्मृतिकारिणः।। ११।।

व्रतहेमाद्रौ

विहितस्याननुष्ठानमिन्द्रियाणामनिग्रहः।
निषिद्धसेवनं नित्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः।। १२।।

श्राद्धहेमाद्रौ

यत्किंचिन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरघृतपायसम्।
दत्तमक्षयमित्याहुः पितरस्त्वेव देवताः।। १३।।
अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः।
पूर्वेद्युर्वा प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम्।। १४।।
एकपिण्डकृतानां तु पृथक्त्वं नोपपद्यते।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वमृते कृष्णचतुर्दशीम्।। १५।।
कुर्वन्प्रतिपदि श्राद्धं सरूपान् लभते सुतान्।
कन्यकां तु द्वितीयायां तृतीयायां तु बन्दिनः।। १६।।
पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्या शोभनान्सुतान्।
षष्ठ्यां दूतं कृषिं चापि सप्तम्यां लभते नरः।। १७।।
अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदः सदा।
नवम्यामेकखुरकं दशम्यां द्विखुरांस्तथा।। १८।।
एकादश्यां तथा रौप्यं ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान्।
द्वादश्यां जातरूपं च रजतं कुप्यमेव च।। १९।।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्या चतुर्दश्यां तु सुप्रजाः।
प्रीयन्ते पितरश्चास्य ये शस्त्रेण हता रणे।। २०।।
पक्षत्यादिविनिर्दिष्टान्विपुलान्मनसः प्रियान्।
श्राद्धदः पञ्चदश्यां तु सर्वान्कामान्समश्नुते।। २१।।

सर्वं वा यदि वाप्यर्धं पादं वा यदि वाक्षरम्।
सकाशाद्यस्य गृह्णीयान्नियतं तस्य गौरवम्।। २२।।
नानृग्ब्राह्मणो भवति न वणिङ् न कुशीलवः।
न शूद्रवेषणं कुर्वन्न स्तेयो न चिकित्सकः।। २३।।
परपूर्वापतिं धीरा वदन्ति दिधिषूपतिम्।
द्विजोऽग्रेदिधिषूश्चैव यस्य सैव कुटुम्बिनी।। २४।।
यस्तयोरन्नमश्नाति स कुलाच्च्यवते द्विजः।। २५।।
अतिथिं पूजयेद्यस्तु श्रान्तं वा हृष्टमानसम्।
सवृषं गोशतं तेन दत्तं स्यादिति मे मतिः।। २६।।
येषामन्नं विनातिथिर्विप्राणां व्रजते गृहात्।
ते वै खरत्वमुष्ट्रत्वमश्वत्वं प्रतिपेदिरे।। २७।।
किं ब्राह्मणस्य पितरं किं वा पृच्छति मातरम्।
श्रुतं चेदस्ति वेद्यं वा तन्मातापितरौ स्मृतौ।। २८।।
अनर्हते यद्ददाति न ददाति यदर्हते।
अर्हानर्हानभिज्ञानात्सोऽपि धर्मादहीयते।। २९।।
परिच्युतेष्ट(?)वस्थानान्निगरन्नेव तच्छुचिः।। ३०।।
निमन्त्र्य विप्रास्तदहर्वर्जयेन्मैथुनं क्षुरम्।
प्रमत्ततां च स्वाध्यायं क्रोधं शौकं तथानृतम्।। ३१।।
उपासनाग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।
पञ्चयज्ञान्नपक्तिश्च यच्चान्यद्गृह्यकृत्यकम्।। ३२।।
बह्वग्नयस्तु ये विप्रा ये वैकाग्नय एव च।
तेषां सपिण्डनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्।। ३३।।
पूर्वाह्णे वैदिकं श्राद्धमपराह्णे तु पार्वणम्।
एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्।। ३४।।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते।
वासरस्य तृतीयेंऽशे नातिसंध्यासमीपतः।। ३५।।
यस्य चैव गृहे विप्रो वसेत्कश्चिदभोजितः।
न तस्य पितरो देवा हव्यं कव्यं च भुञ्जते।। ३६।।
अतिथिर्यस्य वै ग्रामे भिक्षमाणः प्रयत्नतः।
स चेन्निरसितस्तत्र ब्रह्महत्या विधीयते।। ३७।।

अपि शाकंपचानस्य शिलोञ्छेनापि जीवतः।
स्वदेशे परदेशे वा नातिथिर्विमना भवेत्॥ ३८॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च।
पितृषु दैवयज्ञेषु दाता स्वर्गं न गच्छति॥ ३९॥

श्राद्धेन यः कुरुते संगतानि न देवयानेन पथा स याति।
विनिर्मुक्तं पिप्पलं बन्धतो वा स्वर्गाल्लोकाद्भ्रश्यति श्राद्धमित्रः॥ ४०॥

यत्प्रोक्षितं भवेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया।
यथाविधि नियुक्तश्च प्राणानामेव चात्यये॥ ४१॥

यस्तु भक्षयते मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया।
स लोकेऽप्रियतां याति व्याधिभिश्चैव पीड्यते॥ ४२॥

मिताक्षरायाम्

अकामतस्त्वहोरात्रं शेषेषूपवसेदहः॥ ४३॥

मानुषास्थि शवं विष्ठा रेतो मूत्रार्तवं वसा।
स्वेदाश्रुदूषिका श्लेष्ममलं चामेध्यमुच्यते॥ ४४॥

विष्णो हव्यं च कव्यं च ब्रूयाद्रक्षेति च क्रमात्॥ ४५॥

सभासदश्च ये तत्र स्मृतिशास्त्रविदः स्थिताः।
यथा लेख्यविधौ तद्वत्स्वहस्तं दद्युरेव ते॥ ४६॥

निष्के तु सत्यवचनं द्विनिष्के पादलम्बनम्।
त्रिकादर्वाक् तु पुण्यं स्यात्कोशपानमतः परम्॥४७॥

विभक्ता वाऽविभक्ता वा सपिण्डाः स्थावरे समाः।
एको ह्यनीशः सर्वत्र दानाधमनविक्रयः॥ ४८॥

वाक्पारुष्ये य एवोक्ता प्रतिलोमानुलोमतः॥ ४९॥

ब्राह्मणस्य वधे मौण्ड्यं पुरान्निर्वासनाङ्कने।
ललाटे वाभिशस्ताङ्क्यः प्रयाणं गर्दभेन तु॥ ५०॥

सूतके तु कुलस्यान्नमदोषं मनुरब्रवीत्॥ ५१॥

बहूनामेककार्याणां सर्वेषां शस्त्रधारिणाम्।
यद्येको घातयेत्तत्र सर्वे ते घातकाः स्मृताः॥ ५२॥

ततो मुसलमादाय सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्॥ ५३॥

एतान्येव तथा पेयान्येकैकं तु त्र्यहं त्र्यहम्।
अतिसातपनं नाम श्वपाकमपि शोधयेत्।। ५४।।
विद्वद्विप्रनृपस्त्रीणां नेष्यते केशवापनम्।
ऋते महापातकिनो गोहन्तुश्चावकीर्णिनः।। ५५।।

पाराशरमाधवीये

प्रजापतिर्हि यस्मिन्काले राज्यमभूभुजत्।
धर्मैकतानाः पुरुषास्तदाऽऽसन्सत्यवादिनः।। ५६।।
तदा न व्यवहारोऽभून्न द्वेषो नापि मत्सरः।
नष्टे धर्मे मनुष्येषु व्यवहारः प्रवर्तते।। ५७।।
द्विजान्विहाय संपश्येत्कार्याणि वृषलैः सह।
तस्य प्रक्षुभितं राष्ट्रं बलं कोशं च नश्यति।। ५८।।
संदिग्धेषु तु कार्येषु द्वयोर्विवदमानयोः।
दृष्टश्रुतानुभूतत्वात्साक्षिभ्यो व्यक्तदर्शनम्।। ५९।।
ब्राह्मणो वा मनुष्याणामादित्यस्तेजसामिव।
शिरो वा सर्वगात्राणां धर्माणां सत्यमुत्तमम्।। ६०।।
सत्यमेव परं दानं सत्यमेव परं तपः।
सत्यमेव परो धर्मो लोकोत्तरमिति स्थितिः।। ६१।।
सत्ये देवाः समुद्दिष्टा मनुष्यास्त्वनृतं स्मृतम्।
इहैव तस्य देवत्वं यस्य सत्ये स्थिता मतिः।। ६२।।
नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
साक्षिधर्मे विशेषेण सत्यमेव वदेत सः।। ६३।।
ऋत्विक्पुरोहितामात्याः पुत्राः संबन्धिबान्धवाः।
धर्माद्विचलिता दण्ड्या निर्वास्या राजभिः पुरात।। ६४।।
ऋणिकः सधनो यस्तु दौरात्म्यान्न प्रयच्छति।
राज्ञा दापयितव्यः स्याद्गृहीत्वा द्विगुणं ततः।। ६५।।
द्रव्यमस्वामिविक्रीतं मूल्यं राज्ञे निवेदितम्।
न तत्र विद्यते दोषो न स्यात्तदुपविक्रयात्।। ६६।।
आर्तस्य कुर्यात्सच्छंसन् यथाभाषितमादितः।
सुदीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम्।। ६७।।

त एव दण्डपारुष्ये व्याप्या दण्डा यथाक्रमम्।। ६८।।
यः कुमारीं मेषपशून् ऋक्षांश्च वृषभांस्तथा।
वाहयेत्साहसं पूर्णं प्राप्नुयादुत्तमं वधे।। ६९।।
महापापोपवक्तारो महापातकशंसकाः।
आमध्यमोत्तमा दण्ड्या दद्युस्ते च यथाक्रमम्।। ७०।।
मध्यमो जातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः।। ७१।।
अन्त्याभिगमने त्वङ्क्या कबन्धेन प्रवासयेत्।
शूद्रस्तथाङ्क्य एव स्याद्दण्ड्यः स्याद्गमने वधः।। ७२।।
अयोनौ गच्छतो योषां पुरुषं वापि मोहतः।
चतुर्विंशतिको दण्डस्तथा प्रव्रजितो हि सः।। ७३।।
यः कारणं पुरस्कृत्य व्रतचर्यां निषेवते।
पापं व्रतेन संच्छाद्य बैडालं नाम तद्व्रतम्।। ७४।।
सहस्रगुणितं दानं भवेद्दत्तं युगादिषु।
कर्म श्राद्धादिकं चैव तथा मन्वन्तरादिषु।। ७५।।
वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः।
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत्।। ७६।।
दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम्।
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यामपि कार्यं तथैव वा।। ७७।।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च।। ७८।।
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः।। ७९।।
चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यादद्यात्स्नात्वा विमुक्तयोः।
अमुक्तयोरस्तगतयोर्दृष्ट्वा स्नात्वा परेऽहनि।। ८०।।
उपस्थाने च यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन हि।
तात्कालिकमिति ख्यातं तदत्तव्यं मुमुक्षुणा।। ८१।।
सिद्धमन्नं भक्तजनैरानीतं यन्मठं प्रति।
उपपन्नं तदित्याहुर्मुनयो मोक्षकाङ्क्षिणः।। ८२।।
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते।। ८३।।

जाते कुमारे तदहः कामं कुर्यात्प्रतिग्रहम्।
हिरण्यधान्यगोवासास्तिलानां गुडसर्पिषाम्।। ८४।।
मातुले श्वशुरे मित्रे गुरौ गुर्वङ्गनासु च।
आशौचं पक्षिणीं रात्रिं मृता मातामही यदि।। ८५।।
श्वशुरयोश्च भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले।। ८६।।
ग्राममध्ये मृतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित्।
ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात्।। ८७।।
ग्रामेश्वरे कुलपतौ श्रोत्रिये च तपस्विनि।
शिष्ये पञ्चत्वमापन्ने शुद्धिर्नक्षत्रदर्शनात्।। ८८।।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति।। ८९।।
उग्रात्तु जातः क्षत्तायां श्वपाक इति कीर्त्यते।। ९०।।
ब्राह्मणस्य रणद्वारे पूयशोणितसंभवे।
कृमिरुत्पद्यते यस्तु प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।। ९१।।
गवां मूत्रपुरीषेण त्रिसंध्यं स्नानमाचरेत्।
त्रिरात्रं पञ्चगव्याशी अधो नाभ्या विशुध्यति।। ९२।।
नाभिकण्ठान्तरोद्भूते व्रणे चोत्पद्यते कृमिः।
षड्रात्रं तु तदा प्रोक्तं प्राजापत्यं शिरोव्रणे।। ९३।।
विधेः प्राथमिकादस्माद्द्वितीये द्विगुणं चरेत्।
तृतीये त्रिगुणं चैव चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः।। ९४।।
अपात्रीकरणं त्वा ······ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति।
शीतकृच्छ्रेण वा शुद्धिमहः सांतपनेन वा।। ९५।।
श्रुतिं पश्यन्ति मुनयः स्मरन्ति च तथा स्मृतिम्।
तस्मात्प्रमाणमुभयं प्रमाणैः प्रापितं भुवि।। ९६।।
वाक्याभावे तु सर्वेषां देशदृष्टमनन्तयेत्।। ९७।।
यस्य देशस्य यो धर्मः प्रवृत्तः सार्वकालिकः।
श्रुतिस्मृत्यविरोधेन देशदृष्टः स उच्यते।। ९८।।
देशपत्तनगोष्ठेषु पुरग्रामेषु वादिनाम्।
तेषां स्वसमयैर्धर्मः शास्त्रतोऽन्येषु तैः सह।। ९९।।

लेख्यं यत्र न विद्येत न मुक्तिर्न च साक्षिणः।
न च दिव्यावतारोऽस्ति प्रमाणं तत्र पार्थिवः।। १००।।
उभयाभ्यर्थितेनैव मया ह्यमुकसूनुना।
लिखितं ह्यमुकेनेति लेखकः स्वं तु तल्लिखेत्।। १०१।।
शोधयेत्तं च छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे।
स राज्ञर्णचतुर्भागं दाप्यं तस्य च तद्धनम्।। १०२।।

स्मृतिचन्द्रिकायाम्

यत्क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महते।
यत्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति।। १०३।।
त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ।। १०४।।
स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
ततो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम्।। १०५।।
ऋत्विजः समवेतास्तु यथा सत्रे निमन्त्रिताः।
कुर्युर्यथार्हतः कर्म गृह्णीयुर्दक्षिणां तथा।। १०६।।
विभागे तु कृते किंचित् सामान्यं यत्र दृश्यते।
नासौ विभागो विज्ञेयः कर्तव्यः पुनरेव हि।। १०७।।
विभागे यत्र संदेहो दायादानां परस्परम्।
पुनर्विभागः कर्तव्यः पृथक्स्थानस्थितैरपि।। १०८।।
आरम्भकृत्सहायश्च दोषभाजौ तदर्धतः।। १०९।।
असुराणां कुले जाता जातिपूर्वपरिग्रहे।
तस्यादर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः।। ११०।।
शिष्टाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम्।। १११।।
धर्मव्यतिक्रमो वै हि महतां साहसं तथा।
तदन्वीक्ष्य प्रयुञ्जानः सीदत्येव रजोबलः।। ११२।।
यथैव वेदाध्ययनं धर्मशास्त्रमिदं तथा।
अध्येतव्यं ब्राह्मणेन नियतं स्वर्गमिच्छता।। ११३।।
पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः।
राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि।। ११४।।
पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जिबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा।। ११५।।

पिता पितृव्यो भ्राता वा चैनामध्यापयेत्पुरः।
स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते।। ११६।।
वर्जयेदजिनं दण्डं जटाधारणमेव च।। ११७।।
समतिक्रान्तकालाच्च पतिताः सर्व एव ते।
नैवावधिपूर्तावदापद्यपि च कर्हिचित्।। ११८।।
हस्तदत्ता तु या भिक्षा लवणं व्यञ्जनानि च।
भुक्त्वा ह्यशुचितां याति दाता स्वर्गं न गच्छति।। ११९।।
ऋषिदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनः।। १२०।।
दशानां तु सहस्राणां युक्तानां धुर्यवाहिनाम्।
सुपात्रे विनियुक्तानां कन्या विद्या च तत्समम्।। १२१।।
शक्रध्वजनिपाते च उल्कापाते तथैव च।
अनध्यायस्त्रिरात्रं तु भूमिकम्पे तथैव च।। १२२।।
अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु।। १२३।।
नाग्निहोत्रादिभिस्तत्स्याद्रक्षतो ब्राह्मणस्य वा।
यत्कन्यां विधिवद्दत्त्वा फलमाप्नोति मानवः।। १२४।।
कन्या द्वादशवर्षे या न प्रदत्ता गृहे वसेत्।
भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम्।। १२५।।
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चत्स्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।। १२६।।
अलाभे देवखातानां सरसां सरितां तथा।
उद्धृत्य चतुरः पिण्डान्पारक्ये स्नानमाचरेत्।। १२७।।
अग्निवत्कपिलासत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः।
दृष्टमात्रा पुनन्त्येते तस्मात्पश्येत नित्यशः।। १२८।।
तृणं वा यदि वा काष्ठं पुष्पं वा यदि वा फलम्।
अनापृष्टं तु गृह्णानो हस्तच्छेदनमर्हति।। १२९।।
समर्घं पण्यमाहृत्य महार्घं यः प्रयच्छति।
स वै वार्धुषिको नाम यश्च वृद्ध्या प्रयोजयेत्।। १३०।।
ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा अग्रं ग्रासचतुष्टयम्।
अग्रं चतुर्गुणीकृत्य हन्तकारो विधीयते।। १३१।।

स्मृतिरत्नाकरे

'यस्य धर्मध्वतो नित्यं स्वराड्ध्वज इवोछ्रितः।
चरितानि च पापानि बैडालं नाम तं विदुः।। १३२।।
रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च।
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैतेऽन्त्यजजातयः।। १३३।।
आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत्।
लोभाद्यः पितरौ मोहात्स कदर्य इति स्मृतः।। १३४।।
योऽर्थार्थी मां द्विजे दद्यात्पठेच्चैवाविधानतः।
अनध्याये च तं प्राहुर्वेदविप्लावकं बुधाः।। १३५।।
प्रख्यापनं नाध्ययनं प्रश्नपूर्वप्रतिग्रहः।
याजनाध्यापने वादः षड्विधो वेदविक्रयः।। १३६।।
स्वभावाद्यत्र विचरेत्कृष्णसारमृगो द्विजाः।
विज्ञेयो धार्मिको देशो म्लेच्छदेशस्ततः परः।। १३७।।
निवर्तकं हि पुरुषं निवर्तयति जन्मतः।
प्रवर्तकं हि सर्वत्र पुनरावृत्तिहेतुकम्।। १३८।।
संसारभीरुभिस्तस्माद्वियुक्तं कामवर्जनम्।
विधिवत्कर्म कर्तव्यं ज्ञानेन सह सर्वदा।। १३९।।
न देहिनां यतः शक्यं कर्तुं कर्माण्यशेषतः।
तस्मादामरणाद्वैधं कर्तव्यं योगिना सदा।। १४०।।
हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतास्त्वज्ञानिनः क्रियाः।
अपश्यन्नन्धको दग्धः पश्यन्नपि च पङ्गुकः।। १४१।।
नान्यचित्तश्चिरं तिष्ठेन्न स्पृशेत्पाणिना शिरः।
न ब्रूयान्न दिशः पश्येद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः।। १४२।।
परस्य शोणितस्पर्शे रेतोविण्मूत्रजे तथा।
चतुर्णामपि वर्णानां द्वात्रिंशन्मृत्तिकाः स्मृताः।। १४३।।
दन्तवद्दन्तलग्नेषु जिह्वास्पर्शे शुचिर्न तु।
परिच्युतेष्ववस्थानान्निगिरन्नेव तच्छुचिः।। १४४।।
त्रीन्पिण्डानथवोद्धृत्य स्नायादापत्सु ना सदा।
अन्यैरपि कृते कूपे सरोवाप्यादिकं तथा।। १४५।।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते।। १४६।।
नातुरो नारुणकरक्रान्ते च नभस्तले।
न पराम्भसि नाल्पे च नाशिरस्कः कथंचन।। १४७।।
गते देशान्तरे पत्यौ गन्धमाल्याञ्जनानि च।
दन्तकाष्ठं च ताम्बूलं वर्जयेद्वनिता सती।। १४८।।
आराध्यं देवमाराध्य बन्धूनप्यनुसृत्य च।
भुक्त्वा व्याधौ च न स्नायाच्चैलेनापि निशास्वपि।। १४९।।
राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु।
स्नानदानादिकं कार्यं निशि काम्यव्रतेषु च।। १५०।।
पुच्छे बिडालकं स्पृष्ट्वा स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति।
भोजने कर्मकाले च विधिरेष उदाहृतः।। १५१।।
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च ह्याचान्तो वाग्यतः शुचिः।
तिथिवारादिकं श्रुत्वा सुसंकल्प्य यथाविधि।। १५२।।
यस्य देशं न जानाति स्थानं त्रिपुरुषं कुलम्।
कन्यादानं नमस्कारं श्राद्धं तस्य विवर्जयेत्।। १५३।।
एवं संध्यामुपास्थाय पितरावग्रजान् गुरून्।
त्रिवर्णपूर्वशिष्टांश्च पार्श्वस्थानभिवादयेत्।। १५४।।
अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा संध्योपासनमेव च।
कार्यं पत्न्या प्रतिदिनं बलिकर्म च नैत्यकम्।। १५५।।
मुख्यकाले व्यतिक्रान्ते गौणकाले तथाचरेत्।। १५६।।
आत्मशाखां परित्यज्य परशाखासु वर्तते।
न जातु परशाखोक्तं बुधः कर्म समाचरेत्।। १५७।।
समूलश्च भवेद्दर्भः पितृणां यज्ञकर्मणि।
मूलेन लोकाञ्जयति शक्रस्य च महात्मनः।। १५८।।
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीनः समाश्रितः।
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्गा उदाहृताः।। १५९।।
द्विजातिभ्यो यथा लिप्सेत्प्रकृष्टेभ्यो विशेषतः।
अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथंचन।। १६०।।
उत्कृष्टं वापकृष्टं वा तयोः कर्म न विद्यते।
मध्यमे कर्मणि हित्वा सर्वसाधारणे हि ते।। १६१।।

चणकव्रीहिगोधूमयवानां मुद्गमाषयोः।
अनिषिद्धो ग्रहीतव्यो मुष्टिरेकोऽध्वनिर्जितैः।। १६२।।
त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
अतिदानं हि दानानां नास्ति दानं ततोऽधिकम्।। १६३।।
ज्ञानमत्तस्य यो दद्याद्वेदशास्त्रसमुद्भवम्।
अपि देवास्तमर्चन्ति भर्गब्रह्मदिवाकराः।। १६४।।
पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः।। १६५।।
यत्तज्ज्ञात्वा द्विजो धर्मे पापं नैव समाचरेत्।। १६६।।
गुरूणामध्यधिक्षेपो वेदनिन्दासुहृद्वधः।
ब्रह्महत्या समं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम्।। १६७।।
तैलभेषजपाने तु औषधार्थं प्रकल्पयेत्।
विषतैलेन गर्भाणां पुत्र ते नास्ति पातकम्।। १६८।।
अतिबालामतिकृशामतिवृद्धामरोगिणीम्।
हत्वा पूर्वविधानेन चरेच्चान्द्रायणं द्विजः।। १६९।।
एकवर्षे हते वत्से कृच्छ्रपादो विधीयते।
अबुद्धिपूर्ववेशः स्यात्प्रभृते नास्ति पातकम्।। १७०।।
अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रमृते नास्ति पातकम्।
यन्त्रितं गोचिकित्सार्थं मूढगर्भातिपातने।। १७१।।
यत्ने कृते विपत्तिश्चेत्प्रायश्चित्तं समाचरेत्।
गवां च पर्वतारोहे नदीतीरे तथैव च।। १७२।।
प्रायश्चित्तं प्रकुर्वन्ति द्विजा वेदपरायणाः।। १७३।।
द्विजातीनामयं देहो न भोगाय प्रकल्पते।
इह क्लेशाय महते प्रेत्यानन्तसुखाय च।। १७४।।
यदा तूपघातो ...... च्छिष्टानि यानि च।
शुध्यन्ति दशभिः क्षारैः श्वकाकोपहतानि।। १७५।।
बालैरनुपसंक्रान्तं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः।। १७६।।
आपोहिष्ठादिमन्त्रेण मार्जयित्वा यथाविधि।
आपः पुनन्तु मन्त्रेण जलं पीत्वा समाहितः।। १७७।।

सुरभिमत्या सहाब्लिङ्गैर्मार्जयित्वार्घ्यमुत्क्षिपेत्।
द्वौ पादौ संपुटौ कृत्वा पाणिभ्यां पूरयेज्जलम्।। १७८।।
रवेरभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिरूर्ध्वं संध्ययोः क्षिपेत्।। १७९।।
आर्द्रवासस्तु यः कुर्याज्जपहोमौ प्रतिग्रहम्।
तत्सर्वं निष्फलं विद्यादित्येवं मनुरब्रवीत्।। १८०।।
धात्र्याः खादेन्न तु दिवा दधिसक्तूंसतथा निशि।
सर्वं च लिलसंबद्धं नाद्यादस्तमयं प्रति।। १८१।।
तिलार्द्रदधिमिश्राणां तिलशाकानि निस्वदन्।। १८२।।

प्रयोगरत्ने

जातकर्मादिसंस्काराः स्वकाले न भवन्ति चेत्।
चौलादर्वाक् प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तादनन्तरम्।। १८३।।
लखामात्रस्तु दृश्येत रश्मिभिस्तु समन्वितः।
उदितं तु विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत्।। १८४।।

संस्कारकौस्तुभे

सर्वदेशेषु पूर्वाह्णे मुख्यं स्यादुपनायनम्।
मध्याह्ने मध्यमं प्रोक्तमपराह्णे तु गर्हितम्।। १८५।।
विवाहेऽनधिकारेण ज्येष्ठकन्योत्थिता यदा।
तदनुज्ञां विना चापि कनिष्ठामुद्वहेत्तदा।। १८६।।
शर्म देवश्च विप्रस्य वर्म राजा च भूभुजः।
गुप्तो दत्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत्।। १८७।।
चाण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणं चरेत्।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमेव च।। १८८।।
प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन योजयेत्।
यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते।। १८९।।

निर्णयसिन्धौ

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम्।
उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्।। १९०।।
यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत्।। १९१।।

चत्वारो ब्राह्मणस्याद्याः शस्ता गान्धर्वराक्षसौ।।१९२।।
राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः।।१९३।।
षण्ढान्धबधिरादीनां विवाहोऽस्ति यथोचितम्।
विवाहासंभवे तेषां कनिष्ठो विवहेत्तदा।। १९४।।
वसवः पितरो ज्ञेया रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः।
प्रपितामहास्तथादित्याः श्रुतिरेषा सनातनी।। १९५।।
अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत्।। १९६।।
सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्जितैः।
भवितव्यं भवद्भिर्नः श्वोभूते श्राद्धकर्मणि।। १९७।।
दद्यात्त्रिभ्यः परेभ्यस्तु जीवेच्चेत्त्रितयं यदि।
आशौचे च व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते।।१९८।।
वृद्धः शौचमृते लुप्तप्रत्याख्यातभिषक्क्रियः।
आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः।।१९९।।
तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीयेत्वस्थिसंचयः।
तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत्।। २००।।
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंपर्कदूषिता।
ब्रह्मचर्यं चरेद्वापि प्रविशेद्वा हुताशनम्।। २०१।।
मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम्।
कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात्।।२०२।।
इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च क्रतूंस्ततः।। २०३।।

शूद्रकमलाकरे

जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम्।
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट्।। २०४।।
गृह्याग्नौ तु पचेदन्नं लौकिके वापि नित्यशः।
यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते।। २०५।।
द्विजस्य मरणे वेश्म विशुद्ध्यति दिनत्रयात्।।२०६।।
तस्माद्यत्नेन रक्ष्यास्ता भर्तव्या मनुरब्रवीत्।। २०७।।
ग्राम्यधर्मे च पक्त्यां च परिग्राहस्य रक्षणे।।२०८।।
भर्ता दैवं गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समाचरेत्।। २०९।।

भुङ्क्ते भुक्ते पतौ या तु स्वासीना चापि वाऽऽसिते।
विनिद्रितो विनिद्राति सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता।। २१०।।
स्त्रियाः श्रुतौ वा शास्त्रे वा प्रव्रज्या नाभिधीयते।
प्रजा हि तस्याः स्वो धर्मः सवर्णादिति धारणा।। २११।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्वावधेरूर्ध्वमब्दतः।
अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः।। २१२।।
प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषं धर्मनिर्णयम्।
विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्।। २१३।।

संस्कारमयूखे

शूद्रोऽप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः।। २१४।।
ततोऽन्नप्राशनं मासि षष्ठे कार्यं यथाविधि।
अष्टमे वाऽथ कर्तव्यं यद्वेष्टं मङ्गलं गृहे।। २१५।।
तिस्रो वर्णानुपूर्वेण द्वे तथैका यथाक्रमम्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः स्वाः शूद्रजन्मनः।। २१६।।
अथाग्न्योर्गृह्ययोर्योगं सपत्नीभेदजातयोः।
सहाधिकारसिध्यर्थमहं वक्ष्यामि शौनक।। २१७।।
क्षुधितं तृषितं श्रान्तं बलिवर्दं न योजयेत्।। २१८।।

आचारमयूखे

यस्मिन्देशे तु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका।
सैव तत्र प्रशस्ता स्यात्तया शौचं विधीयते।। २१९।।
मूत्रे तिस्रः पादयोस्तु हस्तयोस्तिस्र एव तु।
मृदः पञ्चदशा मेघो हस्तादीनां विशेषतः।। २२०।।
निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु पश्चात्संध्यां समाचरेत्।
अन्यथा कुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत्।। २२१।।
असामर्थ्याच्छरीरस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया।
मन्त्रस्नानादिकं प्रोक्तं मुनिभिः शौनकादिभिः।। २२२।।
वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत्।
तस्य तत्सफलं जप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम्।। २२३।।

भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन।
अन्यत्र दधिसक्त्वाज्यपललक्षीरमध्वपः।। २२४।।
स्त्रीणां च प्रेक्षणात्स्पर्शाद्धास्यशृङ्गारभाषणात्।
स्पन्दते ब्रह्मचर्यं च न दारेष्वृतुसंगमात्।। २२५।।
ऋतौ तु गर्भं शङ्कित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम्।
अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत्।। २२६।।

श्राद्धमयूखे

मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः।
मधुप्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत्।। २२७।।
कृच्छ्द्वादशरात्रेण मुच्यते कर्मणस्ततः।
तावद्विद्वान्नैव दद्यान्न याचेन्न च दापयेत्।। २२८।।

व्यवहारमयूखे

दत्तक्रीतादिपुत्राणां बीजवप्तुः सपिण्डता।
पञ्चमी सप्तमी चैव गोत्रं तु पालकस्य च।। २२९।।
स्त्रीधनं स्यादपत्यानां दुहिता च तदर्थिनी।
अप्रत्ता चेत्समूढा तु लभते मानमात्रकम्।। २३०।।

प्रायश्चित्तमयूखे

पतत्यर्धं शरीरस्य भार्या यस्य सुरां पिबेत्।
पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते।। २३१।।
यो यस्य हिंस्याद्द्रव्याणि ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा।
एतस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञा दद्याच्च तत्समम्।। २३२।।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम्।। २३३।।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम्।
स्नात्वा पीत्वा च हुत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत्।। २३४।।
असत्प्रतिग्रहीतारस्तथैवायाज्ययाजकाः।
नक्षत्रैर्जीवते यश्च सोऽन्धकारं प्रपद्यते।। २३५।।
अटव्यामटमानस्य ब्राह्मणस्य विशेषतः।
प्रनष्टसलिले देशे कथं शुद्धिर्विधीयते।। २३६।।

अपो दृष्ट्वैव विप्रस्तु कुर्याच्चैव सचैलकम्।
गायत्र्याष्टशतं जाप्यं स्नानमेतत्समाचरेत्।। २३७।।
देशकालं समासाद्यमवस्थामात्मनस्तथा।
धर्मशौचेऽवतिष्ठेत न कुर्याद्विगधारणम्।। २३८।।
त्रिरात्रं वाप्युपवसेत्त्र्यहं त्रिः पर्वणी भवेत्।
तथैवाम्भसि नग्नस्तु त्रिः पठेदघमर्षणम्।। २३९।।
यदह्ना कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा।
आसीनः पश्चिमां संध्यां प्राणायामैर्निहन्ति तैः।। २४०।।

विवादभङ्गार्णवे

भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्।
नरकपीडने चास्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत्।। २४१।।
ये जाता येऽप्यजाताश्च ये च गर्भे व्यवस्थिताः।
वृत्तिं तेऽपि हि काङ्क्षन्ति वृत्तिलोपो विगर्हितः।। २४२।।
ऋणमस्मिन्सन्नयत्यमृतत्वं च विन्दति।
तेन चानृणतां याति पितॄणां जीवतां सुखम्।। २४३।।
षाण्मासिकेऽपि काले तु भ्रान्तिः संजायते नृणाम्।
धात्राक्षराणि(?)स्पृष्टानि यत्रारूढान्यतः पुरा।। २४४।।
धर्मार्थं ब्राह्मणे दानं यशोऽर्थे तदनर्थकम्।। २४५।।
सर्वत्रादायकं राजा हरेद्ब्रह्मस्ववर्जितम्।
अदायकं तु ब्रह्मस्वं श्रोत्रियेभ्यः प्रदापयेत्।। २४६।।
विरोधे तु मिथस्तेषां व्यवहारो न सिध्यति।। २४७।।
ऋतुस्नाता तु या भार्या भर्तारं नोपगच्छति।
तां ग्राममध्ये विख्याप्य भ्रूणघ्नीं विनिवासयेत्।। २४८।।
स्वच्छन्दगा च या नारी तस्यास्त्यागो विधीयते।
न चैव स्त्रीवधं कुर्यान्न चैवाङ्गविकर्तनम्।। २४९।।
स्वच्छन्दव्यभिचारिण्या विवस्वांस्त्यागमब्रवीत्।
न वधं न च वैरूप्यं बन्धं स्त्रीणां विवर्जयेत्।। २५०।।
दानात्प्रभृति या तु स्याद्यावदायुः पतिव्रता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति यथैवारुन्धती तथा।। २५१।।

यल्लब्धं लाभकाले तु स्वजात्या कन्यया सह।
कन्यागतं तु तद्विद्याच्छुद्धं वृद्धिकरं स्मृतम्।। २५२।।
वैवाहिकं तु तद्विद्याद्भार्यया यत्समागतम्।
धनमेवंविधं सर्वं विज्ञेयं धर्मसाधनम्।। २५३।।
आरुह्य संशयं यत्र प्रसभं कर्म कुर्वते।
तस्मिन्कर्मणि तुष्टेन प्रसादः स्वामिना कृतः।। २५४।।
तत्र लब्धं तु यत्किंचिद्धनं शौर्येण तद्भवेत्।
ध्वजाहृतं भवेद्यच्च विभाज्यं नैव तत्स्मृतम्।। २५५।।
संग्रामादाहृतं यत्तु विद्राव्य द्विषतां बलम्।
स्वाम्यर्थ्ये जीवितं त्यक्त्वा तद्ध्वजाहृतमुच्यते।। २५६।।

व्यवहारतत्वे

नाध्यापयति नाधीते स ब्राह्मणब्रुवः स्मृतः।। २५७।।

दायक्रमसंग्रहे

पतितस्तु सुतः क्लीबः पङ्गुश्चोन्मत्तको जडः।
अन्धो चिकित्सरोगार्तो भर्तव्यास्ते निरंशकाः।। २५८।।
सामान्यं पुत्रकन्याऽऽधिः सर्वस्वं न्याययाचितम्।
अदेयान्याहुरष्टैव यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम्।। २५९।।

दायतत्त्वे

राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद्द्विजेभ्योऽर्धं द्विजः पुनः।
विद्वानशेषमादद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः।। २६०।।
इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेत्।
अनिवेदितविज्ञाता दाप्यस्तं दण्डमेव च।। २६१।।

शंकरविजये

पूज्येषु सेवका नीचाः पुण्यमार्गक्रियानुगाः।
तत्तदेव पदं चापुर्यथा जातिकुलस्थितिः।। २६२।।
विप्राणां दैवतं शंभुः क्षत्रियाणां तु माधवः।
वैश्यानां तु भवेद्ब्रह्मा शूद्राणां गणनायकः।। २६३।।

धर्मसिन्धौ

विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला।
तस्याः शुद्धेः परं कार्यं मङ्गलं मनुरब्रवीत्।। २६४।।

(वृद्धमनुः)

श्राद्धहेमाद्रौ

श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रा नागदैवतमस्तके।
यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते।। २६५।।

यश्च व्याकुरुते वाचं यश्च मीमांसतेऽध्वरम्।
यश्च वेत्त्यात्मकैवल्यं पङ्क्तिपावनपावनाः।। २६।।

यां कांचित्सरितं प्राप्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
यमुनाया विशेषेण ब्राह्मणो नियतेन्द्रियः।। २६७।।

हिरण्यं वैश्वदेवे तु दद्याद्वै दक्षिणां बुधः।
पित्रे तु रजतं देयं शक्त्या भूमिगवादिकम्।। २६८।।

प्रोषितस्य यदा कालो गतश्चेद्द्वादशाब्दिकः।
प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत्।। २६९।।

पाराशरमाधवीये

यदि तस्मिन्दाप्यमाने भवेन्मोषे तु संशयः।
मुषितः शपथं दाप्यो बन्धुभिर्वापि साधयेत्।। २७०।।

न प्रातर्न प्रदोषश्च संध्याकालोति काल हि।
मुख्याभावेऽनुकल्पश्च सर्वस्मिन्कर्मणि स्मृतः।। २७१।।

पीत्वा योऽशनमश्नीयात्पात्रे दत्तमगर्हितम्।
भार्याभृतकदासेभ्य उच्छिष्टं शेषयेत्ततः।। २७२।।

अनिन्दन्भक्षयेन्नित्यं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्।
पञ्चग्रासा महामौनं प्राणाद्याप्यायनं महत्।। २७३।।

महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः।
वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते।। २७४।।

पित्रोरुपशमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत्।
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान्यमः।। २७५।।

नभस्यस्यापरः पक्षो यत्र कन्यां व्रजेद्रविः।
स महालयसंज्ञः स्याद्गजच्छायाह्वयस्तथा।। २७६।।
सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डनिवर्तनम्।
तान्येव दश गोचर्मदाता पापैः प्रमुच्यते।। २७७।।

स्मृतिचन्द्रिकायाम्

प्रतिश्रुत्य न कुर्याद्यः स कार्यः स्याद्बलादपि।
स चेन्न कुर्यात्तत्कर्म प्राप्नुयाद्द्विशतं दमम्।। २७८।।
पथि विक्रीय तद्भाण्डं वणिक् भृत्यं त्यजेद्यदि।
अथ तस्यापि देयं स्याद्भृतेरर्थं लभेत सः।। २७९।।
यो भाटयित्वा शकटं नीत्वा चान्यत्र गच्छति।
भाटं न दद्याद्दाप्यः स्यादरूढस्यापि भाटकम्।। २८०।।
स्थापितां चैव मर्यादामुभयोर्ग्रामयोस्तथा।
अतिक्रामन्ति ये पापास्ते दण्ड्या द्विशतं दमम्।। २८१।।
अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता।
पत्न्येव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च।। २८२।।
कुर्यादनुपनीतोऽपि श्राद्धमेको हि यः सुतः।
पितृयज्ञाहुतं पाणौ जुहुयाद्ब्राह्मणस्य सः।। २८३।।
यस्यामस्तं रविर्याति पितरस्तामुपासते।
तिथिं तेभ्यो यतो दत्तो ह्यपराह्णः स्वयंभुवा।। २८४।।
मध्ये वा यदि वाप्यन्ते यत्र कन्यां रविर्व्रजेत्।
पक्षः स कालः संपूर्णः श्राद्धं तत्र विधीयते।। २८५।।
ऋतुकाले नियुक्तो वा नैव गच्छेत्स्त्रियं क्वचित्।
तत्र गच्छन्समाप्नोति ह्यनिष्टं फलमेव च।। २८६।।
समाहितोपलिप्ते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले।
स्वयं धौतेन कर्तव्याः क्रिया धर्म्या विपश्चिता।। २८७।।
न नियुक्तः शिरोवर्ज्यं माल्यं शिरसि वेष्टयेत्।। २८८।।
अनुष्ठितं तथा देवैर्मुनिभिर्यदनुष्ठितम्।
नानुष्ठितं मनुष्यैस्तदुक्तं कर्म समाचरेत्।। २८९।।

खादिरस्य करञ्जस्य कदम्बस्य तथैव च।
अर्कस्य करवीरस्य कुटजस्य विशेषतः।। २९०।।
पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां च तथा तिथौ।
तैलेनाभ्यञ्जमानस्तु धनायुर्भ्यां प्रहीयते।। २९१।।
अन्यायोपात्तवित्तस्य पतितस्य च वार्धुषेः।
न स्नायादुदपानेषु स्नात्वा कृच्छ्रं समाचरेत्।। २९२।।
मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा।
अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा।। २९३।।
संक्रान्त्यां भानुवारे च सप्तम्यां राहुदर्शने।
अरोगयपुत्रमित्रार्थी न स्नायादुष्णवारिणा।२९४।।
स गोहत्याकृतं पापं प्राप्नोत्येव न संशय।। २९५।।
षडोङ्कारं जपन्विप्रो गायत्रीं मनसा शुचिः।
अनेकजन्मजैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।। २९६।।
तिस्रो व्याहृतयः पूर्वषडोङ्कारसमन्वितः।
पुनः संस्कृत्य चोङ्कारमन्त्रस्याद्यन्तयोस्तथा।। २९७।।
सौङ्कारचतुरावृत्य विज्ञेया सा शताक्षरा।
शताक्षरां समावृत्य सर्ववेदफलं लभेत्।। २९८।।
एतया ज्ञातया नित्यं वाङ्मयं विदितं भवेत्।
उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवनसप्तकम्।। २९९।।
यथा योधन(?) हस्तेभ्यो राज्यं गच्छति धार्मिकः।
एवं तिलसमायुक्तं जलं प्रेतेषु गच्छति।। ३००।।
एकैकस्य तिलैर्मिश्रांस्त्रींस्त्रीन्कृत्वा जलाञ्जलिम्।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।। ३०१।।
इहजन्मकृतं पापमन्यजन्मकृतं च यत्।
अङ्गारकचतुर्दश्यां तर्पयंस्तद्व्यपोहति।। ३०२।।
न पिबेन्न च भुञ्जीत द्विजः सव्येन पाणिना।
नैकहस्तेन च जलं शूद्रेणावर्जितं पिबेत्।। ३०३।।
पिबतो यत्पतेत्तोयं भोजने मुखनिःसृतम्।
अभोज्यं तद्भवेदन्नं भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषी।। ३०४।।

पीतावशेषितं कृत्वा ब्राह्मणः पुनरापिबेत्।
त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्वामहस्तेन वा पुनः।। ३०५।।

स्मृतिरत्नाकरे

चण्डालादेस्तु संस्पर्शे वारुणं स्नानमेव हि।
इतराणि तु चत्वारि यथायोग्यं स्मृतानि हि।। ३०६।।
मनुष्यतर्पणे चैव स्नाने वस्त्रादिपीडने।
निवीतिस्तूभये विप्रस्तथा मूत्रपुरीषयोः।। ३०७।।
वस्त्रं त्रिगुणितं यस्तु निष्पीडयति मूढधीः।
वृथा स्नानं भवेत्तस्य यच्चैवादशमाम्बुभिः।। ३०८।।
और्ध्वपुंड्रो मृदा धार्यो यतिना च विशेषतः।
भस्मचन्दनगन्धादीन्वर्जयेद्यावदायुषा।। ३०९।।

निर्णयसिन्धौ

अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिग्रहणं तदा।
उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषभाक्।। ३१०।।
एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः।
न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते।। ३११।।
पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः।
उपानयेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे परः परः।। ३१२।।
जीवन्यदि समागच्छेद्धृतकुम्भे निमज्य च।
उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत्।। ३१३।।
सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृघातकः।। ३१४।।
तैलाभ्यङ्गो नार्कवारे न भौमे
नो संक्रान्तौ वैधृतौ विष्टिषष्ठयोः।
पर्वस्वष्टम्यां च नेष्टः स इष्टः
प्रोक्तान्मुक्त्वा वासरे सूर्यसूनोः।। ३१५।।
स्नुषास्वस्त्रीयतत्पुत्रा ज्ञातिसंबन्धिबान्धवाः।
पुत्राभावे तु कुर्वीरन् सपिण्डान्तं यथाविधि।। ३१६।।

श्राद्धं करिष्यन्कृत्वा वा भुक्त्वा वापि निमन्त्रितः।
उपोष्य च तथा भुक्त्वा नोपेयाच्च ऋतावपि।। ३१७।।
निमन्त्र्य विप्रांस्तदहर्वर्जयेन्मैथुनं क्षुरम्।
प्रमत्तानां च स्वाध्यायं क्रोधं शाकं तथानृतम्।। ३१८।।
मृन्मयं दारुजं पात्रमयःपात्रं च यद्भवेत्।
राजतं दैविके कार्ये शिलापात्रं च वर्जयेत्।। ३१९।।
अमृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदैहिकम्।
प्रायश्चितमसौ स्मार्तं कृत्वाग्नीनादधीत च।। ३२०।।
द्वादशाहव्रतं चर्यात्त्रिरात्रमथवास्य तु।
स्नात्वोद्वहेत तां भार्यामन्यां वा तदभावतः।। ३२१।।
अग्नीनाधाय विधिवद्व्रात्यस्तोमेन वा यजेत्।
अथैन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु।। ३२२।।
क्लीबाद्या नोदकं कुर्युः स्तेना व्रात्या विधर्मिणः।
गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः।। ३२३।।
दशाहस्यान्तरो यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति।
गयायां मरणं यादृक् तादृक्फलमवाप्नुयात्।। ३२४।।
द्वादशेऽहनि विप्राणामाशौचान्ते च भूभुजाम्।। ३२५।।
वैश्यानां तु त्रिपक्षादावथवा स्यात्सपिण्डनम्।। ३२६।।

शूद्रकमलाकरे

विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता।
स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च।। ३२७।।
संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते।
संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः।। ३२८।।
पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयन्निशाम्।। ३२९।।
भगिन्यां संस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते।
मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते।। ३३०।।
शालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुध्यति।। ३३१।।
षण्ढं तु ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत्।। ३३२।।

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
अपरो नापितः प्रोक्तः शूद्रधर्माधिकोऽपि सः।।३३३।।

व्यवहारमयूखे

प्रमादान्नाशितं दाप्यः समं हि द्रोहनाशितम्।
न तु दाप्यो हृतं चोरैर्दग्धमूढं जलेन वा।। ३३४।।

श्राद्धमयूखे

शुक्लाः समुन्नताः श्रेष्ठास्तथापद्मोत्पलानि तु।
गन्धरूप्योपयुक्तानि ऋतुकालोद्भवानि च।। ३३५।।
जपादिकुसुमं झिण्टी रूपिका सुकुरुण्टिका।
पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धे कर्मणि नित्यशः।। ३३६।।

प्रायश्चित्तमयूखे

पतितान्त्यश्वपाकेन संसृष्टा चेद्रजस्वला।
तान्यहानि व्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं समाचरेत्।।३३७।।
प्रथमेऽह्नि त्रिरात्रं स्याद्द्वितीये घ्रूमेव तु।
अहोरात्रं तृतीयेऽह्नि चतुर्थे नक्तमेव च।। ३३८।।

विवादभङ्गार्णवे

ब्रह्मदायागतां भूमिं हरेयुर्ब्राह्मणीसुताः।
गृहं द्विजातयः सर्वे तथा क्षेत्रं क्रमागतम्।। ३३९।।

(बृहन्मनुः)

मिताक्षरायाम्

दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः।
शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते।। ३४०।।

पराशरमाधवीये

समानोदकभावस्तु निवर्तेताचतुर्दश।
जन्मनामस्मृतेरेके तत्परं गोत्रमुच्यते।। ३४१।।
आषाढीमवधिं कृत्वा पञ्चमं पक्षमाश्रिताः।
काङ्क्षन्ति पितरः क्लिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम्।। ३४२।।

तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम्।
आषाढीमवधिं कृत्वा यः पक्षः पञ्चमो भवेत्।। ३४३।।
तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत कन्यास्थोऽर्को भवेन्न वा।। ३४४।।

स्मृतिरत्नाकरे

त्रयोदश्यां तु सप्तम्यां चतुर्थ्यामर्धरात्रतः।
अर्वाङ् नाध्ययनं कुर्यादिच्छेत्तस्य परायणम्।। ३४५।।
रात्रौ यामद्वयादर्वाग्यदि पश्येत्त्रयोदशीम्।
सा रात्रिः सर्वकर्मघ्नी शङ्कराराधनं विना।। ३४६।।

निर्णयसिन्धौ

असंबन्धा भवेन्मातुः पिण्डेनैवोदकेन वा।
सा विवाह्या द्विजातीनां त्रिगोत्रान्तरिता च या।। ३४७।।
श्वशूद्रपतिताश्चान्त्या मृताश्चेद्द्विजमन्दिरे।
शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा।। ३४८।।
दशरात्राच्छुनिमृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः।
द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्यो मासचतुष्टयात्।। ३४९।।
अत्यन्तं वर्जयेद्गेहमित्येवं मनुरब्रवीत्।। ३५०।।

शूद्रकमलाकरे

जीवञ्जातो यदि ततो मृतः सूतकमेव तु।
सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकम्।। ३५१।।

प्रायश्चित्तमयूखे

मातुर्मातृगमने पितुर्मातृगमने तथा।
एतास्त्वकामतो गत्वा द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्।। ३५२।।

विवादभङ्गार्णवे

देशनामनदीभेदान्निकटेऽपि भवेद्यदि।
तत्तु देशान्तरं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयंभुवा।। ३५३।।

दशरात्रेण या वार्ता यत्र न श्रूयतेऽथवा।
गुरोः शिष्ये पितुः पुत्रे दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः।। ३५४।।
एकोदरे जीवति तु सापत्नो न लभेद्धनम्।
स्थावरेऽप्येवमेव स्यात्तदभावे लभेत वै।। ३५५।।

परिशिष्टं समाप्तम्

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
अकन्येति तु यः कन्याम्	८/२२५	अग्निहोत्रं समादाय	६/४
अकामतः कृतं पापम्	११/४६	अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्	११/४१
अकामतः कृते पापे	११/४५	अग्नीनात्मनि वैतानान्	६/२५
अकमतस्तु राजन्यम्	११/१२७	अग्नीन्धनं भैक्षचर्याम्	२/१०८
अकामस्य क्रिया काचित्	२/४	अग्नेः सोमयमाभ्यां च	३/२११
अकामोप हतं नित्यम्	[१२/७]	अग्नेः सोमस्य चैवादौ	३/८५
अकारणपरित्यक्ता	३/१५७	अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक्	३/७६
अकारं चाप्युकारं च	२/७६	अग्न्यभावे तु विप्रस्य	३/२१२
अकुर्वन्विहितं कर्म	११/४४	अग्न्यागारे गवां गोष्ठे	४/५८
अकृतं च कृतात्क्षेत्रात्	१०/११४	अग्न्याधेयं पाकयज्ञान्	२/१४३
अकृता वा कृता वापि	९/१३६	अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु	३/१८४
अकृत्वा भैक्षचरणम्	२/१८७	अघं स केवलं भुङ्क्ते	३/११८
अक्रोधनान्सुप्रसादान्	३/२१३	अङ्गावपीडनायां च	८/२८७
अक्रोधनाः शौचपराः	३/१९२	अङ्गुलीर्ग्रन्थिभेदस्य	९/२७७
अक्षमाला वसिष्ठेन	९/२३	अङ्गुष्ठमूलस्य तले	२/५९
अक्षारलवणान्नाः स्युः	५/७३	अचक्षुर्विषयं दुर्गम्	४/७७
अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टम्	१०/७१	अच्छलेनैव चान्विच्छेत्	८/१८७
अगारदाही गरदः	३/१५८	अजडश्चेदपौगण्डः	८/१४८
अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये	३/३८५	अजाविकं सैकशफम्	९/११९
अग्निदग्धानग्निदग्धान्	३/१९९	अजाविके तु संरुद्धे	८/२३५
अग्निदान्भक्तदांश्चैव	९/२७८	अजीगर्तः सुतं हन्तुम्	१०/१०५
अग्निपक्वाशनो वा स्यात्	५/१७	अजीवंस्तु यथोक्तेन	१०/८१
अग्निवायुरविभ्यस्तु	१/२३	अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रम्	११/१५०
अग्निं वाहारयेदेनम्	८/११४	अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्	११/२३२
अग्निहोत्रं च जुहुयात्	४/२५	अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा	११/१४६

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
अज्ञेभ्यो ग्रन्थिन: श्रेष्ठा:	१२/१०३
अज्ञो भवति वै बाल:	२/१५३
अण्डजा: पक्षिण: सर्पा:	१/४४
अण्व्यो मात्रा विनाशि-	१/२७
अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि	४/९८
अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते	२/३९
अत: स्वल्पीयसि द्रव्ये	११/८
अतपास्त्वनधीयान:	४/१९०
अतस्तु विपरीतस्य	७/३४
अतिक्रान्ते दशाहे च	५/७६
अतिक्रामेत्प्रमत्तं या	९/७८
अतिथिं चाननुज्ञाप्य	४/१२२
अतिवादांस्तितिक्षेत	६/४७
अतैजसानि पात्राणि	६/५३
अतोऽन्यतममास्थाय	४/१३
अतोऽन्यतमया वृत्त्या	११/८६
अत्युष्णं सर्वमन्नं स्यात्	३/२३६
अत्र गाथा वायुगीता:	९/४२
अथ मूलमनाहार्यम्	८/२०२
अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा	८/१२८
अदत्तानामुपादानम्	१२/७
अदत्त्वा तु य एतेभ्य:	३/११५
अदर्शयित्वा तत्रैव	८/१५५
अदातरि पुनर्दाता	८/१६१
अदीयमाना भर्तारम्	९/९१
अदूषितानां द्रव्याणाम्	९/२८६
अदेश्यं यश्च दिशति	८/५३
अद्भिरेव द्विजाग्र्याणाम्	३/३५
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति:	५/१०९
अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचम्	५/११८

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
अद्भ्योग्निर्ब्रह्मत: क्षत्रम्	९/३२१
अद्यात्काक: पुरोडाशम्	७/२१
अद्रोहेणैव भूतानाम्	४/२
अद्वारेण च नातीयात्	४/७३
अधमर्णार्थसिध्यर्थं	८/४७
अधर्मदण्डनं लोके	८/१२७
अधर्मप्रभवं चैव	६/६४
अधर्मेण च य: प्राह	२/१११
अधर्मेणैधते तावत्	४/१७४
अधस्तान्नोपदध्याच्च	४/५४
अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायै	८/३१०
अधार्मिको नरो यो हि	४/१७०
अधितिष्ठेन्न केशांस्तु	४/७८
अधियज्ञं ब्रह्म जपेत्	६/८३
अधिविन्ना तु या नारी	९/८३
अधीत्य विधिवद्वेदान्	६/३६
अधीयीरंस्त्रयो वर्णा:	१०/१
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिक:	४/१९६
अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्	७/८१
अध्यग्न्यध्यावाहनिकम्	९/१९४
अध्यात्मरतिरासीन:	६/४९
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ:	३/७०
अध्यापनमध्ययनम्	१/८८
अध्यापनमध्ययनम्	१०/७५
अध्यापयामास पितॄन्	२/१५१
अध्येष्यमाणस्त्वाचान्त:	२/७०
अध्येष्यमाणं तु गुरु:	२/७३
अनंशौ क्लीबपतितौ	९/२०१
अनग्निरनिकेत: स्यात्	६/४३
अनधीत्य द्विजो वेदान्	६/३७

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
अनन्तरः सपिण्डाद्यः	९/१८७	अनृतं तु वदन्दण्ड्यः	८/३६
अनन्तरमरिं विद्यात्	७/१५८	अनृतावृतुकाले च	५/१५३
अनन्तरासु जातानाम्	१०/०७	अनेकानि सहस्राणि	५/१५९
अनपत्यस्य पुत्रस्य	९//२१७	अनेन क्रमयोगेन	६/८५
अनपेक्षितमर्यादम्	८/३०९	अनेन क्रमयोगेन	२/१६४
अनभ्यासेन वेदानाम्	५/४	अनेन तु विधानेन	९/१२८
अनर्चितं वृथामांसम्	४/२१३	अनेन नारीवृत्तेन	५/१६६
अनातुरः खानि खानि	४/१४४	अनेन विधिना नित्यम्	५/१६९
अनादेयं नाददीत	८/१७०	अनेन विधिना यस्तु	११/११५
अनादेयस्य चादानात्	८/१७१	अनेन विधिना राजा	८/१७८
अनाम्नातेषु धर्मेषु	१२/१०८	अनेन विधिना राजा	८/३४३
अनारोग्यमनायुष्यम्	२/५७	अनेन विधिना श्राद्धम्	३/२८१
अनार्यता निष्ठुरता	१०/५८	अनेन विधिना सर्वान्	६/८१
अनार्यमार्यकर्माणम्	१०/७३	अनेन विप्रो वृत्तेन	४/२६०
अनार्यायां समुत्पन्नः	१०/६६	अन्तर्गतशवे ग्रामे	४/१०८
अनाहिताग्निता स्तेयम्	११/६५	अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्	५/७९
अनित्यो विजयो यस्मात्	७/१९९	अन्धो जडः पीठसर्पी	८/३९४
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैः	३/४२	अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति	८/९५
अनियुक्तासुतश्चैव	९/१४३	अन्नमेषां पराधीनम्	१०/५४
अनिर्दशाया गोः क्षीरम्	५/८	अन्नहर्तामयावित्वम्	११/५१
अनिर्दशाहां गां सूताम्	८/२४२	अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि	८/३१७
अनुक्तनिष्कृतीनां तु	११/२०९	अन्नाद्यजानां सत्त्वानाम्	११/१४३
अनुगम्येच्छया प्रेतम्	५/१०३	अन्यदुप्तं जातमन्यत्	९/४०
अनुपघ्नन्पितृद्रव्यम्	९/२०८	अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या	८/२०४
अनुबन्धं परिज्ञाय	८/१२६	अन्यानपि प्रकुर्वीत	७/६०
अनुभावी तु यः कश्चित्	८/६९	अन्ये कृतयुगे धर्माः	१/८५
अनुमन्ता विशसिता	५/५१	अन्येषां चैवमादीनाम्	८/३२९
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः	७/६४	अन्येष्वपि तु कालेषु	७/१८३
अनुष्णाभिरफेनाभिः	२/६१	अन्योन्यस्याव्यभीचारः	९/१०१
अनृतं च समुत्कर्षे	११/५५	अन्वाधेयं च यद्दत्तम्	९/१९५

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
अप: शस्त्रं विषं मांसम्	१०/८८	अभिचारेषु सर्वेषु	९/२९०
अप: सुराभाजनस्था:	११/१४७	अभिपूजितलाभांस्तु	६/५८
अपत्यं धर्मकार्याणि	९/२८	अभियोक्ता न चेद्ब्रूयात्	८/५८
अपत्यलोभाद्या तु स्त्री	५/१६१	अभिवादनशीलस्य	२/१२१
अपदिश्यापदेश्यं च	८/५४	अभिवादयेद्वृद्धांश्च	४/१५४
अपराजितां वास्थाय	६/३१	अभिवादात्परं विप्र:	२/१२२
अपराह्णस्तथा दर्भा:	३/२५५	अभिशस्तस्य षण्ढस्य	४/२११
अपसव्यमग्नौ कृत्वा	३/२१४	अभिषह्य तु य: कन्याम्	८/३६७
अपहयुराभाजनस्था	११/१४७	अभोज्यमन्नं नात्तव्यम्	११/१६०
अपह्नवेऽधमर्णस्य	८/५२	अभोज्यानांतुभुक्त्वान्नम्	११/१५२
अपां समीपे नियत:	२/१०४	अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णो:	२/१७८
अपाङ्क्त्यो यावत:पाङ्क्त्यान्	३/१७६	अभ्यञ्जनं स्थापनं च	२/२११
अपाङ्क्तदाने यो दातु:	३/१६९	अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्	११/१३३
अपाङ्क्त्योपहता पङ्क्ति:	३/१८३	अमत्यैतानि षड् जग्ध्वा	५/२०
अपामग्नेश्च संयोगात्	५/११३	अमन्त्रिका तु कार्येयम्	२/६६
अपि न: स कुले जायात्	३/२७४	अमात्य: प्राड्विवाको वा	९/२३४
अपि यत्सुकरं कर्म	७/५५	अमात्यमुख्यं धर्मज्ञम्	७/१४१
अपुत्रायां मृतायां तु	९/१३५	अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थ	७/१५७
अपुत्रोऽनेन विधिना	९/१२७	अमात्ये दण्ड आयत्त:	७/६५
अपुष्पा: फलवन्तो ये	१/४७	अमानुषीषु पुरुष:	११/१७३
अप्रणोद्योऽतिथि: सायम्	३/१०५	अमाययैव वर्तेत	७/१०४
अप्रयत्न: सुखार्थेषु	६/२६	अमावास्या गुरुं हन्ति	४/११४
अप्राणिभिर्यत्क्रियते	९/२२३	अमावास्यामष्टमीं च	४/१२८
अप्सु प्रवेश्य तं दण्डम्	९/२४४	अमेध्ये वा पतेन्मत्त:	११/९६
अप्सु भूमिवदित्याहु:	८/१००	अयं द्विजैर्हि विद्वद्भि:	९/६६
अबीजविक्रयी चैव	९/२९१	अयमुक्तो विभागो व:	९/२२०
अब्दार्धमिन्द्रमित्येतत्	११/२५५	अयाज्ययाजनैश्चैव	३/६५
अब्राह्मण: संग्रहणे	८/३५९	अयुध्यमानस्योत्पाद्य	४/१६७
अब्राह्मणादध्ययनम्	२/२४१	अरक्षिता गृहे रुद्धा:	९/१२
अभयस्य हि यो दाता	८/३०३	अरक्षितारं राजानम्	८/३०८

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य	११/२५८	अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीम्	३/१०
अराजके हि लोकेऽस्मिन्	७/३	अव्रतानाममन्त्राणाम्	१२/११४
अरोगा: सर्वसिद्धार्था:	१/८३	अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तम्	३/१७०
अर्थकामेष्वसक्तानाम्	२/१३	अशक्नुवंस्तु शुश्रूषाम्	१०/९९
अर्थसम्पादनार्थं च	७/१६८	अशासंस्तस्करान्यरतु	९/२५४
अर्थस्य संग्रहे चैनाम्	९/११	अश्मनोऽस्थीनि गोवालान्	८/२५०
अर्थानर्थावुभौ बुद्धा	८/२४	अश्रोत्रिय: पिता यस्य	३/१३६
अर्थेऽपव्ययमानं तु	८/५१	अश्लीकमेतत्साधूनाम्	४/२०६
अलंकारं नाददीत	९/९२	अष्टपाद्यं तु शूद्रस्य	८/३३७
अलंकृतश्च संपश्येत्	७/२२२	अष्यवष्टौ समश्नीयात्	११/२१८
अलब्धं चैव लिप्सेत	७/९९	अष्टौ मासान्यथादित्य:	९/३०५
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन	७/१०१	असंस्कृतप्रमीतानाम्	३/२४५
अलाबुं दारुपात्रं च	६/५४	असंस्कृतान्पशून्मन्त्रै:	५/३६
अलाभे न विषादी स्यात्	६/५७	असकृद्गर्भवासेषु	१२/७८
अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण	४/२००	असंख्या मूर्तयस्तस्य	१२/१५
अल्पं वा बहु वा यस्य	२/१४९	असंदितानां संधाता	८/३४२
अल्पान्नाभ्यवहारेण	६/५९	असपिण्डं द्विजं प्रेतम्	५/१०१
अवकाशेषु चोक्षेषु	३/२०७	असपिण्डा च या मातु:	३/५
अवकीर्णी तु काणेन	११/११८	असंभाष्ये साक्षिभिश्च	८/५५
अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रम्	११/२०८	असंभोज्या ह्यसंयाज्या:	९/२३८
अवगूर्य त्वब्दशतम्	११/२०६	असंभ्यक्कारिणश्चैव	९/२५९
अवनिष्ठीवतो दर्पात्	८/२८२	असाक्षिकेषु त्वर्थेषु	८/१०९
अवहार्यो भवेच्चैव	८/१९८	अस्थिमतां तु सत्वानाम्	११/१४०
अवाक्शिरास्तमस्यन्धे	८/९४	अस्थिस्थूणं स्नायुयुतम्	६/७६
अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना	२/१२८	अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्त:	१/१०७
अविद्यानां तु सर्वेषाम्	९/२०५	अस्त्रं गमयति प्रेतान्	३/२३०
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च	९/३१७	अस्वतन्त्रा: स्त्रिय: कार्या:	९/२
अविद्वांसमलं लोके	२/२१४	अस्वामिना कृतो यस्तु	८/१९९
अवेक्षेत गतीर्नृणाम्	६/६१	अहन्यहन्यवेक्षेत	८/४१९
अवेदयानो नष्टस्य	८/३२	अहं प्रजा: सिसृक्षंस्तु	१/३४

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यम्	९/१८९
अहिंसयेन्द्रियासङ्गै:	६/७५
अहिंसयैव भूतानाग्	२/१५९
अहिंसा सत्यमस्तेयम्	१०/६३
अहुतं च हुतं चैव	३/७३
अहोरात्रे विभजते	१/६५
अह्ना चैकेन रात्र्या च	५/६४
अह्ना रात्र्या च याञ्जन्तून्	६/६९
आकारैरिङ्गितैर्गत्या	८/२६
आकाशात्तु विकुर्वाणात्	१/७६
आकाशेशास्तु विज्ञेया:	४/१८४
आगमं निर्गमं स्थानम्	८/४०१
आगस्सु ब्राह्मणस्यैव	९/२४१
आगारादभिनिष्क्रान्त:	६/४१
आचम्य प्रयतो नित्यम्	५/८६
आचम्य प्रयतो नित्यम्	२/२२२
आचम्योदक्परावृत्य	३/२१७
आचार: परमो धर्म:	१/१०८
आचारहीन: क्लीबश्च	३/१६५
आचाराद्विच्युतो विप्र:	१/१०९
आचाराल्लभते ह्यायु:	४/१५६
आचार्यं स्वमुपाध्यायम्	५/९१
आचार्य च प्रवक्तारम्	४/१६२
आचार्यपुत्र: शुश्रूषु:	२/१०९
आचार्यश्च पिता चैव	२/२२५
आचार्यस्त्वस्य यां	२/१४८
आचार्ये तु खलु प्रेते	२/२४७
आचार्यो ब्रह्मलोकेश:	४/१८२
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्ति:	२/२२६
आच्छाद्य चार्चयित्वा च	३/२७
आतुरामभिशस्तां वा	११/११२
आत्मनश्च परित्राणे	८/३४९
आत्मनो यदि वान्येषाम्	११/११४
आत्मैव देवता: सर्वा:	१२/११९
आत्मैव ह्यात्मन: साक्षी	८/८४
आददीत न शूद्रोऽपि	९/९८
आददीताथ षड्भागम्	७/१३१
आददीताथ षड्भागम्	८/३३
आदानमप्रियकरम्	७/२०४
आदाननित्याच्चादातु:	११/१५
आदिष्टी नोदकं कुर्यात्	५/८८
आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म	११/२६५
आद्याद्यस्य गुणं त्वेषाम्	१/२०
आधि: सीमा बालधनम्	८/१४९
आधिश्चोपनिधिश्चोभौ	८/१४५
आप: शुद्धा भूमिगता:	५/१२८
आपत्कल्पेन यो धर्मम्	११/२८
आपदर्थं धनं रक्षेत्	७/२१३
आपद्गतोऽथवा वृद्ध:	९/२८३
आपो नारा इति प्रोक्ता:	१/१०
आप्ता: सर्वेषु वर्णेषु	८/६३
आमन्त्रितस्तु य: श्राद्धे	३/१९१
आयतिं सर्वकार्याणाम्	७/१७८
आयत्यां गुणदोषश:	७/१७९
आयुष्मन्तं सुत सूते	३/२६३
आयुष्मान्भव सौम्येति	२/१२५
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते	२/५२
आयोगवश्च क्षत्ता च	१०/१६
आरण्यांश्च पशून्सर्वान्	१०/८९
आरण्यानां च सर्वेषाम्	५/९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
आरभेतैव कर्माणि	९/३००	इतरे कृतवन्तुस्तु	९/२४२
आरम्भरुचिताऽधैर्यम्	१२/३२	इतरेषां तु पुण्यानाम्	१०/९३
आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः	८/२१६	इतरेषु त्वपाङ्क्त्येषु	३/१८२
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत	४/७६	इतरेषु ससन्ध्येषु	१/७०
आर्धिकः कुलमित्रं च	४/२५३	इतरेषु तु शिष्टेषु	३/४१
आर्यता पुरुषज्ञानम्	७/२११	इतरेश्वागमाद्धर्मः	१/८२
आर्षं धर्मोपदेशं च	१२/१०६	इत्येतत्तपसो देवाः	११/२४४
आर्षे गोमिथुनं शुल्कम्	३/५३	इत्येतदेनसामुक्तम्	११/२४७
आषोडषात् ब्राह्मणस्य	२/३८	इतयेतन्मानवं शास्त्रम्	१२/१२६
आवृत्तानां गुरुकुलात्	७/८२	इदं शरणमज्ञानात्	६/८४
आश्रमादाश्रमं गत्वा	६/३४	इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ	१/५८
आश्रमेषु द्विजातीनाम्	८/३९०	इदं शास्त्रमधीयानः	१/१०४
आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य	२/३८	इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठम्	१/१०६
आसनं चैव यानं च	७/१६१	इदं तु वृत्तिवैकल्यात्	१०/८५
आसनावसथौ शय्याम्	३/१०७	इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च	९/३०३
आसनाशनशय्याभिः	४/२९	इन्द्रानिलयमार्काणाम्	७/४
आसनेषूपक्लृप्तेषु	३/२०८	इन्द्रियाणां च सर्वेषाम्	२/९९
आसपिण्डक्रियाकर्म	३/२४७	इन्द्रियाणां जये योगम्	७/४४
आ समाप्तेः शरीरस्य	२/२४४	इन्द्रियाणां निरोधेन	६/६०
आ समुद्रात्तु वै पूर्वात्	२/२२	इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन	१२/५२
आसां महर्षिचर्याणाम्	६/३२	इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन	२/९३
आसीतामरणात्क्षान्ता	५/१५८	इन्द्रियाणां विचरताम्	२/८८
आसीदिदं तमोभूतम्	१/५	इन्द्रियाणि यशः स्वर्गम्	११/४०
आसीनस्य स्थितः कुर्यात्	२/१९६	इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु	४/१६
आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा	११/१३	इन्धनार्थमशुष्काणाम्	११/६४
आहवेषु मिथोऽन्योन्यम्	७/८९	इमं लोकं मातृभक्त्या	२/२३३
आहृताभ्युद्यतां भिक्षाम्	४/२४८	इमं हि सर्ववर्णानाम्	९/६
आहैव सनखाग्रेभ्यः	२/१६७	इमान्नित्यमनध्यायात्	४/१०१
इच्छयान्योन्यसंयोगः	३/३२	इयं भूमिर्हि भूतानाम्	९/३७
इतरानपि सख्यादीन्	३/११३	इयं विशुद्धिरुदिता	११/८९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
इष्टिं वैश्वानरीं नित्यम्	११/२७	उद्धारो न दशस्वस्ति	९/११५
इह दुश्चरितैः केचित्	११/४८	उद्धृते दक्षिणे पाणौ	२/६३
इह चामुत्र वा काम्यम्	१२/८९	उद्बबर्हात्मनश्चैव	१/१४
ईशो दण्डस्य वरुणः	९/२४५	उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे	१/४६
उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये	११/८८	उद्यतैराहवे शस्त्रैः	५/९८
उच्चावचेषु भूतेषु	६/७३	उद्वर्तनमपस्नानम्	४/१३२
उच्छिष्टमन्नं दातव्यम्	१०/१२५	उन्मत्तं पतितं क्लीबम्	९/७९
उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टः	५/१४३	उपचारक्रिया केलिः	८/३५७
उच्छीर्षके श्रियै कुर्यात्	३/८९	उपच्छन्नानि चान्यानि	८/२४९
उच्छेषणं भूमिगतम्	३/२४६	उपजप्यानुपजपेत्	७/१९७
उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेत्	३/२६५	उपधाभिश्च यः कश्चित्	८/१९३
उत्कृष्टायाभिरूपाय	९/८८	उपनीय गुरुः शिष्यम्	२/६९
उत्कोचकाश्चोपधिकाः	९/२५८	उपनीय तु यः शिष्यम्	२/१४०
उत्तमां सेवमानस्तु	८/३६६	उपनीय तु तत्सर्वम्	३/२२८
उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्यात्	१/९३	उपपन्नौ गुणैः सर्वैः	९/१४१
उत्तमानुत्तमानाच्छन्	४/२४५	उपपातकसंयुक्तः	११/१०८
उत्तमैरुत्तमैर्नित्यम्	४/२४४	उपरुध्यारिमासीत	७/१९५
उत्थाय पश्चिमे यामे	७/१४५	उपवासकृशं तं तु	११/१९५
उत्थायावश्यकं कृत्वा	४/९३	उपवेश्य तु तान्विप्रान्	३/२०९
उत्पत्तिरेव विप्रस्य	१/९८	उपसर्जनं प्रधानस्य	९/१२१
उत्पद्यते गृहे यस्य	९/१७०	उपस्थमुदरं जिह्वा	८/१२५
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च	१२/९६	उपस्पृशंस्त्रिषवणम्	६/२४
उत्पादकब्रह्मदात्रोः	२/१४६	उपस्पृश्य द्विजो नित्यम्	२/५३
उत्सादनं च गात्राणाम्	२/२०९	उपाकर्मणि चोत्सर्गे	४/११९
उत्पादनमपत्यस्य	९/२७	उपाध्यायान्दशाचार्यः	२/१४५
उदकं निनयेच्छेषम्	३/२१८	उपानहौ च वासश्च	४/६६
उदकुम्भं सुमनसः	२/१८२	उपासते ये गृहस्थाः	३/१०४
उदके मध्यरात्रे च	४/१०९	उपेतारमुपेयं च	७/२१५
उदितेऽनुदिते चैव	२/१५	उभयोर्हस्तयोर्मुक्तम्	३/२२५
उदितोऽयं विस्तरशः	९/२५०	उभाभ्यामप्यजीवंस्तु	१०/८२

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
उभावपि तु तावेव	८/३७७
उष्ट्रयानं समारुह्य	११/२०१
उष्णे वर्षति शीते वा	११/११३
ऊनद्विवार्षिकं प्रेतम्	५/६८
ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु	९/२१६
ऊर्ध्वं नाभेर्मध्यतर:	१/९२
ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि	५/१३२
ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च	९/१०४
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति	२/१२०
ऋक्षेष्ट्याग्रयणं चैव	६/१०
ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य	११/२६२
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च	१२/११२
ऋग्वेदो देवदैवत्य:	४/१२४
ऋचो यजूंषि चान्यानि	११/२६४
ऋजवस्ते तु सर्वे स्यु:	२/४७
ऋणं दातुमशक्तो य:	८/१५४
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य	६/३५
ऋणे देये प्रतिज्ञाते	८/१३९
ऋणे धने च सर्वस्मिन्	९/२१८
ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयम्	४/५
ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु	४/४
ऋतु: स्वाभाविक: स्त्रीणाम्	३/४६
ऋतुकालाभिगामी स्यात्	३/४५
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यै:	४/१७९
ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे	८/२०६
ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्य:	८/३८८
ऋषय: पितरो देवा:	३/८०
ऋषय: संयतात्मान:	११/२३६
ऋषयो दीर्घसंध्यात्वात्	४/९४
ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव	६/३०

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
ऋषिभ्य: पितरो जाता:	३/२०१
ऋषियज्ञं देवयज्ञम्	४/२१
एक एव चरेन्नित्यम्	६/४२
एक एव सुहृद्धर्म:	८/१७
एक एवौरस: पुत्र:	९/१६३
एक: प्रजायते जन्तु:	४/२४०
एक: शतं योधयति	७/७४
एक: शयीत सर्वत्र	२/१८०
एकं वृषभमुद्धारम्	९/१२३
एककालं चरेद्भैक्षम्	६/५५
एकं गोमिथुनं द्वे वा	३/२९
एकजातिर्द्विजातींस्तु	८/२७०
एकदेशं तु वेदस्य	२/१४१
एकमप्याशयेद्विप्रम्	३/८३
एकमेव तु शूद्रस्य	१/९१
एकमेव दहत्यग्नि:	७/९
एकरात्रं तु निवसन्	३/१०२
एकाकिनश्चात्ययिके	७/१६५
एकाकी चिन्तयेन्नित्यम्	४/२५८
एकाक्षरं परंब्रह्म	२/८३
एकादशं मनो ज्ञेयम्	२/९२
एकादशेन्द्रियाण्याहु:	२/८९
एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठ:	९/११७
एकान्तरे त्वानुलोम्यात्	१०/१३
एका लिङ्गे गुदे तिस्र:	५/१३६
एकैकं ह्रासयेत्पिण्डम्	११/२१६
एकैकं ग्रासमश्नीयात्	११/२१३
एकैकमपि विद्वांसम्	३/१२९
एकोऽपि वेदविद्धर्मम्	१२/११३
एकोऽलुब्धस्तु साक्षी	८/७७

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
एकोऽहमस्मीत्यात्मानम्	८/९१	एता: प्रकृतयो मूलम्	७/१५६
एतच्चतुर्विधं विद्यात्	७/१००	एतांस्त्वभ्युदितान्विद्यात्	४/१०४
एतच्छौचं गृहस्थानाम्	५/१३७	एता दृष्ट्वास्य जीवस्य	१२/२३
एतत्तु न परे चक्रु:	९/९९	एतानाहु: कौटसाक्ष्ये	८/१२२
एतत्त्रयं हि पुरुषम्	४/१३६	एतानेके महायज्ञान्	४/२२
एतद्दण्डविधिं कुर्यात्	८/२२१	एतान्दोषानवेक्ष्य त्वम्	८/१०१
एतक्षरमेतां च	२/७८	एतान्द्विजातयो देशान्	२/२४
एतदन्तास्तु गतय:	१/५०	एतान्येनांसि सर्वाणि	११/७१
एतदुक्तं द्विजातीनाम्	५/२६	एतान्विगर्हिताचारान्	३/१६७
एतदेव चरेदब्दम्	११/१२९	एतावानेव पुरुष:	९/४५
एतदेव व्रतं कुर्यु:	११/११७	एताश्चान्याश्च सेवेत	६/२९
एतदेव व्रतं कृत्स्नम्	११/१३०	एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्	९/२४
एतदेव विधिं कुर्यात्	११/१८८	एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे	११/१७२
एतद्देशप्रसूतस्य	२/२०	एते चतुर्णां वर्णानाम्	११/१३०
एतद्धि जन्मसाफल्यम्	१२/९३	एतेभ्यो हि द्विजाग्रेयभ्य:	११/३
एतद्रुद्रास्तथादित्या:	११/२२१	एते मनूंस्तु सप्तान्यान्	१/३६
एतद्व: सारफल्गुत्वम्	९/५६	एते राष्ट्रे वर्तमाना:	९/२२६
एतद्विदन्तो विद्वांस:	४/९१	एते षट् सदृशान्वर्णान्	१०/२७
एतद्विदन्तो विद्वांस:	४/१२५	एतेषां निग्रहो राज्ञ:	८/३८७
एतद्विधानमातिष्ठेत्	७/२२६	एतेष्वविद्यमानेषु	२/२४८
एतद्विधानमातिष्ठेत्	८/२४४	एतैरुपायैरन्यैश्च	९/३१२
एतद्विधानं विज्ञेयम्	९/१४८	एतैर्द्विजातय: शोध्या:	११/२२६
एतद्वोऽभिहितं शौचम्	५/१००	एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमाम्	८/२५२
एतद्वोऽभिहितं सर्वम्	१२/११६	एतैर्विवादान्संत्यज्य	४/१८१
एतद्वोऽभिहितं सर्वम्	३/२८६	एतैर्व्रतैरपोहेत पापं	११/१०२
एतद्वोऽयं भृगु: शास्त्रम्	१/५९	एतैर्व्रतैरपोहेत	११/१०७
एतमेके वदन्त्यग्निम्	१२/१२३	एतैर्व्रतैरपोहेयु:	११/१६९
एतमेव विधिं कृत्स्नम्	११/२१७	एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यात्	११/१४५
एतयर्चा विसंयुक्त:	२/८०	एधोदकं मूलफलम्	४/२४७
एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते	११/१२२	एनसां स्थूलसूक्ष्माणाम्	११/२५२

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
एनस्विभिरनिर्णिक्तैः	११/१८९	एवमादीन्विजानीयात्	९/२६०
एवं कर्मविशेषेण	११/५२	एवमेतैरिदं सर्वम्	१/४१
एवं गृहाश्रमे स्थित्वा	६/१	एष दण्डविधिः प्रोक्तः	८/२७८
एवं चरति यो विप्रः	२/२४९	एष धर्मविधिः कृत्स्नः	११/१३१
एवं चरन्सदा युक्तः	९/३२४	एष धर्मोऽनुशिष्टो वः	६/८६
एवं दृढव्रतो नित्यम्	११/८१	एष धर्मोऽखिलेनोक्तः	८/२१८
एवं धर्म्याणि कार्याणि	९/२५१	एष धर्मो गवाश्वस्य	९/५५
एवं निर्वपणं कृत्वा	३/२६०	एष नौयायिनामुक्तः	८/४०९
एवं प्रयत्नं कुर्वीत	७/२२०	एष प्रोक्तो द्विजातीनाम्	२/६८
एवं यः सर्वभूतानि	३/९३	एष वै प्रथमः कल्पः	३/१४७
एवं यः सर्वभूतेषु	१२/१२५	एष वोऽभिहितो धर्मः	६/९७
एवं यथोक्तं विप्राणाम्	५/२	एष शौचविधिः कृत्स्नः	५/१४६
एवं यद्यप्यनिष्टेषु	९/३१९	एष शौचस्य वः प्रोक्त	५/११०
एवं विजयमानस्य	७/१०७	एष सर्वः समुद्दिष्टः	१२/५१
एवं विधान्नृपो देशान्	९/२६६	एष सर्वः समुद्दिष्टः	१२/८२
एवं वृत्तस्य नृपतेः	७/३३	एष सर्वाणि भूतानि	१२/१२४
एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीम्	५/१६७	एष स्त्रीपुंसयोरुक्तः	९/१०३
एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्याम्	१/५७	एषा धर्मस्य वो योनिः	२/२५
एवं संचिन्त्य मनसा	११/२३१	एषा पापकृतामुक्ता	११/१७९
एवं संन्यस्य कर्माणि	६/९६	एषामन्यतमो यस्य	३/१४६
एवं स भगवान्देवः	१२/११७	एषामन्यतमे स्थाने	८/११९
एवं समुद्धताधारे	९/११६	एषा विचित्राभिहिता	११/९८
एवं सम्यग्घविर्हुत्वा	३/८७	एषु स्थानेषु भूयिष्ठम्	८/८
एवं सर्वं स सृष्ट्वेदम्	१/५१	एषोऽखिलः कर्मविधिः	९/३२५
एवं सर्वं विधायेदम्	७/१४२	एषोऽखिलेनाभिहितः	८/२६६
एवं सर्वमिदं राजा	७/२१६	एषोऽखिलेनाभिहितः	८/३०१
एवं सर्वानिमान्राजा	८/४२०	एषोदिता गृहस्थस्य	४/२५९
एवं सह वसेयुर्वा	९/१११	एषोदिता लोकयात्रा	९/२५
एवं स्वभावं ज्ञात्वासाम्	९/१६	एषोऽनाद्यादनस्योक्तः	११/१६१
एवमाचारतो दृष्ट्वा	१/११०	एषोऽनापदि वर्णानाम्	९/३३६

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
एषोऽनुपस्कृत: प्रोक्त:	७/९८	कामतो रेतस: सेकम्	११/१२०
एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्	५/४२	कामं तु क्षपयेद्देहम्	५/१५७
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सु:	८/३४४	कामं तु गुरुपत्नीनाम्	२/२१६
ओघवाताहृतं बीजम्	९/५४	काममामरणात्तिष्ठेत्	९/८९
ओंकारपूर्विकास्तिस्र:	२/८१	काममुत्पाद्य कृष्यां तु	१०/९०
ओषध्य: पशवो वृक्षा:	५/४०	कामात्मता न प्रशस्ता	२/२
औरभ्रिको माहिषिक:	३/१६६	कामाद्दशगुणं पूर्वम्	८/१२१
औरस: क्षेत्रजश्चैव	९/१५९	कामान्माता पिता चैनम्	२/१४७
औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ	९/१६५	कामिनीषु विवाहेषु	८/११२
औषधान्यगदो विद्या	११/२३७	कारावरो निषादात्तु	१०/३६
कणान्वा भक्षयेदब्दम्	११/९२	कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव	७/१३८
कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टम्	८/३६५	कारुकान्नं प्रजां हन्ति	४/२१९
कन्याया दूषणं चैव	११/६१	कार्पासमुपवीतं स्यात्	२/४४
कन्यायां दत्तशुल्कायाम्	९/९७	कार्पासकीटजोर्णानाम्	११/१६८
कन्यैव कन्यां या कुर्यात्	८/३६९	कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च	७/१०
कपालं वृक्षमूलानि	६/४४	कार्षापणं भवेद्दण्ड्य:	८/३३६
कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ	४/१०२	कार्ष्णरौरवबास्तीनि	२/४१
कर्णौ चर्म च बालांश्च	८/२३४	कालं कालविभक्तीश्च	१/२४
कर्मणां च विवेकार्थम्	१/२६	कालशाकं महाशल्का:	३/२७२
कर्मणापि समं कुर्यात्	८/१७७	कालेऽदाता पिता वाच्य:	९/४
कर्मात्मनां च देवानाम्	१/२२	किंचिदेव तु दाप्य: स्यात्	८/३६३
कर्मारस्य निषादस्य	४/२१५	किंचिदेव तु विप्राय	११/१४१
कलविङ्कं प्लवं हिंसन्	५/१२	कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्	९/२२५
कलि: प्रसुप्तो भवति	९/३०२	किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्	१/३९
कल्पयित्वास्य वृतिं च	११/२३	कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च	११/२४०
काणं वाप्यथवा खञ्जम्	८/२७४	कीनाशो गोवृषो यानम्	९/१५०
कानीनश्च सहोढश्च	९/१६०	कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि	८/१६७
कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रम्	३/१४४	कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च	२/१९
कामक्रोधौ तु संयम्य	८/१७५	कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्याश्च	७/१९३
कामजेषु प्रसक्तो हि	७/४६	कुर्याद्घृतपशुं सङ्गे	५/३७

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
कुर्यादहरहः श्राद्धम्	३/८२	केशग्रहान्प्रहारांश्च	४/८३
कुलजे वृत्तसंपन्ने	८/१७९	केशान्तः षोडशे वर्षे	२/६५
कुले मुख्येऽपि जातस्य	१०/६०	केशान्तिको ब्राह्मणस्य	२/४६
कुविवाहैः क्रियालोपैः	३/६३	केशेषु गृह्णतो हस्तौ	८/२८३
कुशीलवोऽवकीर्णी च	३/१५५	कोष्ठागारायुधागार	९/२८०
कुशूलधान्यको वा स्यात्	४/७	कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणान्	८/१२३
कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यम्	८/१५१	कौत्सं जप्त्वाप इत्येतत्	११/२४९
कुह्वै चैवानुमत्यै च	३/८६	कौशेयं तित्तिरिर्हत्वा	१२/६४
कूटशासनकर्तॄंश्च	९/२३२	कौशेयाविकयोरूषैः	५/१२०
कूष्माण्डैर्वापि जुहुयात्	८/१०६	क्रयविक्रयमध्वानं	७/१२७
कृतदारोऽपरान्दारान्	११/५	क्रयविक्रयानुशयो	८/५
कृतं त्रेतायुगं चैव	९/३०१	क्रव्यादसूकरोष्ट्राणाम्	११/१५६
कृतवापनो निवसेत्	११/७८	क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा	११/१३७
कृतानुसारादधिका	८/१५२	क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वान्	५/११
कृतोपनयनस्यास्य	२/१७३	क्रियाभ्युपगमात्त्वेतत्	९/५३
कृत्वा पापं हि संतप्य	११/२३०	क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थम्	९/१७४
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा	५/१३८	क्रीत्वाविक्रीय वा किंचित्	८/२२२
कृत्वा विधानं मूले तु	७/१८४	क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य	५/३२
कृत्वैतद्बलिकर्मैवम्	३/९४	क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येत्	६/४८
कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म	७/१५४	क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायाम्	१०/१९
कृमिकीटपतङ्गांश्च	१/४०	क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां तु	१०/४९
कृमिकीटपतङ्गानाम्	१२/५६	क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु	९/२२९
कृमिकीटवयोहत्या	११/७०	क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य	९/३२०
कृषिं साध्विति मन्यन्ते	१०/८४	क्षत्रियं चैव सर्पं च	४/१३५
कृष्टजानामोषधीनाम्	११/१४४	क्षत्रियं चैव वैश्यं च	८/४११
कृष्णपक्षे दशम्यादौ	३/२७६	क्षत्रियस्य परो धर्मः	७/१४४
कृष्णसारस्तु चरति	२/२३	क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायाम्	१०/९
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः	४/३५	क्षत्रियाद्विप्रकन्यायाम्	१०/११
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः	६/५२	क्षत्रियायामगुप्तायाम्	८/३८४
केतितस्तु यथान्यायम्	३/१९०	क्षत्रियो बाहुवीर्येण	११/३४

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यम्	८/३१२	गुरुं वा बालवृद्धौ वा	८/३५०
क्षरंति सर्वा वैदिक्य:	२/८४	गुरुणानुमत: स्नात्वा	३/४
क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांस:	५/१०७	गुरुतल्प्यभिभाष्यैन:	११/१०३
क्षीणस्य चैव क्रमश:	७/१६६	गुरुतल्पव्रतं कुर्यात्	११/१७०
क्षुद्रकाणां पशूनां तु	८/२१७	गुरुतल्पे भग: कार्य:	९/२३७
क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागात्	१०/१०८	गुरुपत्नी तु युवति:	२/२१२
क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वम्	२/२४६	गुरुवत्प्रतिपूज्या: स्यु:	२/२१०
क्षेत्रकूपतडागानाम्	८/२६२	गुरुषु त्वभ्यतीतेषु	४/२५२
क्षेत्रजादीन्सुतानेतान्	९/१८०	गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्	४/२५१
क्षेत्रभूता स्मृता नारी	९/३३	गुरो: कुले न भिक्षत	२/१८४
क्षेत्रियस्यात्यये दण्ड:	८/२४३	गुरो: प्रेतस्य शिष्यस्तु	५/६५
क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशु:	८/२४१	गुरोर्गुरौ संनिहिते	२/२०५
क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यम्	७/२१२	गुरोर्यत्र परीवाद:	२/२००
क्षौमवच्छङ्खशृङ्गाणाम्	५/१२१	गुल्मान्वेणूंश्च विविधान्	८/२४७
खञ्जो वा यदि वा काण:	३/२४२	गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान्	७/१९०
खट्वाङ्गी चीरवासा वा	११/१०५	गृहं तडागमारामम्	८/२६४
खराश्वोष्ट्रमृगेभानाम्	११/६८	गृहस्थस्तु यदा पश्येत्	६/२
खलात्क्षेत्रादगाराद्वा	११/१७	गृहिण: पुत्रिणो मौला:	८/६२
खं सन्निवेशयेत्खेषु	१२/१२०	गृहीत्वा मुसलं राजा	११/१००
ख्यापनेनानुतापेन	११/२२७	गृहे गुरावरण्ये वा	५/४३
गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्	७/२२४	गोत्ररिक्थे जनयितु:	९/१४२
गन्धर्वा गुह्यका यक्षा:	१२/४७	गोप: क्षीरभृतो यस्तु	८/२३१
गर्दभाजाविकानां तु	८/२१८	गोमूत्रमग्निवर्णं वा	११/९१
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत	२/३६	गोमूत्रं गोमयं क्षीरन्	११/२१२
गर्भिणी तु द्विमासादि:	८/४०७	गोरक्षकान्वाणिजिकान्	८/१०२
गवा चान्नमुपाघ्रातम्	४/२०९	गोवधोऽयाज्यसंयाज्य	११/५९
गार्भैर्होमैर्जातकर्म	२/२७	गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासाद	२/२०४
गिरिपृष्ठं समारुह्य	७/१४७	गोषु ब्राह्मणसंस्थासु	८/३२५
गुच्छगुल्मं तु विविधम्	१/४८	गौडी पैष्ठी	११/९४
गुणांश्च सूपशाकाद्यान्	३/२२६	ग्रहीता यदि नष्ट: स्यात्	८/१६६

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
ग्रामघतो हिताभङ्गे	९/२७४	चरितव्यमतो नित्यम्	११/५३
ग्रामस्याधिपतिं कुर्यात्	७/११५	चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च	५/११७
ग्रामादाहृत्य वाश्नीयात्	६/२८	चर्मचार्मिकभाण्डेषु	८/२८९
ग्रामदोषान्समुत्पन्नान्	७/११६	चाण्डालश्च वराहश्च	३/२३९
ग्रामीयककुलानां च	८/२५४	चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकः	१२/९७
ग्रामेष्वपि च ये केचित्	९/२७१	चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयम्	१२/१
ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्यात्	६/२३	चान्द्रायणं वा त्रीन्मासां	११/१०६
घृतकुम्भं वराहे तु	११/१३४	चान्द्रायणविधानैर्वा	६/२०
घ्राणेन सूकरो हन्ति	३/२४१	चारणाश्च सुपर्णाश्च	१२/४४
चक्रवृद्धिं समारूढः	८/१५६	चारेणोत्साहयोगेन	९/२९८
चक्रिणो दशमीस्थस्य	२/१३८	चिकित्सकस्य मृगयोः	४/२१२
चण्डालश्वपचानां तु	३/२३९	चिकित्सकान्देबलकान्	३/१५२
चण्डालात्पाण्डुसोपाकः	१०/३७	चिकित्सकानां सर्वेषाम्	९/२८४
चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा	११/१७५	चिरस्थितमपि त्वाद्यम्	५/२५
चण्डालेन तु सोपाकः	१०/३८	चूडाकर्म द्विजातीनाम्	२/३५
चतुरः प्रातरश्नीयात्	११/२१९	चैत्यद्रुमश्मशानेषु	१०/५०
चतुरोंऽशान्हरेद्विप्रः	९/१५३	चैलवच्चर्मणां शुद्धिः	५/११९
चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्	३/२४	चोरैरुपप्लुते ग्रामे	४/११८
चतुर्णामपि वर्णानाम्	३/२०	चोदितो गुरुणा नित्यम्	२/१९१
चतुर्णामपि चैतेषाम्	९/२३६	चौरैर्हृतं जलेनोढम्	८/१८९
चतुर्णामपि चैतेषाम्	४/८	छत्राकं विड्वराहं च	५/१९
चतुर्थकालमश्नीयात्	११/१०९	छायायामन्धकारे वा	४/५१
चतुर्थमाददानोऽपि	१०/११८	छायास्वोदासवर्गश्च	४/१८५
चतुर्थमायुषो भागम्	४/१	छिन्ननास्ये भग्नयुगे	८/२९१
चतुर्थे मासि कर्तव्यम्	२/३४	छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धा	१२/६५
चतुर्भिरपि चैवैतैः	६/९१	छेदने चैव यन्त्राणाम्	८/२९२
चतुर्वेदसमं पुण्यं	१२/१०	जगतश्च समुत्पत्तिम्	१/१११
चतुष्पात्सकलो धर्मः	१/८१	जटिलं चानधीयानम्	३/१५१
चत्वार्याहुः सहस्राणि	१/६९	जडमूकान्धबधिरान्	७/१४९
चराणामन्नचरा	५/२९	जनन्यां संस्थितायां तु	९/१९२

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
जन्मज्येष्ठेन चाह्वानम्	९/१२६
जन्मप्रभृति यत्किंचित्	८/९०
जपन्वान्यतमं वेदम्	११/७५
जपहोमैरपैत्येन:	१०/१११
जपित्वा त्रीणि सावित्र्या:	११/१९४
जपोऽहुतो हुतो होम:	३/७४
जप्येनैव तु संसिध्येत्	२/८७
जरां चैवाप्रतीकाराम्	१२/८०
जराशोकसमाविष्टम्	६/७७
जाङ्गलं सस्यसंपन्नम्	७/६९
जातिजानपदान्धर्मान्	८/४१
जातिभ्रंशकरं कर्म	११/१२४
जातिमात्रोपजीवी वा	८/२०
जातो नार्यामनार्यायाम्	१०/६७
जातो निषादाच्छूद्रायाम्	१०/१८
जामयोप्सरसां लोके	४/१८३
जामयो यानि गेहानि	३/५८
जालान्तरगते भानौ	८/१३२
जित्वा संपूजयेद्देवान्	७/२०१
जीनकार्मुकबस्तादीन्	११/१३८
जीर्णोद्यानान्यरण्यानि	९/२६५
जीवन्तीनां तु तासां ये	८/२९
जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्य:	१२/१३
जीवितात्ययमापन्न:	१०/१०४
जीवेदेतेन राजन्य:	१०/९५
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा	३/३१
ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते	९/२३९
ज्ञाननिष्ठा द्विजा: केचित्	३/१३४
ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि	३/१३५
ज्ञानं तपोऽग्निराहार:	५/१०५
ज्ञानेनैवापरे विप्रा:	४/२४
ज्ञानोत्कृष्याय देयानि	३/१३२
ज्यायांसमनयोर्विद्यात्	३/१३७
ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्	९/१०५
ज्येष्ठ: कुलं वर्धयति	९/१०९
ज्येष्ठता च निवर्तेत	११/१८५
ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां	९/१२४
ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च	९/११३
ज्येष्ठस्य विंश उद्धार:	९/११२
ज्येष्ठेन जातमात्रेण	९/१०६
ज्येष्ठो यवीयसो भार्याम्	९/५८
ज्योतिषश्च विकुर्वाणात्	१/७८
झल्ला मल्ला नटाश्चैव	१२/४५
झल्लो मल्लश्च राजन्यात्	१०/२२
डिंभाहवहतानां च	५/९५
तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्	७/१२
तं राजा प्रणयन्सम्यक्	७/२७
तं हि स्वयम्भू: स्वादास्य	१/९४
त एव हि त्रयो लोका:	२/२३०
तं चेदभ्युदियात्सूर्य:	२/२२०
तडागभेदकं हन्यात्	९/२७९
तडागान्युदपानानि	८/२४८
तत: प्रभृति यो मोहात्	९/६८
तत्प्राज्ञेन विनीतेन	९/४१
ततस्वयंभूर्भगवान्	१/६
ततस्तथा स तेनोक्त:	१/६०
ततो दुर्गं च राष्ट्रं च	७/२९
ततो भुक्तवतां तेषाम्	३/२५३
तत्प्राज्ञेन विनीतेन	९/४१
तत्र भुक्त्वा पुन: किंचित्	७/२२५

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तम्	१२/२७	तपो विद्या च विप्रस्य	१२/१०४
तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य	२/१७०	तपोविशेषैर्विविधैः	२/१६५
तत्र ये भोजनीयाः स्युः	३/१२४	तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रः	११/२१४
तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः	७/१४६	तमसा बहुरूपेण	१/४९
तत्रात्मभूतैः कालज्ञैः	७/२१७	तमसो लक्षणं कामः	१२/३८
तत्रापरिवृतं धान्यम्	८/२३८	तमोऽयं तु समाश्रित्य	१/५५
तत्रासीनः स्थितो वापि	८/२	तं प्रतीतं स्वधर्मेण	३/३
तत्समुत्थो हि लोकस्य	८/३५३	तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात्	२/२२८
तत्सहायैरनुगतैः	९/२६७	तस्मादविद्वान्बिभियात्	४/१९१
तं स्यादायुधसंपन्नम्	७/७५	तस्मादेताः सदा पूज्याः	३/५९
तथा च श्रुतयो बह्व्यः	९/१९	तस्माद्धर्मं सहायार्थम्	४/२४२
तथा धरिममेयानाम्	८/३२१	तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु	७/१३
तथा नित्यं यतेयाताम्	९/१०२	तस्मद्यम इव स्वामी	८/१७३
तथैव सप्तमे भक्ते	११/१६	तस्मिन्देशे य आचारः	२/१८
तथैवाक्षेत्रिणो बीजम्	९/५१	तस्मिन्नण्डे स भगवान्	१/१२
तदण्डमभवद्धैमम्	१/९	तस्मिन्स्वपति सुस्थे तु	१/५३
तदध्यास्योद्वहेद्भार्याम्	७/७७	तस्य कर्मविवेकार्थम्	१/१०२
तदाविशन्ति भूतानि	१/१८	तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा	११/२२
तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषु	८/१०३	तस्य मध्ये सुपर्याप्तम्	७/७६
तद्वै युगसहस्रान्तम्	१/७३	तस्य सर्वाणि भूतानि	७/१५
तन्तुवायो दशपलम्	८/३९७	तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते	१/७४
तं देशकालौ शक्तिं च	७/१६	तस्यार्थे सर्वभूतानाम्	७/१४
तपः परं कृतयुगे	१/८६	तस्याहुः संप्रणेतारम्	७/२६
तपत्यादित्यवच्चैषः	७/६	तस्येह त्रिविधस्यापि	१२/४
तपसापनुनुत्सुस्तु	११/१०१	तां विवर्जयतस्तस्य	४/४२
तपसैव विशुद्धस्य	११/२४२	ताडयित्वा तृणेनापि	११/२०५
तपस्तप्त्वासृजद्यं तु	१/३३	ताडयित्वा तृणेनापि	४/१६६
तपोबीजप्रभावैस्तु	१०/४२	तान्प्रजापतिराहैत्य	४/२२५
तपोमूलमिदं सर्वं	११/२३४	तान्विदित्वा सुचरितैः	९/२६१
तपो वाचं रतिं चैव	१/२५	तान्सर्वानभिसंदध्यात्	७/१५९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
तापसा यतयो विप्राः	१२/४८
तापसेष्वेव विप्रेषु	६/२७
ताभ्यां स शकलाभ्यां च	१/१३
तामिस्रमन्धतामिस्रम्	४/८८
तामिस्रादिषु चोग्रेषु	१२/७५
ताम्राय: कांस्यैरत्यानाम्	५/११४
तावुभावप्यसंस्कार्यौ	१२/१४
तावुभौ भूतसंपृक्तौ	१२/१४
तासां क्रमेण सर्वासाम्	३/६९
तासां चेदवरुद्धानाम्	८/२३६
तासामाद्याश्चतस्रस्तु	३/४७
तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठं	४/४९
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैः	३/२६७
तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु	११/१११
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्	७/१४०
तीरितं चानुशिष्टं च	९/२३३
तुरीयो ब्रह्महत्यायाः	११/१२६
तुलामानं प्रतीमानम्	८/४०३
तृणकाष्ठद्रुमाणां च	११/१६६
तृणगुल्मलतानां च	१२/५८
तृणानि भूमिरुदकम्	३/१०१
ते चापि बाह्यान्सुबहून्	१०/२९
ते तमर्थमपृच्छन्त	२/१५२
तेन यद्यत्सभृत्येन	७/३६
तेनानुभूयता यामीः	१२/१७
ते पृष्ट्यस्तु यथा ब्रूयुः	८/२५५
ते पृष्ट्यस्तु यथा ब्रूयुः	८/२६१
तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां	१२/७४
तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयम्	७/३९
तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण	११/१२३
तेषां वेदविदो ब्रूयुः	११/८५
तेषां सततमज्ञानाम्	११/४३
तेषां स्वं स्वमभिप्रायम्	७/५७
तेषां ग्राम्याणि कार्याणि	७/१२०
तेषां तु समवेतानाम्	२/१३९
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा	२/२३९
तेषां त्ववयवान्सूक्ष्मान्	१/१६
तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु	३/२२३
तेषां दोषानभिख्याप्य	९/२६२
तेषां न दद्याद्यदि तु	८/१८४
तेषामनुपरोधेन	२/२३६
तेषामर्थे नियुञ्जीत	७/६२
तेषामाद्यमृणादानम्	८/४
तेषामारक्षभूतं तु	३/२०४
तेषामिदं तु सप्तानाम्	१/१९
तेषामुदकमानीय	३/२१०
तेषां सततमज्ञानाम्	११/४३
तेषु तेषु तु कृत्येषु	९/२९७
तेषु सम्यक् वर्तमानः	२/५
ते षोडश स्याद्धरणम्	८/१३६
तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यम्	७/५६
तैजसानां मणीनां च	५/१११
तौ तु जातौ परक्षेत्रे	३/१७५
तौ धर्मं पश्यतस्तस्य	१२/१९
त्यजेदाश्वयुजे मासि	६/१५
त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति	८/१६९
त्रयाणामपि चैतेषाम्	१२/३४
त्रयाणामपि चैतेषां	१२/३०
त्रयाणामप्यपायानाम्	७/२००
त्रयाणामुदकं कार्यम्	९/१८६

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
त्रयो धर्मा निवर्तन्ते	१०/७७	दक्षिणासु च दत्तासु	८/२०७
त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेयाः	८/१३३	दक्षिणेन मृतं शूद्रम्	५/९२
त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्याम्	९/९४	दण्डः शास्ति प्रजाः	७/१८
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निः	३/१८५	दण्डव्यूहेन तन्मार्गम्	७/१८७
त्रिदण्डमेतान्निक्षिप्य	१२/११	दण्डस्य पातनं चैव	७/५१
त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यम्	८/१०७	दण्डो हि सुमहत्तेजः	७/२८
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः	२/७७	दत्तस्यैषोदिता धर्म्या	८/२१४
त्रिरहस्त्रिर्निशायां च	११/२२३	दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः	९/३२३
त्रिराचामेदपः पूर्वम्	२/६०	ददौ स दश धर्माय	९/१२९
त्रिराचामेदपः पूर्वम्	५/१३९	दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु	५/१०
त्रिरात्रमाहुराशौचम्	५/८०	दन्तजातेऽनुजाते च	५/५८
त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा	११/८०	दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णः	३/२५६
त्रिविधा त्रिविधैषा तु	१२/४१	दर्शनप्रातिभाव्ये तु	८/१६०
त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि	४/१९३	दश कामसमुत्थानि	७/४५
त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु	२/२३२	दश पूर्वापरान्वंश्यान्	३/३७
त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि	२/२३७	दश मासांस्तु तृप्यन्ति	३/२७०
त्रिंशद्वर्षो	९/२४	दशलक्षणकं धर्मम्	६/९४
त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषात्	३/२१५	दशलक्षणानि धर्मस्य	६/९३
त्रीणि देवाः पवित्राणि	५/१२७	दशसूनासमं चक्रम्	४/८५
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत	९/९०	दश सूनासहस्राणि	४/८६
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि	३/२३५	दश स्थानानि दण्डस्य	८/१२४
त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वे	७/७२	दशाब्दाख्यं पौरसख्यम्	२/१३४
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्याम्	७/४३	दशावरा वा परिषत्	१२/११०
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की	१२/१११	दशाहं शावमाशौचम्	५/५९
त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रः	९/१५१	दशी कुलं तु भुञ्जीत	७/११९
त्र्यब्दं चरेद्वा नियतः	११/१२८	दह्यन्ते ध्मायमानानाम्	६/७१
त्र्यहं तूपवसेद्युक्तः	११/२५९	दातव्यं सर्ववर्णेभ्यः	८/४०
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायम्	११/२११	दातारो नोऽभिवर्धन्तां	३/२५९
त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यः	८/२८४	दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च	३/१४३
त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य:	१/३	दानधर्मं निषेवेत	४/२२७

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
दानेन वधनिर्णेकम्	११/१३९	देवब्राह्मणसांनिध्ये	८/८७
दाराग्निहोत्रसंयोगम्	३/१७१	देवराद्वा सपिण्डाद्वा	९/५९
दाराधिगमनं चैव	१/११२	देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा	११/२६
दासी घटमपां पूर्णम्	११/१८३	देवानृषीन्मनुष्यांश्च	३/११७
दास्यं तु कारयेल्लोभात्	८/४१२	देशधर्माञ्जातिधर्मान्	१/११८
दास्यां वा दासदास्यां वा	९/१७९	देहादुत्क्रमणं चैव	६/६३
दिवाकीर्तिमुदक्यां च	५/८५	दैत्यदानवयक्षाणाम्	३/१९६
दिवा चरेयुः कार्यार्थम्	१०/५५	दैवतान्यभिगच्छेत्तु	४/१५३
दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु	११/११०	दैवपित्र्यातिथेयानि	३/१८
दिवा वक्तव्यता पाले	८/२३०	दैवाद्यन्तं तदीहेत	३/२०५
दीर्घाध्वनि यथादेशम्	८/४०६	दैविकानां युगानां तु	१/७२
दुराचारो हि पुरुषः	४/१५७	दैवे रात्र्यहनी वर्षम्	१/६७
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च	७/२४	दैवोढाजः सुतश्चैव	३/३८
दूत एव हि संधत्ते	७/६६	दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थं	९/१३२
दूतं चैव प्रकुर्वीत	७/६३	द्यूतं समाहयं चैव यः	९/२२४
दूतसंप्रेषणं चैव	७/१५३	द्यूतं समाह्वयं चैव	९/२२१
दूरस्थो नार्जयेदेनम्	२/२०२	द्यूतं च जनवादं च	२/१७९
दूरादावसथान्मूत्रम्	४/१५१	द्यूतमेतत्पुराकल्पे	९/२२७
दूरादाहृत्य समिधः	२/१८६	द्यौर्भूमिरापो हृदयम्	८/८६
दूरादेव परीक्षेत	३/१३०	द्रवाणां चैव सर्वेषाम्	५/११५
दूषितोऽपि चरेद्धर्मम्	६/६६	द्रव्याणामल्पसाराणाम्	११/१६४
दृढकारी मृदुर्दान्तः	४/२४६	द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य	८/२८८
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादम्	६/४६	द्वयोरप्येतयोर्मूलम्	७/४९
देवकार्या द्विजातीनाम्	३/२०३	द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानाम्	७/११४
देवतातिथिभृत्यानाम्	३/७२	द्वावेव वर्जयेन्नित्यम्	४/१२७
देवतानां गुरो राज्ञः	४/१३०	द्विकं शतं वा गृह्णीयात्	८/१४१
देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा	६/१२	द्विकं त्रिकं चतुष्कं च	८/१४२
देवत्वं सात्त्विका यान्ति	१२/४०	द्विजातयः सवर्णासु	१०/२०
देवदत्तां पतिभार्याम्	९/९५	द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिः	८/३४१
देवदानवगन्धर्वाः	७/२३	द्वितीयमेके प्रजनम्	९/६१

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
द्विधा कृत्वात्मनो देहम्	१/३२	धान्यान्नधनचौर्याणि	११/१६२
द्विविधांस्तस्करान्निन्द्यान्	९/२५६	धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं	१०/१२०
द्वौ तु यौ विवदेयाताम्	९/१९१	धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयम्	६/९२
द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीन्	३/१२५	ध्यानिकं सर्वमेवैतत्	६/८२
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन	३/२६८	ध्यायत्यनिष्टं यत्किंचित्	९/२१
धनं यो बिभृयाद्भ्रातुः	९/१४६	ध्रियमाणे तु पितरि	३/२२०
धनानि तु यथाशक्ति	११/६	ध्वजाहृतो भक्तदासः	८/४१५
धनुःशतं परीहारः	८/२३७	न कदाचिद्द्विजे तस्मात्	४/१६९
धनुःशराणां कर्ता च	३/१६०	न कन्यायाः पिता विद्वान्	३/५१
धन्वदुर्गं महीदुर्गम्	७/७०	न कश्चिद्योषितः शक्तः	१०/१०
धरणानि दश ज्ञेयः	८/१३७	न कुर्वीत वृथाचेष्टाम्	४/६३
धर्मं शनैः संचिनुयात्	४/२३८	न कूटैरायुधैर्हन्यात्	७/९०
धर्म एव हतो हन्ति	८/१५	नक्तं चान्नं समश्नीयात्	६/१९
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च	७/२०९	नगरे नगरे चैकम्	७/१२१
धर्मध्वजी सदा लुब्धः	४/१९५	नग्नो मुण्डः कपालेन	८/९३
धर्मप्रधानं पुरुषम्	४/२४३	न च वैश्यस्य कामः	९/३२८
धर्मस्य ब्राह्मणो मूलम्	११/८३	न च हन्यात्स्थलारूढम्	७/९१
धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्	८/२१२	न चोत्पातनिमित्ताभ्यां	६/५०
धर्मार्थौ यत्र न स्याताम्	२/११२	न जातु कामः कामानाम्	२/९४
धर्मार्थावुच्यते श्रेयः	२/२२४	न जातु ब्राह्मणं हन्यात्	८/३८०
धर्मासनमधिष्ठाय	८/२३	न तं स्तेना न चामित्रा	७/८३
धर्मेण च द्रव्यवृद्धौ	९/३३३	न तथैतानि शक्यन्ते	२/९६
धर्मेण व्यवहारेण	८/४९	न तस्मिन्धारयेद्दण्डम्	११/२१
धर्मेणाधिगतो यैस्तु	१२/१०९	न तादृशं भवत्येनः	५/३४
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः	१०/१२७	न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा	६/५१
धर्मोपदेशं दर्पेण	८/२७२	न तिष्ठति तु यः पूर्वां	२/१०३
धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण	८/१२	न तेन वृद्धो भवति	२/१५६
धान्यं हृत्वा भवत्याखुः	१२/६२	न तैः समयमन्विच्छेत्	१०/५३
धान्यकुप्यपशुस्तेयम्	११/६६	न त्वेवाधौ सोपकारे	८/१४३
धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्य	८/३२०	न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां	९/७१

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
नदीकूलं यथा वृक्ष:	६/७८	न राज्ञ: प्रतिगृह्णीयात्	४/८४
नदीषु देवखातेषु	४/२०३	न राज्ञामघदोषोऽस्ति	५/९३
न द्रव्याणामविज्ञाय	४/१८७	नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं	३/९
न धर्मस्यापदेशेन	४/१९८	न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीम्	४/३८
न निर्हारं स्त्रिय: कुर्यु:	९/१९९	न लोकवृत्तं वर्तेत	४/११
न निष्क्रयविसर्गाभ्याम्	९/४६	न वर्धयेदघाहानि	५/८४
न नृत्येदथवा गायेत्	४/६४	न वारयेद्गां धयन्तीम्	४/५९
न पाणिपादचपल:	४/१७७	न वार्यपि प्रयच्छेत्तु	४/१९२
न पादौ धावयेत्कांस्ये	४/६५	न विगर्ह्य कथां कुर्यात्	४/७२
न पूर्वं गुरवे किंचित्	२/२४५	न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु	५/१०४
न पैतृयज्ञियो यज्ञ:	३/२८२	न विवादे न कलहे	४/१२१
न फालकृष्टमश्नीयात्	६/१६	न विस्मयेत तपसा	४/२३६
न फालकृष्टे न जले	४/४६	न वृथा शपथं कुर्यात्	८/१११
न ब्राह्मणक्षत्रिययो:	३/१४	नवेनानर्चिताह्यस्य	४/२८
न ब्राह्मणोऽवेदयेत	११/३१	न वै कन्या न युवति:	११/३६
न ब्राह्मणं परीक्षेत	३/१४९	नवैतास्नातकान्विद्यात्	११/२
न ब्राह्मणवधाद्भूयान्	८/३८१	न वै स्वयं तदश्नीयात्	३/१०६
न ब्राह्मणस्य त्वतिथि:	३/११०	न शूद्रराज्ये निवसेत्	४/६१
न भक्षयति यो मांसम्	५/५०	न शूद्राय मतिं दद्यात्	४/८०
न भक्षयेदेकचरान्	५/१७	न शूद्रे पातकं किंचित्	१०/१२६
न भुञ्जीतोद्धतस्नेहम्	४/६२	नश्यतीषुर्यथा विद्ध:	९/४३
न भोक्तव्यो बलादाधि:	८/१४४	नश्यन्ति हव्यकव्यानि	३/९७
न भोजनार्थे स्वे विप्र:	३/१०९	न श्राद्धे भोजयेन्मित्रम्	३/१३८
न भ्रातरो न पितर:	९/१८५	नष्टं विनष्टं कृमिभि:	८/२३२
न मांस भक्षणे दोष:	५/५६	न संवसेच्च पतितै	४/७९
न माता न पिता न	८/३८९	न संहताभ्यां पाणिभ्यां	४/८२
न मित्रकारणाद्राजा	८/३४७	न संभाषां परस्त्रीभि:	८/३६१
न मृल्लोष्ठं च मृद्गीयात्	४/७०	न ससत्त्वेषु गर्तेषु	४/४७
न यज्ञार्थं धनं शूद्रात्	११/२४	न साक्षी नृपति: कार्य:	८/६५
नरके हि पतन्त्येते	११/३७	न सीदन्नपि धर्मेण	४/१७१

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
न सीदेत्स्नातको विप्रः	४/३४	नानुशुश्रुम जात्वेतत्	९/१००
न सुप्तं न विसन्नाहन्	७/९२	नान्नमद्यादेकवासाः	४/४५
न स्कन्दते न व्यथते	७/८४	नान्यदन्येन संसृष्टं	८/२०३
न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा	४/१२९	नान्यस्मिन्विधवा नारी	९/६४
न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टः	४/१४२	नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह	५/१६२
न स्वामिना निसृष्टोऽपि	८/४१४	नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयात्	२/११०
न हायनैर्न पलितैः	२/१५४	नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा	४/५६
न हि दण्डादृते शक्यः	९/२६३	नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति	९/३२२
न हीदृशयमनायुष्यम्	४/१३४	नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यः	२/२४२
न होढेन विना चौरम्	९/२७०	नाभिनन्देत मरणम्	६/४५
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां	५/४८	नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म	२/१७२
नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु	४/७४	नामजातिग्रहं त्वेषाम्	८/२७१
नाग्निं मुखेनोपधमेत्	४/५३	नामधेयं दशम्यां तु	२/३०
नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे	४/४४	नामधेयस्य ये केचित्	२/१२३
नाततायिवधे दोषः	८/३५१	नामुत्र हि सहायार्थम्	४/२३९
नातिकल्यं नातिसायम्	४/१४०	नायुधव्यसनप्राप्तम्	७/९३
नातिसांवत्सरीं वृद्धिम्	८/१५३	नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहम्	५/८७
नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्	५/३०	नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि	२/१६१
नात्मानमवमन्यन्ते	४/१३७	नार्तो न मत्तो नोन्मत्तः	८/६७
नात्रिवर्षस्य कर्तव्या	५/७०	नार्थसंबन्धिनो नाप्ताः	८/६४
नाददीत नृपः साधुः	९/२४३	नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैः	४/६७
नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नम्	४/२२३	नाविस्पष्टमधीयीत	४/९९
नाद्यादविधिना मांसम्	५/३३	नाश्नन्ति पिरतस्तस्य	४/२४९
नाधर्मश्चरितो लोके	४/१७२	नाश्नीयाद्भार्यया सार्धम्	४/४३
नाधार्मिके वसेद्ग्रामे	४/६०	नाश्नीयात्संधिवेलायाम्	४/५५
नाधीयीत श्मशानान्ते	४/११६	नाश्रोत्रियतते यज्ञे	४/२०५
नाधीयीताश्वमारूढः	४/१२०	नास्तिक्यं वेदनिन्दां च	४/२६३
नाध्यधीनो न वक्तव्यः	८/६६	नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैः	९/१८
नाध्यापनाद्याजनाद्वा	१०/१०३	नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञः	५/१५५
नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या	४/२७	नास्य कार्योऽग्निसंस्कारः	५/६९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
नास्य च्छिद्रं परो विद्यात्	७/१०५	निरस्य तु पुमाञ्छुक्रम्	५/६३
नास्त्रमापातयेज्जातु	३/२२९	निरादिष्टधनश्चेत्तु	८/१६२
निक्षिप्तस्य धनस्यैवम्	८/१९६	निर्घाते भूमिचलने	४/१०५
निक्षेपस्यापहरणम्	८/१९०	निर्दशं ज्ञातिमरणम्	५/७७
निक्षेपस्यापहरणं	११/५७	निर्भयं तु भवेद्यस्य	९/२५५
निक्षेपस्यापहर्तारम्	८/१९२	निर्लेपं काञ्चनं भाण्डम्	५/११२
निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु	८/१८८	निर्वर्तेतास्य यावद्भिः	७/६१
निक्षेपोपनिधी नित्यम्	८/१८५	निवर्तेरंश्च तस्मात्तु	११/१८४
निक्षेपो यः कृतो येन	८/१९४	निषादस्त्री तु चण्डाला	१०/३९
निगृह्य दापयेच्चैनम्	८/२२०	निषादो मार्गवं सूते	१०/३४
निग्रहं प्रकृतीनां च	७/१७५	निषेकादिश्मशानान्तः	२/१६
निग्रहेण हि पापानाम्	८/३११	निषेकादीनि कर्माणि	२/१४२
नित्यं शुद्धः कारुहस्तः	५/१२९	निष्पद्यन्ते च सस्यानि	९/२४७
नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याम्	२/१७६	नीचं शय्यासनं चास्य	२/१९८
नित्यं तस्मिन्समाश्वस्त	७/५९	नीहारे बाणशब्दे च	४/११३
नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां	५/१३०	नृणामकृतचूडानाम्	५/६७
नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्	२/१९३	नेक्षेतोद्यन्तमादित्यम्	४/३७
नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्	७/१०२	नेहेतार्थान्प्रसङ्गेन	४/१५
नित्यमुद्यतदण्डस्य	७/१०३	नैःश्रेयसमिदं कर्म	१२/१०७
नित्यानध्याय एव स्यात्	४/१०७	नैकः स्वप्याच्छून्यगेहे	४/५७
निधीनां तु पुराणानाम्	८/३९	नैकग्रामीणमतिथिम्	३/१०३
निन्दितेभ्यो धनादानम्	११/६९	नैता रूपं परीक्षन्ते	९/१४
निन्दास्वष्टासु चान्यासु	३/५०	नैतैरपूतैर्विधिवत्	२/४०
निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये	३/१८८	नैत्यके नास्त्यनध्यायः	२/१०६
निमन्त्रितान्हि पितरः	३/१८९	नैष चारणदारेषु	८/३६२
निक्षेपस्यापहर्तारं	८/१९२	नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं	७/१३९
निमेषा दश चाष्टौ च	१/६४	नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यात्	२/५६
नियुक्तस्तु यथान्यायम्	५/३५	नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्याः	५/१४१
नियुक्तायामपि पुमान्	९/१४४	नोत्पादयेत्स्वयं कार्यम्	८/४३
नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा	९/६३	नोदाहरेदस्य नाम	२/१९९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
नोद्वहेत्कपिलां कन्याम्	३/८
नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्याः	८/२०५
नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि	४/४०
नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु	९/६५
न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु	३/२१६
पक्षिजग्धं गवाघ्रातम्	५/१२५
पञ्च पश्वनृते हन्ति	८/९८
पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः	१२/१६
पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे	८/४०२
पञ्च सूना गृहस्थस्य	३/६८
पञ्चानां तु त्रयो धर्म्याः	३/२५
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु	२/१३७
पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः	८/२६८
पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके	८/२२२
पञ्चाशद्भाग आदेयः	७/१३०
पञ्चैतान्यो महायज्ञान्	३/७१
पणं यानं तरे दाप्यम्	८/४०४
पणानां द्वे शते सार्धे	८/१३८
पणो देयोऽवकृष्टस्य	७/१२६
पतिं या नाभिचरति	९/२९
पतिं या नाभिचरति	५/१६५
पतिं हित्वापकृष्टं स्वम्	५/१६३
पतितस्योदकं कार्यम्	११/१८२
पतिर्भार्यां संप्रविश्य	९/८
पतिव्रता धर्मपत्नी	३/१६२
पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिः	९/२००
पत्रशाकतृणानां च	७/१३२
पथि क्षेत्रे परिवृत्ते	८/२४०
पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा	११/१३२
परकीयनिपानेषु	४/२०१
परदाराभिमर्शेषु	८/३५२
परदारेषु जायेते	३/१७४
परद्रव्येष्वभिध्यानम्	१२/५
परपत्नीति या स्त्री स्यात्	२/१२९
परमं यत्नमातिष्ठेत्	८/३०२
परस्त्रियं योऽभिवदेत्	८/३५६
परस्परविरुद्धानाम्	७/१५२
परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्	४/१६४
परस्य पत्न्या पुरुषः	८/३५४
पराङ्मुखस्याभिमुखः	२/१९७
परामप्यापदं प्राप्तः	९/३१३
परित्यजेदर्थकामौ	४/१७६
परिपूतेषु धान्येषु	८/३३१
परिपूर्णं यथा चन्द्रम्	९/३०९
परिवित्तिः परिवेत्ता	३/१७२
परिवित्तितानुजेऽनूढे	११/६०
परीक्षिताः स्त्रियश्चैनम्	७/२१९
परीवादात्खरो भवति	२/२०१
परेण तु दशाहस्य	८/२२३
पलं सुवर्णाश्चत्वारः	८/१३५
पशवश्च मृगाश्चैव	१/४३
पशुमण्डूकमार्जार	९/१२६
पशुषु स्वामिनां चैव	८/२२९
पशूनां रक्षणं दानम्	१/९०
पांसुवर्षे दिशां दाहे	४/११५
पाठीनरोहितावाद्यौ	५/१६
पाणिग्रहणसंस्कारः	३/४३
पाणिग्रहणिका मन्त्राः	८/२२७
पाणिग्रहणिका मन्त्राः	८/२२६
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री	५/१५६

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
पाणिभ्यां तूपसंगृह्य	३/२२४	पिशुन: पौतिनासिक्यम्	११/५०
पाणिमुद्यम्य दण्डं वा	८/२८०	पिशुनानृतिनोश्चान्नम्	४/२१४
पात्रस्य हि विशेषेण	७/८६	पीडनानि च सर्वाणि	९/२९९
पादोऽधर्मस्य कर्तारम्	८/१८	पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत	११/३९
पानं दुर्जनसंसर्ग:	९/१३	पुत्र: कनिष्ठो ज्येष्ठायाम्	९/१२२
पानमक्षा: स्त्रियश्चैव	७/५०	पुत्रं प्रत्युदितं सद्भि:	९/३१
पारुष्यमनृतं चैव	१२/६	पुत्रान्द्वादश यानाह	९/१५८
पर्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य	७/२०७	पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजा:	१०/१४
पाषण्डमाश्रितानां च	५/९०	पुत्रिकायां कृतायां तु	९/१३४
पाषण्डिनो विकर्मस्थान्	४/३०	पुत्रेण लोकाञ्जयति	९/१३७
पिण्डनिर्वपणं केचित्	३/१६१	पुनाति पङ्क्तिं वंश्यांश्च	१/१०५
पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकांमात्रां	३/२१९	पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्	९/१३८
पिताचार्य: सुहृन्माता	८/३३५	पुमांसं दाहयेत्पापम्	८/३७२
पितामहो वा तच्छ्राद्धम्	३/२२२	पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे	३/४९
पिता यस्य निवृत्त: स्यात्	३/२२१	पुराणं मानवो धर्म:	१२/९
पिता रक्षति कौमारे	९/३	पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव	९/१
पिता वै गार्हपत्योऽग्नि:	२/२३१	पुरुषाणां कुलीनानाम्	८/३२३
पितुर्भगिन्यां मातुश्च	२/१३३	पुरोहितं च कुर्वीत	७/७८
पितृदेवमनुष्याणाम्	१२/९४	पुष्पमूलफलैर्वापि	६/२१
पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता:	३/५५	पुष्पषु हरिते धान्ये	८/३३०
पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य	३/१२२	पुष्ये तु छन्दसां कुर्यात्	४/९६
पितृवेश्मनि कन्या तु	९/१७२	पूजयेदशनं नित्यम्	२/५४
पितृणां मासिकं श्राद्धम्	३/१२३	पूजितं ह्यशनं नित्यम्	२/५५
पितेव पालयेत्पुत्रान्	९/१०८	पूयं चिकित्सकस्यान्नम्	४/२२०
पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि	५/१४९	पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्	२/१०२
पित्रा विवदमानश्च	३/१५९	पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा	३/१८७
पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु	९/९३	पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा	३/२६
पित्र्यं वा भजते शीलम्	१०/५९	पृथुस्तु विनयाद्राज्यम्	७/४२
पित्र्ये रात्र्यहनी मास:	१/६६	पृथोरपीमां पृथिवीम्	९/४४
पित्र्ये स्वदितमित्येव	३/२५४	पृष्टोऽपव्ययमानस्तु	८/६०

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
पृष्ट्वा स्वदितमित्येवम्	३/२५१
पृष्ठतस्तु शरीरस्य	८/३००
पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत	३/९१
पैतृकं तु पिता द्रव्यम्	९/२०९
पैतृष्वसेयीं भगिनीम्	११/१७१
पैशुन्यं साहसं द्रोहः	७/४८
पौण्ड्रकाचौड्रद्रविडाः	१०/४४
पौत्रदौहित्रयोर्लोके	९/१३३
पौत्रदौहित्रयोर्लोके	९/१३९
पौर्विकीं स स्मरञ्जातिम्	४/१४९
पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च	९/१५
प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः	१०/१२४
प्रकाशमेतत्तास्कर्यम्	९/२२२
प्रकाशवञ्चकास्तेषाम्	९/२५७
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य	३/२६४
प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा	९/२२८
प्रजनार्थं महाभागाः	९/२६
प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः	९/९६
प्रजानां रक्षणं दानम्	१/८९
प्रजापतिरिदं शास्त्रम्	११/२४३
प्रजापतिर्हि वैश्याय	९/३२७
प्रणष्टस्वामिकं रिक्थम्	८/३०
प्रणष्टाधिगतं द्रव्यम्	८/३४
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी	९/३१०
प्रतिकूलं वर्तमाना	१०/३१
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वान्	४/११०
प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यम्	११/२५३
प्रतिगृह्येप्सितं दण्डम्	२/४८
प्रतिग्रहसमर्थोऽपि	४/१८६
प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा	१०/१०९
प्रतिवातेऽनुवाते च	२/२०३
प्रतिश्रवणसंभाषे	२/१९५
प्रतिषिद्धापि चेद्या तु	९/८४
प्रतुदाञ्जालपादांश्च	५/१३
प्रत्यक्षं चानुमानं च	१२/१०५
प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च	४/५२
प्रत्यहं देहदृष्टैश्च	८/३
प्रथिता प्रेतकृत्यैषा	३/१२७
प्रभुः प्रथमकल्पस्य	११/३०
प्रमाणानि च कुर्वीत	७/२०३
प्रविश्य सर्वभूतानि	९/३०६
प्रवृत्तं कर्म संसेव्य	१२/९०
प्रशासितारं सर्वेषाम्	१२/१२२
प्रसाधनोपचारज्ञम्	१०/३२
प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य	७/१९४
प्राकारस्य च भेत्तारम्	९/२८९
प्राक्कूलान्पर्युपासीनाः	२/७५
प्राङ् नाभिवर्धनात्पुंसः	२/२९
प्राचीनावीतिना सम्यक्	३/२७९
प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः	८/२९४
प्राजापत्यमदत्त्वाश्वम्	११/३८
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिम्	६/३८
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च	७/२१०
प्राणस्यान्नमिदं सर्वम्	५/२८
प्राणायामा ब्राह्मणस्य	६/७०
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्	६/७२
प्राणि वा यदि वाऽप्राणि	४/११७
प्रातिभाव्यं वृथादानम्	८/१५९
प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च	८/३९२
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु	४/१०६

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः	९/२४०
प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति	११/१९२
प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य	११/४७
प्रायश्चित्ते तु चरिते	११/१८६
प्रियेषु स्वेषु सुकृतम्	६/७९
प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि	५/५७
प्रेते राजनि सज्योतिः	५/८२
प्रेत्येह चेदृशा विप्राः	४/१९९
प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च	३/१५३
प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च	५/१२२
प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्	५/२७
प्रोषितो धर्मकार्यार्थम्	९/७६
फलं कतकवृक्षस्य	६/६७
फलं त्वनभिसंधाय	९/५२
फलदानां तु वृक्षाणाम्	११/१४२
फलमूलाशनैर्मेध्यैः	५/५४
बकं चैव बलाकां च	५/१४
बकवच्चिन्तयेदर्थान्	७/१०६
बको भवति हृत्वाग्निम्	१२/६६
बन्धनानि च सर्वाणि	९/२८८
बन्धुप्रियवियोगांश्च	१२/७९
बभूवुर्हि पुरोडाशाः	५/२३
बलस्य स्वामिनश्चैव	७/१६७
बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तम्	८/१६८
बहवो विनयान्नष्टाः	७/४०
बहुत्वं परिगृह्णीयात्	८/७३
बहून्वर्षगणान्घोरान्	१२/५४
बालः समानजन्मा वा	२/२०८
बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च	११/१९०
बालदायादिकं रिक्थम्	८/२७
बालया वा युवत्या वा	५/१४७
बालवृद्धातुराणां च	८/७१
बालातपः प्रेतधूमः	४/६९
बाले देशान्तरस्थे च	५/७८
बालोऽपि नावमन्तव्यः	७/८
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्	५/१४८
बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैः	८/२५
बिडालकाकाखूच्छिष्टम्	११/१५९
बिभर्ति सर्वभूतानि	१२/९९
बीजमेके प्रशंसन्ति	१०/७०
बीजस्य चैव योन्याश्च	९/३५
बीजानामुप्तिविच्च स्यात्	९/३३०
बुद्धिवृद्धिकराण्याशु	४/१९
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषाम्	२/९१
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन	७/६८
ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोके	८/८९
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च	६/८७
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीया	११/१५८
ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यात्	२/७४
ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातम्	२/११६
ब्रह्मवर्चसकामस्य	२/३७
ब्रह्महत्या सुरापानम्	११/५४
ब्रह्महा च सुरापश्च	९/२३५
ब्रह्महा द्वादशसमाः	११/७२
ब्रह्मारंभेऽवसाने च	२/७१
ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मः	१२/५०
ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा	११/५६
ब्राह्मणः संभवेनैव	११/८४
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः	१०/०४
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि	१०/११७

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्	९/१५५	ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन	२/५८
ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु	८/२७६	ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत	४/९२
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्	२/१२७	ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः	३/२१
ब्राह्मणं दशवर्षं तु	२/१३५	ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्	८/८८
ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि	३/२४३	ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयात्	८/५६
ब्राह्मणस्तु सुरापस्य	११/१४९	भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च	९/२६८
ब्राह्मणस्त्वनधीयानः	३/१६८	भक्ष्यभोज्यापहरणे	११/१६५
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः	८/३३८	भक्ष्यं भोज्यं च विविधम्	३/२२७
ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानम्	११/२३५	भगवन् सर्ववर्णानाम्	१/२
ब्राह्मणस्य रुजःकृत्या	११/६७	भद्रं भद्रमिति ब्रूयात्	४/१३९
ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण	९/१४९	भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु	१०/१०७
ब्राह्मणस्यैव कर्मैतत्	२/१९०	भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षम्	२/४९
ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यम्	११/१८	भर्तारं लघयेद्या तु	८/३७१
ब्राह्मणादुग्रकन्यायाम्	१०/१५	भर्तुः पुत्रं विजानन्ति	९/३२
ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायाम्	१०/८	भर्तुः शरीरशुश्रूषाम्	९/८६
ब्राह्मणान्पर्युपासीत	७/३७	भाण्डपूर्णानि यानानि	८/४०५
ब्राह्मणान्बाधमानं तु	९/२४८	भार्या पुत्रश्च दासश्च	८/४१६
ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्थाः	१०/७४	भार्या पुत्रश्च दासश्च	८/२९९
ब्राह्मणायावगूर्यैव	४/१६५	भार्यायै पूर्वमारिण्यै	५/१६८
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा	११/७९	भिक्षामप्युदपात्रं वा	३/९६
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा	१०/७९	भिक्षुका बन्दिनश्चैव	८/३६०
ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु	८/३७६	भिन्दन्त्यवमतामन्त्रम्	७/१५०
ब्राह्मणेषु च विद्वांसः	१/९७	भिन्द्याच्चैव तडागानि	७/१९६
ब्राह्मणो जायमानो हि	१/९९	भुक्तवत्स्वथ विप्रेशु	३/११६
ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ	२/४५	भुक्त्वान्विहरेच्चैव	७/२२१
ब्राह्मदैवार्षगान्धर्व	९/१९६	भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नम्	४/२२२
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारम्	७/२	भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः	१/९६
ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता	२/१५०	भूमावप्येककेदारे	८/३८
ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य	१/६८	भूमिदो भूमिमाप्नोति	४/२३०
ब्राह्मादिषु विवाहेषु	३/३९	भूमौ विपरिवर्तेत	६/२२

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
भृतकाध्यापको यश्च	३/१५६	मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा	४/१३१
भृतो नार्तो न कुर्याद्य:	८/२१५	मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा	७/१५१
भृत्यानामुपरोधेन	११/१०	मध्यमस्य प्रचारं च	७/१५५
भृत्यानां च भृतिं विद्यात्	९/३३२	मनसीन्दुं दिश: श्रोत्रे	१२/१२१
भैक्षेण वर्तयेन्नित्यम्	२/१८८	मन: सृष्टिं विकुरुते	१/७५
भो:शब्दं कीर्तयेदन्ते	२/१२४	मनुमेकान्तमासीनं	१/१
भोजनाभ्यञ्जनाद्दानात्	१०/९१	मनुष्यमारणे क्षिप्तम्	८/२९६
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या	९/५७	मनुष्याणां तु हरणे	११/१६३
भ्रातुर्भार्योसंग्राह्या	२/१३२	मनुष्याणां पशूनां च	८/२८६
भ्रातुर्मृतस्य भार्यायाम्	३/१७३	मनोर्हैरण्यगर्भस्य	३/१९४
भ्रातृणामेकजातानाम्	९/१८२	मन्त्रतस्तु समृद्धानि	३/६६
भ्रातृणां यस्तु नेहेत	९/२०७	मन्त्रै: शाकलहोमीयै:	११/२५६
भातृणामविभक्तानाम्	९/२१५	मन्यन्ते वै पापकृत:	८/८५
भ्रामरी गण्डमाली च	३/१६१	मन्येतारिं यदा राजा	७/१७३
भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव	४/२०८	मन्वन्तराण्यसंख्यानि	१/८०
मक्षिका विप्रुपश्छाया	५/१३३	ममायमिति यो ब्रूयात्	८/३५
मङ्गलाचारयुक्त: स्यात्	४/१४५	ममेदमिति यो ब्रूयात्	८/३१
मङ्गलाचारयुक्तानाम्	४/१४६	मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ	१/३५
मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनम्	५/१५२	मरुद्भ्य इति तु द्वारि	३/८८
मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्	२/३१	महर्षिपितृदेवानाम्	४/२५७
मणिमुक्ताप्रवालानाम्	११/१६७	महर्षिभिश्च देवैश्च	८/११०
मणिमुक्ताप्रवालानाम्	९/३२९	महान्तमेव चात्मानम्	१/१५
मणिमुक्ताप्रवालानि	१२/६१	महान्त्यपि समृद्धानि	३/६
मत्तक्रुद्धातुराणां च	४/२०७	महापशूनां हरणे	८/३२४
मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनै:	८/१६३	महापातकसंयुक्त:	११/२५७
मत्स्यघातो निषादानाम्	१०/४८	महापातकिनश्चैव	११/२३९
मत्स्यानां पक्षिणां चैव	८/३२८	महाव्याहृतिभिर्होम:	११/२२२
मद्यपा साधुवृत्ता च	९/८०	मांसं गृध्रो वपां मद्गु:	१२/६३
मद्यैर्मूत्रै: पुरीषैर्वा	५/१२३	मांसभक्षयितामुत्र	५/५५
मधुपर्के च यज्ञे च	५/४१	मातरं वा स्वसारं वा	२/५०

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
मातरं पितरं जायाम्	८/२७५	मृदं गां दैवतं विप्रम्	४/३९
माता पिता वा दद्याताम्	९/१६८	मृष्यन्ति ये चोपपतिम्	४/२१७
मातापितृभ्यां जामीभिः	९/१७१	मेखलामजिनं दण्डम्	२/६४
मातापितृभ्यामुत्सृष्टम्	९/१७१	मैत्रं प्रसाधनं स्नानम्	४/१५२
मातापितृविहीनो यः	९/१७७	मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतः	१२/७२
मातामहं मातुलं च	३/१४८	मैत्रेयकं तु वैदेहः	१०/३३
मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्	९/१३१	मैथुनं तु समासेव्य	११/१७४
मातुः प्रथमतः पिण्डम्	९/१४०	मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः	७/१११
मातुरग्रेऽधिजननम्	२/१६९	मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा	२/४२
मातुलांश्च पितृव्यांश्च	२/१३०	मौण्ड्यं प्राणान्तिकोदण्डः	८/३७९
मातृष्वसा मातुलानी	२/१३१	मौलाञ्छास्त्रविदः शूरान्	७/५४
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा	२/२१५	म्रियमाणोऽप्याददीत	७/१३३
मानसं मनसैवायम्	१२/८	यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायाम्	९/१७८
मार्गशीर्षे शुभे मासि	७/१८२	यं वदन्ति तमोभूताः	१२/११५
मार्जनं यज्ञपात्राणाम्	५/११६	यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मः	२/७
मार्जारनकुलौ हत्वा	११/१३१	यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैः	८/३१३
मारुतं पुरुहूतं च	११/१२१	यः संगतानि कुरुते	३/१४०
मासिकान्नं तुयोऽश्नीयात्	११/१५७	यः साधयन्तं छन्देन	८/१७६
मिथो दायः कृतो येन	८/१९५	यः स्वयं साधयेदर्थम्	८/५०
मुखबाहूरुपज्जानाम्	१०/४५	यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दम्	२/१०७
मुञ्जालाभे तु कर्तव्या	२/४३	यः स्वामिनाननुज्ञातम्	८/१५०
मुण्डो वा जटिलो वा स्यात्	२/२१९	य आवृणोत्यवितथम्	२/१४४
मुन्यन्नानि पयः सोमः	३/२५७	य एते तु गणा मुख्या	३/२००
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः	६/५	य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः	४/२२१
मूत्रोच्चारसमुत्सर्गम्	४/५०	य एतेऽभिहिताः पुत्राः	९/१८१
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः	७/४७	यक्षरक्षःपिशाचांश्च	१/३७
मृतं शरीरमुत्सृज्य	४/२४१	यक्षरक्षःपिशाचान्नम्	११/९५
मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु	१०/३५	यक्ष्मी च पशुपालश्च	३/१५४
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री	५/१६०	यच्चास्य सुकृतं किंचित्	७/९५
मृत्तोयैः शुध्यते शोध्यम्	५/१०८	यजेत राजा क्रतुभिः	७/७९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
यजेत वाश्वमेधेन	११/७४
यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्ध:स्यात्	११/११
यज्ञाय जग्धिर्मांसस्य	५/३१
यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्या:	५/२२
यज्ञार्थं पशव: सृष्टा:	५/३९
यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा	११/२५
यज्ञे तु वितते सम्यक्	३/२८
यज्ञोऽनृतेन क्षरति	४/२३७
यज्वान ऋषयो देवा:	१२/४९
यतश्च भयमाशङ्केत्	७/१८८
यतात्मनोऽप्रमत्तस्य	११/२१५
यत्करोत्येकरात्रेण	११/१७८
यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्	४/१६१
यतकर्म कृत्वा कुर्वंश्च	१२/३५
यत्किंचित्पितरि प्रेते	९/२०४
यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तम्	५/२४
यत्किंचिदपि दातव्यम्	४/२२८
यत्किंचिदपि वर्षस्य	७/१३७
यत्किंचिदेन: कुर्वन्ति	११/२४१
यत्किंचिद्दश वर्षाणि	८/१४७
यत्किंचिन्मधुना मिश्रम्	३/२७३
यत्तत्कारणमव्यक्तम्	१/११
यत्तु दु:खसमायुक्तम्	१२/२८
यत्तु वाणिजके दत्तम्	३/१८१
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तम्	१२/२९
यत्त्वस्या: स्याद्धनंवित्तम्	९/१९७
यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे	३/१४५
यत्पुण्यफलमाप्नोति	३/९५
यत्प्राग्द्वादशसाहस्रम्	१/७९
यत्सर्वेणेच्छति	१२/३७

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
यत्र त्वेते परिध्वंसात्	१०/६१
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण	८/१४
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते	३/५६
यत्र वर्जयते राजा	९/२४६
यत्र श्यामो लोहिताक्ष:	७/२५
यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत	८/७६
यत्रापवर्तते युग्यम्	८/२९३
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुम्	१२/३७
यथर्तुलिङ्गान्यृतव:	१/३०
यथाकथंचित्पिण्डानाम्	११/२२०
यथा काष्ठमयो हस्ती	२/१५७
यथा खनन्खनित्रेण	२/२१८
यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु	९/४८
यथा चैवापर: पक्ष:	३/२७८
यथा जातबलो वह्नि:	१२/१०१
यथा त्रयाणां वर्णानाम्	१०/२८
यथा दुर्गाश्रितानेतान्	७/७३
यथा नदीनदा: सर्वे	६/९०
यथा नयत्यसृक्पातै:	८/४४
यथा प्लवेनौपलेन	४/१९४
यथा फलेन युज्येत	७/१२८
यथा महाह्रदंप्राप्य	११/२६३
यथा यथा नरोऽधर्मम्	११/२२८
यथा यथा निषेवन्ते	१२/७३
यथा यथा मनस्तस्य	११/२२९
यथा यथा हि पुरुष:	४/२०
यथा यथा हि सद्वृत्तम्	१०/२२८
यथा यम: प्रियद्वेष्यौ	९/३०७
यथार्हमेतानभ्यर्च्य	८/३९१
यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यम्	७/१२९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
यथा वायुं समाश्रित्य	३/७७
यथाविध्यधिगम्यैनाम्	९/७०
यथा शास्त्रं तु कृत्वैवम्	४/९७
यथाश्वमेधः क्रतुराट्	११/२६०
यथा षण्ढोफलः स्त्रीषु	२/१५८
यथा सर्वाणि भूतानि	९/३११
यथेदमुक्तवाङ् शास्त्रम्	१/११९
यथेदं शावमाशौचम्	५/६१
यथेरिणे बीजमुप्त्वा	३/१४२
यथैधस्तेजसा वह्निः	११/२४६
यथैनं नाभिसंदध्युः	७/१८०
यथैव शूद्रो ब्राह्मण्याम्	१०/३०
यथैवात्मा तथा पुत्रः	९/१३०
यथोक्तमार्तः सुस्थो वा	८/२१७
यथोक्तान्यपि कर्माणि	१२/९२
यथोक्तेन नयन्तस्ते	८/२५७
यथोदितेन विधिना	४/१००
यथोद्धरति निर्दाता	७/११०
यदधीते यद्यजते	८/३०५
यदन्यगोषु वृषभः	९/५०
यदाणुमात्रिको भूत्वा	१/५६
यदा तु यानमातिष्ठेत्	७/१८१
यदा तु स्यात्परिक्षीणः	७/१७२
यदा परबलानां तु	७/१७४
यदा प्रहृष्टा मन्येत	७/१७०
यदा भावेन भवति	६/८०
यदा मन्येत भावेन	७/१७१
यदावगच्छेदायत्याम्	७/१६९
यदा स देवो जागर्ति	१/५२
यदा स्वयं न कुर्यात्तु	८/९
यदि तत्रापि संपश्येत्	७/१७६
यदि तु प्रायशो धर्मम्	१२/२१
यदि ते तु न तिष्ठेयुः	७/१०८
यदि त्वतिथिधर्मेण	३/१११
यदि त्वात्यन्तिकं वासम्	२/२४३
यदि न प्रणयेद्राजा	७/२०
यदि नात्मनि पुत्रेषु	४/१७३
यदि स्त्री यद्यवरजः	२/२२३
यदि संशय एव स्यात्	८/२५३
यदि संसाधयेत्तत्तु	८/२१३
यदि स्वाश्चापराश्चैव	९/८५
यदि हि स्त्री न रोचेत	३/६१
यदेतत्परिसंख्यातम्	१/७१
यददमुक्तवाञ्छास्त्रम्	१/११९
यदेव तर्पयत्यद्भिः	३/२८३
यद्गर्हितेनार्चयन्ति	११/१९३
यद्दुस्तरं यद्दुरापम्	११/२३८
यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ	८/८०
यद्धनं यज्ञशीलानाम्	११/२०
यद्ध्यायति यत्कुरुते	५/४७
यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्यात्	६/७
यद्यत्परवशं कर्म	४/१५९
यद्यद्ददाति विधिवत्	३/२७५
यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यः	३/२३१
यद्यन्नमत्ति तेषां तु	५/१०२
यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रः	९/१५४
यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्	९/२०३
यद्यस्य विहितं कर्म	२/१७४
यद्याचरति धर्मं सः	१२/२०
यद्येकरिक्थिनौ स्याताम्	९/१६२

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठम्	८/२२	यस्माद्बीजप्रभावेण	१०/७२
यद्वा तद्वा परद्रव्यम्	१२/६८	यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युः	८/२०८
यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते	३/२३८	यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते	११/२३३
यं तु कर्मणि यस्मिन्सः	१/२८	यस्मिन्देशे निषीदन्ति	८/११
यं तु पश्येन्निधिं राजा	८/३८	यस्मिन्नृणं संनयति	९/१०७
यन्नावि किंचिद्दासानाम्	८/४०८	यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये	८/२२८
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्माः	१/१७	यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु	८/११७
यन्मे माता प्रलुलुभे	९/२०	यस्मै दद्यात्पिता त्वेनाम्	५/१५१
यमान्सेवेत सततम्	४/२०४	यस्य कायगतं ब्रह्म	११/९७
यमिद्धो न दहत्यग्निः	८/११५	यस्य त्रैवार्षिकं भक्तम्	११/७
यमो वैवस्वतो देवः	८/९२	यस्य दृश्येत सप्ताहात्	८/१०८
यं ब्राह्मणास्तु शूद्रायाम्	९/१७८	यस्य प्रसादे पद्मा श्रीः	७/११
यं मातापितरौ क्लेशम्	२/२२७	यस्य मन्त्रं न जानन्ति	७/१४८
यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायाम्	९/१२०	यस्य मित्रप्रधानानि	३/१३९
यश्चापि धर्मसमयात्	९/२७३	यस्य राज्ञस्तु विषये	७/१३४
यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्	२/९५	यस्य वाङ्मनसी शुद्धे	२/१६०
यस्तल्पजः प्रमीतस्य	९/१६७	यस्य विद्वान्हि वदतः	८/९६
यस्तु तत्कारयेन्मोहात्	९/८७	यस्य शूद्रस्तु कुरुते	८/२१
यस्तु दोषवतीं कन्याम्	८/२२४	यस्य स्तेनः पुरे नास्ति	८/३८६
यस्तु दोषवतीं कन्याम्	९/७३	यस्या म्रियेत कन्यायाः	९/६९
यस्तु पूर्वनिविष्टस्य	९/२८१	यस्यास्तु न भवेद्भ्राता	३/११
यस्तु भीतः परावृत्तः	७/९४	यस्यास्येन सदाश्नन्ति	१/९५
यस्तु रज्जुं घटं कूपात्	८/३१९	या यां योनिंत जीवोऽयम्	१२/५३
यस्त्वधर्मेणकार्याणि	८/१७४	या गर्भिणी संस्क्रियते	९/१७३
यस्त्वनाक्षारितः पूर्वम्	८/३३५	याजनाध्यापने नित्यम्	१०/११०
यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि	८/३३३	या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री	८/३७०
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणः	३/७८	यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं	४/३
यस्मादण्वपि भूतानाम्	६/४०	यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री	९/२२
यस्मादुत्पत्तिरेतेषाम्	३/१९३	यादृशं तृप्यते बीजम्	९/३६
यस्मादेषां सुरेन्द्राणाम्	७/५	यादृशं भजते हि स्त्री	९/९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
यादृशं फलमाप्नोति	९/१६१
यादृशा धनिभिः कार्याः	८/६१
यादृशेन तु भावेन	१२/८१
यादृशोऽस्य भवेदात्मा	४/२५४
यानशय्यासनान्यस्य	४/२०२
यानशय्याप्रदो भार्याम्	४/२३२
यानस्य चैव यातुश्च	८/२९०
यानि चैवंप्रकाराणि	८/२५१
या नियुक्तान्यतः पुत्रम्	९/१४७
यानि राजप्रदेयानि	७/११८
यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति	९/३१६
यापत्या वा परित्यक्ता	९/१७५
यामीस्ता यातनाः प्राप्य	१२/२२
या रोगिणी स्यात्तु हिता	९/८२
यावतः संस्पृशेदङ्गैः	३/१७८
यावतो ग्रसते ग्रासान्	३/१३३
यावतो बान्धवान्यस्मिन्	८/९७
यावत्त्रयस्ते जीवेयुः	२/२३५
यावदुष्णं भवत्यन्नम्	३/२३७
यावदेकानुदिष्टस्य	४/१११
यावन्ति पशुरोमाणि	५/३८
यावन्नापैत्यमेध्याक्तात्	५/१२६
यावानवध्यस्य वधे	९/२४९
या वेदबाह्याः स्मृतयः	१२/९५
या वेदविहिता हिंसा	५/४४
यासां नाददते शुल्कम्	३/५४
यास्तासां स्युर्दुहितरः	९/१९३
युक्षु कुर्वन्दिनर्क्षेषु	३/२७७
युगपत्तु प्रलीयन्ते	१/५४
युग्मासु पुत्रा जायन्ते	३/४८

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव	७/१२४
येऽक्षेत्रिणो बीजवतः	९/४९
ये तत्र नोपसर्पेयुः	९/२६९
ये द्विजानामपसदाः	१०/४६
येन केनचिदङ्गेन	८/२७९
येन यस्तु गुणेनैषाम्	१२/३९
येन येन तु भावेन	४/२३४
येन येन यथाङ्गेन	८/३३४
येनास्मिन्कर्मणा लोके	१२/३६
येनास्य पितरो याताः	४/१७८
ये नियुक्तास्तु कार्येषु	९/२३१
ये पाकयज्ञाश्चत्वारः	२/८६
ये बकव्रतिनो विप्राः	४/१९७
ये शूद्रादधिगम्यार्थम्	११/४२
येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा	९/२११
येषां तु यादृशं कर्म	१/४२
येषां द्विजानां सावित्री	११/१९१
ये स्तेनपतितक्लीबाः	३/१५०
यैः कर्मभिः प्रचरितैः	१०/१००
यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निः	९/३१४
यैरभ्युपायैरेनांसि	११/२१०
यैर्यैरुपायैरर्थं स्वम्	८/४८
योऽकामां दूषयेत्कन्याम्	८/३६४
योगाधमनविक्रीतम्	८/१६५
यो ग्रामदेशसंघानाम्	८/२१९
यो ज्येष्ठोज्येष्ठवृत्तिःस्यात्	९/११०
यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत	९/२१३
योऽदत्तादायिनोहस्तात्	८/३४०
यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः	६/३९
योऽधीतेऽहन्यहन्येताम्	२/८२

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
योऽनधीत्य द्विजो वेदान्	२/१६८	रथाश्वं हस्तिनं छत्रम्	७/९६
यो न वेत्त्यभिवादस्य	२/१२६	रसा रसैर्निमातव्या:	१०/९४
योऽनाहिताग्नि: शतगु:	११/१४	राजकर्मसु युक्तानाम्	७/१२५
यो निक्षेपं याच्यमान:	८/१८१	राजतैर्भाजनैरेषाम्	३/२०२
यो निक्षेपं नार्पयति	८/१९१	राजतो धनमन्विच्छेत्	४/३३
योऽन्यथा सन्तमात्मानम्	४/२५५	राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि	७/१
यो बन्धनवधक्लेशान्	५/४६	राजभि: कृतदण्डास्तु	८/३१८
यो यथा निक्षिपेद्धस्ते	८/१८०	राजर्त्विक्स्नातकगुरून्	३/११९
यो यदैषां गुणो देहे	१२/२५	राजा कर्मसु युक्तानाम्	७/१२५
यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य	३/२२	राजा च श्रोत्रियश्चैव	३/१२०
यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेत्	८/१५८	राजान: क्षत्रियाश्चैव	१२/४६
यो यस्य मांसमश्नाति	५/१५	राजान्नं तेज आदत्ते	४/२१८
यो यस्यैषां विवाहानाम्	३/३६	राजा भवत्यनेनास्तु	८/१९
यो यावन्निह्नुवीतार्थम्	८/५९	राजा स्तेनेन गन्तव्य:	८/३१४
यो येन पतितेनैषाम्	११/१८१	राज्ञ: कोषापहर्तॄंश्च	९/२७५
योऽरक्षन्बलिमादत्ते	८/३०७	राज्ञ: प्रख्यातभाण्डानि	८/३९९
योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति	४/२३५	राज्ञश्च दद्युरुद्धारम्	७/९७
यो राज्ञ: प्रतिगृह्णाति	४/८७	राज्ञो माहात्मिके स्थाने	५/९४
यो लोभादधमो जात्या	१०/९६	राज्ञो हि रक्षाधिकृता:	७/१२३
योवमन्येत ते मूले	२/११	रात्रिभिर्मासतुल्याभि:	५/६६
यो वैश्य: स्याद्बहुपशु:	११/१२	रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत	३/२८०
योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय	११/१९	राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यम्	७/११३
योऽसावतीन्द्रियग्राह्य:	१/७	राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्	९/२७२
योऽस्यात्मन: कारयिता	१२/१२	रूपसत्त्वगुणोपेता:	३/४०
योऽहिंसकानि भूतानि	५/४५	रेत:सेक: स्वयोनीषु	११/५८
यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे	४/८१	लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्यात्	११/७३
रक्षणादार्यवृत्तानाम्	९/२५३	लशुनं गृञ्जनं चैव	५/५
रक्षन्धर्मेण भूतानि	८/३०६	लूताहिसरटानां च	१२/५७
रजसाभिप्लुतां नारीम्	४/४१	लोकसंव्यवहारार्थम्	८/१३१
रथं हरेत वाध्वर्यु:	८/२०९	लोकानन्यान्सृजेयुर्ये	९/३१५

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
लोकानां तु विवृद्ध्यर्थम्	१/३१	वस्त्रं पत्रमलंकारम्	९/२१९
लोकेशाधिष्ठितो राजा	५/९७	वाग्दण्डं प्रथमं कुर्यात्	८/१२९
लोभ:स्वप्नोऽधृति:क्रौर्यम्	१२/३३	वाग्दण्डोऽथ मनोदण्ड:	१२/१०
लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु	८/१२०	वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव	८/३४५
लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्	८/११८	वाग्दैवत्यैश्च चरुभि:	८/१०५
लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी	४/७१	वाच्यर्था नियता: सर्वे	४/२५६
लोहशंकुमृजीषं च	४/९०	वाच्येके जुह्वति प्राणम्	४/२३
लोहितान्वृक्षनिर्यासान्	५/६	वाणिज्यं कारयेद्वैश्यम्	८/४१०
लौकिकं वैदिकं वापि	२/११७	वानस्पत्यं मूलफलम्	८/३३९
वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य	८/११६	वान्ताश्युल्कामुख: प्रेत:	१२/७१
वधेनापि यदा त्वेतान्	८/१३०	वान्तो विरिक्त: स्नात्वा तु	५/१४४
वध्यांश्च हन्यु: सततम्	१०/५६	वायोरपि विकुर्वाणात्	१/७७
वनस्पतीनां सर्वेषाम्	८/२८५	वाय्वग्निविप्रमादित्यम्	४/४८
वनेषु च विहृत्यैवम्	६/३३	वारिदस्तृप्तिमाप्नोति	४/२२९
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे	९/८१	वार्षिकांश्चतुरो मासान्	९/३०४
वपनं मेखलादण्डौ	११/१५१	वासन्तशारदैर्मेध्यै:	६/११
वयस: कर्मणोऽर्थस्य	४/१८	वासांसि मृतचेलानि	१०/५२
वरं स्वधर्मो विगुण:	१०/९७	वासो दद्याद्धयं हत्वा	११/१३६
वरुणेन यथा पाशै:	९/३०८	वासोदाश्चन्द्रसालोक्यम्	४/२३१
वर्जयेन्मधु मांसं च	१/१७७	विंशतीशस्तु तत्सर्वम्	७/११७
वर्जयेन्मधु मांसं च	६/१४	विक्रयाद्यो धनं किंचित्	८/२०१
वर्णापेतमविज्ञातम्	१०/५७	विक्रीणीते परस्य स्वम्	८/१९७
वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्याम्	४/१०	विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्रात्	७/१४३
वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन	५/५३	विगतं तु विदेशस्थम्	५/७५
वशापुत्रासु चैवं स्यात्	८/२८	विघसाशी भवेन्नित्यम्	३/२८५
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामम्	२/१००	विघुष्य तु हृतं चौरै:	८/२३३
वसा शुक्रमसृङ्मज्जा	५/१३५	विट्शूद्रयोरेवमेव	८/२७७
वसिष्ठविहितां वृद्धिम्	८/१४०	विड्वराहखरोष्ट्राणाम्	११/१५४
वसीत चर्म चीरं वा	६/६	विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थम्	५/१३४
वसून्वदन्ति तु पितृन्	३/२८४	वित्तं बन्धुर्वय: कर्म	२/१३६

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
विदुषा ब्राह्मणेनेदम्	१/१०३	विराट्सुता: सोमसद:	३/१९५
विद्ययैव समं कामम्	२/११३	विविधाश्चैव संपीडा:	१२/७६
विद्यागुरुष्वेतदेव	२/२०६	विशिष्टं कुत्रचिद्बीजम्	९/३४
विद्यातप:समृद्धेषु	३/९८	विशील: कामवृत्तो वा	५/१५४
विद्याधनं तु यद्यस्य	९/२०६	विस्रब्धं ब्राह्मण: शूद्रात्	८/४१७
विद्या ब्राह्मणमेत्याह	२/११४	विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्य:	३/९०
विद्या शिल्पं भृति: सेवा	१०/११६	विश्वैश्च देवै: साध्यैश्च	११/२९
विद्युतोऽशनिमेघांश्च	१/३८	विषघ्नैरगदैश्चास्य	७/२१८
विद्युत्स्तनितवर्षेषु	४/१०३	विषादप्यमृतं ग्राह्यम्	२/२३९
विद्वद्भि: सेवित: सद्भि:	२/१	विसृज्य ब्रह्मणांस्तांस्तु	३/२५८
विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा	८/३७	वीक्ष्यान्धो नवते: काण:	३/१७७
विधवायां नियुक्तस्तु	९/६०	वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वम्	१२/६७
विधवायां नियोगार्थे	९/६२	वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत	८/२३९
विधाता शासिता वक्ता	११/३५	वृत्तीनां लक्षणं चैव	१/११३
विधाय प्रोषिते वृत्तिम्।	९/७५	वृथाकृसरसंयावम्	५/७
विधाय वृत्तिं भार्याया:	९/७४	वृथासंकरजातानाम्	५/८९
विधियज्ञाज्जपयज्ञ:	२/८५	वृद्धांश्च नित्यं सेवेत	७/३८
विधिवत्प्रतिगृह्यापि	९/७२	वृषभैकादशा गाश्च	११/११६
विधूमे सन्नमुसले	६/५६	वृषलीफेनपीतस्य	३/१९
विनाद्भिप्सु वाप्यार्त:	११/२०२	वृषो हि भगवान्धर्म:	८/१६
विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यम्	४/६८	वेणुवैदलभाण्डानाम्	८/३२७
विप्र: शुध्यत्यप: स्पृष्ट्वा	५/९९	वेतनस्यैव चादानम्	८/५
विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता	११/१७६	वेद: स्मृति: सदाचार:	२/१२
विप्रयोगं प्रियैश्चैव	६/६२	वेदप्रदानादाचार्यम्	२/१७१
विप्रसेवैव शूद्रस्य	१०/१२३	वेदमेवाभ्यसेन्नित्यम्	४/१४७
विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु	१०/१०	वेदमेव सदाभ्यस्येत्	२/१६६
विप्राणां वेदविदुषाम्	९/३३४	वेदविज्ञैरहीनानाम्	२/१८३
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्	२/१५५	वेदविच्चापि विप्रोऽस्य	३/१७९
विप्रोष्य पादग्रहणम्	२/२१७	वेदविद्याव्रतस्नातान्	४/३१
विभक्ता: सह जीवन्त:	९/२१०	वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ:	१२/१०२

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
वेदानधीत्य वेदौ वा	३/२	वैश्यस्तु कृतसंस्कारः	९/३२६
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानम्	१२/८३	वैश्यातु जायते व्रात्यात्	१०/२३
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानम्	१२/३१	वैश्यान्मागधवैदेहौ	१०/१७
वेदाभ्यासेन सततम्	४/१४८	वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण	१०/९८
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या	११/२४५	वैश्वदेवस्य सिद्धस्य	३/८४
वेदार्थवित्प्रवक्ता च	३/१८६	वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते	३/१०८
वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य	१०/८०	व्यत्यस्तपाणिना कार्यम्	२/७२
वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च	२/९७	व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री	९/३०
वेदोक्तमायुर्मर्त्यानाम्	१/८४	व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्रीः	५/१६४
वेदोऽखिलो धर्ममूलम्	२/६	व्यभिचारेण वर्णानाम्	१०/२४
वेदोदितं स्वकं कर्म	४/१४	व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु	८/१
वेदोदितानां नित्यानाम्	११/२०३	व्यसनस्य च मृत्योश्च	७/५३
वेदोपकरणे चैव	२/१०५	व्याधांश्छाकुनिकान्गोपा	८/२६०
वेनो विनष्टोऽविनयात्	७/४१	व्रतवद्देवदैवत्ये	२/१८९
वैणवीं धारयेद्यष्टिम्	४/३६	व्रतस्थमपि दौहित्रम्	३/२३४
वैतानिकं च जुहुयात्	६/९	व्रात्यता बान्धवत्यागः	११/६२
वैदिके कर्मयोगे तु	१२/८७	व्रात्यात्तु जायते व्रिपात्	१०/२१
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैः	२/२६	व्रात्यानां याजनं कृत्वा	११/१९७
वैरिणं नोपसेवेत	४/१३३	व्रीहयः शालयो मुद्गाः	९/३९
वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम्	२/६७	शक्तः परजने दाता	११/९
वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत	३/६७	शक्तितोऽपचमानेभ्यः	४/३२
वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यात्	१०/०३	शक्तेनापि हि शूद्रेण	१०/१२९
वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्	८/३७५	शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य	८/२६७
वैश्यं प्रति तथैवैते	१०/७८	शत्रुसेविनि मित्रे च	७/१८६
वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्	१०/१०१	शनकैस्तु क्रियालोपात्	१०/४३
वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु	१०/८३	शब्दः स्पर्शश्च रूपं च	१२/९८
वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ	३/११२	शयानः प्रौढपादश्च	४/११२
वैश्यशूद्रोपचारं च	१/११६	शय्यां गृहान्कुशान्गान्धा	४/२५०
वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन	८/४१८	शय्यासनमलंकारम्	९/१७
वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्ताम्	८/३८२	शय्यासनेऽध्याचरिते	२/११९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
शरणागतं परित्यज्य	११/१९८
शरीरकर्षणात्प्राणाः	७/११२
शरीरजैः कर्मदोषैः	१२/९
शरीरं चैव वाचं च	२/१९२
शरःक्षत्रियया ग्राह्यः	३/४४
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्यात्	२/३२
शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यम्	८/३४८
शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य	१०/७९
शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे	८/३९६
शासनाद्वा विमोक्षाद्वा	८/३१६
शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीम्	८/२५६
शिलानप्युञ्छतो नित्यम्	३/१००
शिलोञ्छमप्याददीत	१०/११२
शिल्पेन व्यवहारेण	३/६४
शिष्ट्वा वा भूमिदेवानाम्	११/८२
शुक्तानि च कषायांश्च	११/१५३
शुचिना सत्यसंधेन	७/३१
शुचिं देशं विविक्तं च	३/२०६
शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुः	९/३३५
शुध्येद्विप्रो दशाहेन	५/८३
शुनां च पतितानां च	३/९२
शुभाशुभफलं कर्म	१२/३
शुल्कस्थानं परिहरन्	८/४००
शुल्कस्थानेषु कुशलाः	८/३९८
शुष्काणिभुक्त्वा मांसानि	११/१५५
शूद्रं तु कारयेद्दास्यम्	८/४१३
शूद्रविट्क्षत्रविप्राणाम्	८/१०४
शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्	१०/१२१
शूद्रस्य तु सवर्णैव	९/१५७
शूद्रां शयनमारोप्य	३/१७
शूद्राणां मासिकं कार्यम्	५/१४०
शूद्रादायोगवः क्षत्ता	१०/१२
शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः	१०/६४
शूद्रावेदी पतत्यत्र	३/१६
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य	३/१३
शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा	८/३७४
शूद्रो ब्राह्मणतामेति	१०/६५
शोचन्ति जामयो यत्र	३/५७
शोणितं यावतः पांसून्	४/१६८
शोणितं यावतः पांसून्	११/२०७
श्मशानेष्वपि तेजस्वी	९/३१८
श्रद्दधानः शुभां विद्याम्	२/२३८
श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च	४/२२६
श्राद्धभुग्वृषलीतल्पम्	३/२५०
श्राद्धंभुक्त्वा य उच्छिष्टम्	३/२४९
श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा	४/९५
श्रुतवृत्तो विदित्वास्य	७/१३५
श्रुतं देशं च जातिं च	८/२७३
श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्	२/१४
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः	२/१०
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मम्	२/९
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मम्	४/१५५
श्रुतीरथर्वांगिरसीः	११/३३
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च	२/९८
श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्	५/१
श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिम्	२/२०७
श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे	९/१८४
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा	२/९०
श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुम्	८/३९३
श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च	८/३९५

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
श्रोत्रियस्य कदर्यस्य	४/२२४	सकामां दूषयंस्तुल्यः	८/३६८
श्रोत्रियायैव देयानि	३/१२८	सकृज्जस्वास्यवामीयम्	११/२५०
श्रोत्रिये तूपसंपन्ने	५/८१	सकृदंशो निपतति	९/४७
श्वक्रीडी श्येनजीवी च	३/१६४	संकरापात्रकृत्यासु	११/१२५
श्वभिर्हतस्य यन्मांसम्	५/१३१	संकरे जातयस्त्वेताः	१०/४०
श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुम्	१०/१०६	संकल्पमूलः कामो वै	२/३
श्ववतां शौण्डिकानां च	४/२१६	संकीर्णयोनयो ये तु	१०/२५
श्वशृगालखरैर्दष्टः	११/१९९	संक्रमध्वजयष्टीनाम्	९/२८५
श्वसूकरखरोष्ट्राणाम्	१२/५५	संग्रामेष्वनिवर्तित्वम्	७/८८
श्वाविधं शल्यकं गोधाम्	५/१८	स चेत्तु पथि संरुद्धः	८/२९५
षट्कर्मैको भवत्येषाम्	४/९	सजातिजानन्तरजाः	१०/४१
षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यम्	३/१	संजीवनं महावीचिम्	४/८९
षडानुपूर्व्या विप्रस्य	३/२३	सताननुपरिक्रामेत्	७/१२२
षण्णां तु कर्मणामस्य	१०/७६	स तानुवाच धर्मात्मा	५/३
षण्णामेषां तु सर्वेषाम्	१२/८६	स तानुवाच धर्मात्मा	१२/२
षण्मासांश्छागमांसेन	३/२६९	स तैः पृष्टस्तथा सम्यक्	१/४
षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशम्	९/१६४	सत्क्रियां देशकालौ च	३/१२६
षष्ठान्नकालता मासम्	११/२००	सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानम्	१२/२६
संयोगं पतितैर्गत्वा	१२/६०	सत्त्वं रजस्तमश्चैव	१२/२४
संरक्षणार्थं जन्तूनाम्	६/६८	सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी	८/८१
संरक्ष्यमाणो राज्ञा यम्	७/१३६	सत्यधर्मार्यवृत्तेषु	४/१७५
संवत्सरं तु गव्येन	३/२७१	सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात्	४/१३८
संवत्सरं प्रतीक्षेत	९/७७	सत्यमर्थं च संपश्येत्	८/४५
संवत्सरस्यैकमपि	५/२१	सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु	११/१९६
संवत्सराभिशस्तस्य	८/३७३	सत्या न भाषा भवति	८/१६४
संवत्सरेण पतति	११/१८०	सत्यानृतं तु वाणिज्यम्	४/६
संशोध्य त्रिविधं मार्गम्	७/१८५	सत्येन पूयते साक्षी	८//८३
संसारगमनं चैव	१/११७	सत्येन शापयेद्विप्रम्	८/११३
संस्थितस्यानपत्यस्य	९/१९०	स त्वप्सु तं घटं प्रास्य	११/१८७
संहतान्योधयेदल्पान्	७/१९१	सदा प्रहृष्टया भाव्यम्	५/१५०

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
सदृशं तु प्रकुर्याद्यम्	९/१६९	समीक्ष्य स धृतः सम्यक्	७/१९
सदृशस्त्रीषु जातानाम्	९/१२५	समुत्पत्तिं च मांसस्य	५/४९
सद्भिराचरितं यत्स्यात्	८/४६	समुत्सृजेद्राजमार्गे	९/२८२
सद्यः पतति मांसेन	१०/९२	समुद्रयानकुशलाः	८/१५७
सद्यः प्रक्षालको वा स्यात्	६/१८	समैर्हि विषमं यस्तु	९/२८७
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता	३/६०	समोत्तमाधमै राजा	७/१८७
सन्तोषं परमास्थाय	४/१२	संप्राप्ताय त्वतिथये	३/९९
संत्यज्य ग्राम्यमाहारम्	६/३	संप्रीत्या भुज्यमानानि	८/१४६
संधिं च विग्रहं चैव	७/१६०	संभवांश्च वियोनीषु	१२/७७
संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यम्	९/२७६	संभूय स्वानि कर्माणि	८/२११
संधिं तु द्विविधं विद्यात्	७/१६२	संभोगो दृश्यते यत्र	८/२००
संध्यां चोपास्य शृणुयात्	७/२२३	संभोजनी साभिहिता	३/१४१
सन्निधावेष वै कल्पः	५/७४	समानाद्ब्राह्मणो नित्यम्	२/१६२
संन्यस्य सर्वकर्माणि	६/९५	संमार्जनोपाञ्जनेन	५/१२४
सपिण्डता तु पुरुषे	५/६०	सम्यग्दर्शनसंपन्नः	६/७४
सप्तकस्यास्य वर्गस्य	७/५२	सम्यङ्निविष्टदेशस्तु	९/२५२
सप्त वित्तागमा धर्म्याः	१०/११५	स यदि प्रतिपद्येत	८/१८३
सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य	९/२९६	सरस्वतीदृषद्वत्योः	२/१७
सप्तानां प्रकृतीनां तु	९/२९५	स राजा पुरुषो दण्डः	७/१७
सब्रह्मचारिण्येकाहम्	५/७१	सर्व एव विकर्मस्थाः	९/२१४
सभान्तः साक्षिणः प्राप्ताः	८/७९	सर्वलक्षणहीनोऽपि	४/१५८
सभाप्रपापूपशालाः	९/२६४	सर्वं वापि चरेद्ग्रामम्	२/१८५
सभां वा न प्रवेष्टव्यम्	८/१३	सर्वं वा रिक्थजातं तत्	९/१५२
समक्षदर्शनात्साक्ष्यम्	८/७४	सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदम्	१/१००
सममब्राह्मणे दानम्	७/८५	सर्वकण्टकपापिष्ठम्	९/२९२
समवर्णासु ये जाताः	९/१५६	सर्वं कर्मेदमायत्तम्	७/२०५
समवर्णे द्विजातीनाम्	८/२६९	सर्वं च तान्तवं रक्तम्	१०/८७
स महीमखिलां भुञ्जन्	९/६७	सर्वं च तिलसंबद्धम्	४/७५
समानयानकर्मा च	७/१६३	सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्	१०/१०२
समाहृत्य तु तद्भैक्षम्	२/५१	सर्वतो धर्मषड्भागः	८/३०४

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
सर्वं तु समवेक्ष्येदम्	२/८	सर्वो दण्डजितो लोकः	७/२२
सर्वं परवशं दुःखम्	४/१६०	सर्वोपायैस्तथा कुर्यात्	७/१७७
सर्वभूतेषु चात्मानम्	१२/९१	सर्षपाः षट्यवो मध्यः	८/१३४
सर्वमात्मनि संपश्यत्	१२/११८	सवर्णाग्रे द्विजातीनाम्	३/१२
सर्वरत्नानि राजा तु	११/४	स विद्यादस्यकृत्येषु	७/६७
सर्वलक्षणहीनोऽपि	४/१५८	सव्याहृतिप्रणवकाः	११/२४८
सर्ववर्णेषु तुल्यासु	१०/०५	स सन्धार्यः प्रयत्नेन	३/७९
सर्वस्यास्य तु सर्गस्य	१/८७	सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या	४/२६
सर्वस्वं वेदविदुषे	११/७६	सहपिण्डक्रियायांतु	३/२४८
सर्वाकरेष्वधीकारः	११/६३	सह वापि व्रजेद्युक्तः	७/२०६
सर्वान्परित्यजेदर्थान्	४/१७	सह सर्वाः समुत्पन्नाः	७/२१४
सर्वान् रसानपोहेत	१०/८६	सहस्रं हि सहस्राणाम्	३/१३१
सार्वसामेकपत्नीनाम्	९/१८३	सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य	२/७९
सर्वेण तु प्रयत्नेन	७/७१	सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यः	८/३७८
सर्वे तस्यादृता धर्माः	२/२३४	सहस्रं ब्राह्मणो दण्डम्	८/३८३
सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते	६/८८	सहासनमभिप्रेप्सुः	८/२८१
सर्वेषां ब्राह्मणो विद्यात्	१०/०२	सहोभौ चरतां धर्मम्	३/३०
सर्वेषां शावमाशौचम्	५/६२	सांवत्सरिकमाप्तैश्च	७/८०
सर्वेषां तु सनामानि	१/२१	साक्षिणःसन्तिमेत्युक्त्वा	८/५७
सर्वेषां तु विशिष्टेन	७/५८	साक्षिप्रश्नविधानं च	१/११५
सर्वेषां तु विदित्वैषाम्	७/२०२	साक्षी दृष्टश्रुतादन्यत्	८/७५
सर्वेषां धनजातानाम्	९/११४	साक्ष्यभावे तु चत्वारः	८/१८२
सर्वेषामपि चैतेषाम्	१२/८४	साक्ष्यभावे तु चत्वारो	८/२५८
सर्वेषामपि चैतेषाम्	६/८९	साक्ष्यभावे प्रणिधिभिः	८/१८२
सर्वेषामपि चैतैषाम्	१२/८५	साक्ष्येऽनृतं वदन्पाशैः	८/८२
सर्वेषामपि तु न्याय्यम्	९/२०२	सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु	११/१७७
सर्वेषामप्यभावे तु	९/१८८	सा चेदक्षतयोनिः स्यात्	९/१७६
सर्वेषामर्थिनो मुख्याः	८/२१०	सांतानिकं यक्ष्यमाणम्	११/१
सर्वेषामेव दानानाम्	४/२३३	सामध्वनावृग्यजुषी	४/१२३
सर्वेषामेव शौचानाम्	५/१०६	सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः	८/२६३

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
सामन्तानामभावे तु	८/२५९	सूतो वैदेहकश्चैव	१०/२६
सामादीनामुपायानाम्	७/१०९	सूत्रकार्पासकिण्वानाम्	८/३२६
साम्ना दानेन भेदेन	७/१९८	सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्त:	२/२२१
सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य	३/१२१	सेनापतिबलाध्यक्षौ	७/१८९
सारासारं च भाण्डानाम्	९/३३१	सेवेतेमांस्तु नियमान्	२/१७५
सार्ववर्णिकमन्नाद्यम्	३/२४४	सेनापत्यं च राज्यं च	१२/१००
सावित्राञ्छान्तिहोमांश्च	४/१५०	सोऽग्निर्भवति वायुश्च	७/७
सावित्रीं च जपेन्नित्यम्	११/२२५	सोदर्या विभजेरंस्तम्	९/२१२
सावित्रीमात्रसारोऽपि	२/११८	सोऽनुभूयासुखोदर्कान्	१२/१८
साहसे वर्तमानं तु	८/३४६	सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्	१/८
साहसेषु च सर्वेषु	८/७२	सोमपा नाम विप्राणाम्	३/१९७
सीताद्रव्यापहरणे	९/२९३	सोमपास्तु कवे: पुत्रा:	३/१९८
सीदद्भि: कुप्यमिच्छद्भि:	१०/११३	सोमविक्रयिणे विष्ठा	३/१८०
सीमां प्रतिसमुत्पन्ने	८/२४५	सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणाम्	५/९६
सीमायामविषह्यायाम्	८/२६५	सोमारौद्रं तु बह्वेना:	११/२५४
सीमाविवादधर्मश्च	८/६	सोऽसहायेन मूढेन	७/३०
सीमावृक्षांश्च कुर्वीत	८/२४६	सोऽस्य कार्याणिसंपश्येत्	८/१०
सुखं ह्यवमत: शेते	२/१६३	स्कन्धेनादाय मुसलम्	८/३१५
सुखाभ्युदयिकं चैव	१२/८८	स्तेनगायनयोश्चान्नम्	४/२१०
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा	३/३४	स्त्रियं स्पृशेददेशे य:	८/३५८
सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा	५/१४५	स्त्रियां तु रोचमानायाम्	३/६२
सुबीजं चैव सुक्षेत्रे	१०/६९	स्त्रियाप्यसंभवे कार्यम्	८/७०
सुरां पीत्वा द्विजो मोहात्	११/९०	स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तम्	९/१९८
सुरा वै मलमन्नानाम्	११/९३	स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन	१२/६९
सुवर्णचौर: कौनख्यम्	११/४९	स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या	२/२४०
सुवर्णस्तेयकृद्विप्र:	११/९९	स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरम्	२/३३
सुवासिनी: कुमारीश्च	३/११४	स्त्रीणामसंस्कृतानां तु	५/७२
सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत	६/६५	स्त्रीणां साक्ष्यंस्त्रिय: कुर्यु:	८/६८
सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्य:	९/५	स्त्रीधनानि तु ये मोहात्	३/५२
सूतानामश्वसारथ्यम्	१०/४७	स्त्रीधर्मयोगं तापस्यम्	१/११४

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च	८/७
स्त्रीष्वलोन्मत्तवृद्धानाम्	९/२३०
स्त्रीष्वनन्तरजातासु	१०/०६
स्थल जौदकशाकानि	६/१३
स्थानासनाभ्यां विहरेत्	११/२२४
स्थावराः कृमिकीटाश्च	१२/४२
स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ	५/१४२
स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिराम्	११/१४८
स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यम्	४/१४३
स्यन्दनाश्वैः समे युध्येत्	७/१९२
स्यात्साहसं त्वन्वयवत्	८/३३२
स्रोतसां भेदको यश्च	३/१६३
स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु	९/१६६
स्वधर्मो विजयस्तस्य	१०/११९
स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुः	३/२५२
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी	२/१८१
स्वभाव एष नारीणां	२/२१३
स्वभावेनैव यद्ब्रूयुः	८/७८
स्वमांसं परमांसेन	५/५२
स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते	१/१०१
स्वयं वा शिश्नवृषणौ	११/१०४
स्वयंकृतश्च कार्यार्थम्	७/१६४
स्वयमेव तु यो दद्यात्	८/१८६
स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्यात्	७/३२
स्वर्गार्थमुभयार्थं वा	१०/१२२
स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च	११/३२
स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्	८/१७२
स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये	३/२३२
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्	३/७५
स्वाध्यायेनित्ययुक्तः स्यात्	६/८
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैः	२/२८
स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन्	३/८१
स्वानि कर्माणि कुर्वाणाः	८/४२
स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रम्	९/२९४
स्वां प्रसूतिं चरित्रं च	९/७
स्वायंभुवस्यास्य मनोः	१/६१
स्वायंभुवाद्याः सप्तैते	१/६३
स्वारोचिषश्चोत्तमस्य	१/६२
स्वेदजं दंशमशकम्	१/४५
स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्या	९/११८
स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यः	१२/७०
स्वे स्वे धर्मे निविष्यनाम्	७/३५
हत्वा गर्भमविज्ञातम्	११/८७
हत्वा च्छित्त्वा च भित्वा	३/३३
हत्वा लोकानपीमांस्त्रीन्	११/२६१
हत्वा हंसं बलाकां च	११/१३५
हन्ति जातानजातांश्च	८/९९
हरेत्तत्र नियुक्तायाम्	९/१४५
हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टः	३/२३३
हविर्यच्चिररात्राय	३/२६६
हविष्पान्तीयमभ्यस्य	११/२५१
हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्	११/७७
हस्तिगोश्चोष्ट्रदमकः	३/१६२
हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च	१२/४३
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यम्	२/२१
हिरण्यभूमिमश्वं गाम्	४/१८८
हिरण्यमायुरन्नं च	४/१८९
हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः	१२/५९
हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या	७/२०८
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे	१/२९

श्लोक	अ०/श्लोक संख्या	श्लोक	अ०/श्लोक संख्या
हीनक्रियं निष्पुरुषम्	३/७	हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमान्	११/११९
हीनजातिस्त्रियं मोहात्	३/१५	हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा	११/२०४
हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्	४/१४१	हृद्गाभिः पूयते विप्रः	२/६२
हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्	२/१९४	होमे प्रदाने भोज्ये च	३/२४०

इति मनुस्मृतिश्लोकानामकारादिवर्णक्रमेण अनुक्रमणिका।

श्लोकानुक्रमणी

(जिन पर कुल्लूकभट्ट ने टीका नहीं लिखी है)

सङ्केत	श्लोक संख्या	सङ्केत	श्लोक संख्या
अकामोपहतं नित्यं निवृत्तं	१२/७	अहिंसा सत्यवचनं	४/११
अकृताशां स्तथा भर्तुः	७/५	आचारांश्चैव सर्वेषां	१/३
अक्रोधो गुरुशुश्रुषा	४/१३	आनृशंस्यं क्षमा सत्यम	४/१०
अग्नियो गरदश्चैव	८/२३	आयव्ययस्य कुशलान्	७/३
अग्निष्वात्ता हुतै स्तृप्ताः	३/११	इन्द्रियाणां समस्तानां	१/६
अग्नि होत्रस्य शुश्रुषा	२/७	उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः	१२/६
अजाश्वं मुखतो मेध्यं	५/१७	उत्पन्नयोरधर्मेण	३/१०
अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मं	६/१	उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां	८/२४
अथ शक्ति विहीनः स्याद्	८/१४	उपेत्य स्नातको विद्वान्	४/३
अदन्त जन्मनः सद्य	५/७	उभयत्र दशाहानि	५/३
अनर्हते यद् ददाति	३/३	एकमेवाद्वितीयं तु	८/८
अनृतौ तु मृदा शौचं	५/२०	एकादश्यां तथा रौप्यं	३/१९
अनेन विधिना शास्ता	८/१५	एवमेव विधिः कुर्याद्	८/२
अन्तरा ब्राह्मणं कृत्वा	४/६	एकः स्वादु न भुञ्जीत	४/४
अन्नं च नो बहु भवेद्	३/१२	एवं संबन्धनात्तस्मान्	८/९
अन्नहीनोदहे द्राष्ट्रं	११/४	एष एव परो धर्म	७/७
अपां पिबेच्च त्रिपलं	११/११	एष वोऽभिहितः कृत्स्नः	११/१३
अभ्रातृकां प्रदास्यामि	९/३	कर्मणि चातिकुशलान्	७/४
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं	४/१४	कामाभिपातिनी यातु	८/२६
अयाजिकं तु तद्राजा	८/२९	काले न्यायागतं पात्रे	३/४
अष्टम्यामपि वाणिज्यं	३/१८	क्रीत्वा विक्रीय वापण्यम	८/१७
अष्यावैणे यमांसने	३/१४	कुर्वन् प्रतिपदि श्राद्धं	३/१६
असद्वृत्तस्तु कामेषु	२/१	क्षत्रविट्शूद्रदायादा	५/११
असुतास्तु पितुः पत्न्य	९/४	क्षत्रियां चैव वैश्यां च	८/२७

सङ्केत	श्लोक संख्या	सङ्केत	श्लोक संख्या
क्षीराणि यान्यभक्षाणि	५/१	नातिस्थूलां नातिकृशां	३/१
गृहीत्वा मुसलं राजा	८/२२	न निर्वपति य: श्राद्धं	३/८
गैक्यान् हैमन्तिकान्	६/३	न भैक्ष्यं परपाक: स्यान्	२/९
गौर मेध्या मुखे प्रोक्ता	५/१८	न विद्यमानमेवं वै	४/१९
चतुर्वेद समं पुण्यमस्य	१२/१०	न विश्वसेदविश्वस्ते	७/१०
चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यादद्या:	४/१५	न वेदबलमाश्रित्य	१२/८
चन्द्रार्काद्या ग्रहा	७/१६	नारायण परो व्यक्ता	१/४
चिकित्सक कृतघ्नानां	४/१८	नासूर्यं हि व्रजेन्मार्गं	६/४
जननेप्येवमे स्यात्	५/५	नास्ति सत्यात् परो धर्मो	८/७
जन्मप्रभृति यत्किंचित्	२/८	पक्षाद्यादिषु निर्दिष्यन्	३/२१
जन्मप्रभृतिसंस्कारै:	११/७	पणा द्वादश दाप्य: स्यात्	८/१८
जरायुजाण्डजानां च	१/२	पतितं पतितेत्युक्त्वा	८/२२
ज्ञाति श्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां	३/२०	पत्यौ जीवति यातु	५/२२
तदस्त्रं सर्ववर्णानाम	११/२	परपाकान्नपुष्टस्य	३/६
तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति	११/३	परपूर्वासु पुत्रेषु सूतके	५/९
तस्माच्छ्रुतिस्मृति प्रोक्तं	२/२	परपूर्वासु भार्यासु	५/८
तीरितं चानुशिष्टं च	९/६	परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति	१/८
तेषामन्ये पंक्ति दूष्यास्त	३/९	परस्य चैते बोद्धव्या	७/१२
तेषां न पूजनीयोऽन्य	१/१०	परोक्षं सत्कृपापूर्वं	२/११
त्रपुसीसं तथा लोहं	१०/२	पशुवत् क्षौद्रघृतयोर्यच्च	८/१०
त्रिपिबं त्विन्द्रिय क्षीण	३/१५	पशुवत्क्षौद्रघृतयोर्यानेषु	८/११
त्रिदण्डं धारयेद्योगी	१२/५	पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां तु	३/१७
त्रिविधं च शरीरेण वाचा	१२/१	पात्रभूतो हि यो विप्र:	४/१६
त्र्यहकृतशौचानां तु	५/१५	पृथक् ब्राह्मण कल्पाभ्यां	११/१४
दन्तवद् दन्त लग्नेषु	५/१९	पुराणं मानवो धर्मो	१२/९
दानं प्रभृति या तु स्याद्	५/२१	प्रतिग्रहेण शुद्धेन शस्त्रेण	३/५
दीपहर्ता भवेदन्ध: काणो	११/६	प्रयच्छेन्नग्निकां कन्याम्	९/२
देशकाल विधानेन	७/८	प्राक् संस्कार प्रमीतानां	५/६
दैवेन विधिना युक्तं	७/१४	प्रायो नाम तप: प्रोक्तं	११/५
धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट:	२/४	ब्रह्मचर्यं जपो होम:	११/१२
न कृतघ्नैरनुद्युक्तै र्न	४/५	ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं	१/९

सङ्केत	श्लोक संख्या	सङ्केत	श्लोक संख्या
ब्राह्मणक्षत्रियविशां	११/९	वृद्धौ च मातापितरौ	११/१
ब्राह्मणस्तु निधिं लब्धवा	८/३	वैकारिकं तैजसं च	१/५
ब्राह्मणो वै मनुष्याणाम	८/६	शास्त्रस्य पारं गत्वा	४/२
भार्या पुरोहितस्तेना	८/३०	शुचिरग्निः शुचिर्वायुः	५/१६
भार्यायां रक्ष्यमाणायां	९/१	शुनाऽऽघ्रातावलीढस्य	११/१०
भार्यारिक्थापहारी च	८/२५	शुभैः प्रयोगै र्दैवत्वं	१२/२
भृत्येभ्यो विजयेरर्थान्	७/९	शूद्रोत्पन्नांशपापीयान्	८/२८
भैक्षस्यागमशुद्धस्य	२/१०	शौचमिज्या तपोदांन	४/१२
मनुस्वायं भुवो देवः	१२/११	श्राद्ध कर्मातिथेयं च	१०/१
मन्दरस्यापि शिखरं	७/६	श्राद्धभुक् पुनरश्नाति	३/१३
मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्	५/१०	श्रीकामो वर्जयेन्नित्यं	४/४
यतः पत्रं समादद्यान्न	६/२	श्रुतिं पश्यन्ति मुनयः	२/३
यत्र तत्स्यात् कृतं	८/४	षष्ठ्यष्टम्यौ त्वमा	४/७
यथाकर्म यथाकालं	१/६	सत्रधर्मप्रवृत्तस्य	५/४
यथा त्रिवेदाध्ययनं	१/११	सत्यां वाचमहिंसा	६/५
यदा भर्ता च भार्या च	३/२	सदा यजति यज्ञेन	५/२
यद्यदिष्टतमं लोके	३/७	सद्यः प्रक्षालिको वा	४/१
यद्विनाऽगममत्यन्तं	८/१३	सन्धिविग्रह कालज्ञान्	७/१
यस्य धर्मध्वजो नित्यं	४/८	सप्तोद्धृत्य ततः पिण्डान्	४/९
ये पठन्ति द्विजाः केचित्	१२/१२	समाहर्तुं प्रकुर्वीत	७/२
येऽप्यतीताः स्वधर्मेभ्यः	८/१२	समुत्कर्षापकर्षास्तु	८/२१
राजन्य वैश्ययोश्चैवं	५/१२	सर्वे चोत्तमवर्णास्तु	५/१४
वर्णानामानुपूर्व्येण	११/८	सायं प्रातर्द्विजातीनाम	२/६
वने वनेचराः कार्याः	७/११	संचयं कुरुते यस्तु	४/१७
वाग्दण्डो हन्ति विज्ञानं	१२/३	संन्यसेत् सर्वकर्माणि	६/६
विक्रियाद्यो धनं किञ्चिद्	८/५	संयुक्तस्यापि दैवेन	७/१५
विप्रकृष्टेऽध्वनीयत्र	७/१३	स्याच्चतुर्विंशति	८/१६
विप्रः शुध्येद् दशाहेन	५/१३	स्वयंभुवे नमस्कृत्य	१/१
विप्रक्षत्रियवत्कार्यो	८/२०	हरेरनृत्विजो वापि	९/५
विरुद्धा च विगीता च	२/५	हिंसा यः कुरुते कश्चिद्	८/१